सस्ती-ग्रन्थमाला का सातवाँ पुष्प

आचार्यकल्प पंडित टोडरमलजी विरचित

मोक्षमार्ग-प्रकाशक

प्रकाशक :—

सस्ती ग्रन्थमाला कमेटी,

नया मन्दिर, धर्मपुरा, देहली

प्रथम बार ४०००
द्वि० बार १०००
तृ० बार २३००
चतुर्थ बार २२००

वीर नि० सं० २४९१
वि० सं० २०२२

लागत मात्र मूल्य
तीन रुपया

प्रकाशक :—
सस्ती ग्रन्थमाला कमेटी,
श्री दि० जैन नया मन्दिर,
धर्मपुरा, देहली—६.

पत्र व्यवहार करने का पता :—
मुन्शी सुमेरचन्द जैन
अराइज़ नवीस,
२५९९, छत्ता प्रतापसिंह,
दरीबा कलाँ, देहली-६।

७-८-१९६५

मुद्रक :

पृष्ठ १ से १४४ तक :
फमस प्रिन्टग प्रेस,
चार रहट, दिल्ली—६

पृष्ठ १४५ से ३५२ तक :
शिवजी प्रेस,
गली बर्फ वाली, दिल्ली—६

पृष्ठ ३५३ से ५२८ तक :
मॉडर्न आर्ट प्रिन्टर्स,
३९१०, गली जगत सिनेमा वाली
देहली—६

प्रस्तावना

ग्रन्थ और ग्रन्थकार

भारतीय वाङ्मयमें हिन्दी जैन साहित्य अपनी खास विशेषता रखता है। इतना ही नहीं; किन्तु हिन्दी भाषाको जन्म देनेका श्रेय भी प्राय: जैन विद्वानोंको प्राप्त है, क्योंकि हिन्दी भाषाका उद्‌गम अपभ्रंश भाषासे हुआ है जिसमें जैनियोंका सातवी शताब्दीसे १७वीं शताब्दी तकका विपुल साहित्य, महाकाव्य, खण्डकाव्य, चरित्र, पुराण, कथा और स्तुति आदि विभिन्न विषयों पर लिखा गया है। यद्यपि उसका अधिकाश साहित्य अभी अप्रकाशित ही है तो भी हिन्दी भाषा में जैन साहित्य गद्य और पद्य दोनों मे देखा जाता है। हिन्दी का गद्य साहित्य १७ वी शताब्दी से पूर्व का मेरे देखनेमें नहो आया। हो सकता है कि यह इससे भी पूर्व लिखा गया हो परन्तु पद्य साहित्य उससे भी पूर्व का देखनेमें अवश्य आता है।

हिन्दी गद्य साहित्यमें स्वतन्त्र कृतियोंकी अपेक्षा टीका ग्रन्थोंकी अधिकता पाई जाती है परन्तु स्वतन्त्र रूपमें लिखी गई कृतियोमें सबसे महत्वपूर्ण कृति 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' ही है। यद्यपि यह ग्रन्थ विक्रमकी १९वी शताब्दी के प्रथम पादकी रचना है तथापि उससे पूर्ववर्ती और पश्चात्यवर्ती लिखे गए ग्रन्थ इसकी प्रतिष्ठा एवं महत्ताको नही पा सके। उसका खास कारण प० टोडरमलजीके क्षयोपशमकी विशेषता है। उस प्रकारके ग्रन्थ प्रणयनकी उनमें अपूर्व क्षमता थी, जो उन्हे स्वतः प्राप्त थी। उनकी विचारशक्ति आत्मानु-भव और पदार्थ विवेचन की अनुपम क्षमता और उनकी आन्तरिक

भद्रता ही उसका प्रधान कारण जान पड़ता है। यद्यपि सागानेर (जयपुर) वासी प० दीपचन्दजी शाहने स० १७७९ में चिद्विलास नाम के ग्रन्थ को और अनुभव प्रकाश की रचना की है और पद्य ग्रन्थ भी लिखे हैं जो मनन करने योग्य हैं परन्तु उनकी भाषा प० टोडरमल जीकी भाषा के समान परिमार्जित नही है और न मोक्षमार्ग-प्रकाशक जैसी सरल एवं सरस गम्भीर पदार्थ विवेचनका रहस्य ही देखनेको मिलता है, फिर भी वे ग्रन्थ अपने विषयके अनूठे हैं।

ग्रन्थ का नाम और विवेचन पद्धति

प्रस्तुत ग्रन्थका नाम 'मोक्षमार्ग-प्रकाशक' है जिसे ग्रन्थ कर्त्ताने स्वय ही सूचित किया है। यद्यपि पिछले चार पाँच प्रकाशनोंमें ग्रन्थ का नाम 'मोक्षमार्ग-प्रकाश' ही सूचित किया गया है, मोक्षमार्ग-प्रकाशक नहीं परन्तु ग्रन्थकर्ताने अपने ग्रन्थका नाम स्वयं ही 'मोक्ष-मार्ग-प्रकाशक' सूचित किया है और उनकी स्वहस्त लिखित 'खरडा' प्रति मे प्रत्येक अधिकार की समाप्ति सूचक अन्तिम पुष्पिका में 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' ही लिखा हुआ है और ग्रन्थ के प्रारम्भमें भी उन्होने 'मोक्षमार्ग-प्रकाशक सूचित किया है। इस कारण ग्रन्थ का नाम मोक्षमार्ग प्रकाशक रक्खा गया है, मोक्षमार्ग प्रकाश नहीं। ग्रन्थ का यह नाम अपने अर्थ को स्वयमेव सूचित कर रहा है। उसमे मोक्षमार्ग के स्वरूप अथवा मोक्षोपयोगी जीवादि पदार्थोका विवेचन सरल एव सुबोध हिन्दी भाषा में किया गया है। साथ ही शका समाधानके साथ विषयका स्पष्टीकरण भी किया गया है जिससे पाठक पदार्थकी वस्तु-स्थितिको सहजहीमें समझ सकते हैं। ग्रन्थकी महत्ता परिचित पाठकोंसे छिपी हुई नही है। उसका अध्ययन स्वाध्याय प्रेमियोंके लिये ही आवश्यक नहीं किन्तु विद्वानोंके लिये भी अत्यावश्यक है। उससे विद्वानों को विविध प्रकारकी चर्चाओं का—

खासकर प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग इन चार अनुयोगोंका कथन, प्रयोजन, उनकी सापेक्ष विवेचन शैलीका— जो स्पष्टीकरण पाया जाता है, वह अन्यत्र नहीं है। और इसलिये यह ग्रन्थ सभी स्त्री-पुरुषोंके अध्ययन, मनन, एवं चिन्तवन करनेकी वस्तु है। उसके अध्ययनसे अनुयोग पद्धतिमें विरुद्ध जंचनेवाली कथनशैली-के विरोधका निरसन सहज ही हो जाता है और बुद्धि उनके विषय विवक्षा और दृष्टिभेदको शीघ्र ही ग्रहण कर लेती है। साथ ही जैन मिथ्यादृष्टिका विवेचन अपनी खास महत्ताका द्योतक है। उससे जहाँ निश्चय व्यवहार रूप नयोंकी कथनशैली, दृष्टि, सापेक्ष, निरपेक्ष रूप नय विवक्षाके विवेचनके रहस्यका पता चलता है, वहाँ सर्वथा एकान्त रूप मिथ्या अभिनिवेशका कदाग्रह भी दूर हो जाता है और शुद्ध स्वरूप का अध्ययन एवं चितवन करने वाला जैन श्रावक उक्त प्रकरण का अध्ययन कर अपनी दृष्टिको सुधारनेमें समर्थ हो जाता है और अपनी आन्तरिक मिथ्यादृष्टिको छोड़कर यथार्थ वस्तु स्थितिके मार्ग पर आजाता है और फिर वहाँ आत्म कल्याण करनेमें सर्व प्रकारसे समर्थ हो जाता है।

इस तरह ग्रन्थ गत सभी प्रकरणोंकी विवेचना बड़ी ही मार्मिक, सरल, सुगम और सहज सुबोधशैलीसे की गई है परन्तु अभाग्यवश ग्रन्थ अधूरा ही रह गया है। मल्लजी अपने सकेतोके अनुसार इसे महाग्रन्थ का रूप देना चाहते थे और उसी दृष्टिसे उन्होंने अधिकार विभाग के साथ विषयका प्रतिपादन किया है। काश ! यदि यह ग्रन्थ पूरा हो जाता तो वह अपनी शानी नही रखता। फिर भी जितना लिखा जा सका है वह अपनेआपमें परिपूर्ण और मौलिक कृतिके रूपमें जगतका कल्याण करनेमें सहायक होगा। इस ग्रन्थके अध्ययन

एवं अध्यापनसे कितनोंका क्या कुछ भला हुआ और कितनोंकी श्रद्धा जैनधर्म पर दृढ़ हुई, इसे बतलानेकी आवश्यकता नहीं। पाठक और स्वाध्याय प्रेमीजन इसकी महत्तासे स्वयं परिचित हैं।

ग्रन्थकी भाषा

प्रस्तुत ग्रन्थकी भाषा ढूंढारी है। चूंकि जयपुर स्टेट राजपूतानेमें है और जयपुर के आस-पासका देश ढूंढाहड़ देश कहलाता है, इसी से उक्त प्रदेशकी बोल चालकी भाषा ढूंढारी कहलाती है। यद्यपि साहित्य सृजन में ढूंढारी भाषाका स्वतन्त्र कोई स्थान नहीं है, उसे राजस्थानी और व्रजभाषाके प्रभावसे सर्वथा अछूता भी नहीं कहा जा सकता और यह सम्भव प्रतीत होता है कि उस पर व्रजभाषाकी तरह राजस्थानी भाषा का भी असर रहा हो। व्रजभाषाके प्रभावके बीज तो उसमें निहित ही हैं; क्योंकि उत्तर प्रदेश की भाषा व्रज थी और राजस्थानके समीपवर्ती स्थानोंमें उसका प्रचार होना स्वाभाविक ही है। अतएव यह सम्भावना नहीं की जा सकती है कि ढूंढारी भाषा व्रजभाषाके प्रभावसे सर्वथा अछूती रही हो किन्तु उसमें व्रज-भाषाके शब्दोंका आदान प्रदान हुआ है। यही कारण है कि प्रस्तुत ग्रन्थकी भाषा ढूंढारी होते हुए भी उसमें व्रजभाषाकी पुट अंकित है।

ग्रन्थकी भाषा सरल, मृदु और सुबोध तो है ही और उसमें मधुरता भी कम नहीं पाई जाती है। पढते समय चित्त में स्फूर्तिको उत्पन्न करती है और बडी ही रसीली और आकर्षक जान पडती है। साथ ही १९वी शताब्दीके प्रारम्भिक जयपुरीय विद्वानोंमें जिस ढूंढारी भाषा का प्रचार था, प० टोडरमलजीकी भाषा उससे कही अधिक परिमार्जित है। वह आजकलकी भाषाके बहुत निकटवर्ती है और आसानीसे समझमें आसकती है। ढूंढारी भाषामें 'और' 'इसलिये' 'फिर' आदि शब्दोंके स्थान पर 'बहुरि' शब्द का प्रयोग किया गया है

और 'क्योंकि' 'इसलिये' 'इस प्रकार' आदि शब्दोंके स्थान पर 'जातैं' 'तातै' 'या भांति' जैसे शब्दों का प्रयोग हुआ है और षष्ठी विभक्तिमें जो रूप देखनेमें आते हैं उनमें बहुबचनमें 'सिद्धोंके' स्थान पर 'सिद्धनिका' जैसे शब्दोंका प्रयोग पाया जाता है। इसी तरह के और भी प्रयोग हैं पर उनके समझनेमें कोई खास कठिनाई उपस्थित नही होती। हाँ, ग्रन्थमें कतिपय ऐसे शब्दोका प्रयोग भी हुआ है जो सहसा पाठकोंकी समझमें नही आता जैसे 'आखता' शब्द का प्रयोग जिसका अर्थ उतावला होता है और इसी तरह एक स्थान पर 'हापटा मारै है' जैसे वाक्यका प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ अत्याशक्तिसे पदार्थका ग्रहण करना होता है। पर आज-कलके समयमे जब कि हिन्दी भाषा बहुत कुछ विकास एवं प्रसार पा चुकी है और वह स्वतन्त्र भारतकी राष्ट्र भाषा बनने जा रही है ऐसी स्थितिमें उस भाषाको समझनेमें कोई खास कठिनाई उपस्थित नही होती।

विषय-परिचय

प्रस्तुत मोक्षमार्ग प्रकाशक ग्रन्थ नौ अधिकारोंमें विभक्त है। उन में अन्तिम नवमा अधिकार अपूर्ण है और शेष आठ अधिकार अपने विषयमें परिपूर्ण हैं। इनमे से प्रथम अधिकारमे मगलाचरण और उसका प्रयोजन प्रगट करनेके अनन्तर ग्रन्थकी प्रमाणिकताका दिग्दर्शन कराया गया है। पश्चात् वाचने सुनने योग्य शास्त्र, वक्ता श्रोताके स्वरूपका सप्रमाण विवेचन करते हुए मोक्षमार्ग-प्रकाशक ग्रन्थकी सार्थकता बतलाई गई हैं।

दूसरे अधिकारमे सासारिक अवस्थाके स्वरूपका सामान्य दिग्दर्शन कराते हुए कर्म बन्धन निदान, नूतन बध विचार, कर्म और जीवका अनादि सम्बन्ध, अमूर्तिक आत्मासे मूर्तिक कर्मोंका सम्बन्ध, उन कर्मोंके घातिया अघातिया भेद, योग और कषायसे हनेवाले यथायोग्य कर्म बन्धनका निर्देश और जड़ पुद्गल परमाणुओं

का यथा योग्य प्रकृति रूप परिणमनका उल्लेख करते हुए भावोंसे कर्मोंका पूर्व बद्ध अवस्था में होने वाले परिवर्तनोंका निर्देश किया गया है। साथ ही कर्मो के फलदानमे निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध और भावकर्म द्रव्यकर्म का रूप भी बतलाया गया है।

तीसरे अधिकारमें भी ससार अवस्थाका स्वरूप निर्दिष्ट करते हुए दुःखोंके मूलकारण मिथ्यात्वके प्रभावका कथन किया गया है और मोहोत्पन्न विषयोंकी अभिलाषाजनक दुःख तथा मोही जीवके दुख निवृत्तिके उपायको निस्सार बतलाते हुए दुःख निवृत्तिका सच्चा उपाय बतलाया गया है और दर्शनमोह तथा चारित्रमोहके उदय से होनेवाले दुख और उनकी निवृत्तिका उल्लेख किया गया है। एकेन्द्रियादिक जीवोंके दुखोका उल्लेख करते हुए नरकादि चारों गतियोंके घोर कष्टों और उनको दूर करने वाले सामान्य विशेष उपायोका भी विवेचन किया गया है।

चतुर्थ अधिकारमें ससार परिभ्रमणके कारण मिथ्यात्व, अज्ञान और असयमके स्वरूपका कथन करते हुए प्रयोजनभूत और अप्रयोजनभूत पदार्थों का वर्णन और उनसे होने वाली राग द्वेषकी प्रवृत्तिका स्वरूप बतलाया गया है।

पाचवे अधिकारमें आगम और युक्तिके आधारसे विविधमतोकी समीक्षा करते हुए गृहीत मिथ्यात्वका बडा ही मार्मिक विवेचन किया गया है। साथ ही अन्य मत के प्राचीन ग्रन्थोंके उदाहरणो द्वारा जैन धर्म की प्राचीनता और महत्ताको पुष्ट किया गया है और श्वेताम्बर सम्प्रदाय सम्मत अनेक कल्पनाओं एव मान्यताओंकी समीक्षा की गई है और अछेरों (निन्हवों) का निराकरण करते हुए केवली के आहार नीहारका प्रतिषेध तथा मुनिके वस्त्र पात्रादि उपकरणोके रखनेका निषेध किया है। साथ ही ढूंढकमतकी आलोचना करते हुए प्रतिमा-

धारी श्रावक न होनेकी मान्यता, मुहपत्तिका निषेध और मूर्तिपूजाके प्रतिषेध का निराकरण भी किया गया है।

छठे अधिकारमें गृहीत मिथ्यात्वके कारण कुगुरु, कुदेव और कुधर्म का स्वरूप और उनकी सेवाका प्रतिषेध किया गया है और अनेक युक्तियों द्वारा गृह, सूर्य, चन्द्रमा, गौ और सर्पादिककी पूजाका भी निराकरण किया गया है।

सातवे अधिकार में जैन मिथ्यादृष्टिका साङ्गोपांग विवेचन करते हुए एकान्त निश्चयावलम्बी जैनाभास और सर्वथा एकान्त व्यवहारावलम्बी जैनाभास का युक्तिपूर्ण कथन किया गया है, जिसे पढ़ते ही जैन दृष्टि का वह सत्य स्वरूप सामने आ जाता है और उसकी वह विपरीत कल्पना जो वस्तु स्थितिको अथवा व्यवहार निश्चयनयोंकी दृष्टि को न समझने के कारण हुई थी दूर हो जाती है। इस महत्वपूर्ण प्रकरणमें मल्लजीने जैनियोंके अभ्यन्तर मिथ्यात्वके निरसनका बड़ा रोचक और सैद्धान्तिक विवेचन किया है और उभयनयोंको सापेक्ष दृष्टिको स्पष्ट करते हुए देव शास्त्र और गुरुभक्तिकी अन्यथा प्रवृत्तिका निराकरण किया है और सम्यक्त्वके सन्मुख मिथ्यादृष्टिका स्वरूप तथा क्षयोपशम, विशुद्ध, देशना, प्रायोग्य और करण इन पचलब्धियोंका निर्देश करते हुए उक्त अधिकार को पूरा किया गया है।

आठवे अधिकारमें प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग इन चार अनुयोगोंका प्रयोजन, स्वरूप, विवेचन शैली और उनमे होने वाली दोष कल्पनाओंका प्रतिषेध करते हुए अनुयोगोंकी सापेक्ष कथनशैली का समुल्लेख किया गया है। साथ ही आगमाभ्यास की प्रेरणा भी की गई है।

नवमें अधिकारमें मोक्षमार्गके स्वरूप का निर्देश करते हुए मोक्षके कारण सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यकचारित्र इन तीनों में से मोक्षमार्ग के प्रथम कारण स्वरूप सम्यग्दर्शनका भी पूरा विवेचन नहीं

लिखा जा सका है। खेद है कि ग्रन्थ कर्ताकी अकाल मृत्यु हो जानेके कारण वे इस अधिकार एवं ग्रन्थको पूरा करनेमें समर्थ नहीं हो सके हैं, यह हमारा दुर्भाग्य है। परन्तु इस अधिकार में जो भी कथन दिया हुआ है, वह बड़ा ही सरल और सुगम है। उसे हृदयंगम करने पर सम्यग्दर्शनके विभिन्न लक्षणोंका सहज ही समन्वय हो जाता है और उसके भेदोंके स्वरूप का भी सामान्य परिचय मिल जाता है। इस तरह इस ग्रन्थमें चर्चित सभी विषय अथवा प्रमेय ग्रन्थकर्ताके विशाल अध्ययन, अनुपम प्रतिभा और सैद्धान्तिक अनुभवनका सफल परिणाम है और वह ग्रन्थ कर्ताकी आन्तरिक भद्रताकी महत्ताके संद्योतक हैं।

इस ग्रन्थ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि गम्भीर एवं दुरुह चर्चा को सरलसे सरल शब्दोंमें अनेक दृष्टान्त और युक्तियोंके द्वारा समझानेका प्रयत्न किया गया है और स्वयं ही प्रश्न उठाकर उनका मार्मिक उत्तर भी दिया गया है, जिससे अध्येताको फिर किसी सन्देहका भाजन नही बनना पडता।

जीवन परिचय

हिन्दी साहित्यके दिगम्बर जैन विद्वानोमें पंडित टोडरमल्लजीका नाम खासतौरसे उल्लेखनीय है। आप हिन्दीके गद्य लेखक विद्वानोंमे प्रथमकोटिके विद्वान् हैं। विद्वत्ताके अनुरूप आपका स्वभाव भी विनम्र और दयालु था और स्वाभाविक कोमलता सदाचारिता आपके जीवन सहचर थे। अहंकार तो आपको छूकर भी नही गया था। आन्तरिक भद्रता और वात्सल्यका परिचय आपकी सौम्य आकृतिको देखकर सहजही हो जाता था। आपका रहन-सहन बहुतही सादा था। आध्यात्मिकताका तो आपके जीवनके साथ घनिष्ट सम्बन्ध था। श्री कुन्दकुन्दादि महान् आचार्योंके आध्यात्मिक ग्रन्थोंके अध्ययन,

मनन एवं परिशीलनसे आपके जीवन पर अच्छा प्रभाव पड़ा हुआ था। अध्यात्मकी चर्चा करते हुए आप आनन्द विभोर हो उठते थे और श्रोता-जन भी आपकी वाणीको सुनकर गद्गद् हो जाते थे। सस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओंके आप अपने समयके अद्वितीय एवं सुयोग्य विद्वान् थे। आपका क्षयोपशम आश्चर्यकारी था और वस्तु तत्वके विश्लेषणमें आप बहुत दक्ष थे। आपका आचार एव व्यवहार विवेक युक्त और मृदु था।

यद्यपि पडितजीने अपना और अपने माता पिता एवं कुटुम्बी-जनों का कोई परिचय नहीं दिया और न अपने लौकिक जीवन पर ही प्रकाश डाला है। फिर भी लब्धिसार ग्रन्थकी टीका-प्रशस्ति आदि सामग्री परसे उनके लौकिक और अध्यात्मिक जीवनका बहुत कुछ पता चल जाता है। प्रशस्तिके वे पद्य इस प्रकार हैं :—

"मै हूं जीव-द्रव्य नित्य चेतना स्वरूप मेरचो, लग्यो है अनादितै कलक कर्ममलको। ताहीको निमित्त पाय रागादिक भाव भये, भयो है शरीरको मिलाप जैसै खलको। रागादिक भावनिको पायकैं निमित्त पुनि होत कर्मबन्ध ऐसो है बनाव कलको। ऐसे ही भ्रमत भयो मानुष शरीर जोग वनै तो बनै यहां उपाव निज थलको ।।३६।।

दोहा—रम्भापति स्तुत गुन जनक, जाको जोगीदास।
सोई मेरो प्रान है, धारै प्रगट प्रकाश ।।३७।।
मै आतम अरु पुद्गल खंध, मिलकै भयो परस्पर बंध।
सो असमान जाति पर्याय, उपज्यो मानुष नाम कहाय ।।३८।।
मात गर्भमे सो पर्याय, करकै पूरण अंग सुभाय।
बाहर निकसि प्रगट जब भयो, तब कुटुम्बको भेलो भयो ।।३९।।
नाम धरचो तिन हर्षित होय, टोडरमल्ल कहे सब कोय।
ऐसो यहु मानुष पर्याय, बधत भयो निज काल गमाय ।।४०।।
देश ढुढाहड़ माँहि महान्, नगर सवाई जयपुर थान।

तामें ताको रहनो घनो, थोरो रहनो श्रोढै बनो ॥४१॥
तिस पर्याय विषै जो कोय, देखन जाननहारो सोय ।
मैं हूं जीव द्रव्य गुन भूप, एक अनादि अनन्त अरूप ॥४२॥
कर्म उदयको कारण पाय, रागादिक हो है दुखदाय ।
ते मेरे औपाधिकभाव, इनिकों विनशै मैं शिवराम ॥४३॥
वचनादिक लिखनादिक क्रिया, वर्णादिक अरु इन्द्रिय हिया ।
ये सब है पुद्गल का खेल, इनिमें नांहि हमारो मेल ॥४४॥

इन पद्यों परसे जहाँ पंडितजीके अध्यात्मिक जीवनकी झांकीका दिग्दर्शन होता है वहाँ यह भी ज्ञात होता है कि उनके लौकिक जीवनका नाम टोडरमल था। पिताका नाम जोगीदास था और माताका नाम रम्भा देवी था। दूसरे स्रोतोंसे यह भी स्पष्ट है कि आप खण्डेलवाल जातिके भूषण थे और आपका गोत्र 'गोदीका' था, जो भोंसा और बडजात्या नामक गोत्रका ही नामान्तर जान पड़ता है। तथा आपके वंशज साहूकार कहलाते थे—साहूकारी ही आपके जीवन यापनका एक मात्र साधन था—और घर भी सम्पन्न था। इसीसे कोई आर्थिक कठिनाई नहीं थी।

आपके गुरुका नाम बन्शीधर [1] था, इन्हीसे पं० जी ने प्रारम्भिक

1 यह पं० बन्शीधर वही जान पडते है जिनका उल्लेख ब्रह्मचारी रायमल्लजीने अपनी जीवन परिचय पत्रिकामे तीस वर्षकी अवस्थाके लगभग किया है जब वे उदयपुरसे प० दौलतरामजीके पाससे जयपुर प० टोडरमलजी से मिलने आए थे और वे वहाँ नही मिले थे, प० बन्शीधर जी मिले थे यथा—

"पीछे केताइक दिन रहि प० टोडरमल जयपुरके साहूकारका पुत्र ताकै विशेष ज्ञान जानि वासू मिलनेके अर्थि जयपुर नगरी आये। सो एक बन्शीधर किंचित् सयमका धारक विशेष व्याकरणादि जैनमतके शास्त्रोंका पाठी, सो पचास लडका पुरुष बाया जासै व्याकरण, छन्द, अलंकार, काव्य चरचा पढै, तासूं मिले।" वीरवाणी वर्ष अंक २।

शिक्षा प्राप्त की थी। आप अपनी क्षयोपशमकी विशेषताके कारण पदार्थ और उसके अर्थका शीघ्र ही अवधारण कर लेते थे। फलतः कुशाग्र बुद्धि होनेसे थोड़ेही समयमें जैन सिद्धान्तके सिवाय व्याकरण, काव्य, छन्द, अलकार, कोष आदि विविध विषयोंमें दक्षता प्राप्त कर ली थी।

यहाँ यह बात भी ध्यान में रखने लायक है कि पंडितजीके पूर्वज बीसपथ आम्नायके माननेवाले थे परन्तु पंडितजीने वस्तु स्वरूप और भट्टारकीय प्रवृत्तियोंका अवलोकन कर तेरह पन्थ का अनुसरण किया और उनकी शिथिलताको दूर करने का भी प्रयत्न किया। परन्तु जब उनमें सुधार होता न देखा किन्तु उलटा विकृत परिणमन एव कषाय की तीव्रता देखी, तब अपने परिणामोंको समकरि तेरा पन्थ की शुद्ध प्रवृत्तियोंको प्रोत्साहन देते हुए जनता में सच्ची धार्मिक भावना एव स्वाध्यायके प्रचारको बढाया जिससे जनता जैनधर्मके मर्मको समझने में समर्थ हुई और फलतः अनेक सज्जन और स्त्रियाँ अध्यात्मिक चर्चा के साथ गोम्मटसारादि ग्रन्थों के जानकार बन गये। यह सब उनके और रायमलजीके प्रयत्नका ही फल था।

आप विवाहित थे और आपके दो पुत्र थे, जिनमें एकका नाम हरिचन्द और दूसरेका नाम गुमानीराम था। हरिचन्दकी अपेक्षा गुमानीरामका क्षयोपशम विशेष था और वह प्राय अपने पिताके समान ही प्रतिभा सम्पन्न था और इसलिये पिताके अध्ययन तथा तत्व चर्चादि कार्योंमें यथायोग्य सहयोग भी देने लगा था।

गुमानीराम स्पष्ट वक्ता* थे और श्रोताजन उनसे खूब सन्तुष्ट

* "तथा तिनके पीछे टोडरमलजीके बडे पुत्र हरिश्चन्द्रजी तिनतें छोटे गुमानीरामजी महाबुद्धिवान् वक्ताके लक्षणकू धारै तिनके पास कितनेक रहस्य सुनिकर कुछ जानपना भया।"—सिद्धान्तसार टीका प्रशस्ति।

रहते थे। इन्होंने अपने पिताके स्वर्गगमनके दश बारह वर्ष बाद लगभग स० १८३७ में 'गुमान पन्थ' की स्थापना की थी[1]। गुमान-पन्थकी स्थापनाका मुख्य उद्देश्य उस समयकी धार्मिक शिथिलता एव प्रमादको दूर करते हुए धार्मिक स्थानोंमें पवित्रता पूर्वक ८४ आसा-दनाओं को बचाते हुए धर्मसाधनकी प्रवृत्तिको सुलभ बनाना था। उस समय चूंकि भट्टारकोंका साम्राज्य था और जनता भोली-भाली थी, इसीसे उनमें जो अधिक शिथिलता आगई थी उसे दूर कर शुद्ध मार्ग की प्रवृत्तिके लिये उन्हें 'गुमान पन्थ' की स्थापनाका कार्य करना आव-श्यक था और जिसका प्रचार शुद्धाम्नायके रूपमें आजभी मौजूद है और उससे उस शैथिल्यादिको दूर करनेमें बहुत कुछ सहायता मिली है। **जयपुरमें दीवान वधीचन्दके मन्दिरमें गुमान पन्थकी स्थापना** का कार्य सम्पन्न हुआ था। उसीमें उनको स्वहस्त लिखित ग्रन्थोंकी कुछ प्रतियाँ मोक्षमाग-प्रकाशक और गोम्मटसारादिकी मिली हैं। अस्तु —

क्षयोपशमकी विशेषता और काव्य-शक्ति

पडित टोडरमलजीके क्षयोपशमकी निर्मलताके सम्बन्धमे ब्रह्म-चारी रायमलजीने स० १८२१ की चिट्ठीमें जो पक्तियाँ लिखी हैं वे खासतौरसे ध्यान देने योग्य हैं और वे इस प्रकार हैं.—

"सारा ही विषै भाईजी टोडरमलजीके ज्ञानका क्षयोपशम अलौ-किक है जो गोम्मटसारादि ग्रन्थोकी सम्पूर्ण लाख श्लोक टीका बनाई

1. श्वेताम्बरी मुनि शान्तिविजयजी अपनी मानव धर्म सहिता (शान्त सुधानिधि) नामक पुस्तक के पृष्ठ १६७ में लिखते है कि—"बीस पन्थ में से फूटकर सम्वत् १७२६ में ये अलग हुए। जयपुरके तेरापन्थियोमें से पं० टोडरमलके पुत्र गुमानीरामजीने सम्वत् १८३७ में गुमान पन्थ निकाला।"

और पांच सात ग्रन्थोंकी टीका बनायवेका उपाय है। सो आयु की अधिकता हुए बनेगी। अर धवल महाधवलादि ग्रन्थोंके खोलवाका उपाय किया वा उहाँ दक्षिण देससूं पाँच सात और ग्रन्थ ताडपत्रांविषै कर्णाटी लिपि में लिख्या इहाँ पधारे हैं। याकूं मल्लजी बांचै हैं, वाका यथार्थ व्याख्यान करे हैं वा कर्णाटी लिपि मे लिखि ले हैं। इत्यादि न्याय व्याकरण गणित छन्द अलकारका याकै ज्ञान पाइए है। ऐसे पुरुष महत बुद्धिका धारक ई कालविषै होना दुर्लभ है तातें वासूं मिले सर्व सन्देह दूरि होइ हैं।"

इससे पडित जी की प्रतिभा और विद्वत्ताका अनुमान सहज ही किया जा सकता है। कर्नाटकी लिपिमें लिखना, अर्थ करना उस भाषा के परिज्ञानके बिना नही हो सकता।

आप केवल हिन्दी गद्य भाषाके ही लेखक नही थे, किन्तु आपमें पद्य रचना करनेकी क्षमता थी और हिन्दी भाषाके साथ सस्कृत भाषामे भी पद्य रचना अच्छी तरहसे कर सकते थे। गोम्मटसार ग्रन्थकी पूजा उन्होंने संस्कृतके पद्योंमें ही लिखी है जो मुद्रित हो चुकी है और देहलीके धर्मपुराके नये मन्दिरके शास्त्रभडारमें मौजूद है। इसके सिवाय सदृष्टि अधिकारका आदि अन्त मगल भी संस्कृत श्लोकोंमें दिया हुआ है और वह इस प्रकार है—

संदृष्टेर्लब्धिसारस्य क्षपणासारमीयुषः।
प्रकाशिनः पदं स्तौमि नेमिन्दोर्माधवप्रभोः ॥

यह पद्य द्वयर्थक है। प्रथम अर्थमें क्षपणासारके साथ लब्धिसार की सदृष्टिको प्रकाश करने वाले माधवचन्द्रके गुरु आचार्य नेमिचन्द्र सैद्धान्तिकके चरणोंकी स्तुतिकी गई है और दूसरे अर्थमें करण लब्धि के परिणामरूप कर्मोकी क्षपणाको प्राप्त और समीचीन दृष्टिके प्रकाशक नारायणके गुरु नेमिनाथ भगवान्के चरणोंकी स्तुतिका उपक्रम किया

गया है।

इसी तरह अन्तिम पद्य भी तीन अर्थोको लिए हुये है और उसमें शुद्धात्मा (अरहन्त), अनेकान्तवाणी और उत्तम साधुओंको सदृष्टिकी निर्विघ्न रचना के लिये नमस्कार किया गया है—वह पद्य इस प्रकार है —

शुद्धात्मनमनेकान्तं सानुमुत्तममंगलम् ।
वंदे संदृष्टिसिद्ध्यर्थं संदृष्टयर्थप्रकाशकम् ॥

हिन्दी भाषाके पद्योमें भी आपकी कवित्वशक्ति का अच्छा परिचय मिलता है। पाठकोंकी जानकारीके लिये गोम्मटसारके मगलाचरण का एक पद नीचे दिया जाता है जो चित्रालकारके रहस्यको अच्छी तरहसे व्यक्त करता है। उस पद्यके प्रत्येक पदपर विशेष ध्यान देनेमे चित्रालकारके साथ यमक, अनुप्रास और रूपक आदि अवकारोंके निदश भी निहित प्रतीत होते हैं। वह पद्य इस प्रकार है :—

मैं नमों नगन जैन जन ज्ञान ध्यान धन लीन ।
मैनमान विन दानघन, एनहीन तन छीन ॥

इस पद्यमें बतलाया गया है कि मैं ज्ञान और ध्यानरूपी धनमें लीन रहनेवाले, काम और मान (घमड) से रहित मेघके समान धर्मोपदेशकी वृष्टि करनेवाले, पापरहित और क्षोण शरीर वाले उन नग्न जैन साधुओ को नमस्कार करता हूँ। यह पद्य गोमूत्रिका बधका उदाहरण है। इसमें ऊपरसे नीचेकी ओर क्रमश: एक-एक अक्षर छोड़नेसे पद्यकी ऊपरकी लाइन बन जाती है और इसी तरह नीचेसे ऊपरकी ओर एक-एक अक्षर छोड़नेसे नीचेकी लाइन भी बन जाती है। इस तरहसे चित्रबंध कविता दुरूह होनेके कारण पाठकोकी उसमें शीघ्र गति नही होती किन्तु खूब सोचने विचारनेके बाद उन्हें कविताके रहस्यका पता चल पाता है।

ग्रन्थाभ्यास और शास्त्र प्रवचन

आपने अपने ग्रन्थाभ्यासके सम्बन्धमें 'मोक्षमार्गप्रकाशक' पृष्ठ १६-१७ में जो कुछ लिखा है वह इस प्रकार है :—

"बहुरि हम इस कालविषै यहाँ अब मनुष्य पर्याय पाया सो इस विषै हमारै पूर्व सस्कारतै वा भला होनहारतै जैनशास्त्रनिविषैं अभ्यास करनेका उद्यम होता भया। तातैं व्याकरण, न्याय, गणित आदि उपयोगी ग्रन्थनिका किंचित् अभ्यास करि टीका सहित समयसार, पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, नियमसार, गोम्मटसार, लब्धिसार, त्रिलोकसार, तत्वार्थ सूत्र इत्यादि शास्त्र अर क्षपणासार, पुरुषार्थसिद्धयुपाय, अष्टपाहुड, आत्मानुशासन आदि शास्त्र अर श्रावक मुनि का आचारके प्ररूपक अनेक शास्त्र अर सुष्ठु कथासहित पुराणादि शास्त्र इत्यादि अनेक शास्त्र हैं तिनविषैं हमारै बुद्धि अनुसारि अभ्यास वर्तै है।"

ऊपरके इस उल्लेख और मोक्षमार्ग-प्रकाशक ग्रन्थमें उद्धृत अनेक ग्रन्थोंके उदाहरणोंसे पडितजीके विशाल अध्ययनका पद-पद पर अनुभव होता है।

पंडितजी गृहस्थ थे—घर में रहते थे परन्तु वे सासारिक विषयभोगोमें आसक्त न होकर कमल-पत्रके समान अलिप्त थे और सवेग निर्वेद आदि गुणोंसे अलंकृत थे। अध्यात्म-ग्रन्थोसे आत्मानुभवरूप सुधारसका पान करते हुए तृप्त नही होते थे। उनकी मधुर वाणी श्रोताजनोंको आकृष्ट करती थी और वे उनकी सरल वाणीको सुन परम सन्तोषका अनुभव करते थे। पडित टोडरमलजीके घर पर विद्याभिलाषियोंका खासा जमघट सा लगा रहता था। विद्याभ्यास के लिये घर पर जो भी व्यक्ति आता था उसे आप बड़े प्रेमके साथ विद्याभ्यास कराते थे। इसके सिवाय तत्वचर्चाका तो वह केन्द्र ही

बन रहा था। वहाँ तत्वचर्चाके रसिक मुमुक्षुजन बराबर आते रहते थे और उन्हें आपके साथ विविध विषयों पर तत्वचर्चा करके तथा अपनी शंकाओंका समाधान सुनकर बड़ा ही सन्तोष होता था और इस तरह वे पंडितजीके प्रेममय विनम्र व्यवहार से प्रभावित हुए बिना नही रहते थे। आपके शास्त्र प्रवचनमें जयपुरके सभी प्रतिष्ठित चतुर और विशिष्ट श्रोताजन आते थे। उनमें दीवान रतनचन्दजी [1]

1. दीवान रतनचन्दजी और बालचन्दजी उस समय जयपुरके साधर्मियोंमें प्रमुख थे। वे बडे ही धर्मात्मा और उदार सज्जन थे। रतनचन्दजीके लघुभ्राता वधीचन्दजी दीवान थे। दीवान रतनचन्दजी वि० स० १८२१ से पहले ही राजा माधवसिहजीके समयमें दीवान पद पर आसीन हुए थे और वि० स० १८२६ मे जयपुरके राजा पृथ्वीसिहके समयमे थे और उसके बाद भी कुछ समय रहे है। प० दौलतरामजी ने दीवान रतनचन्दजीकी प्रेरणासे वि० स० १८२७ में प० टोडरमलजीकी पुरुषार्थसिद्धयुपायकी अधूरी टीकाको पूर्ण किया था जैसा कि प्रशस्तिके निम्नवाक्योंसे प्रगट है :—

साधर्मिनमें मुख्य है रतनचन्द दीवान।
पृथ्वीसिह नरेशको श्रद्धावान सुजान ।।६।।
तिनके अति रुचि धर्मसो साधर्मिनसो प्रीत।
देव-शास्त्र-गुरुकी सदा उरमे महा प्रतीत ।।७।।
आनन्द सुत तिनको सखा नाम जु दौलतराम।
भृत्य भूपको कुल वणिक जाके बसवे धाम ।।८।।
कछु इक गुरु-प्रतापतें कीनों ग्रन्थ अभ्यास।
लगन लगी जिन धर्ममो जिन दासनकोदास ।।९।।
तासूं रतन दीवानने कही प्रीति धर येह।
करिये टीका पूरण उर धर धर्म-सनेह ।।१०।।
तब टीका पूरी करी भाषारूप निधान।
कुशल होय चहुँ संगको लहै जीव निज ज्ञान ।।११।।

अजबरायजी, त्रिलोकचन्दजी पाटणी, महारामजी [1], त्रिलोकचन्दजी सोगानी, श्रीचन्दजी सोगानी और नेमचन्दजी पाटणीके नाम खास तौरसे उल्लेखनीय हैं। बसवा निवासी श्री प० देवीदासजी गोधाको भी आपके पास कुछ समय तक तत्व चर्चा सुननेका अवसर प्राप्त हुआ था [2]। उनका प्रवचन बडा ही मार्मिक और सरल होता था और उसमें श्रोताओंकी अच्छी उपस्थिति रहती थी।

समकालीन धार्मिक स्थिति और विद्वद्गोष्ठी

जयपुर राजस्थानमें प्रसिद्ध शहर है। उसे आमेरके राजा सवाई जयसिंहने स० १७८४ में बसाया था। टाड साहबने लिखा है कि उसके बसानेमें विद्याधर नामके एक जैन विद्वानने पूरा सहयोग दिया था। उस समय जयपुरकी जो स्थति थी उसका उल्लेख बाल ब्रह्मचारी रायमलजीने सम्वत् १८२१ की चिट्ठीमें दिया है। उससे स्पष्ट है कि उस समय जयपुरकी ख्याति जैनपुरी के रूपमें हो रही थी, वहाँ जैनियोके सात आठ हजार घर थे; जैनियोंकी इतनी अधिक गृहसंख्या उस समय सम्भवतः अन्यत्र कही भी नही थी। इसीसे ब्रह्मचारी रायमलजीने उसे धर्मपुरी बतलाया है। वहाँ के अधिकांश जैन राज्यके उच्च पदोंपर आसीन थे और वे राज्यमें सर्वत्र शांति एवं व्यवस्थामें अपना पूरा-पूरा सहयोग देते थे। दीवान रतनचन्दजी

अट्ठारहसै ऊपरै सवत सत्ताबीस ।
मगशिर दिन शनिवार है सुदि दोयज रजनीस ॥ १२ ॥

1. महारामजी ओसवालजातिके उदासीन श्रावक थे। बडे ही बुद्धिमान थे और पं० टोडरमलजीके साथ चर्चा करनेमें विशेष रस लेते थे।
2. "सो दिल्ली सूं पढकर बसुवा आय पीछें जयपुरमें थोड़े दिन टोडरमलजी महाबुद्धिमानके पास सुननेका निमित्त मिल्या, फिर बसुवा गये।"
—सिद्धान्तसारटीका प्रशस्ति

बालचन्दजी उनमें प्रमुख थे। उस समय माधवसिंहजी प्रथमका राज्य चल रहा था। वे बड़े प्रजावत्सल थे। राज्यमें सर्वत्र जीवहिंसाकी मनाई थी और वहाँ कलाल, कसाई और वैश्याएँ नहीं थी। जनता प्रायः सप्तव्यसनसे रहित थी। जैनियोंमें उस समय अपने धर्मके प्रति विशेष प्रेम और आकर्षण था और प्रत्येक साधर्मी भाईके प्रति वात्सल्य तथा उदारताका व्यवहार किया जाता था। जिन पूजन, शास्त्र स्वाध्याय, तत्वचर्चा, सामायिक और शास्त्रप्रवचनादि क्रियाओं में श्रद्धा-भक्ति और विनयका अपूर्व दृश्य देखनेमें आता था। कितने ही स्त्री-पुरुष गम्मटसारादि सिद्धातग्रन्थोंकी तत्वचर्चासे परिचित हो गये थे। महिलाएँ भी धार्मिक क्रियाओंके सद् अनुष्ठानमें यथेष्ट भाग लेने लगी थी। प० टोडरमलजीके शास्त्र प्रवचनमें श्रोताओंकी अच्छी उपस्थिति रहती थी और उनकी संख्या सातसौ आठसौसे अधिक हो जाया करती थी। उस समय जयपुरमें कई विद्वान थे और पठन-पाठनकी सब व्यवस्था सुयोग्य रीतिसे चल रही थी। आज भी जयपुरमें जैनियोंकी सख्या कई सहस्र है और उनमें कितने ही राज्यके पदों पर प्रतिष्ठित हैं।

साम्प्रदायिक उपद्रव

जयपुर जैसे प्रसिद्ध नगरमें जैनियोंके बढ़ते हुए प्रभुत्व एव वैभव को सम्प्रदाय-व्यामोहीजन असहिष्णुताकी दृष्टिसे देखते थे, उससे ईर्षा तथा द्वेष रखते थे और उसे नीचा दिखाने अथवा प्रभुत्वको कम करनेकी चिन्तामें सलग्न रहते थे और उसके लिये तरह तरहके उपाय काममें लानेकी गुप्त योजनाए भी बनाई जाती थी। उनकी इस असहिष्णुताका कारण यह जान पड़ता है कि जैनियोंके प्रसिद्ध विद्वान् पंडित टोडरमलजीसे शास्त्रार्थमें विजय पाना सम्भव नही था, क्योंकि उनकी मार्मिक सरल एवं युक्तिपूर्ण विवेचन शैलीका सब पर ही प्रभाव पड़े बिना नही रहता था और जैनी उस समय धन, वैभव,

प्रतिष्ठा आदि सत्कार्योंमें सबसे आगे बढ़े हुए थे, राज्यमें भी उनका कम गौरव नहीं था और राज्य कार्यमें उनकी बहुमूल्य सेवाओंका मूल्य बराबर आँका जाता था। इन्हीं सब बातोंसे उनकी असहिष्णुता अपनी सीमाका उल्लंघन कर चुकी थी।

सम्वत् १८१७ में श्याम नामका एक तिवारी ब्राह्मण तत्कालीन राजा माधवसिहजी प्रथम पर अपना प्रभाव प्रदर्शित कर किसी तरह राजगुरुके पदपर आसीन हो गया और उसने अपनी वाचालतासे राजाको अपने वशमें कर लिया तथा अवसर देख सहसा ऐसी अंधेरगर्दी मचाई कि जिसकी स्वप्नमें भी कभी कल्पना नहीं की जा सकती थी। राज्यमें पाये जानेवाले लाखो रुपयेकी लागतके विशाल अनेक जिन मन्दिरोंको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया और उनमें शिवकी मूर्ति रखदी गई और जिनमूर्तियोंको खंडितकर यत्र-तत्र फिकवा दिया गया। यह सब उपद्रव रायमलजीके लिखे अनुसार डेढ़ वर्ष तक रहा। राजाको जब श्याम तिवारीकी अंधेरगर्दीका पता चला तब उन्होंने उसका गुरुपद त्तोंमि (छीन) लिया और उसे देश निकाला दे दिया। उसने अपने अधम कृत्यका फल कुछ समय बाद ही पा लिया [1]।

---

1. सम्वत् अट्ठारहसे जब गए, ऊपर जबै अट्ठारह भये।
नब इक भयो तिवारी श्याम, डिभी अति पाखडको धाम॥
तुच्छ अधिक द्विज सबतै घाटि, दौरत हो साहनकी हाटि।
करि प्रयोग राजा बसि कियो, माधवेष नृप गुरु-पद दियो॥
दिन कितेक बीते है जबै, महा उपद्रव कीन्हो तबै।
हुक्म भूपको लेके वाह्, निसि गिराय देवल दिय ढाह॥
अमल राजाको जैनी जहाँ, नाव न ले जिनमतको तहाँ।
कोऊ आधो कोऊ सारो, बच्यो जहाँ छत्री रखवारो॥
काहू में शिव-मूरति धरदी, ऐसै मची 'श्याम' की गरदी।

चुनांचे सम्वत् १८१६ में मंगसिर बदी दोयज के दिन जयपुर राज्यके ३३ परगनोंके नाम एक श्राम हुक्म जारी किया गया जिसमें जैन-धर्मको प्राचीन और ज्योंका त्यों स्थापित करनेकी आज्ञा दी गई और तेरापन्थ बीसपन्थके मन्दिर बनवाने, उनकी पूजामें किसी प्रकार की रोकटोक न करनेका आदेश दिया गया और उनकी जायदाद वगैरह जो लूट पाटकर लेली गई थी उसे पुनः वापिस दिलानेकी भी आज्ञा दी गई। उस हुक्म नामेका जो सारा अश 'वीरवाणी' के टोडरमल अकमें प्रकाशित हुआ था, नीचे दिया जाता है :—

"सनद करार मिती मगसिर बदी २ स० १८१६ अप्रंच हद सरकारीमें सरावगी वगैरह जैनधर्म साधवा वाला सूं धर्ममे चालवा को तकरार छो सो याको प्राचीन जान ज्यों को त्यों स्थापन करवो फरमायो छै सो माफिक हुक्म श्रीहजूरकै लिखा छै—बीम पन्थ तेरा पन्थ परगनामें देहरा वनाओ व देवगुरुशास्त्र आगै पूजै छा जी भांति पूजो—धर्ममें कोई तरह की अटकाव न राखो अर माल मालियत वगैरह देवराको जो ले गया होय सो ताकीद कर दिवाय दीज्यो—केसर वगैरहको आगे जहाँसे पावे छा तिठा सू भी दिवावो कीज्यो। मिति सदर"—वीर वाणी वर्ष १, अक १६ से २१।

उसके बाद जयपुर आदि स्थानोमें पुनः उत्साहसहित जिनमन्दिर और मूर्तियोंका निर्माण किया गया और अनेक प्रतिष्ठादि महोत्सव भी किये गये। इस तरह वहाँ पुनः जिनधर्मका उद्योत हुआ।

अकस्मात् कोप्यो नृप भारो, दियो दुपहरा देश निकारो।
दुपटा धोति धरे द्विज निकस्यो, तिय जुत पायन लखि जग विगस्यो।
सोरठा—किये पापके काम, खोसिलियो गुरु पद नृपति।
यथा नाम गुण श्याम, जीवत ही पाई कुगति॥

—बुद्धिविलास, आरा प्रति

इन्द्रध्वज पूजा महोत्सव

सम्वत् १८२१ में जयपुरमें बड़ी धूमधामसे इन्द्रध्वज पूजाका महान् उत्सव हुआ था। उस समयकी बाल ब्रह्मचारी रायमलजीकी लिखी हुई पत्रिकासे [1] ज्ञात होता है कि उसमें चौंसठ गजका लम्बा चौड़ा एक चबूतरा बनाया गया था और उसपर एक डेरा लगाया गया था जिसके चार दरवाजे चारों तरफ बनाये गये। उसकी रचनामें बीस तीस मन कागजकी रद्दी, भोडल आदि पदार्थोंका उपयोग किया था। सब रचना त्रिलोकसारके अनुसार बनाई गई थी और इन्द्रध्वज पूजाका विधान संस्कृत भाषा पाठके अनुसार किया गया है और यह उप चिट्ठीमें अनेक ऐतिहासिक बातोंका उल्लेख किया गया था। उस चिट्ठी में अनेक ऐतिहासिक बातों का उल्लेख किया गया है और यह चिट्ठी दिल्ली, आगरा, भिंड, कोरडा जहानाबाद, सिरोज, वासौदा, इन्दौर, औरंगाबाद, उदयपुर, नागौर, बीकानेर, जैसलमेर, मुलतान आदि भारतके विभिन्न स्थानोंको भेजी गई थी। इससे उसकी महत्ता का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। राज्य की ओरसे सब प्रकारकी सुविधा प्राप्त थी। दरबारसे यह हुक्म आया था कि "पूजा जी के अर्थ जो वस्तु चाहिए सो ही दरबारसे ले जावो।" इस तरह की सुविधा वि० की १५वी १६वी शताब्दीमें ग्वालियरमें राजा डूंगरसिंह और उनके पुत्र कीर्तिसिंहके राज्य-कालमें जैनियोंको प्राप्त थी और उनके राज्यमें होनेवाले प्रतिष्ठा-महोत्सवोंमें राज्यकी ओरसे सब व्यवस्था की जाती थी।

रचनाएं और रचनाकाल

पं० टोडरमलजीकी कुल दश रचनाए हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—१ रहस्यपूर्ण चिट्ठी, २ गोम्मटसार जीवकांड टीका, ३ गोम्मटसार कर्मकाण्ड टीका, ४ लब्धिसार क्षपणासार टीका, ५ त्रिलोक-

1. देखो वीरवाणी वर्ष १ अंक ३

सार टीका, ६ आत्मानुशासन टीका, ७ पुरुषार्थसिद्धयुपायटीका, ८ अर्थसंदृष्टि अधिकार, ९ मोक्षमार्ग प्रकाशक और १० गोम्मटसारपूजा।

इनमें आपकी सबसे पुरानी रचना रहस्यपूर्ण चिट्ठी है जो कि विक्रम सम्वत् १८११ की फाल्गुणवदि पचमीको मुलतानके अध्यात्म-रसके रोचक खानचन्दजी, गंगाधरजी, श्रीपालजी, सिद्धारथजी आदि अन्य साधर्मी भाइयोंको उनके प्रश्नोंके उत्तररूपमें लिखी गई थी। यह चिट्ठी अध्यात्मरसके अनुभवके ओत-प्रोत है। इसमें अध्यात्मिक प्रश्नों का उत्तर कितने सरल एव स्पष्ट शब्दोंमें विनयके साथ दिया गया है। चिट्ठीगत शिष्टाचार-सूचक निम्न वाक्य तो पडितजीकी आन्तरिक भद्रता तथा वात्सल्यताका खासतौरसे द्योतक है --

"तुम्हारे चिदानन्दघनके अनुभवसे सहजानन्दकी वृद्धि चाहिये।"

गोम्मटसारादिकी सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका टीका

गोम्मटसार जीवकाड, कर्मकांड, लब्धिसार, क्षपणासार और त्रिलोकसार इन मूल ग्रन्थोंके रचयिता आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धाँतचक्रवर्ती हैं, जो वीरनन्दि इन्द्रनन्दिके वत्स तथा अभयनन्दिके शिष्य थे और जिनका समय विक्रमकी ११ वी शताब्दी है।

गोम्मटसार ग्रन्थपर अनेक टीकाए रची गई हैं किन्तु वर्तमानमें उपलब्ध टीकाओंमें मदप्रबोधिका सबसे प्राचीन टीका है जिसके कर्ता अभयचन्द सैद्धान्तिक[1] हैं। इस टीकाके आधारसे ही केशववर्णीने, जो अभयसूरिके शिष्य थे, कर्नाटक भाषामें 'जीवतत्व-

1. अभयचन्द्रकी यह टीका अपूर्ण है और जीवकाण्डकी ३८३ गाथा तक ही पाई जाती है। इसमें ८३ नं० गाथाकी टीका करते हुए एक 'गोम्मटसार पजिका' टीकाका उल्लेख निम्न शब्दोंमें किया गया है। "अथवा सम्मूर्छनगर्भोपातानाश्रित्य जन्म भवतीति गोम्मटसारपंजिकाकारादीनामभिप्रायः।"

प्रबोधिका' नामकी टीका भट्टारक धर्मभूषणके आदेशसे शक सं० १२८१ वि० स० १४१६ में बनाई है। यह टीका कोल्हापुरके शास्त्रभंडारमें सुरक्षित है और अभी तक अप्रकाशित है। मन्दप्रबोधिका और केशववर्णीकी उक्त कनड़ी टीकाका आश्रय लेकर भट्टारक नेमिचन्द्रने अपनी संस्कृत टीका बनाई और उसका नाम भी कनड़ी टीकाकी तरह 'जीवतत्वप्रबोधिका' रक्खा गया है। यह टीकाकार नेमिचन्द्र मूल संघ शारदागच्छ बलात्कारगणके विद्वान् थे। भट्टारक ज्ञानभूषण का समय विक्रमकी १६वी शताब्दी है; क्योंकि इन्होंने वि० सं० १५६० में 'तत्वज्ञानतरङ्गिणी' नामक ग्रन्थकी रचना की है। अत: टीका-कार नेमिचन्द्रका भी समय वि० की १६वीं शताब्दी है। इनकी 'जीव तत्वप्रबोधिका' टीका मल्लिभूपाल अथवा सालुवमल्लिराय नामक राजाके समयमें लिखी गई है और जिनका समय डा० ए० एन० उपाध्येने ईसाकी १६वीं शताब्दीका प्रथम चरण निश्चय किया है [1]। इससे भी इस टीका और टीकाकारका उक्त समय अर्थात् ईसाकी १६वी शताब्दीका प्रथम चरण व विक्रमकी १६वी शताब्दीका उत्तरार्ध सिद्ध है।

आचार्य नेमिचन्द्रको इस सस्कृत टीकाके आधारसे ही प० टोडर-मलजी ने सम्यग्ज्ञान बनाई चन्द्रिका है। उन्होंने इस संस्कृत टीकाको केशववर्णीकी टीका समझ लिया है जैसा कि जीवकाण्डटीका प्रशस्ति के निम्न पद्यसे प्रगट है :—

केशववर्णी भव्य विचार, कर्णाटक टीका अनुसार।

सस्कृतटीका कीना एहु, जो अशुद्ध सो शुद्ध करेहु ।।

पडितजीकी इस भाषाटीकाका नाम 'सम्यग्ज्ञान-चन्द्रिका' है जो उक्त संस्कृत टीकाका अनुवाद होते हुए भी उसके प्रमेयका विशद

1. देखो अनेकान्त वर्ष ४ किरण १

विवेचन करती है। पंडित टोडरमलजीने गोम्मटसार—जीवकाण्ड व कर्मकाण्ड, लब्धिसार—क्षपणासार, त्रिलोकसार इन चारों ग्रन्थोंकी टीकाएं यद्यपि भिन्न-भिन्न रूपसे की हैं किन्तु उनमें परस्पर सम्बन्ध देखकर उक्त चारों ग्रन्थोंकी टीकाओंको एक करके उसका नाम "सम्यग्ज्ञान-चन्द्रिका" रक्खा है जैसा कि पंडितजीकी लब्धिसार भाषा टीका प्रशस्तिके निम्नपद्यसे स्पष्ट है —

"या विधि गोम्मटसार लब्धिसार ग्रन्थनि की,
भिन्न भिन्न भाषाटीका कीनी अर्थ गायकें।
इनिकें परस्पर सहायकपनौ देख्यौ।
तातें एक करि दई हम तिनिको मिलायकें ।।

सम्यग्ज्ञान-चन्द्रिका धरयो है याका नाम।
सो ही होत है सफल ज्ञानानन्द उपजायकें।
कलिकाल रजनीमें अर्थको प्रकाश करै।
यातें निज काज कीने इष्ट भावभायकें ।।३०।।

इस टीकामें उन्होंने आगमानुसार ही अर्थ प्रतिपादन किया है और अपनी ओरसे कषायवश कुछ भी नहीं लिखा, यथा —

आज्ञा अनुसारी भये अर्थ लिखे या मांहि।
धरि कषाय करि कल्पना हम कछु कीनों नांहि ।।३३।।

टीकाप्रेरक श्रीराममलजी और उनकी पत्रिका :—

इस टीकाकी रचना अपने समकालीन रायमल नामके एक साधर्मी श्रावकोत्तमकी प्रेरणासे की गई है जो विवेकपूर्वक धर्मका साधन करते थे [1]। रायमलजीने अपना कुछ जीवन परिचय एक पत्रिकामें स्वय लिखा है जिससे ज्ञात होता है कि उन्होंने २२ वर्षको अवस्थामें

1. रायमल्ल साधर्मी एक, धर्मसधैया सहित विवेक।
सो नाना विध प्रेरक भयो, तब यह उत्तम कारज थयो।

साहिपुराके नीलापति साहूकारके सहयोग से जो देव-शास्त्र-गुरुका श्रद्धालु और अध्यात्म ग्रन्थोंका पाठी था, षट् द्रव्य, नव पदार्थ, गुणस्थान, मार्गणा, बंध, उदय और सत्ता आदिकी तत्वचर्चाका मर्मज्ञ था, जिसके तीन पुत्र थे जो जैनधर्मके श्रद्धालु थे; उससे वस्तुके स्वरूपको जानकर उन्होंने तीन चीजोंका त्याग जीवन पर्यन्तके लिये कर दिया—सर्वहरितकायका, रात्रीभोजनका और जीवन पर्यन्तके लिये विवाह करनेका। इसके बाद विशेष जिज्ञासु बनकर वस्तु तत्व का समीक्षण बराबर करते रहे। रायमलजी बाल ब्रह्मचारी थे और एक देश सयमके धारक थे। जैन धर्मके महान श्रद्धानी थे और उसके प्रचारमें संलग्न रहते थ, साथ ही बड़े ही उदार और सरल थे। उनके आचारमें विवेक और विनयकी पुट थी। वे अध्यात्म शास्त्रोंके विशेष प्रमी थे और विद्वानोंसे तत्वचर्चा करनेमें बड़ा रस लेते थे। पं० टोडरमलजीकी तत्व-चर्चासे बहुतही प्रभावित थे। इनकी इस समय दो कृतियाँ उपलब्ध हैं—एक कृति ज्ञानानन्द निर्भर निजरस श्रावकाचार दूसरी कृति चर्चासंग्रह है जो महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक चर्चाओंको लिए हुए है। इनके सिवाय दो पत्रिकाये भी प्राप्त हुई है जो 'वीर वाणी' में प्रकाशित हो चुकी हैं[1]। उनमेंसे प्रथम पत्रिकामे अपने जीवनकी प्रारम्भिक घटनाओंका समुल्लेख करते हुए पंडित टोडरमलजीसे गोम्मटसारकी टीका बनानेकी प्रेरणा की गई है और वह सिंघाणा नगरमे कब और कैसे बनी इसका पूरा विवरण दिया गया है। पत्रिकाका वह अश इस प्रकार है :—

"पीछे सेखावटी विषै सिंघाणा नग्र तहाँ टोडरमलजो एक दिली (दिल्ली) का बड़ा साहूकार साधर्मी ताके समीप कर्म (कार्य) के अथि वहाँ रहै, तहाँ हम गए और टोडरमलजी मिले, नाना प्रकारके प्रश्न किये ताका उत्तर एक गोम्मटसार नाम ग्रन्थकी साखिसूं देते गए।

1. देखो वीरवाणी वर्ष १ अंक २, ३।

सो ग्रन्थकी महिमा हम पूर्वे सुनी थी तासूं विशेष देखी अर टोडरमल जीका (के) ज्ञानकी महिमा अद्भुत देखी, पीछे उनसू हम कही— तुम्हारे या ग्रन्थका परिचै (परिचय) निर्मल भया है, तुमकरि याकी भाषा टीका होय तो घणा जीवोका कल्याण होय अर जिनधर्मका उद्योत होइ। अब हो (इस) कालके दोषकरि जीवोंकी बुद्धि तुच्छ रही है तो आगे यातै भी अल्प रहेगी। तातै ऐसा महान् ग्रन्थ प्राकृत ताकी मूलगाथा पन्द्रहसै १५००[1] ताकी संस्कृत टीका अठारह हजार १८००० ताविषैं अलौकिक चर्चाका समूह सदृष्टि वा गणित शास्त्रोंकी आम्नाय सयुक्त लिख्या है ताका भाव भासना महा कठिन है। अर याके ज्ञानकी प्रवर्ती पूर्वे दीर्घकाल पर्यन्त लगाय अब ताईं नाही तो आगै भी याकी प्रवर्ती कैसे रहेगी ? तातै तुम या ग्रन्थकी टीका करनेका उपाय शीघ्र करो, आयुका भरोसा है नाहीं। पीछें ऐसे हमारे प्रेरकपणाको निमित्त करि इनके टीका करनेका अनुराग भया। पूर्वे भी याकी टीका करने का इनका मनोरथ था ही, पीछें हमारे कहनेकरि विशेष मनोरथ भया, तब शुभ दिन मूहूर्तविषैं टीका करनेका प्रारम्भ सिघाणा नग्रविषै भया। सो वे तो टीका बनावते गए हम बांचते गए। वरस तीनमें गोम्मटसारग्रन्थकी अडतीस हजार ३८०००, लब्धिसार—क्षपणासार ग्रन्थकी तेरहहजार १३०००, त्रिलोकसार ग्रन्थकी चौदहहजार १४००० सब मिलि च्यारि ग्रन्थोंकी पैंसठ हजार टीका भई। पीछें सवाई जयपुर आये तहाँ गोम्मटसारादि च्यारो ग्रन्थोकूं सोधि याकी बहुत प्रति उतरवाईं। जहाँ शैली थी तहाँ सुधाइ-सुधाइ पधराई। ऐसे इन ग्रन्थोका अवतार भया।"

इस पत्रिकागत विवरण परसे यह स्पष्ट है कि उक्त सम्यग्ज्ञान

[1] रायमलजी गोम्मटसार की मूल गाथा सख्या पन्द्रहसौ १५०० बतलाई है जब कि उसकी संख्या सत्तरहसौ पाँच १७०५ है, गोम्मटसार कर्म काण्डकी ९७२ और जीवकाण्डकी ७३३ गाथासंख्या मुद्रित प्रतियो में पाई जाती है।

चन्द्रिकाटीका तीन वर्षमें बनकर समाप्त हुई थी जिसकी श्लोक संख्या पैंसठ हजार के करीब है और संशोधनादि तथा अन्य प्रतियोंके उतरवानेमें प्रायः उतना ही समय लगा होगा। इसीसे यह टीका स० १८१८ में समाप्त हुई है। इस टीकाके पूर्ण होने पर पण्डितजी बहुत आल्हादित हुए और उन्होंने अपनेको कृतकृत्य समझा। साथ साथ ही अन्तिम मङ्गलके रूपमें पंचपरमेष्ठीकी स्तुति की और उन जैसी अपनी दशाके होनेकी अभिलाषा भी व्यक्त की। यथा :—

आरम्भो पूरण भयो शास्त्र सुखद प्रासाद।
अब भये हम कृतकृत्य उर पायो अति आह्लाद ॥
अरहन्त सिद्ध सूर उपाध्याय साधु सर्व,
अर्थके प्रकाशी मांगलीक उपकारी है।
तिनको स्वरूप जानि रागतें भई जो भक्ति,
कायकों नमाय स्तुतिकों उचारी है ॥
धन्य धन्य तुमही से काज सब आज भयो,
कर जोरि बारम्बार बन्दना हमारी है।
मंगल कल्याण सुख ऐसो हम चाहत हैं,
होहु मेरी ऐसी दशा जैसी तुम धारी है ॥

यही भाव लब्धिसारटीका प्रशस्तिमें गद्यरूप में प्रगट किया है [1]।

लब्धिसार की यह टीका वि० स० १८१८ माघशुक्ला पंचमी के दिन पूर्ण हुई है, जैसा कि उसके प्रशस्ति पद्यसे स्पष्ट है :—

संवत्सर अष्टादशयुक्त, अष्टादशशत लौकिकयुक्त।
माघशुक्लापचमिदिन होत, भयो ग्रन्थ पूरन उद्योत ॥

---

1. "प्रारब्ध कार्यकी सिद्धि होने करि हम आपको कृतकृत्य मानि इस कार्य करनेकी आकुलता रहित होइ सुखी भये। वाके प्रसादतें सर्व आकुलता दूरि होइ हमारै शीघ्र ही स्वात्मज सिद्धि-जनित परमानन्दकी प्राप्ति होउ।"

—लब्धिसारटीका प्रशस्ति

लब्धिसार—क्षपणासारकी इस टीकाके अन्तमें अर्थसंदृष्टि नामका एक अधिकार भी साथमें दिया हुआ है, जिसमें उक्त ग्रन्थमें आनेवाली अकसंदृष्टियों और उनकी सज्ञाओं तथा अलौकिक गणितके करणसूत्रों का विवेचन किया गया है। यह सदृष्टि अधिकार से भिन्न है। जिसमें गोम्मटसार—जीवकाण्ड, कर्मकाण्डकी संस्कृतटोकागत अलौकिक गणितके उदाहरणों, करणसूत्रों, सख्यात असख्यात और अनन्तकी सज्ञाओं और अकसदृष्टियोंका विवेचन स्वतन्त्र ग्रन्थके रूपमें किया गया है और जो 'अर्थसदृष्टि' के सार्थक नामसे प्रसिद्ध है। यद्यपि टीका ग्रन्थोके आदिमें पाई जाने वाली पीठिकामें ग्रन्थगत संज्ञाओं एव विशेषताका दिग्दर्शन करा दिया है जिससे पाठक जन उस ग्रन्थ के विषयसे परिचित हो सकें। फिर भी उनका स्पष्टिकरण करनेके लिये उक्त अधिकारोकी रचनाकी गई है। इसका पर्यालोचन करनेसे सदृष्टि-विषयक सभी बातोका बोध हो जाता है। हिन्दी भाषाके अभ्यासी स्वाध्याय प्रेमी सज्जन भी इससे बराबर लाभ उठाते रहे हैं। आपकी इन टीकाओंसे ही दिगम्बर समाजमें कर्मसिद्धान्तके पठन पाठनका प्रचार बढ़ा है और इनके स्वाध्यायी सज्जन कर्मसिद्धान्तसे अच्छे परिचित देखे जाते हैं। इस सबका श्रेय पं० टोडरमलजीको ही प्राप्त है।

त्रिलोकसार टीका----

त्रिलोकसार टीका यद्यपि स० १८२१ से पूर्व बन चुकी थी परन्तु उसका संशोधनादि कार्य बादको हुआ है और पीठबन्ध वगैरह बादको लिखे गये हैं। मल्लजीने इस टीकाका दूसरा कोई नाम नहीं दिया। इससे यह मालूम होता है कि उसे भी सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका टीकाके अन्तर्गत समझा जाय।

मोक्षमार्ग प्रकाशक----

इस ग्रन्थका परिचय पहले दिया जा चुका है और इसकी रचना

का प्रारम्भ समय भी सम्वत् १८२१ के पूर्वका है। भले ही बाद में उसका संशोधन परिवर्धन हुआ हो।

पुरुषार्थसिद्धच्युपाय टीका—

यह उनकी अंतिम कृति जान पड़ती है। यही कारण है कि यह अपूर्ण रह गई है। यदि आयुवश वे जीवित रहते तो वे उसे अवश्य पूरी करते। बादकी यह टीका श्री रतनचन्दजी दीवानकी प्रेरणासे पंडित दौलतरामजीने स० १८२७ में पूरी की है परन्तु उनसे उसका वैसा निर्वाह नहीं हो सका है। फिर भी उसका अधूरापन तो दूर हो ही गया है।

उक्त कृतियोंका रचनाकाल स० १८११ से १८१८ तक तो निश्चित ही है। फिर इसके बाद और कितने समय तक चला, यद्यपि यह अनिश्चित है, परन्तु फिर भी स० १८२४ के पूर्व तक उसकी सीमा जरूर है। प० टोडरमलजीकी ये सब रचनाए जयपुर नरेश माधवसिंहजी प्रथमके राज्यकालमें रची गई हैं। जयपुर नरेश माधवसिंहजी प्रथमका राज्य वि० सं० १८११ से १८२४ तक निश्चित माना जाता है[1]। पं० दौलतरामजीने जब स० १८२७ में पुरुषार्थसिद्धच्युपायकी अधूरी टीकाको पूर्ण किया तब जयपुरमें राजा पृथ्वीसिंहका राज्य था। अतएव सवत् १८२७ से पहले ही माधवसिंहका राज्य करना सुनिश्चित है।

गोम्मटसार पूजा—

यह संस्कृत भाषामें पद्यबद्ध रची हुई छोटी सी पूजाकी पुस्तक है। जिसमें गोम्मटसारके गुणोंकी महत्ता व्यक्त करते हुए उसके प्रति अपनी भक्ति एव श्रद्धा व्यक्त की गई है।

---

1. देखो 'भारतके प्राचीन राजवश' भाग ३ पृ० २३६, २४०।

मृत्युकी दुखद घटना—

पंडितजीकी मृत्यु कब और कैसे हुई ? यह विषय अर्सेसे एक पहेली सा बना हुआ है। जैन समाजमें इस सम्बन्धमें कई प्रकारकी किवदन्तियाँ प्रचलित हैं; परन्तु उनमें हाथीके पैर तले दबवाकर मरवानेकी घटना का बहुत प्रचार है। यह घटना कोरी कल्पना ही नहीं है, किन्तु उसमें उनकी मृत्युका रहस्य निहित है। पहले मेरी यह धारणा थी कि इस प्रकार अकल्पित घटना प० टोडरमलजी जैसे महान् विद्वानके साथ नहीं घट सकती। परन्तु बहुत कुछ अन्वेषण तथा उसपर काफ़ी विचार करनेके बाद मेरी धारणा अब दृढ हो गई है कि उपरोक्त किंवदन्ती असत्य नही है किन्तु वह किसी तथ्यको लिए हुए अवश्य है। जब हम उसपर गहरा विचार करते हैं और पंडितजीके व्यक्तित्व तथा उनकी सीधी सादी भद्र परिणतिकी ओर ध्यान देते हैं; जो कभी स्वप्नमें भी पीड़ा देनेका भाव नही रखते थे, तब उनके प्रति विद्वेषवश अथवा उनके प्रभाव तथा व्यक्तित्व के साथ घोर ईर्षा रखने वाले जैनेतर व्यक्तिके द्वारा साम्प्रदायिक व्यामोहवश सुझाये गये अकल्पित एव अशक्य अपराधके द्वारा अन्ध श्रद्धावश विना किसी निर्णयके यदि राजाका कोप सहसा उमड़ पड़ा हो और राजाने पडितजीके लिये बिना किसी अपराधके भी उक्त प्रकारसे मृत्युदण्ड का फतवा दे दिया हो तो कोई आश्चर्य की बात नही; क्योंकि जब हम उस समय की भारतीय रियासती परिस्थितियों पर ध्यान देते हैं तो उस समयके भारतीय नरेशों द्वारा अन्धश्रद्धावश किये गये अन्याय-अत्याचारोंका अवलोकन होता है तब उससे हमें आश्चर्यको कोई स्थान नही रहता। यही कारण है कि उस समय के विद्वानोंने राज्यके भयसे उनकी मृत्यु आदिके सम्बन्धमें स्पष्ट कुछ भी नहीं लिखा और उस समय जो कुछ लिखा हुआ प्राप्त हो सका उसे नीचे दिया जाता है। क्योंकि उस समय सर्वत्र रियासतों

में खासतौरसे मृत्युभय और धनादिके अपहरणकी सहस्रों घटनाएँ घटती रहती थीं और उनसे प्रजामें घोर आतंक बना रहता था। हाँ आज परिस्थितियाँ बदल चुकी हैं और अब प्रायः इस प्रकारकी घटनाएँ कहीं सुनने में नही आतीं।

पंडित टोडरमलजीकी मृत्युके सम्बन्धमें एक दुखद घटनाका उल्लेख पं० बखतराम शाहके 'बुद्धि विलास' में पाया जाता है और वह इस प्रकार है :—

> "तब ब्राह्मणनु मतौ यह कियो, शिव उठानको टौना दियो।
> ामें सबै श्रावगी कैद, करिके दड किये नृप फैद ॥
> गरु तेरह-पथिनुको भमी, टोडरमल्ल नाम साहिमी।
> ताहि भूप मारचो पल मांहि, गाडचो मद्धि गंदगी ताहि ॥
>
> —आरा भवन प्रति

इसमें स्पष्ट रूपसे यह बतलाया गया है कि स० १८१८ के बाद ...ब जयपुरमें जैनधर्मका पुन. विशेष उद्योत होने लगा, तब यह सब ...र्य सम्प्रदाय विद्वेषी ब्राह्मणोंको सह्य नही हुआ और उन्होंने मिल कर एक गुप्त 'षडयत्र' रचा—जिसमें ऐसी कोई असह्य घटना घटा कर जैनियोंपर उसका आरोप किया जा सके और इच्छित कार्यकी पूर्ति हो सके। तब सबने एक स्वरसे शिवपिंडीको उखड़वानेकी बात स्वीकार की और उसका अपराध जैनियों पर बिना किसी जाँचके लगाये जानेका निश्चय किया गया। अनन्तर तदनुसार घटना घटवा और राजाको जैनियोंकी ओर से विद्वेषकी तरह तरहकी बातें सुनाकर राजाको भड़काया और क्रोध उभजाया गया। इधर जैनियोंने किसी धर्मके सम्बन्धमें कभी ऐसे विद्वेषकी घटनाको जन्म नही दिया और न उसमें भाग ही लिया, हाँ अपने पर घटाई जानेवाली असह्य घटनाओं को विषके घूंटसमान चुपचाप सहा। इतिहास इसका साक्षी है। चुनांचे राजाने घटना सुनते ही बिना किसी जांच पड़तालके क्रोधवश

सब जैनियोंको रात्रिमें ही कैद करने और उनके प्रसिद्ध विद्वान पंडित टोडरमलजीको पकड़कर मरवा डालनेका हुक्म दे दिया। हुक्म होते ही उन्हें हाथीके पग तले दाब कर मरवा दिया और उनके शव को शहर की गन्दगीमें गड़वाया गया।

सुना जाता है कि जब पंडितजीको हाथीके पग तले डाला गया और हाथी को अंकुश ताड़नाके साथ उनके शरीरपर चढ़ने के लिये प्रेरित किया गया तब हाथी एकदम चिंघाडके साथ उन्हें देखकर सहम गया और अंकुशके दो वार भी सह चुका पर अपने प्रहारको करनेमें अक्षम रहा और तीसरा अंकुश पड़ना ही चाहता था कि पंडित जीने हाथीकी दशा देखकर कहा कि हे गजेन्द्र! तेरा कोई अपराध नहीं; जब प्रजाके रक्षकने ही अपराधी निरपराधीकी जाँच नही की और मरवानेका हुक्म दे दिया तब तू क्यों व्यर्थ अंकुशका वार सह रहा है, संकोच छोड़ और अपना कार्य कर। इन वाक्योंको सुनकर हाथीने अपना कार्य किया।

ऐसे असह्य घटनाके आरोपका सकेत केशरीसिह पाटणी सांगाकोंके एक पुराने गुटकेमें भी पाया जाता है—

"मिति कार्तिक सुदी ५ ने (को) महादेवकी पिडि सहैरमाही कछु अमारगी उपाडि नाखि तीह परि राजा दोष करि सुरावग धरम्या परि दड नाख्यौ।"—वीर वाणी वर्ष १ पृष्ठ २८५।

इन सब उल्लेखोसे सम्प्रदाय व्यामोही जनोंकी विद्वेषपूर्ण परिस्थितिका अवलोकन करते हुए उक्त घटनाको किसी भी तरह असम्भव नही कहा जा सकता। इस घटनासे जैनियोंके हृदयमें जो पीडा हुई उसका दिग्दर्शन कराकर मैं पाठकोंको दु:खी नही करना चाहता पर यह निसकोच रूपसे कहा जा सकता है कि मल्लजीके इस विद्वेषवश होने वाले बलिदानको कोई भी जैन अपने जीवनमें नही भुला सकता। अस्तु—

राजा माधवसिंहजी प्रथमको जब इस षडयंत्रके रहस्यका ठीक पता चला तब वे बहुत दुःखी हुए और अपने कृत्यपर बहुत पछताये। पर 'अब पछताए होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत' इसी नीतिके अनुसार अकल्पित कार्य होनेपर फिर केवल पछतावा ही रह जाता है। बादमें जैनियोंके साथ वही पूर्ववत् व्यवहार हो गया।

अब प्रश्न केवल समयका रह जाता है कि उक्त घटना कब घटी? यद्यपि इस सम्बन्धमें इतना ही कहा जा सकता है कि सं० १८२१ और १८२४ के मध्यमें माधवसिंहजी प्रथमके राज्य कालमें किसी समय घटी है परन्तु उसकी अधिकांश सम्भावना सं० १८२४ में जान पड़ती है। चूंकि पं० देवीदासजी जयपुरसे बसवा गए और उससे वापिस लौटने पर पुनः पं० टोडरमलजी नही मिले, तब उन्होंने उनके लघुपुत्र पडित गुमानीरामजीके पास ही तत्वचर्चा सुनकर कुछ ज्ञान प्राप्त किया। यह उल्लेख स० १८२४ के बादका है और उसके अनन्तर देवीदास जी जयपुरमें सं० १८३८ तक रहे हैं।

परमानन्द जैन शास्त्री

विषय—सूची

प्रथम अधिकार

दूसरा अधिकार

तीसरा अधिकार

चौथा अधिकार

छठा अधिकार

सातवाँ अधिकार

आठवाँ अधिकार

नवमा अधिकार

मोक्षमार्ग-प्रकाशकमें उद्धृत पद्यानुक्रम

शुद्धि पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	मंगलाचरण के ऊपर	—	अथ मोक्ष मार्ग प्रकाशक नामा शास्त्र लिख्यते :-
४	१७	रह्या ही	ही रह्या
६	१२	विशेषता करि	विशेषता होने करि
६	१३	भाव	—
८	८	तथा	तथापि
८	१६	अनुसरि	अनुसारि
९	१९	लिये	लिये ही
९	१९	भाव	—
१०	८	सिद्धी	सिद्धी ऐसै
१०	२२	किखू	किछु
११	२	किछ	किछु
११	१८	समाप्ति	समाप्तता
१२	७	कहै	कहै है
१२	१७	होने	—
१२	१७	तैसै ही	तैसै
१२	२२	ही	ही का
१५	१	सो	सो मैं
१५	१९	गए	भए
१८	९	पाइए है,	पाइए है, और किछु प्रयोजन ही नाही। बहुरि श्रद्धानी गृहस्थ भी कोई ग्रंथ बनावै है

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२०	८	जीवादिक	जीव अजीवादिक
२०	१४	हवयणं	पवयणं
२३	४	परन्तु	पर
२५	४	तातै	तातै तू
२५	८	महा	महान
२७	८	कार्य	विशेष कार्य
२७	८	वृत्ति	प्रवृत्ति
२७	६	सहज	पद्धति बुद्धि करि वा सहज
२६	५	पूर्व ग्रन्थ	ग्रन्थ पूर्व
३६	१५	णया	पाया
३६	१८	सहकारण	सहकार
३७	५	तब	तो
३७	१५	बुद्धितै	बुद्धितै जोरावरी करी जुदे किए नाहीं, दिवस विषै काहूने करुणा बुद्धितै
४०	१	शुभोपयोग	शुभयोग
४०	२०	घना	घना वा
४१	६	बहुरि	बहुरि जो
४१	६	है ता विषै	है अर ता विषै
४६	५	सुखी	जीव सुखी
४६	७	रूा	रूप
४७	१६	श्रुत ज्ञान	श्रुत ज्ञान अर कदचित् अवधिज्ञान पाइये है

पृष्ठ	पंक्ति	शुद्ध	अशुद्ध
५०	१४	भया	—
५२	३	भी	—
५३	७	ही	—
५४	२	ऐसैं	ऐसैं होतें
५४	१२	आये	आडे आये
५५	६	ही	हो
५५	१७	अपने	ही अपने
५६	५	होना	—
५६	२१	कार्य	नीचा कार्य
५७	४	अवस्था अनेक प्रकार	अनेक अवस्था
५७	१४	कषाय	कषाय का
६०	११	ही	—
६१	२०	ही	हो
६२	८	पर्याय पर्याय मात्र	पाया पर्याय मात्र ही
६४	२	आदि	—
६४	२	होय	क्रिया होय
६४	८	निमित्ततैं	उदय करि
		तिनकरि	—
६५	१०	ससार	—
६६	१८	मिथ्यात्व का प्रभाव (हैडिंग)	—
६७	७	मानि, तातें	मानिता तें

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६७	६	मोह जनित विषयाभिलाषा (हैडिंग)	—
६७	११	विषै इन	विषयनि
६८	२२	कहा करै	करै कहा
६६	८	दुःख निवृत्ति का उपाय	ज्ञान दर्शनावरण के उदय से भया दुःख और उस की निवृत्ति के उपाय का झूठापणा
७०	१	बहुत बहुत	बहुत
७१	१०	ताका संग्रह	वाका ग्रहण
७२	७	जो	याका अर्थ —जो
७२	१०	दुःख निवृत्ति का साचा उपाय (हैडिंग)	—
७३	३	निवृत्ति	निवृत्ति के उपाय का झूठापणा
७३	७	एक	—वस्त्र को एक
७३	१२	वह	यहु
७३	१३	सो	वह
७३	१५	जानै	मानै
७३	२२	अवस्था रू	अवस्था रूप
७४	८	प्रकार	प्रकार करि
७५	२	भया	भया था
७५	६	कषाय	कषाय होय
७६	१	मोह से	मोह के उदय से

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७६	१	निवृत्ति	निवृत्ति के उपाय का झूठापना
७८	१६	ही है	है ही
७९	१३	पीडा	पीडा सो
७९	१६	अर	अर इनि
८०	४	बनै	बनै ही
८०	२१	इनके	इसके
८१	४	आपका	अपना
८१	७	भया	हुआ
८२	१	ही	—
८२	६	तिस	तो तिस
८३	४	झूठा उपाय	उपाय झूठा
८३	६	उपाय बिना	बिना उपाय
८३	१०	खेद	द्वेष
८३	२२	उल्लास	उस्वास
८५	१८	भी	ही
८६	१५	वह दुःखी हो है	वह तो दुःखी है
८७	२	परिणामनि	परिणमन
८७	१६	तातैं	ताकरि
८९	८	करैं	करैं है
८९	१२	नीच ऊँच	ऊँचा नीचा
८९	२२	कहा है	यहु ही
९२	५	ज्ञान	ज्ञान तो

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९२	७	चाह्या	बहुत चाह्या
९२	२१	आयु कर्म	आयु
९३	२१	दु ख	दु खी
९६	६	होय	होय ही
१००	५	तेतीस सागर है। अर ३१ सागर से	इकत्तीस सागर है । यातै
१०१	११	प्रकार	प्रकार ही
१०१	१२	ही	हो
१०१	१३	करने	होने
१०२	१	साधनन	साधन न
१०३	६	जीव ससारी	संसारी जीव
१०३	२१	मोह	सो मोह
१०३	२२	होते	होते
१०५	७	जान्या	जाने
१०५	२१	काहे को	काहे का
११२	१३	आपा परका	तातै आपा परका
११२	२२	होइ	कैसे न होइ
११३	१	सो	सो ए
११३	८	अभाव	अभाव करना
११८	१२	विशेषनि	विशेषननि
१२१	५	हो	—
१२२	१८	परोक्ष	प्रत्यक्ष परोक्ष
१२४	११	मति ज्ञान	मति
१२४	१३	तो	तो ए

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२४	१७	अयथार्थ	अयथार्थ यथार्थ
१२४	२०	यथार्थ	अयथार्थ
१२४	२१	जेवरी	जेवरी कौ
१२५	२	विषै	विषै तो
१२६	१०	पीछे	पीछे कहना
१२६	१८	श्रद्धान कौं	श्रद्धान है वा
१२६	१९	कारण	कारण कार्य
१२७	१४	चारित्र मोह	जो चारित्र मोह
१२८	१३	होइ ही नाहीं	होता नाही। बहुरि जो अपना किया सद्भाव अभाव होई ही नाही तो
१३०	१२	पदार्थ	पदार्थनि ही
१३०	१९	ही	—
१३०	२१	कर्म के	कर्म का
१३१	३	परिणमनि	परिणमन
१३१	७	की प्रवृत्ति	का विधान तथा विस्तार
१३१	१९	वा	वा घातक
१३१	१९	विष	विषै
१३२	३	आवते	ते
१३२	१७	राग	राग द्वेष
१३४	१९	पाहुये	पाइये
१३५	९	नाहीं	नाही अर
१३६	१	मानै	मानै है
१३६	७	वाकै	बकै
१३६	८	किछू	किछू ही
१३६	९	पोत्रा	पोता
१३६	२१	विभाव	विभाव भाव

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१३७	६	अनादि	अनादि ही
१३८	३	मिथ्यात्व	मिथ्यात्व का निराकरण
१३८	५	के	—
१३८	८	इन	इन ही
१३८	१८	ब्रह्म	ब्रह्म का निराकरण
१४१	१	भया,	भया, बहुरि
१४१	४	जरचा	जुगचा
१४१	५	जुरचा	जुगचा रह्या
१४१	६	जब	जल
१४१	१०	पाषाणादि	पाषाण
१४२	१८	एक	एक ब्रह्म
१४२	१९	भिन्न	भिन्न ही
१४३	१०	ब्रह्म की इच्छा से जगत की सृष्टि	सृष्टि कर्तृत्वाद का निराकरण
१४४	८	माया	माया का निराकरण
१४४	१३	दड दड	दडी-दड

॥ श्री सर्वज्ञिनवाणी नमस्तस्यै ॥

शास्त्र-स्वाध्यायका प्रारम्भिक मंगलाचरण

ॐनमःसिद्धेभ्यः, ॐजय जय जय,

नमोस्तु! नमोस्तु!! नमोस्तु!!!

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आईरीयाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोय सव्वसाहूणं।

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमोनमः ॥१॥

अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलमलकलंका।
मुनिभिरुपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान् ॥२॥

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥३॥

श्री परमगुरुवे नमः, परम्पराचार्यगुरवेनमः।

सकलकलुषविध्वंसकं श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धक भव्यजीवमनःप्रतिबोधकारकमिदं शास्त्रं श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक नामधेयं, तस्य मूलग्रंथ कर्तारः श्रीसर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रंथ-कर्तारः श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचोनुसार-मासाद्य श्री पंडित टोडरमलजी विरचितं।

श्रोतारः सावधानतया शृण्वन्तु।

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैनधर्मोस्तु मङ्गलम् ॥

श्रीमान प० प्रवर टोडरमलजी

प० टोडरमलजी के स्वहस्त लिखित मोक्षमार्ग-प्रकाशक ग्रन्थका अन्तिम पत्र

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।

आचार्यकल्प पं० टोडरमलजी कृत

मोक्षमार्ग-प्रकाशक

पहला अधिकार

मंगलाचरण

दोहा

मंगलमय मंगलकरण, वीतराग विज्ञान ।
नमौं ताहि जातैं भये, अरहंतादि महान् ॥१॥
करि मंगल करिहौं महा, ग्रंथकरन को काज ।
जातैं मिलै समाज सब, पावै निजपदराज ॥२॥

अथ मोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रका उदय हो है । तहाँ मंगल करिये है—

णमो अरहंताणं । णमो सिद्धाणं । णमो आइरीयाणं ।
णमो उवज्झायाणं । णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

यहु प्राकृतभाषामय नमस्कारमन्त्र है, सो महामंगलस्वरूप है । बहुरि याका संस्कृत ऐसा हो है ।

नमोऽर्हद्भ्यः । नमः सिद्धेभ्यः । नमः आचार्येभ्यः । नमःउपाध्यायेभ्यः । नमो लोके सर्वसाधुभ्यः । बहुरि याका अर्थ ऐसा है—नमस्कार अरहंतनिके अर्थि, नमस्कार सिद्धनिके अर्थि,

नमस्कार आचार्यनिके अर्थि, नमस्कार उपाध्यायनिके अर्थि, नमस्कार लोकविषें सर्वसाधुनिके अर्थि, [illegible] विषे नमस्कार किया, तातै याका नाम नमस्कारमन्त्र है । अब इहाँ जिनकूं नमस्कार किया तिनिका स्वरूप चिंतवन कीजिये है । (जातैं स्वरूप जाने बिना यहु जान्या नाहीं जाय जो मैं कौनकों नमस्कार करूँ । तब उत्तमफल की प्राप्ति कैसे होय । ❀)

अरहंतोंका स्वरूप

तहाँ प्रथम अरहंतनिका स्वरूपविचारिये हैं—जे गृहस्थपनों त्यागि मुनिधर्म अंगीकार करि निजस्वभावसाधनतें च्यारि घातिया कर्मनिकों खिपाय अनंत चतुष्टय विराजमान भये । तहाँ अनंतज्ञानकरि तो अपने अपने अनंत गुणपर्याय सहित समस्त जीवादि द्रव्यनिकों युगपत् विशेषपने करि प्रत्यक्ष जानै हैं । अनंतदर्शनकरि तिनकों सामान्यपने अवलोकै हैं । अनंतवीर्यकरि ऐसी (उपर्युक्त) सामर्थ्यकों धारै हैं । अनंतसुखकरि निराकुल परमानंदकों अनुभवै हैं । बहुरि जे सर्वथ सर्व रागद्वेषादि विकारभावनिकरि रहित होय शांतरस रूप परिणए हैं । बहुरि क्षुधा-तृषाआदि समस्तदोषनितें मुक्त होय देवाधिदेवपनाकों प्राप्त भये हैं । बहुरि आयुध अंबरादिक वा अंगविकारादिक जे काम-क्रोधादिक निंद्यभावनिके चिन्ह तिनकरि रहित जिनका परम औदारिक शरीर भया है । बहुरि जिनके वचननितें लोक विषें धर्मतीर्थ प्रवर्ते है, ताकरि जीवनिका कल्याण हो है । बहुरि जिनके लौकिक

❀ यह पंक्ति खरडा प्रति में नहीं है, संशोधित लिखित प्रतियों में है, इसीसे उसे मूल मे दिया गया है ।

जीवनिकूं प्रभुत्व माननेके कारण अनेक अतिशय अर नाना प्रकार विभव तिनका संयुक्तपना पाइये है । बहुरि जिनकों अपना हितके अर्थि गणधर इन्द्रादिक उत्तम जीव सेवैं हैं । ऐसे सर्वप्रकार पूजने योग्य श्रीअरहंतदेव हैं, तिनकों हमारा नमस्कार होहु ।

सिद्धों का स्वरूप

अब सिद्धनिका स्वरूप ध्याइये हैं-जे गृहस्थअवस्था त्यागि मुनि धर्मसाधनतें च्यारि घातिकर्मनिका नाश भये अनन्तचतुष्टय भाव प्रगट करि केतेक काल पीछे च्यारि अघातिकर्मनिका भी भस्म होतें परम औदारिक शरीरकों भी छोरि ऊर्ध्वगमन स्वभावतें लोकका अग्रभागविषे जाय विराजमान भये । तहां जिनकै समस्तपरद्रव्यनिका सम्बन्ध छूटनेतें मुक्त अवस्थाकी सिद्धि भई,बहुरि जिनकै चरमशरीरतें किंचित् ऊन पुरुषाकारवत् आत्मप्रदेशनिका आकार अवस्थित भया, बहुरि जिनकै प्रतिपक्षी कर्मनिका नाश भया तातैं समस्त सम्यक्त्व-ज्ञान-दर्शनादिक आत्मीक गुण सम्पूर्ण अपने स्वभावकों प्राप्त भये हैं, बहुरि जिनकै नोकर्मका सम्बन्ध दूर भया तातैं समस्त अमूर्त्तत्वादिक आत्मीकधर्म प्रकट भये है । बहुरि जिनकै भावकर्मका अभाव भया तातैं निराकुल आनन्दमय शुद्धस्वभावरूप परिणमन हो है । बहुरि जिनके ध्यानकरि भव्यजीवनिकै स्वद्रव्य परद्रव्यका अर औपाधिक भाव स्वभावभावनिका विज्ञान हो है, ताकरि तिन सिद्धनिके समान आप होनेका साधन हो है । तातैं साधनेयोग्य जो अपना शुद्धस्वरूप ताके दिखावनेको प्रतिबिंब समान है। बहुरि जे कृतकृत्य भये हैं तातैं ऐसे ही अनंत कालपर्यंत रहैं हैं, ऐसे निष्पन्न भये सिद्ध भगवान् तिनको

हमारा नमस्कार होहु ।

अब आचार्य उपाध्याय साधुनिका स्वरूप अवलोकिये हैं—

जे विरागी होइ समस्त परिग्रहकों त्यागि शुद्धोपयोगकरि मुनिधर्म अंगीकार करि अंतरंगविषें तौ तिस शुद्धोपयोगकरि आपकों आप अनुभवें हैं, परद्रव्यविषें अहंबुद्धि नाहीं धारें हैं। बहुरि अपने ज्ञानादिक स्वभावनिहीकों अपने मानें हैं। परभावनिविषें ममत्व न करें हैं। बहुरि जे परद्रव्य वा तिनके स्वभाव ज्ञानविषें प्रतिभासें हैं तिनकों जानें तो हैं परन्तु इष्ट अनिष्ट मानि तिनविषें रागद्वेष नाहीं करें हैं। शरीरकी अनेक अवस्था हो हैं, बाह्य नाना निमित्त बनें हैं परन्तु तहां किछू भी सुखदुःख मानते नाहीं। बहुरि अपने योग्य बाह्यक्रिया जैसे बनै है तैसे बनै है, खेंचकरि तिनकों करते नाहीं। बहुरि अपने उपयोगकों बहुत नाहीं भ्रमावें हैं। उदासीन होय निश्चल वृत्ति कों धारें हैं। बहुरि कदाचित् मंदरागके उदयतें शुभोपयोग भी हो है तिसकरि जे शुद्धोपयोग के बाह्य साधन हैं तिनविषें अनुराग करें हैं परन्तु तिस रागभावकों हेय जानकरि दूरि किया चाहैं हैं। बहुरि तीव्र कषाय के उदयका अभावतें हिंसादिरूप अशुभोपयोग परिणतिका तौ अस्तित्व रह्या ही नाहीं। बहुरि ऐसो अंतरंग अवस्था होतें बाह्य दिगम्बर सौम्यमुद्राके धारी भये हैं। शरीरका संवारना आदि विक्रियानिकरि रहित भये हैं। वनखंडादिविषै बसें हैं। अठाईस मूलगुणनिकों अखंडित पालें है। बाईस परीसहनिकों सहैं है। बारह प्रकार तपनिकों आदरें हैं। कदाचित् ध्यानमुद्राधारि प्रतिमावत् निश्चल हो हैं। कदाचित् अध्ययनादि बाह्य धर्मक्रियानिविषै प्रवर्तें हैं। कदाचित् मुनिधर्म

का सहकारी शरीरकी स्थितिके अर्थि योग्य आहार विहारादिक्रिया-निविषें सावधान हो हैं। ऐसे जैन मुनि हैं तिन सबनिकी ऐसी ही अवस्था हो है।

आचार्यका स्वरूप

तिनिविषे जे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रकी अधिकता करि प्रधानपदकों पाय संघविषे नायक भये हैं। बहुरि जे मुख्यपने तो निर्विकल्प स्वरूपाचरण विषें ही मग्न हैं अर जो कदाचित् धर्मके लोभी अन्य जीवादिक तिनिकों देखि रागअंशके उदयतें करुणाबुद्धि होय तो तिनिकों धर्मोपदेश देते हैं। जे दीक्षाग्राहक हैं तिनकों दीक्षा देते हैं, जे अपने दोष प्रगट करें हैं तिनको प्रायश्चित विधिकरि शुद्ध करें हैं। ऐसे आचरन अचरावनवाले आचार्य तिनको हमारा नमस्कार होहु।

उपाध्यायका स्वरूप

बहुरि जे बहुत जैन शास्त्रनिके ज्ञाता होय संघविषे पठन-पाठनके अधिकारी भये हैं, बहुरि जे समस्त शास्त्रनिका प्रयोजनभूत अर्थ जानि एकाग्र होय अपने स्वरूपकों ध्यावे है। अर जो कदाचित् कषाय अंश उदयतें तहाँ उपयोग नाहीं थंभै है तौ तिन शास्त्रनिकों आप पढ़ैं हैं वा अन्य धर्मबुद्धीनिकों पढावें हैं। ऐसें समीपवर्ती भव्यनिको अध्ययन करावनहारे उपाध्याय तिनिकों हमारा नमस्कार होहु।

साधुका स्वरूप

बहुरि इन दोय पदवोधारक बिना अन्य समस्त जे मुनिपद के धारक हैं बहुरि जे आत्मस्वभावको साधैं हैं। जैसें अपना उपयोग परद्रव्यनिविषें इष्ट अनिष्टपनो मानि फँसै नाहीं वा भागै नाहीं तैसें

उपयोगको सधावै हैं। बहुरि बाह्यतत्त्वकी साधनभूत तपश्चरण आदि क्रियानिविषें प्रवर्तें हैं या कदाचित् भक्ति वन्दनादि कार्यनिविषें प्रवर्तें हैं। ऐसें आत्मस्वभावके साधकसाधु हैं तिनकों हमारा नमस्कार होहु।

पूज्यत्वका कारण

ऐसें इन अरहंतादिकनिका स्वरूप है सो वीतराग विज्ञानमय तिसही करि अरहंतादिक स्तुति योग्य महान् भये हैं;जातै जीवतत्वकरि तौ सर्व ही जीव समान हैं परन्तु रागादिकविकारनिकरि वा ज्ञानकी हीनताकरि तौ जीव निन्दा योग्य हो हैं। बहुरि रागादिककी हीनता-करि वा ज्ञानकी विशेषताकरि स्तुति योग्य हो हैं। सो अरहंत सिद्धनिकैं तौ सम्पूर्ण रागादिककी हीनता अर ज्ञानकी विशेषता होने करि सम्पूर्ण वीतरागविज्ञान भाव संभवै है। अर आचार्य उपाध्याय साधुनिकैं एकोदेश रागादिककी हीनता अर ज्ञानकी विशेषताकरि एकोदेश वीतरागविज्ञान भाव संभवै है। तातै ते अरहतादिक स्तुति योग्य महान जानने।

बहुरि ए अरहतादि पद है तिन विषै ऐसा जानना जो मुख्यपनै तौ तीर्थंकरका अर गौणपने सर्वकेवलीका ग्रहण है, यहु पदका प्राकृत भाषाविषै अरहंत अर सस्कृतविषै अर्हत् ऐसा नाम जानना। बहुरि चौदवाँ गुणस्थानके अनंतर समयतैं लगाय सिद्धनाम जानना। बहुरि जिनकों आचार्यपद भया होय ते सघविषै रहो वा एकाकी आत्मध्यान करो वा एकाविहारी होहु वा आचार्यनिविषै भी प्रधानताको पाय गणधरपदवीके धारक होहु, तिन सबनिका नाम आचार्य कहिये है। बहुरि पठन-पाठन तो अन्यमुनि भी करै हैं परन्तु जिनकै आचार्यनिकरि

दिया उपाध्याय पद भया होय ते आत्मध्यानादिक कार्य करतें भी उपाध्याय ही नाम पावै हैं। बहुरि जे पदवीधारक नाहीं ते सर्वमुनि साधुसंज्ञाके धारक जानने। इहाँ ऐसा नियम नाहीं है जो पंचाचारनि करि आचार्य पद हो है, पठनपाठनकरि उपाध्यायपद हो है, मूलगुण साधनकरि साधुपद हो है। जातें ए तो क्रिया सर्वमुनिनकैं साधारण हैं परन्तु शब्द नयकरि तिनका अक्षरार्थ तैसे करिये है। समभिरूढनय करि पदवीकी अपेक्षा ही आचार्यादिक नाम जानने। जैसें शब्द नय-करि गमन करै सो गऊ कहिये सो गमन तौ मनुष्यादिक भी करै हैं परन्तु समभिरूढनयकरि पर्याय अपेक्षा नाम है, तैसें ही यहाँ समझना।

इहां सिद्धनिके पहिले अरहंतनिको नमस्कार किया सो कौन कारण ? ऐसा सन्देह उपजै है। ताका समाधान –

नमस्कार करिये है सो अपने प्रयोजन साधनेकी अपेक्षा करिये है, सो अरहंतनितें उपदेशादिकका प्रयोजन विशेष सिद्ध हो है तातें पहिले नमस्कार किया है। या प्रकार अरहंतादिकनिका स्वरूप चितवन किया। जातें स्वरूप चितवन किये विशेष कार्य सिद्ध हो है। बहुरि इन अरहंतादिकनिको पंचपरमेष्ठी कहियेहै। जातें जो सर्वोत्कृष्ट इष्ट होय ताका नाम परमेष्ट है। पंच जे परमेष्ट तिनिका समाहार समुदाय ताका नाम पंचपरमेष्टी जानना। बहुरि रिषभ,अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चंद्रप्रभ, पुष्पदंत, शीतल, श्रेयान, वासुपूज्य, विमल, अनंत, धर्म, शांति, कुन्थु, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, नेमि, पार्श्व, वर्द्धमान नामधारक चौबीस तीर्थंकर इस भरतक्षेत्रविषैं वर्त्तमान धर्मतीर्थके नायक भये, गर्भ जन्म तप

भाग निर्वाण कल्याणकनिविषै इन्द्रादिकनिकरि विशेष पूज्य होइ अब सिद्धालयविषै विराजै हैं तिनको हमारा नमस्कार होहु। बहुरि सीमंधर, युगमंधर, बाहु, सुबाहु, सजातक, स्वयंप्रभ, वृषभानन, अनंत वीर्य, सूरप्रभ, विशालकीर्ति, वज्रधर, चन्द्रानन, चन्द्रबाहु, भुजंगम, ईश्वर, नेमिप्रभ, वीरसेन, महाभद्र, देवयश, अजितवीर्य नामधारक बीसतीर्थंकर पंचमेरु सम्बन्धी विदेहक्षेत्रनिविषै अबार केवलज्ञानसहित विराजमान है तिनकों हमारा नमस्कार होहु। यद्यपि परमेष्ठी पदविषें इनका गर्भितपना है तथा विद्यमान कालविषै इनकों विशेष जानि जुदा नमस्कार किया है।

बहुरि त्रिलोकविषे जे अकृत्रिम जिनबिम्ब विराजै है, मध्यलोकविषै विधिपूर्वक कृत्रिम जिनबिब विराजै है, जिनके दर्शनादिकते स्व-परभेद विज्ञान होय है,कषाय मंद होय शान्तभाव हो है वा एक धर्मोपदेश बिना अन्य अपने हितकी सिद्धि जैसे तीर्थंकर केवलीके दर्शनादिकते होय तैसे ही हो है, तिन जिनबिबनिकों हमारा नमस्कार होहु। बहुरि केवलीकी दिव्यध्वनिकरि दिया उपदेश ताके अनुसार गणधरकरि रचित अंगप्रकीर्णक तिनके अनुसरि ग्रन्थ आचार्यादिकनिकरि रचे ग्रन्थादिक है, ऐसे ये सर्व जिनवचन है,स्याद्वादचिन्हकरि पहचानने योग्य है, न्यायमार्गतें अविरुद्ध है तातै प्रमाणीक हैं, जीवनिकौं तत्वज्ञान के कारण हैं तातें उपकारी हैं, तिनकों हमारा नमस्कार होहु।

बहुरि चैत्यालय, आर्यका, उत्कृष्ट श्रावक आदि द्रव्य अर तीर्थक्षेत्रादि क्षेत्र अर कल्याणककाल आदि काल, रत्नत्रय आदि भाव, जे मुझकरि नमस्कार करने योग्य हैं तिनकों नमस्कार करूं

हैं अर जे किंचित् विनय करने योग्य हैं तिनका यथा योग्य विनय करूं हूं। ऐसें अपने इष्टनिका सन्मानकरि मंगल किया है। अब ए अरहंतादिक इष्ट कैसें हैं सो विचार करिए हैं—

जाकरि सुख उपजै वा दुःखविनशै तिस कार्य का नाम प्रयोजन है। बहुरि तिस प्रयोजनकी जाकरि सिद्धि होय सो ही अपना इष्ट है। सो हमारै इस अवसरविषै वीतरागविशेष ज्ञानका होना सो ही प्रयोजन है, जातें याकरि निराकुल सांचे सुख की प्राप्ति हो है अर सर्व आकुलतारूप दुःखका नाश हो है। बहुरि इस प्रयोजनकी सिद्धि अरहंतादिकनिकरि हो है। कैसे सो विचारिए है—

अरहन्तादिकोंसे प्रयोजनसिद्धि

आत्माके परिणाम तीन प्रकारके हैं—संक्लेश, विशुद्ध, शुद्ध. तहाँ तीव्र कषायरूप संक्लेश हैं, मंदकषायरूप विशुद्ध हैं, कषाय रहित शुद्ध हैं। तहां वीतरागविशेष ज्ञानरूप अपने स्वभाव के घातक जो है ज्ञानावरणादि घातियाकर्म, तिनिका संक्लेश परिणाम करि तौ तीव्रबन्ध हो है अर विशुद्ध परिणामकरि मंदबंध हो है वा विशुद्ध परिणाम प्रबल होय तौ पूर्वे जो तीव्रबंध भया था ताको भी मंद करै है अर शुद्ध परिणामकरि बन्ध न हो है, केवल तिनकी निर्जरा ही हो है। सो अरहंतादिविषै स्तवनादि रूप भाव हो है सो कषायनिकी मन्दता लिये हो है तातें विशुद्ध परिणाम है। बहुरि समस्त कषायभाव मिटावनेका साधन है, तातें शुद्ध परिणाम का कारण है सो ऐसे परिणाम करि अपना घातक घातिकर्मका हीनपनाके होनेतें सहज ही वीतराग विशेषज्ञान प्रगट हो है। जितने अंशनिकरि वह हीन होय

तितने अंशनिकरि यह प्रगट होइ है। ऐसें अरहंतादिक करि अपना प्रयोजन सिद्ध हो है। अथवा अरहंतादिकका आकार अवलोकना वा स्वरूप विचार करना वा वचन सुनना वा निकटवर्ती होना व तिनके अनुसार प्रवर्तना इत्यादि कार्य तत्काल ही निमित्तभूत होय रागादिकनिकों हीन करै है। जीव अजीवादिकका विशेषज्ञानको उपजावै है तातै ऐसे भी अरहंतादिक करि वीतराग विशेषज्ञानरूप प्रयोजनकी सिद्धि हो है।

इहाँ कोऊ कहै कि इनकरि ऐसे प्रयोजनकी तौ सिद्धी हो है परन्तु जाकरि इन्द्रियजनित सुख उपजै, दुःख विनशै ऐसे भी प्रयोजन की सिद्धि इनि करि हो है कि नाही। ताका समाधान—

जो अरहतादि विषै स्तवनादिरूप विशुद्ध परिणाम हो है ताकरि अघातिया कर्मनिकी साता आदि पुण्यप्रकृतिनिका बध हो है। बहुरि जो वह परिणाम तीव्र होय तो पूर्वे असाताआदि पापप्रकृति बंधी थीं तिनकों भी मंद करै है अथवा नष्टकरि पुण्यप्रकृतिरूप परिणमावै है। बहुरि तिस पुण्यका उदय होतै स्वयमेव इन्द्रियसुखकों कारणभूत सामग्री मिलै है अर पापका उदय दूर होतै स्वयमेव दुःख कों कारणभूत सामग्री दूर हो है। ऐसें इस प्रयोजनकी भी सिद्धि तिनकरि हो है। अथवा जिनशासन के भक्त देवादिक है ते तिस भक्त पुरुषकै अनेक इन्द्रियसुखको कारणभूत सामग्रीनिका सयोग करावै हैं. दुःखकों कारणभूत सामग्रीनिकों दूरि करै है। ऐसें भी इस प्रयोजनकी सिद्धि तिन अरहतादिकनि करि हो है। परन्तु इस प्रयोजनतें किछू अपना भी हित होता नाहीं तातै यहु आत्मा

कषायभावनितैं बाह्य सामग्रीविषैं इष्ट-अनिष्टपनो मानि आप ही सुखदु:खकी कल्पना करै है। बिना कषाय बाह्य सामग्री किछु सुख-दु:खकी दाता नाहीं। बहुरि कषाय है सो सब आकुलतामय है तातैं इन्द्रियजनितसुखकी इच्छा करनी दु:खतैं डरना सो यह भ्रम है। बहुरि इस प्रयोजनके अर्थि अरहंतादिककी भक्ति किएं भी तीव्रकषाय होनेकरि पापबन्ध ही हो है तातैं आपकों इस प्रयोजनका अर्थि होना योग्य नाहीं। जातैं अरहंतादिककी भक्ति करतैं ऐसे प्रयोजन तौ स्वयमेव ही सधै है।

ऐसैं अरहंतादिक परम इष्ट मानने योग्य हैं। बहुरि ए अरहंतादिक ही परममंगल हैं। इन विषैं भक्तिभाव भये परममंगल हो है। जातैं 'मंग' कहिये सुख ताहि 'लाति' कहिये देवै अथवा 'मं' कहिये पाप ताहि 'गालयनि' कहिये गालै ताका नाम मंगल है सो तिनकरि पूर्वोक्त प्रकार दोऊ कार्यनिकी सिद्धी हो है। तातैं तिनके परममंगलपना सम्भवै है।

मंगलाचरण करने का कारण

इहा कोऊ पूछै कि प्रथम ग्रन्थकी आदि विषै ही मगल किया सो कौन कारण ? ताका उत्तर--

जो सुखस्यौ ग्रन्थकी समाप्ति होइ, पापकरि कोऊ विघ्न न होय, या कारणतैं यहा प्रथम मंगल किया है।

इहां तर्क—जो अन्यमती ऐसै मंगल नाही करै हैं तिनके भी ग्रन्थकी समाप्तता अर विघ्नका नाश होता देखिये है तहाँ कहा हेतु है ? ताका समाधान--

जो अन्यमती ग्रन्थ करै है तिसविषै मोहके तीव्र उदयकरि मिथ्यात्व

कषाय भावनिको पोषते विपरीत अर्थनिकों धरै हैं तातें ताकी निर्विघ्न समाप्तता तौ ऐसें मंगल किये बिना ही होइ । जो ऐसे मंगलनिकरि मोह मंद हो जाय तौ वैसा विपरीत कार्य कैसे बनै ? बहुरि हम यहु ग्रन्थ करै हैं तिस विषैं मोहकी मंदता करि वीतराग तत्वज्ञानकों पोषते अर्थनिको धरेंगे ताकी निर्विघ्न समाप्तता ऐसें मंगल किये ही होय । जो ऐसै मगल न करै तौ मोहका तीव्रपना रहै, तब ऐसा उत्तम कार्य कैसे बनै ? बहुरि बहु कहै जो ऐसें तो मानेंगे परन्तु कोऊ ऐसा मगल न करै ताकै भी सुख देखिए है, पापका उदय न देखिये है अर कोऊ ऐसा मंगल करै है ताकै भी सुख न देखिये है, पापका उदय देखिये है तातें पूर्वोक्त मंगलपना कैसे बनै ? ताकौ कहिये है—

जो जीवनिकै सक्लेश विशुद्ध परिणाम अनेक जातिके है तिनकरि अनेक कालनिविषै पूर्वे बधे कर्म एक कालबिषैं उदय आवै है । तातें जाकै पूर्वे बहुत धनका सचय होय ताकै बिना कुमाए भी धन देखिए है अर देणा न देखिये है । अर जाकै पूर्वे ऋण बहुत होय ताकै धन कुमावते भी देणा देखिये है अर धन न देखिए है । परन्तु विचार किए, तें कुमावना धन होनेहींका कारण है,ऋणका कारण नाहीं। तैसें ही जाकै पूर्वे बहुत पुण्य बध्या होइ ताकै इहाँ ऐसा मंगल विना किए भी सुख देखिए है, पापका उदय न देखिए है । बहुरि जाकै पूर्वे बहुत पाप बध्या होय ताकै इहां ऐसा मगल किये भी सुख न देखिए है, पापका उदय देखिए है । परन्तु विचार किएतें ऐसा मंगल तौ सुखका ही कारण है, पाप उदयका कारण नाहीं । ऐसें पूर्वोक्त मंगलका मंगल

पना बने है।

बहुरि वह कहै है कि यह भी मानी परन्तु जिनशासनके भक्त देवादिक हैं तिनिनें तिस मंगल करनेवालेकी सहायता न करी अर मंगल न करनेवालेको दंड न दिया सो कौन कारण ? ताका समाधान—

जो जीवनिकै सुख दुख होनेका प्रबल कारण अपना कर्मका उदय है ताहीके अनुसारि बाह्य निमित्त बनै हैं, तातैं जाकै पापका उदय होइ ताकै सहायताका निमित्त न बनै है अर जाकै पुण्यका उदय होइ ताकै दंडका निमित्त न बनै है। यह निमित्त कैसें न बनै है सो कहिये है—

जे देवादिक हैं ते क्षयोपशम ज्ञानतै सर्वकों युगपत् जानि सकते नाहीं, तातै मंगल करनेवाले वा न करनेवालेका जानपना किसी देवादिकके काहू कालविषैं हो है। तातै जो तिनिका जानपना न होइ तो कैसे सहाय करै वा दड दे। अर जानपना होय तब आपके जो अति मंदकषाय होइ तो सहाय करनेके वा दंड देनेके परिणाम ही न होंइ। अर तीव्रकषाय होइ तो धर्मानुराग होइ सकै नाहीं। बहुरि मध्यम कषायरूप तिस कार्य करनेके परिणाम भये अर अपनी शक्ति नाहीं तो कहा करै। ऐसें सहाय करने वा दंड देनेका निमित्त नाहीं बनै है। जो अपनी शक्ति होय अर आपके धर्मानुरागरूप मध्यमकषायका उदयतै तैसे ही परिणाम होइ अर तिस समय अन्य जीवका धर्म अधर्मरूप कर्तव्य जानै, तब कोई देवादिक किसी धर्मात्माकी सहाय करै वा किसी अधर्मीको दंड दे है। ऐसें कार्य होनेका किछू नियम तौ है नाहीं,

ऐसे समाधान किया। इहां इतना जानना कि सुख होनेकी, दुख न होने को, सहाय करानेको, दुख घावनेकी जो इच्छा है सो कषायमय है, तत्काल विषें वा आगामी काल विषे दुखदायक है। तातैं ऐसो इच्छा कूं छोरि हम तो एक वीतराग विशेष ज्ञान होनेके अर्थी होइ अरहंतादिककों नमस्कारादिरूप मंगल किया है। ऐसे मंगलाचरण करि अब सार्थक मोक्षमार्ग प्रकाशकनाम ग्रन्थका उद्योत करें हैं। तहा यहु ग्रन्थ प्रमाण है ऐसी प्रतीति आवनेके अर्थि पूर्व अनुसारका स्वरूप निरूपिए है—

ग्रन्थकी प्रमाणिकता और आगम-परम्परा

अकारादि अक्षर है ते अनादिनिधन हैं,काहूके किए नाहीं, इनिका आकार लिखना तो अपनी इच्छाके अनुसार अनेक प्रकार है परन्तु बोलनेमे आवें है ते अक्षर तो सर्वत्र सर्वदा ऐसेही प्रवर्तें है सोई कह्या है— **'सिद्धो वर्णसमाम्नायः'**। याका अर्थ यहु—जो अक्षरनिका सम्प्रदाय है सो स्वयंसिद्ध है। बहुरि तिन अक्षरनिकरि निपजे सत्यार्थ के प्रकाशक पद तिनके समूहका नाम श्रुत है सो भी अनादि निधन है। जैसे 'जीव' ऐसा अनादिनिधन पद है सो जीवका जनावनहारा है। ऐसे अपने अपने सत्य अर्थके प्रकाशक अनेक पद तिनका जो समुदाय सो श्रुत जानना। बहुरि जैसे मोती तो स्वयंसिद्ध है तिन विषै कोऊ थोरे मोतीनिकों, कोऊ घने मोतीनिकों, कोऊ किसी प्रकार कोऊ किसी प्रकार गूंथिकरि गहना बनावै है तैसे पद तो स्वयंसिद्ध है तिन विषै कोऊ थोरे पदनिकों, कोऊ घने पदनिकों,कोऊ किसो प्रकार कोऊ किसी प्रकार गूंथि ग्रन्थ बनावै हैं। यहां मैंभी तिन सत्यार्थ पद-

निकों मेरो बुद्धि अनुसारि गूंथिक्ष ग्रन्थ बनाऊं हूँ सो मेरी मति करि कल्पित झूठे अर्थके सूचक पद या विषैं नाही गूंथूं हू। तातै यह ग्रन्थ प्रमाण जानना।

इहाँ प्रश्न—जो तिन पदनिकी परम्परा इस ग्रन्थ पर्यंत कैसें प्रवर्तें है? ताका समाधान—

अनादितैं तीर्थंकर केवली होते आये हैं तिनिके सर्वका ज्ञान हो है तातैं तिन पदनिका वा तिनके अर्थनिका भी ज्ञान हो है। बहुरि तिन तीर्थंकर केवलीनिका जाकरि ग्रन्य जीवनिकै पदनिकै अर्थनिका ज्ञान होय ऐसा दिव्यध्वनि करि उपदेश हो है। ताके अनुसारि गण-धरदेव अंग प्रकीर्णकरूप ग्रन्थ गूंथे है। बहुरि तिनके अनुसारि अन्य अन्य आचार्यादिक नाना प्रकार ग्रन्थादिकको रचना करें हैं। तिनिकों केई अभ्यासें हैं केई कहैं हैं केई सुनें हैं, ऐसे परम्परातें मार्ग चल्या आवै है।

सो अब इस भरतक्षेत्र विषै वर्तमान अवसर्पिणी काल है, तिस-विषै चौबीस तीर्थंकर भए, तिनि विषै श्रीवर्द्धमान नामा अन्तिम तीर्थं-कर देव भये। सो केवलज्ञान विराजमान होइ जीवनिकों दिव्यध्वनि करि उपदेश देते भये। ताके सुननेका निमित्त पाय गौतम नामा गणधर अगम्य अर्थनिकों भी जानि धर्मानुरागके वशतै अगप्रकीर्णकनि की रचना करते भये। बहुरि वर्द्धमान स्वामी तौ मुक्त गए, तहाँ पीछें इस पंचम कालविषैं तीन केवली भए, गौतम १, सुधर्माचार्य २, जम्बू-स्वामी ३, तहा पीछें कालदोषतैं केवलज्ञानी होनेका तो अभाव भया।

क्ष जोड़कर या लिखकरि।

बहुरि केतेक काल तांई द्वादशांग के पाठी श्रुतकेवली रहे, पीछें तिनका भी अभाव भया। बहुरि केतेक कालतांई थोरे अंगनिके पाठी रहे (तिनने यह जानकर जो भविष्य कालमें हम सारिखे भी ज्ञानी न रहेंगे, तातैं ग्रन्थ रचना प्रारम्भ करी और द्वादशांगनुकूल प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोगके ग्रन्थ रचे।※) पीछें तिनका भी अभाव भया। तब आचार्यादिकनिकरि तिनिके अनुसारि बनाए ग्रन्थ वा अनुसारी ग्रन्थनिके अनुसारि बनाए ग्रन्थ तिनहीकी प्रवृत्ति रही। तिनविषें भी काल दोषतैं दुष्टनिकरि किंतेक ग्रन्थनिकी व्युच्छित्ति भई वा महान् ग्रन्थनिका अभ्यासादि न होनेतैं व्युच्छित्ति भई। बहुरि केतेक महान् ग्रन्थ पाइए हैं तिनिका बुद्धिकी मदतातैं अभ्यास होता नाहीं। जैसे दक्षिणमें गोमट्टस्वामीके निकट मूलबद्री नगरविषै धवल महाधवल जयधवल पाइए हैं परन्तु दर्शनमात्र ही है। बहुरि किंतेक ग्रन्थ अपनी बुद्धिकरि अभ्यास करने योग्य पाइए हैं। तिन विषै भी किंतेक ग्रन्थनिका ही अभ्यास बनै है। ऐसें इस निकृष्ट काल विषै उत्कृष्ट जैनमतका घटना तो भया परन्तु इस परम्पराकरि अब भी जैन शास्त्रविषै सत्य अर्थके प्रकाशनहारे पदनिका सद्भाव प्रवर्तै है।

ग्रन्थकारका आगमाभ्यास और ग्रन्थ रचना

वहुरि हम इस काल विषैं यहा अब मनुष्यपर्याय पाया सो इस विषै हमारे पूर्व संस्कारतैं वा भला होनहारतैं जैनशास्त्रनिविषैं

※ यह पंक्तियां खरडा प्रति में नहीं हैं, अन्य सब प्रतियो में हैं। इसीसे आवश्यक जानि दे दी गई हैं।

अभ्यास करनेका उद्यम होता भया। तातैं व्याकरण, न्याय, गणित आदि उपयोगी ग्रथनिका किंचित् अभ्यास करि टीकासहित समयसार, पचास्तिकाय, प्रवचनसार, नियमसार, गोमट्टसार, लब्धिसार, त्रिलोकसार, तत्त्वार्थसूत्र इत्यादि शास्त्र अर क्षपणासार, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, अष्टपाहुड, आत्मानुशासन आदि शास्त्र अर श्रावक मुनिका आचारके प्ररूपक अनेक शास्त्र अर मुस्ठुकथासहित पुराणादि शास्त्र इत्यादि अनेक शास्त्र हैं तिन विषै हमारै बुद्धि अनुसार अभ्यास वर्तै है। तिस करि हमारै हू किंचित् सत्यार्थ पदनिका ज्ञान भया है। बहुरि इस निकृष्ट समय विषै हम सारिखे मद बुद्धोनितैं भी हीन बुद्धिके धनी घने जन अवलोकिए हैं। तिनिकौं तिन पदनिका अर्थज्ञान होनेके अर्थि धर्मानुरागके वशतैं देशभाषामय ग्रन्थ करनेकी हमारै इच्छा भई। ताकरि हम यहु ग्रन्थ बनावैं हैं सो इस विषै भी अर्थसहित तिनही पदनिका प्रकाशन हो है। इतना तो विशेष है जैसे प्राकृत सस्कृत शास्त्रनिविषै प्राकृत सस्कृत पद लिखिए हैं तैसैं इहाँ अपभ्रंश लिए वा यथार्थपनाको लिए देशभाषारूप पद लिखिए हैं परन्तु अर्थविषै व्यभिचार किछू नाही है। ऐसैं इस ग्रथपर्यन्त तिन सत्यार्थ पदनिकी परम्परा प्रवर्तै है।

इहा कोऊ पूछै कि परम्परा तो हम ऐसै जानी परन्तु इस परम्पराविषै सत्यार्थ पदनिहीकी रचना होती आई, असत्यार्थ पद न मिले ऐसी प्रतीति हमको कैसे होय। ताका समाधान—

असत्यपद रचना का प्रतिषेध

असत्यार्थ पदनिकी रचना अति तीव्र कषाय भए बिना बनै नाहीं,

बातें जिस असत्य रचनाकरि परम्परा अनेक जीवनिका महा बुरा होय, आपकों ऐसी महा हिंसाका फलकरि नर्क निगोदविषें गमन करना होय सो ऐसा महाविपरीत कार्य तो क्रोध मान माया लोभ अत्यन्त तीव्र भए ही होय। सो जैनधर्मविषें तौ ऐसा कषायवान् होता नाही। प्रथम मूल उपदेशदाता तो तीर्थंकर भये सो तो सर्वथा मोहके नाशतें सर्व कषायनि करि रहित ही हैं। बहुरि ग्रन्थकर्त्ता गणधर वा आचार्य ते मोहका मन्द उदयकरि सर्व बाह्य अभ्यन्तर परिग्रहकों त्यागि महा मदकषायी भए हैं, तिनिके तिस मदकषायकरि किंचित् शुभोपयोगहीकी प्रवृत्ति पाइए है सो भी तीव्रकषायी नाहीं हैं, जो वाकै तीव्रकषाय होय तो सर्वकषायनिका जिस तिस प्रकार नाश करणहारा जो जिनधर्म तिस विषै रुचि कैसे होइ अथवा जो मोहके उदयतें अन्य कार्यनिकरि कषाय पोषै हैं तो पोषो परन्तु जिनआज्ञा भगकरि अपनी कषाय पोषै तो जैनीपना रहता नाही, ऐसे जिनधर्म्मविषे ऐसा तीव्रकषायी कोऊ होता नाही जो असत्य पदनिकी रचनाकरि परका अर अपना पर्याय पर्यायविषे बुरा करै।

इहां प्रश्न—जो कोऊ जैनाभास तीव्रकषायी होय असत्यार्थ पदनिको जैन शास्त्रनिविषे मिलावै, पीछै ताकी परम्परा चलि जाय तो कहा करिये ?

ताका समाधान—जैसें कोऊ साँचे मोतिनिके गहनेविषैं झूठे मोती मिलावै परन्तु झलक मिलै नाही तातै परीक्षाकरि पारखी ठिगावते भी नाहीं, कोई भोला होय सो ही मोती नामकरि ठिगावै है। बहुरि ताकी परम्परा भी चालै नाही, शीघ्र ही कोऊ झूंठे मोतिनिका निषेध

कर है। तैसें काऊ सत्यार्थ पदनिके समूहरूप जैनशास्त्रनिविषै असत्यार्थ पद मिलावै परन्तु जैनशास्त्रके पदनिविषै तो कषाय मिटावनेका वा लौकिक कार्य घटावनेका प्रयोजन है अर उस पापीने जे असत्यार्थ पद मिलाए हैं तिन विषें कषाय पोषनेका वा लौकिक कार्य साधनेका प्रयोजन है, ऐसें प्रयोजन मिलता नाहीं, तातै परीक्षाकरि ज्ञानी ठिगावते भी नाही, कोई मूर्ख होय सो ही जैनशास्त्र नामकरि ठिगावै है। बहुरि वाको परम्परा भी चालै नाही,शीघ्र ही कोऊ तिन असत्यार्थ पदनि का निषेध करै है। बहुरि ऐसे तीव्रकषायी जैनाभास इहाँ इस निकृष्ट कालविषै हो हैं, उत्कृष्ट क्षेत्रकाल बहुत हैं,तिस विषै तो ऐसे होते नाहीं। तातै जैन शास्त्रनि विषै असत्यार्थ पदनिकी परम्परा चालै नाहीं, ऐसा निश्चय करना।

बहुरि वह कहै कि कषायनिकरि तो असत्यार्थ पद न मिलावै परन्तु ग्रंथ करनेवालेकैं क्षयोपशमज्ञान है तातै कोई अन्यथा अर्थ भासै ताकरि असत्यार्थ पद मिलावै ताकी तो परम्परा चलै;?

ताका समाधान--

मूल ग्रंथकर्त्ता तौ गणधरदेव हैं ते आप च्यार ज्ञानके धारक हैं अर साक्षात् केवलीका दिव्यध्वनि उपदेश सुनै हैं ताका अतिशयकरि सत्यार्थ ही भासै है। अर ताहीके अनुसार ग्रन्थ बनावै हैं। सो उन ग्रन्थनिविषै तो असत्यार्थ पद कैसै गूंथे जांय अर अन्य आचार्यादिक ग्रन्थ बनावैं हैं ते भी यथायोग्य सम्यग्ज्ञानके धारक हैं। बहुरि ते तिन मूलग्रन्थनिको परंपराकरि ग्रंथ बनावै हैं। बहुरि जिन पदनिका आपकों ज्ञान न होइ तिनकी तो आप रचना करै नाहीं अर जिन पद-

निका ज्ञान होइ तिनकौं सम्यग्ज्ञान प्रमाणतै ठीक करि गूंथै हैं सो प्रथम तो ऐसी सावधानी विषै असत्यार्थ पद गूंथे जाय नाही अर कदाचित् आपको पूर्व ग्रन्थनिके पदनिका अर्थ अन्यथा ही भासै अर अपनी प्रमाणतामे भी तैसे ही आजाय तो याका किछू सारा* नाही। परन्तु ऐसें कोईकों भासै सबहीकों तौ न भासै। तातै जिनको सत्यार्थ भास्या होय ते ताका निषेधकरि परपरा चलने देते नाही। बहुरि इतना जानना-जिनकों अन्यथा जाने जीवका बुरा होय ऐसा देव गुरु धर्मादिक वा जीवादिक तत्त्वनिकों तो श्रद्धानी जैनी अन्यथा जानै ही नाहीं, इनिका तो जैनशास्त्रनिविषै प्रसिद्ध कथन है अर जिनकों भ्रमकरि अन्यथा जाने भी जिन आज्ञा माननेतैं जीवका बुरा न होइ, ऐसैं कोई सूक्ष्म अर्थ है तिन विषै किसीकों कोई अर्थ अन्यथा प्रमाणतामें ल्यावै तो भी ताका विशेष दोष नाही सो गोमट्टसारविषै कह्या है–

सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं हवयणं तु सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा ॥१॥

याका अर्थ–सम्यग्दृष्टी जीव उपदेश्या सत्यवचनकों श्रद्धान करै है अर अजाणमाण गुरुके नियोग तै असत्यको भी श्रद्धान करै है, ऐसा कह्या है। बहुरि हमारै भी विशेष ज्ञान नाहीं है अर जिनआज्ञा भंग करनेका बहुत भय है परन्तु इस ही विचारके बलतै ग्रंथ करनेका साहस करै हैं सो इस ग्रंथ विषैं जैसैं पूर्व ग्रन्थनिमें वर्णन है तैसैं ही वर्णन करेंगे। अथवा कही पूर्व ग्रन्थनिविषै सामान्य गूढ

* वश नाही।

वर्णन था ताका विशेष प्रगट करि इहाँ वर्णन करेंगे । सो ऐसें वर्णन करनेविषै मैं तो बहुत सावधानी राखूंगा अर सावधानी करते भी कही सूक्ष्म अर्थका अन्यथा वर्णन होय जाय तो विशेष बुद्धिमान होइ सो सवारकरि शुद्ध करियो यह मेरा प्रार्थना है। ऐसे शास्त्र करनेका निश्चय किया है । अब इहाँ कैसे शास्त्र बाँचन सुनने योग्य है अर तिन शास्त्रनिके वक्ता श्रोता कैसे चाहिए सो वर्णन करिए है।

बांचने सुनने योग्य शास्त्र

जे शास्त्र मोक्षमार्गका प्रकाश करें है तेई शास्त्र बाचने सुनने योग्य हैं। जातै जीव संसारविषै नाना दुःखनिकरि पीड़ित हैं, सो शास्त्ररूपी दीपककरि मोक्षमार्गका पावै तो उस मार्गविषै आप गमनकरि उन दुःखनितै मुक्त होय। सो मोक्षमार्ग एक वीतराग भाव है, तातै जिन शास्त्रनिविषै काहूप्रकार राग-द्वेष-मोह भावनिका निषेध करि वीतराग भावका प्रयोजन प्रकट किया होय तिनिही शास्त्रनिका बांचना सुनना उचित है। बहुरि जिनशास्त्रनिविषै शृङ्गार भोग कौतूहलादिक पोषि रागभावका अर हिंसा-युद्धादिक पोषि द्वेषभावका अर अतत्व श्रद्धान पोषि मोहभावका प्रयोजन प्रगट किया होय ते शास्त्र नाहीं शस्त्र हैं। जातै जिन राग-द्वेष-मोह भावनिकरि जीव अनादितै दुःखी भया तिनकी वासना जीवकै बिना सिखाई ही थी। बहुरि इन शास्त्रनिकरि तिनहीका पोषण किया, भले होनेकी कहा शिक्षा दीनी। जीवका स्वभाव घात ही किया तातै ऐसे शास्त्रनिका बांचना सुनना उचित नाहीं है । इहाँ बाचना सुनना जैसें कह्या तसै ही जोड़ना सीखना सिखावना लिखना लिखावना आदि कार्य भी उपलक्षणकरि जान

लेनें । ऐसे साक्षात् वा परम्पराकरि वीतरागभावकों पोषैं ऐसे शास्त्रहीका अभ्यास करना योग्य है ।

वक्ता का स्वरूप

अब इनके वक्ताका स्वरूप कहिये है । प्रथम तो वक्ता कैसा होना चाहिए, जो जैन श्रद्धानविषै दृढ़ होय, जातै जो आप अश्रद्धानी होय तो औरकों श्रद्धानी कैसे करै ? श्रोता तो आपहीतै हीनबुद्धिके धारक है तिनकों कोऊ युक्तिकरि श्रद्धानी कैसे करै ? अर श्रद्धान ही सर्व धर्मका मूल है । बहुरि वक्ता कैसा चाहिए, जाकै विद्याभ्यास करनेतें शास्त्र वांचनेयोग्य बुद्धि प्रगट भई होय, जातै ऐसी शक्ति बिना वक्तापनेका अधिकारी कैसे होय । बहुरि वक्ता कैसा चाहिए, जो सम्यग्ज्ञानकरि सर्व प्रकारके व्यवहार निश्चयादिरूप व्याख्यानका अभिप्राय पहचानता होय, जातै जो ऐसा न होय तो कहीं अन्य प्रयोजन लिए व्याख्यान होय ताका अन्य प्रयोजन प्रगटकरि विपरीत प्रवृत्ति करावै । बहुरि वक्ता कैसा चाहिए, जाकै जिनआज्ञा भंग करनेका बहुत भय होय, जातै जो ऐसा न होय तो कोई अभिप्राय विचारि सूत्र-विरुद्ध उपदेश देय जीवनिका बुरा करै । सो ही कह्या है—

बहु गुणविज्जाणिलयो असुत्तभासी तहावि मुत्तव्वो ।
जह वरमणिजुत्तो वि हु विग्घयरो विसहरो लोए ।।१।।

याका अर्थ—जो बहुत क्षमादिक गुण अर व्याकरण आदि विद्याका स्थान है तथापि उत्सूत्रभाषी है तो छोडने योग्य ही है । जैसें उत्कृष्टमणिसयुक्त है तो भी सर्प है सो लोकविषै विघ्नका ही करणहारा है । बहुरि वक्ता कैसा चाहिए, जाकै शास्त्र वांचि आजीविका

आदि लौकिक कार्य साधनेकी इच्छा न होय, जातैं जो आशावान् होइ तो यथार्थ उपदेश देइ सकै नाहीं, वाकै तौ किछू श्रोतानिका अभिप्रायके अनुसार व्याख्यानकर अपने प्रयोजन साधनेका ही साधन रहै अर श्रोतानितै वक्ता का पद ऊंचा है परन्तु यदि वक्ता लोभी होय तो वक्ता आप ही हीन हो जाय, श्रोता ऊँचा होय। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए,जाकै तीव्र क्रोध मान नाहोय,जातै तीव्र क्रोधी मानी की निंदा होय, श्रोता तिसतैं डरते रहैं, तिसतै अपना हित कैसे करैं। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए, जो आप ही नाना प्रश्न उठाय आप ही उत्तर करै अथवा अन्य जीव अनेक प्रकारकरि बहुत बार प्रश्न करैं तौ मिष्टवचननिकरि जैसें उनका सन्देह दूरि होय तैसें समाधान करै। जो आपकै उत्तर देनेकी सामर्थ्य न होय तो या कहै, याका मोकों ज्ञान नाहीं, किसी विशेष ज्ञानीसे पूछकर तिहारे,ताईं उत्तर दूंगा अथवा कोई समय पाय विशेष ज्ञानी तुमसों मिलै तो पूछ कर अपना सन्देह दूर करना और मोक्कू बताय देना। जातै ऐसा न होय तो अभिमानके वशतै अपनी पण्डिताई जनावनेकों प्रकरण विरुद्ध अर्थ उपदेशै, तातें श्रोतानका विरुद्ध श्रद्धान करनेतैं बुरा होय, जैनधर्मकी निंदा होय। जातै जो ऐसा न होइ तो श्रोताओंका सदेह दूर न होई तब कल्याण कैसें होइ अर जिनमतकी प्रभावना होय सकै नाहीं। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए, जाकै अनीतिरूप लोकनिद्य कार्यनिको प्रवृत्ति न होय, जातें लोकनिद्य कार्यनिकरि हास्यका स्थान होय जाय तब ताका वचन कौन प्रमाण कर,जिनधमको लजाव। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए, जाका कुल हीन न होय, अंगहीन न होय, स्वर भङ्ग न होय, मिष्टवचन

होय, प्रभुत्व होय तातें लोकविषें मान्य होय जातें जो ऐसा न होय तो तार्को वक्तापनाकी महतता शोभै नाही। ऐसा वक्ता होय। वक्ताविषें ये गुण तो अवश्य चाहिएं सो ही आत्मानुशासनविषें कह्या है।

प्राज्ञः प्राप्तसमस्तशास्त्रहृदयः प्रव्यक्तलोकस्थितिः।
प्रास्ताशः प्रतिभापरः प्रशमवान् प्रागेव दृष्टोत्तरः ॥
प्रायः प्रश्नसहः प्रभुः परमनोहारी परानिन्दया।
ब्रूयाद्धर्मकथां गणी गुणनिधिः प्रस्पष्टमिष्टाक्षरः ॥१॥

याका अर्थ—बुद्धिमान होइ,जानै समस्त शास्त्रनिका रहस्य पाया होय, लोकमर्यादा जाकै प्रगट भई होय, आशा जाकै अस्त भई होय, कांतिमान् होय, उपशमी होय, प्रश्न किये पहले ही जानै उत्तर देख्या होय, बाहुल्यपने प्रश्ननिका सहनहारा होय, प्रभु होय, परकी वा पर-करि आपकी निन्दा करि रहितपना होय, परके मनका हरनहारा होय, गुणनिधान होय, स्पष्ट मिष्ट जाके वचन होंय, ऐसा सभा का नायक धर्मकथा कहै। बहुरि वक्ताका विशेष लक्षण ऐसा है जो याकै व्याकरण न्यायादिक वा बड़े-बड़े जैनशास्त्रनिका विशेष ज्ञान होय तो विशेषपने तार्को वक्तापनो शोभै। बहुरि ऐसा भी होय अर अध्यात्म-रसकरि यथार्थ अपने स्वरूपका अनुभव जाकै न भया होय सो जिन-धर्मका मर्म जानै नाहीं, पद्धतिही करि वक्ता होय है। अध्यात्मरसमय साँचा जिनधर्मका स्वरूप वाकरि कैसें प्रगट किया जाय, तातें आत्म-ज्ञानी होई तो सांचा वक्तापनों होई, जातें प्रवचनसार विषै ऐसा कहा है। आगमज्ञान, तत्त्वार्थश्रद्धान, संयमभाव ये तीनों आत्मज्ञानकरि शून्य कार्यकारी नाहीं। बहुरि दोहापाहुडविषें ऐसा कह्या है—

पंडिय पंडिय पंडिय कण छोडि वितुस कंडिया।
पय-प्रत्थं तुट्ठोसि परमत्थ ण जाणइ मूढोसि ॥ १ ॥

याका अर्थ–हे पांडे ! हे पांडे ! हे पांडे ! तू कण छोडि तुसही कूटै है, तू अर्थ अर शब्द विषै सन्तुष्ट है, परमार्थ न जानै है, तातैं मूर्ख ही है- ऐसा कह्या है अर चौदह विद्यानिविषै भी पहले अध्यात्मविद्या प्रधान कही है। तातैं अध्यात्मरसका रसिया वक्ता है सो जिनधर्मके रहस्यका वक्ता जानना। बहुरि जे बुद्धिऋद्धि के धारक हैं वा अवधि-मनःपर्यय केवलज्ञानके धनी वक्ता हैं ते महावक्ता जाननें। ऐसैं वक्तानिके विशेष गुण जानने। सो इन विशेष गुणनिका धारी वक्ता-का संयोग मिलै तौ बहुत भला है ही अर न मिलै तो श्रद्धानादिक गुणनिके धारी वक्तानिहीके मुखतैं शास्त्र सुनना। या प्रकार गुणके धारी मुनि वा श्रावक तिनके मुखतै तो शास्त्र सुनना योग्य है अर पद्धति बुद्धि करि वा शास्त्र सुननेके लोभकरि श्रद्धानादि गुण रहित पापी पुरुषनिके मुखतैं शास्त्र सुनना उचित नाहीं। उक्तं च—

सं जिण प्राणपरेण य धम्मो सोयव्व सुगुरुपासम्मि।
ग्रह उचिम्रो सद्धाम्रो तस्सुवएसस्सकहगाम्रो ॥१॥

याका अर्थ—जो जिन आज्ञा मानने विषै सावधान है ता करि निर्ग्रन्थ सुगुरु हीके निकटि धर्म सुनना योग्य है अथवा तिस सुगुरुहीके उपदेशका कहनहारा उचित श्रद्धानी श्रावकके मुखतै धर्म सुनना योग्य है। ऐसा जो वक्ता धर्मबुद्धिकरि उपदेश दाता होय सो ही अपना अर अन्य जीवनिका भला करै है अर जो कषायबुद्धि करि उपदेश दे है सो अपना अर अन्य जीवनिका बुरा करै है, ऐसा जानना। ऐसैं वक्ता-

का स्वरूप कह्या, अब श्रोताका स्वरूप कहैं हैं --

श्रोताका स्वरूप

भला होनहार है तातैं जिस जीवकै ऐसा विचार आवै है कि मैं कौन हूँ? मेरा कहा स्वरूप है ? (अर कहांतैं आकर यहां जन्म धारया है और मरकर कहाँ जाऊँगा ?※) यह चरित्र कैसे बनि रह्या है ? ए मेरे भाव हो हैं तिनका कहा फल लागेगा, जीव दुःखी होय रह्या है सो दुःख दूरि होनेका कहा उपाय है, मुझकों इतनी बातनिका ठीककरि किछू मेरा हित होय सो करना, ऐसा विचारतै उद्यमवत भया है । बहुरि इस कार्यकी सिद्धि शास्त्र सुननतै होती जानि अति प्रीतिकरि शास्त्र सुनै है, किछू पूछना होय सो पूछै है बहुरि गुरुनिकरि कह्या अर्थकों अपने अतरंगविषै बारम्बार विचारै है बहुरि अपने विचारतैं सत्य अर्थनिका निश्चयकरि जो कर्तव्य होय ताका उद्यमी होय है, ऐसा तो नवीन श्रोताका स्वरूप जानना । बहुरि जे जैनधर्मके गाढे श्रद्धानी हैं अर नाना शास्त्र सुननेकरि जिनकी बुद्धि निर्मल भई है । बहुरि व्यवहार निश्चयादिकका स्वरूप नीके जानि जिस अर्थकों सुनै है ताकों यथावत् निश्चय जानि अवधारै है । बहुरि जब प्रश्न उपजै है तब अति विनयवान होय प्रश्न करै है अथवा परस्पर अनेक प्रश्नोत्तरकरि वस्तुका निर्णय करै है, शास्त्राभ्यास विषै अति आसक्त हैं, धर्मबुद्धिकरि निंद्य कार्यनिके त्यागी भए हैं ऐसे शास्त्रनिके श्रोता चाहिए। बहुरि श्रोतानिके विशेष लक्षण ऐसे है । जाकै किछू व्याकरण न्यायादिकका वा बडे जैनशास्त्रनिका ज्ञान होय तो श्रोतापनों विशेष शोभै है। बहुरि

※ यह पंक्तियां खरडा प्रति में नहीं हैं, अन्य सब प्रतियों में हैं। इसीसे आवश्यक जानि यहाँ दे दी गई हैं।

ऐसा भी श्रोता है अर वाक आत्मज्ञान न भया होय तो उपदेशका मरम समझि सकै नाही तातै आत्मज्ञानकरि जो स्वरूपका आस्वादी भया है सो जिनधर्म्म के रहस्यका श्रोता है। बहुरि जो अतिशयवंत बुद्धिकरि वा अवधिमनः पर्ययकरि संयुक्त होय तो वह महान श्रोता जानना। ऐसें श्रोतानिके विशेष गुण हैं। ऐसे जिनशास्त्रनिके श्रोता चाहिएँ। बहुरि शास्त्र सुननेतें हमारा भला होगा, ऐसो बुद्धिकरि जो शास्त्र सुनै हैं परन्तु ज्ञानकी मन्दताकरि विशेष समझैं नाही, तिनिके पुण्यबन्ध हो है, कार्य सिद्ध होता नाहीं। बहुरि जे कुलवृत्तिकरि वा सहज योग बनने करि शास्त्र सुनै हैं वा सुनै तो हैं परन्तु किछू अवधारण करते नाहीं, तिनकै परिणाम अनुसार कदाचित पुण्यबन्ध हो है कदाचित पापबंध हो है। बहुरि जे मद मत्सर भावकरि शास्त्र सुनें हैं वा तर्क करनेहीका जिनका अभिप्राय है. बहुरि जे महतताके अर्थि वा किसी लोभादिकका प्रयोजनके अर्थि शास्त्र सुनें हैं, बहुरि जो शास्त्र तो सुनै है परन्तु सुहावना नाही. ऐसे श्रोतानिके केवल पापबन्ध ही हो है। ऐसा श्रोतानिका स्वरूप जानना। ऐसें ही यथासम्भव सीखना सिखावना आदि जिनके पाइए तिनका भी स्वरूप जानना। या प्रकार शास्त्रका अर वक्ता श्रोताका स्वरूप कह्या सो उचित शास्त्र को उचित वक्ता होय वाचना,उचित श्रोता होय सुनना योग्य है। अब यहु मोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्र रचिए है ताका सार्थकपना दिखाइए है—

मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रंथकी सार्थकता

इस संसार अटवी विषे समस्त जीव हैं ते कर्म्मनिमित्त तैं निपजे

जे नाना प्रकार दुःख तिनकरि पीड़ित हो रहे हैं। बहुरि तहाँ मिथ्या अन्धकार व्याप्त होय रहा है। ताकरि तहाँतें मुक्त होनेका मार्ग पावते नाहीं, तडफि तडफि तहा ही दुःखको सहे हैं। बहुरि ऐसे जीवनिका भला होनेकों कारण तीर्थंकर केवली भगवान सो ही भए सूर्य, ताका भया उदय, ताको दिव्यध्वनिरूपी किरणनिकरि तहाँतै मुक्त होनेका मार्ग प्रकाशित किया। जैसें सूर्यकै ऐसो इच्छा नाही जो मैं मार्ग प्रकाशूं परन्तु सहज ही वाकी किरण फैलैं है ताकरि मार्गका प्रकाशन हो है तैसे ही केवली वीतराग है तातै ताकै ऐसी इच्छा नाही जो हम मोक्षमार्ग प्रगट करैं परन्तु सहज ही अघातिकर्मनिका उदयकरि तिनका शरीररूप पुद्गल दिव्यध्वनिरूप परिणमै है ताकरि मोक्षमार्गका प्रकाशन हो है। बहुरि गणधरदेवनिकै यहु विचार आया कि जहाँ केवली सूर्यका अस्तपना होइ तहां जीव मोक्षमार्गकौं कैसे पावै अर मोक्षमार्ग पाए बिना जीव दुःख सहैगे, ऐसी करुणाबुद्धि करि अंग प्रकीर्णकादिरूप ग्रन्थ तेई भए महान् दीपक तिनका उद्योत किया। बहुरि जैसें दीपक करि दीपक जोवनेतैं दीपकनिकी परम्परा प्रवर्ते तैसे आचार्यादिकनिने तिन ग्रन्थनितें अन्य ग्रन्थ बनाए । बहुरि तिनहूते किनहूने अन्य ग्रंथ बनाए। ऐसे ग्रथनितै ग्रथ होनेते ग्रंथनिकी परम्परा वर्ते है। मैं भी पूर्वग्रन्थनितै इस ग्रन्थकों बनाऊं हू । बहुरि जैसें सूर्य वा सर्व दीपक हैं ते मार्गकों एकरूपही प्रकाशै हैं तैसे दिव्यध्वनि वा सर्व ग्रन्थ हैं ते मोक्षमार्गकों एकरूप ही प्रकाशै है। सो यह भी ग्रन्थ मोक्षमार्गकों प्रकाशै है। बहुरि जैसे प्रकाशे भी नेत्ररहित वा नेत्रविकार सहित पुरुष है तिनकूं मार्ग सूझता नाहीं तो दीपककै तो

मार्ग प्रकाशकपनेका अभाव भया नाही, तैसे प्रगट किये भी जे मनुष्य ज्ञान रहित हैं वा मिथ्यात्वादि विकार सहित है तिनकूं मोक्षमार्ग सूझता नाहीं तो ग्रन्थकै तो मोक्षमार्ग प्रकाशकपनेका अभाव भया नाहीं। ऐसै इस ग्रन्थका मोक्षमार्ग प्रकाशक ऐसा नाम सार्थक जानना।

इहां प्रश्न— जो मोक्षमार्ग के प्रकाशक पूर्व ग्रन्थ तो थे ही, तुम नवीन ग्रन्थ काहे को बनावो हो ?

ताका समाधान— जैसें बड़े दीपकनिका तो उद्योत बहुत तेलादिकका साधनतें रहै है, जिनकै बहुत तेलादिककी शक्ति न होइ तिनको स्तोक दीपक जोइ दीजिये तो वे उसका साधन राखि ताके उद्योततें अपना कार्य करै तैसे बड़े ग्रन्थनिका तो प्रकाश बहुत ज्ञानादिकका साधनतै रहै है, जिनके बहुत ज्ञानादिककी शक्ति नाही तिनकूं स्तोक ग्रन्थ बनाय दीजिये तो वे वाका साधन राखि ताके प्रकाशतें अपना कार्य करै। तातै यह स्तोक सुगम ग्रन्थ बनाइए है। बहुरि इहां जो मैं यह ग्रन्थ बनाऊं हूं सो कषायनितें अपना मान बधावनेकों वा लोभ साधनेकों वा यश होनेकों वा अपनी पद्धति राखनेतें नाहीं बनाऊं हूं। जिनकै व्याकरण न्यायादिकका वा नयप्रमाणादिका वा विशेष अर्थनिका ज्ञान नाही तातैं तिनकै बड़े ग्रन्थनिका अभ्यास तौ बनि सकै नाहीं। बहुरि कोई छोटे ग्रन्थनिका अभ्यास बनै तो भी यथार्थ अर्थ भासै नाही। ऐसे इस समयविषैं मदज्ञानवान् जीव बहुत देखिये हैं तिनिका भला होनेके अर्थि धर्मबुद्धितें यह भाषा मय ग्रन्थ बनाऊं हूं। बहुरि जैसे बड़े दरिद्रीकों अवलोकनमात्र चिन्तामणिकी प्राप्ति होय अर वह न अवलोकै बहुरि जैसे कोढ़ीकूं अमृत पान करावै

अर वह न करै तैसे संसारपीड़ित जीवकों सुगम मोक्षमार्गके उपदेश का निमित्त बनै अर वह अभ्यास न करै तो वाके अभाग्यकी महिमा का वर्णन हमतैं तो होइ सकै नाहीं । वाका होनहारहीकों विचारे अपने समता आवै । उक्तं च—

साहीणे गुरुजोगे जे ण सुणंतीह धम्मवयणाइं ।
ते धिट्ठदुट्ठचित्ता अह सुहडा भव भयविहूणा ॥१॥

स्वाधीन उपदेशदाता गुरुका योग जुड़ें भी जे जाव धर्म्म वचननिकों नाही सुनै हैं ते धीठ हैं अर उनका दुष्टचित्त है अथवा जिस संसार भयतै तीर्थंकरादिक डरे तिस ससार भयकरि रहित हैं, ते बड़े सुभट हैं। बहुरि प्रवचनसारविषैभी मोक्षमार्गका अधिकार किया है तहां प्रथम आगमज्ञान ही उपादेय कह्या, सो इस जीवका तो मुख्य कर्त्तव्य आगमज्ञान है, याकों होतै तत्वनिका श्रद्धान हो है, तत्वनिका श्रद्धान भए संयमभाव हो है अर तिस आगमतैं आत्मज्ञानको भी प्राप्ति हो है तब सहज ही मोक्षकी प्राप्ति हो है । बहुरि धर्म्मके अनेक अंग हैं तिनविषै एक ध्यान बिना यातैं ऊँचा और धर्म्मका अग नाही है तातै जिस तिस प्रकार आगम अभ्यास करना योग्य है। बहुरि इस ग्रंथका तो वांचना सुनना विचारना घना सुगम है, कोऊ व्याकरणादिकका भी साधन न चाहिए, तातैं अवश्य याका अभ्यासविषैं प्रवर्तो, तुम्हारा कल्याण होगा।

इति श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रविषैं पीठबन्ध-प्ररूपक प्रथम अधिकार समाप्त भया ॥१॥

दूसरा अधिकार

संसार अवस्थाका स्वरूप

दोहा

मिथ्याभाव अभावतैं, जो प्रगटै निजभाव ।
सो जयवंत रहो सदा, यह ही मोक्ष उपाय ।।१।।

अब इस शास्त्रविषै मोक्षमार्गका प्रकाश करिए है। तहां बन्धनतैं छूटनेका नाम मोक्ष है । सो इस आत्माकै कर्मका बन्धन है बहुरि तिस बन्धनकरि आत्मा दुःखी होय रह्या है। बहुरि याकै दुःख दूरि करनेहीका निरन्तर उपाय भी रहै है परन्तु सांचा उपाय पाए बिना दुःख दूरि होता नाही अर दुःख सहा भी जाता नाही तातैं यह जीव व्याकुल होय रह्या है। ऐसे जीवको समस्त दुःखका मूल कारण कर्म बन्धन है ताका अभावरूप मोक्ष है सोही परम हित है। बहुरि याका सांचा उपाय करना सोही कर्तव्य है तातैं इसहीका याकौं उपदेश दीजिए है। तहाँ जैसे वैद्य है सो रोगसहित मनुष्यको प्रथम तो रोगका निदान बतावै, ऐसे यहु रोग भया है बहुरि उस रोगकै निमित्ततैं याकै जो जो अवस्था होती होय सो बतावै, ताकरि वाकै निश्चयहोय जो मेरे ऐसे ही रोग है । बहुरि तिस रोगके दूरि करनेका उपाय अनेक प्रकार बतावै अर तिस उपायकी ताको प्रतीति अनावै, इतना तो वैद्यका बतावना है। बहुरि जो वह रोगी ताका साधन करै तो रोग तै मुक्त होई अपना स्वभावरूप प्रवर्तै सो यहु रोगीका कर्तव्य है। तैसैं ही इहां कर्मबन्धनयुक्त जीवको प्रथम तो कर्मबन्धनका निदान बताइए है, ऐसैं यहु कर्मबन्धन भया है बहुरि उस कर्मबन्धनके निमित्ततैं याकै जो जो अवस्था होती होय सो बतावै, ताकरि जीवकै

निश्चय होय जो मेरे ऐसें ही कर्मबन्धन है। बहुरि तिस कर्मबन्धनके दूरि होनेका उपाय अनेक प्रकार बताइए है अर तिस उपायकी याको प्रतीति अनाइये है, इतना तौ शास्त्रका उपदेश है। बहुरि यहु जीव ताका साधन करै तो कमबन्धनतें मुक्त होय अपना स्वभावरूप प्रवर्तै सो यहु जीवका कर्तव्य है। सो इहा प्रथम ही कर्मबन्धनका निदान बताइये है।

कर्मबन्धनका निदान

बहुरि कर्म्मबन्धन होतें नाना उपाधिक भावनिविषैं परिभ्रमण-पनों पाइए है, एक रूप रहनो न हो है तातें कर्मबन्धनसहित अवस्थाका नाम संसार अवस्था है। सो इस संसार अवस्थाविषै अनन्तानन्त जीव द्रव्य हैं ते अनादिहीतें कर्मबन्धन सहित हैं। ऐसा नाही है जो पहलें जीव न्यारा था अर कर्म न्यारा था, पीछे इनिका संयोग भया। तौ कैसें है-जैसें मेरुगिरि आदि अकृत्रिम स्कन्धनिविषैं अनंते पुद्गल-परमाणु अनादितें एक बन्धनरूप हैं, पीछे तिनमें केई परमाणु भिन्न हो हैं केई नए मिलें हैं। ऐसें मिलना बिछुरना हुवा करै है। तैसे इस संसार विषै एक जीव द्रव्य अर अनते कर्मरूप पुद्गल परमाणु तिनि-का अनादितें एक बन्धनरूप है, पीछे तिनमें केई कर्म परमाणु भिन्न हो हैं केई नये मिलै हैं। ऐसें मिलना बिछुरना हुवा करै है।

बहुरि इहां प्रश्न-जो पुद्गलपरमाणु तो रागादिकके निमित्ततें कर्मरूप हो हैं, अनादि कर्मरूप कैसे हैं?

ताका समाधान--निमित्त तो नवीन कार्य होय तिस विषै ही सम्भवै है। अनादि अवस्थाविषै निमित्तका किछू प्रयोजन नाहीं। जैसें नवीन पुद्गल-परमाणुनिका बंधान तो स्निग्ध रूक्ष गुणके अंशन ही

करि हो है अर मेरुगिरि आदि स्कन्धनि विषैं अनादि पुद्गलपरमाणुनिका बन्धान है तहां निमित्तका कहा प्रयोजन है? तैसे नवीन परमाणुनिका कर्म्मरूप होना तो रागादिकनि ही करि हो है अर अनादि पुद्गलपरमाणुनिकी कर्म्मरूप ही अवस्था है। तहां निमित्तका कहा प्रयोजन है? बहुरि जो अनादिविषैंभी निमित्त मानिए तो अनादिपना रहै नाहीं। तातैं कर्मका बन्ध अनादि मानना। सो तत्वप्रदोपिका प्रवचनसार शास्त्रकी व्याख्या विषैं जो सामान्यज्ञेयाधिकार है तहां कह्या है। रागादिकका कारण तो द्रव्यकर्म है अर द्रव्यकर्म्मका कारण रागादिक है। तब वहां तर्क करी जो ऐसें इतरेतराश्रयदोष लागै, वह वाके आश्रय, वह वाके आश्रय, कहीं थंभाव नाहीं है, तब उत्तर ऐसा दिया है—

नैवं अनादिप्रसिद्धद्रव्यकर्म्मसम्बन्धस्य तत्र हेतुत्वेनोपादानात्।

याका अर्थ—ऐसें इतरेतराश्रय दोष नाहीं है। जातें अनादिका स्वयंसिद्ध द्रव्यकर्म्मका सबंध है ताका तहां कारणपनाकरि ग्रहण किया है। ऐसें आगममें कह्या है। बहुरि युक्तितें भी ऐसें ही सम्भवै है, जो कर्म्मनिमित्त विना पहले जीवकै रागादिक कहिए तो रागादिक जीवका निज स्वभाव हो जाय, जातैं परनिमित्त विना होइ ताहीका नाम स्वभाव है। तातैं कर्म्मका सम्बन्ध अनादि ही मानना।

बहुरि इहां प्रश्न—जो न्यारे न्यारे द्रव्य अर अनादितैं तिनका सम्बन्ध, ऐसें कैसें सम्भवै?

❀ नहि अनादिप्रसिद्धद्रव्यकर्माभिसबद्धस्यात्मन: प्राक्तनद्रव्यकर्मणस्तत्र हेतुत्वेनोपादानात्। प्रवचनसार टीका, २।२९

ताका समाधान—जैसे ठेठिहीसूं जल दूधका वा सोना किट्टिकका वा तुष कणका वा तेल तिलका सम्बन्ध देखिए है, नवीन इनका मिलाप भया नाहीं तैसें अनादिहीसों जीव कर्म्मका सम्बन्ध जानना, नवीन इनिका मिलाप नाहीं भया। बहुरि तुम कही कैसे संभवै ? अनादितें जैसें केई जुदे द्रव्य हैं तैसें केई मिले द्रव्य हैं, इस संभवनेविषें किछू विरोध तौ भासता नाहीं।

बहुरि प्रश्न – जो सबंध वा सयोग कहना तो तब संभवै जब पहले जुदे होइ पीछैं मिलें। इहां अनादि मिले जीव कर्म्मनिका सम्बंध कैसें कह्या है।

ताका समाधान—अनादितें तो मिले थे परन्तु पीछैं जुदे भए तब जान्या जुदे थे तौ जुदे भए। तातै पहले भी भिन्न ही थे। ऐसे अनुमान करि वा केवलज्ञानकरि प्रत्यक्ष भिन्न भासै हैं। तिसकरि तिनका बन्धान होतें भिन्नपना पाइए है। बहुरि तिस भिन्नताकी अपेक्षा तिनका सम्बन्ध वा संयोग कह्या है,जातै नए मिलो वा मिले ही होहु, भिन्न द्रव्यनिका मिलापविषै ऐसें ही कहना सभवै है। ऐसें इन जीव-निका अर कर्म्मका अनादि सम्बन्ध है।

तहां जीवद्रव्य तो देखने जाननेरूप चैतन्यगुणका धारक है अर इन्द्रियगम्य न होने योग्य अमूर्त्तीक है, संकोचविस्तारशक्तिकों लिए असंख्यातप्रदेशी एकद्रव्य है। बहुरि कर्म्म है सो चेतनागुणरहित जड़ है अर मूर्त्तीक है, अनत पुद्गल परमाणुनिका पिंड है तातै एक द्रव्य नाहीं है। ऐसें ए जीव अर कर्म्म हैं सो इनका अनादि सम्बन्ध है तो भी जीवका कोई प्रदेश कर्म्मरूप न हो है अर कर्म्मका कोई परम णु

जीवरूप न हो है। अपने अपने लक्षणको धरे जुदे जुदेही रहै हैं। जैसें सोना रूपाका एक स्कन्ध होइ तथापि पीतादि गुणनिको धरे सोना जुदा रहै है, स्वेतादि गुणनिकों धरे रूपा जुदा रहै है,तैसें जुदे जाननें।

इहां प्रश्न—जो मूर्त्तीक मूर्त्तीकका तो बन्धान होना बनै, अमूर्त्तीक मूर्त्तीकका बन्धान कैसें बनै ?

ताका समाधान—जैसे अव्यक्त इन्द्रियगम्य नाहीं ऐसे सूक्ष्म पुद्गल अर व्यक्त इन्द्रियगम्य हैं ऐसे स्थूल पुद्गल तिनका बन्धान होना मानिए है तैसे इन्द्रियगम्य होने योग्य नाहीं ऐसा अमूर्त्तीक आत्मा अर इन्द्रियगम्य होने योग्य मूर्त्तीककर्म्म इनका भी बन्धान होना मानना। बहुरि इस बन्धानविषै कोऊ किसीकों करै तो है नाहीं। यावत् बन्धान रहै तावत् साथ रहै, विछुरै नाही अर कारणकार्यपना तिनकै बन्या रहै, इतना ही यहाँ बंधान जानना। सो मूर्त्तीक अमूर्त्तीककै ऐसें बंधान होने विषै किछू विरोध है नाहीं। या प्रकार जैसें एक जीवकै अनादि कर्म्मसम्बन्ध कह्या तैसे ही जुदा जुदा अनंत जीवनिकै जानना।

बहुरि सो कर्म्म ज्ञानावरणादि भेदनिकरि आठ प्रकार है। तहां च्यारि घातियाकर्म्मनिके निमित्ततै तो जीवके स्वभावका घात हो है। तहाँ ज्ञानावरण दर्शनावर्णकरि तो जीवके स्वभाव ज्ञान दर्शन तिनकी व्यक्तता नाही हो है, तिन कर्म्मनिका क्षयोपशमके अनुसार किंचित् ज्ञान दर्शनकी व्यक्तता रहै है। बहुरि मोहनीयकरि जीवके स्वभाव नाहीं ऐसे मिथ्याश्रद्धान वा क्रोध मान माया लोभादिक कषाय तिनकी व्यक्तता हो है। बहुरि अंतरायकरि जीवका स्वभाव दीक्षा लेनेकी समर्थतारूप वीर्य ताकी व्यक्तता न हो है, ताका क्षयोपशमके अनुसार

किंचित् शक्ति हो है। ऐसे घातिकर्म्मनिके निमित्तते जीवके स्वभावका घात अनादिहीतैं भया है। ऐसैं नाही जो पहलैं तो स्वभावरूप शुद्ध आत्मा था पीछैं कर्म्मनिमित्ततें स्वभावघात होनेकरि अशुद्ध भया।

इहां तर्क-जो घात नाम तो अभावका है सो जाका पहले सद्भाव होय ताका अभाव कहना बनें। इहां स्वभावका तो सद्भाव है ही नाहीं, घात किसका किया ?

ताका समाधान—जीवविषैं अनादिहीतैं ऐसी शक्ति पाइए है, जो कर्म्मका निमित्त न होइ तो केवलज्ञानादि अपने स्वभावरूप प्रवर्तै परन्तु अनादिहीतैं कर्मका सम्बन्ध पाइए है। तातैं तिस शक्तिका व्यक्तपना न भया सो शक्ति अपेक्षा स्वभाव है ताका व्यक्त न होने देनेकी अपेक्षा घात किया कहिए है।

बहुरि च्यार अघातिया कर्म्म हैं तिनके निमित्ततैं इस आत्माकै बाह्यसामग्रीका सम्बन्ध बनैंहै तहां वेदनीयकरि तो शरीरविषैं वा शरीरतैं बाह्य नानाप्रकार सुख दुःखको कारण परद्रव्यनिका संयोग जुरै है अर आयुकरि अपनी स्थितिपर्यन्त पाया शरीरका सम्बन्ध नाही छूट सकै है अर नामकरि गति जाति शरीरादिक निपजै है अर गोत्रकरि ऊँचा नीचा कुलकी प्राप्ति हो है,ऐसै अघातिकर्म्मनिकरि बाह्य सामग्री भेली होय है ताकरि मोहकेउदयका सहकारण होतें जीव सुखी दुःखी हो है। अर शरीरादिकनिके सम्बन्धतैं जीवके अमूर्त्तत्वादि स्वभाव अपने स्वार्थको नाही करैहै। जैसैं कोऊ शरीरको पकरै तो आत्मा भी पकरया जाय। बहुरि यावत् कर्मका उदय रहै तावत् बाह्य सामग्री तैसें ही बनी रहै अन्यथा न होय सकै, ऐसा इन अघातिकर्मनिका निमित्त जानना।

इहां कोऊ प्रश्न करै कि कर्म्म तो जड़ है, किछू बलवान नाहीं, तिनकरि जोवके स्वभावका घात होना वा बाह्य सामग्रोका मिलना कैसे सम्भवै ?

ताका समाधान—जो कर्म आप कर्त्ता होय उद्यमकरि जीवके स्वभावको घातै, बाह्य सामग्रीको मिलावै तब कर्म्मकै चेतनपनौं भी चाहिए अर बलवानपनौं भी चाहिए सो तो है नाहीं, सहजही निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है। जब उन कर्मनिका उदयकाल होय तिस कालविषै आपही आत्मा स्वभावरूप न परिणमै, विभावरूप परिणमै वा अन्य द्रव्य है ते तैसें ही सम्बन्धरूप होय परिणमै। जैसे काहू पुरुषकै सिर परि मोहनधूलि परी है तिसकरि सो पुरुष बावला भया तहां उस मोहनधूलिकै ज्ञान भी न था अर बावलापना भी न था अर बावलापना तिस मोहनधूलिही करि भया देखिए है। मोहनधूलिका तो निमित्त है अर पुरुष आपही बावला हुआ परिणमै है,ऐसाही निमित्त नैमित्तिक बनि रह्या है। बहुरि जैसें सूर्यका उदयका कालविषै चकवा चकवीनिका संयोग होय तहां रात्रिविषै किसीने द्वेषबुद्धितैं ल्यायकरि मिलाए नाहीं,सूर्य उदयका निमित्तपाय आपही मिलै है अर सूर्यास्तका निमित्त पाय आपही विछुरै है। ऐसा ही निमित्त नैमित्तिक बनि रह्या है। तैसें ही कर्मका भी निमित्त नैमित्तिक भाव जानना। ऐसे कर्मका उदय करि अवस्था होय है बहुरि तहां नवीन बन्ध कैसें हो है सो कहिए है—

नूतन बंध विचार

जैसें सूर्यका प्रकाश है सो मेघपटलतै जितना व्यक्त नाहीं तितनेका तो तिस कालविषै अभाव है बहुरि तिस मेघपटलका मन्दपनातैं जेता

प्रकाश प्रगटै है सो तिस सूर्यके स्वभावका अंश है, मेघपटल जनित न ही है। तैसें जीवका ज्ञान दर्शन वीर्य स्वभाव है सो ज्ञानावरण दर्शनावरण अंतरायके निमित्ततैं जितने व्यक्त नाही तितनेका तौ तिस कालविषै अभाव है। बहुरि तिन कर्म्मनिका क्षयोपशमतै जेता ज्ञान दर्शन वीर्य प्रगटै है सो तिस जीवके स्वभावका अंश ही है कर्म्म-जनित उपाधिक भाव नाही है। सो ऐसा स्वभावके अंशका अनादितैं लगाय कबहूँ अभाव न हो है। याहीकरि जीवका जीवत्वपना निश्चय कीजिए है। जो यहु देखनहार जाननहार शक्तिकौं धरे वस्तु है सो ही आत्मा है। बहुरि इस स्वभावकरि नवीन कर्मका बंध नाही है जातैं निज स्वभाव ही बन्धका कारण होय तो बन्धका छूटना कैसें होय। बहुरि तिन कर्म्मनिके उदयतै जेता ज्ञान दर्शन वीर्य अभावरूप है ताकरि भी बन्ध नाही है जातैं आपही का अभाव होतैं अन्यकौं कारण कैसै होय। तातैं ज्ञानावरण दर्शनावरण अन्तरायके निमित्ततैं निपजे भाव नवीनकर्म्मबन्धके कारण नाहीं।

बहुरि मोहनीय कर्म्मकरि जीवकै अयथार्थश्रद्धानरूप तो मिथ्यात्व-भाव हो है वा क्रोध मान माया लोभादिक कषाय हो है। ते यद्यपि जीवके अस्तित्वमय है,जीवतैं जुदे नाहीं, जीव ही इनका कर्ता है, जीव के परिणमनरूप ही ये कार्य हैं तथापि इनका होना मोहकर्म्मके निमि-त्ततैं ही है, कर्म्मनिमित्त दूरि भए इनका अभाव हो है तातैं ए जीवकै निजस्वभाव नाहीं, उपाधिकभाव हैं। बहुरि इन भावनिकरि नवीन बन्ध हो है तातैं मोहके उदयतैं निपजेभाव बन्धके कारण हैं। बहुरि अघातिकर्म्मनिके उदयतै बाह्य सामग्री मिलै है,तिन विषै शरीरादिक

तो जीवके प्रदेशनिसों एक क्षेत्रावगाही होय एक बन्धानरूप हो हैं अर धन कुटुम्बादिक आत्मातै भिन्नरूप हैं सो ए सर्व बन्धके कारण नाही हैं, जातैं परद्रव्य बंधका कारण न होय। इनविषै आत्माके ममत्वादिरूप मिथ्यात्वादि भाव हो है सोई बधका कारण जानना।

योग और उससे होनेवाले प्रकृति बन्ध प्रदेश बन्ध

बहुरि इतना जानना जो नामकर्मके उदयतै शरीर वा वचन वा मन निपजै है तिनिकी चेष्टाके निमित्ततै आत्माके प्रदेशनिका चंचलपना हो है। ताकरि आत्माके पुद्गलवर्गणानिसों एक बन्धान होनेकी शक्ति हो है ताका नाम योग है। ताके निमित्ततै समय समय प्रति कर्मरूप होने योग्य अनंत परमाणुनिका ग्रहण हो है। तहाँ अल्पयोग होय तो थोरे परमाणुनिका ग्रहण होय, बहुत योग होयतो घने परमाणुनिका ग्रहण होय। बहुरि एक समय विषै जे पुद्गलपरमाणु ग्रहे तिनि विषै ज्ञानावरणादि मूलप्रकृति वा तिनकी उत्तर प्रकृतिनिका जैसें सिद्धाँतविषै कह्या है तैसें बटवारा हो है। तिस बटवारा माफिक परमाणु तिन प्रकृतिनिरूप आपही परिणमै हैं। विशेष इतना कि योग दोय प्रकार है-शुभयोग,अशुभयोग। तहा धमके अगनिविषै मनवचनकायकी प्रवृत्ति भए तो शुभयोग हो है अर अधर्मके अंगनिविषै तिनकी प्रवृत्ति भए अशुभयोग हो है। सो शुभ योग होहु वा अशुभयोग होहु सम्यक्त्व पाए बिना घातियाकर्मनिका तो सर्वप्रकृतिनिका निरन्तर बंध हुआ ही करै है। कोई समय किसी भी प्रकृतिका बन्ध हुआ बिना रहता नाहीं। इतना विशेष है जो मोहनीयका हास्य शोक युगलविषैं, रति अरति युगलविषै,तीनों वेदनिविषै एकैं काल एक एक हो प्रकृतिनिका

बन्ध हो है। बहुरि अघातियानिकी प्रकृतिनिविषे शुभोपयोग होतें साता वेदनीय आदि पुण्यप्रकृतिनिका बन्ध हो है। अशुभ योग होतें असातावेदनीय आदि पापप्रकृतिनिका बन्ध हो है। मिश्रयोग होतें केई पुण्यप्रकृतिनिका केई पापप्रकृतिनिका बन्ध हो है। ऐसा योगके निमित्त ते कर्मका आगमन हो है। तातें योग है सो आस्रव है। बहुरि याकरि ग्रहे कर्मपरमाणनिका नाम प्रदेश है तिनिका बंध भया अर तिन विषै मूल उत्तरप्रकृतिनिका विभाग भया तातें योगनिकरि प्रदेशबन्ध वा प्रकृतिबन्धका होना जानना।

कषाय से स्थिति और अनुभाग

बहुरि मोहके उदयतें मिथ्यात्व क्रोधादिक भाव हो है, तिन सबनिका नाम सामान्यपने कषाय है। ताकरि तिनकर्मप्रकृतिनिकी स्थिति बन्धै है सो जितनी स्थिति बंधै तिसविषे अबाधाकाल छोड़ि तहाँ पीछै यावत् बँधी स्थितिपूर्ण होय तावत् समय समय तिस प्रकृतिका उदय आया ही करै। सो देव मनुष्य तिर्यचायु बिना अन्य सर्व घातिया अघातिया प्रकृतिनिका अल्पकषाय होत थोरा स्थिति बन्ध होय, बहुत कषाय होते घना स्थितिबन्ध होय। इन तीन आयूनि का अल्पकषायतें बहुत अर बहुत कषायतें अल्प स्थितिबन्ध जानना। बहुरि तिस कषायहोकरि तिन कर्मप्रकृतिनिविषें अनुभागशक्ति का विशेष हो है सो जैसा अनुभाग बंधै तैसा ही उदयकालविषै तिन प्रकृतिनिका घना थोरा फल निपजै है। तहां घातिकर्मनिकी सब प्रकृतिनिविषे वा अघातिकर्मनिकी पाप प्रकृतिनिविषै तो अल्पकषाय होते थोरा अनुभाग बंधै है, बहुत कषाय होतें घना अनुभाग बधै

है। बहुरि पुण्यप्रकृतिनिविषै अल्पकषाय होतें घना अनुभाग बंधै है, बहुत कषाय होतें थोरा अनुभाग बधै है। ऐसें कषायनिकरि कर्मप्रकृतिनिके स्थिति अनुभागका विशेष भया तातैं कषायनिकरि स्थितिबंध अनु ागबंधका होना जानना। इहाँ जैसें बहुत भी मदिरा है अर ताविषै थोरे कालपर्यंत थोरी उन्मत्तता उपजावनेकी शक्ति है तो वह मदिरा हीनपनाकों प्राप्त है। बहुरि थोरी भी मदिरा है ताविषै बहुत कालपर्यंत घनी उन्मत्तता उपजावनेकी शक्ति है तो वह मदिरा अधिकपनाकों प्राप्त है। तैसे घने भी कर्मप्रकृतिनिके परमाणु है अर तिनविषै थोरे कालपर्यन्त थोरा फल देने की शक्ति है तो ते कर्मप्रकृति हीनताको प्राप्त है। बहुरि थोरे भी कर्मप्रकृतिनिके परमाणु हैं अर तिनविषै बहुत कालपर्यंत बहुत फल देनेकी शक्ति है तो वे कर्मप्रकृति अधिकपनाको प्राप्त है। तातैं योगनिकरि भया प्रकृतिबन्ध प्रदेशबध बलवान नाही, कषायनिकरि किया स्थितिबध अनुभागबध ही बलवान है। तातैं मुख्यपने कषाय ही बध का कारण जानना। जिनको बध न करना होय ते कषाय मति करो।

जड़ पुद्गल परमाणुओं का यथायोग्य प्रकृतिरूप परिणमन

बहुरि इहा कोऊ प्रश्न करै कि पुद्गलपरमाणु तो जड़ है, उनकै किछू ज्ञान नही, कैसे यथायोग्य प्रकृतिरूप होय परिणमै है?

ताका समाधान – जैसे भूख होतैं मुखद्वारकरि ग्रह्याहुवा भोजनरूप पुद्गलपिंड सो मास शुक्र शोणित आदि धातुरूप परिणमै है। बहुरि तिस भोजनके परमाणुनिविषै यथायोग्य कोई धातुरूप थोरे कोई धातुरूप घने परमाणु हो हैं। बहुरि तिनविषैं केई परमाणुनिका

सम्बन्ध घने काल रहै, केईनिका थोरे काल रहै, बहुरि तिन परमाणुनिविषै केई तो अपने कार्य निपजावनेकी बहुत शक्तिकों धरै हैं, केई स्तोकशक्तिकों धरै हैं। सो ऐसैं होने विषै कोऊ भोजनरूप पुद्गलपिंडके ज्ञान तो नाही है जो मैं ऐसैं परिणमू अर और भी कोऊ परिणमावनहारा नाहीं है, ऐसा ही निमित्त नैमित्तिक भाव बनि रह्या है, ताकरि तैसैं ही परिणमन पाइए है। तैसैं ही कषाय होतें योग द्वारकरि ग्रह्या हुवा कर्मवर्गणारूप पुद्गलपिंड सो ज्ञानावरणादि प्रकृतिरूप परिणमै है। बहुरि तिन कर्म परमाणुनिविषै यथायोग्य कोई प्रकृतिरूप थोरे कोई प्रकृतिरूप घने परमाणु हो हैं। बहुरि तिन विषैं केई परमाणुनिका सम्बन्ध घने काल रहै, केईनिका थोरे काल रहै। बहुरि तिन परमाणुनिविषै कोऊ तो अपने कार्य निपजावनेकी बहुत शक्ति धरै है, कोऊ थोरी शक्ति धरै है सो ऐसें होनेविषै कोऊ कर्मवर्गणारूप पुद्गलपिंडकै ज्ञान तो नाही है जो मैं ऐसे परिणमूं अर और भी कोई परिणमावनहारा है नाही, ऐसा ही निमित्त नैमित्तिकभाव बनि रह्या है ताकरि तैसैं ही परिणमन पाइये है। सो ऐसैं तो लोकविषैं निमित्त नैमित्तिक घने ही बनि रहे हैं। जैसें मन्त्रनिमित्तकरि जलादिकविषै रोगादिक दूरि करनेकी शक्ति हो है वा काकरी आदिविषै सर्पादि रोकनेकी शक्ति हो है तैसैं ही जीव भावके निमित्तकरि पुद्गल परमाणुनिविषै ज्ञानावरणादिरूप शक्ति हो है। इहाँ विचारकरि अपने उद्यमतें कार्य करै तो ज्ञान चाहिए अर तैसा निमित्त बने स्वयमेव तैसें परिणमन होय तो तहाँ ज्ञानका किछू प्रयोजन नाही, या प्रकार नवीनबंध होने का विधान जानना।

भावोंसे कर्मोंकी पूर्व बद्ध अवस्थाका परिवर्तन

अब जे परमाणु कर्मरूप परिणमैं तिनका यावत् उदयकाल न आवै तावत् जीवके प्रदेशनिसों एक क्षेत्रावगाहरूप बंधान रहै है। तहां जीवभावके निमित्तकरि केई प्रकृतिनिकी अवस्थाका पलटना भी होय जाय है। तहाँ केई अन्य प्रकृतिनिके परमाणु थे ते संक्रमणरूप होय अन्य प्रकृतिके परमाणु होय जांय। बहुरि केई प्रकृतिनिकी स्थिति वा अनुभाग बहुत था सो अपकर्षण होयकरि थोरा होय जाय। बहुरि केई प्रकृतिनिकी स्थिति वा अनुभाग थोरा था सो उत्कर्षण होयकरि बहुत हो जाय। सो ऐसैं पूर्वैं बंधे परमाणुनिकी भी जीव-भावनिका निमित्त पाय अवस्था पलटै है अर निमित्त न बनै तो न पलटै, जैसेके तैसे रहैं। ऐसैं सत्तारूप कर्म रहै हैं।

कर्मोंके फलदानमें निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध

बहुरि जब कर्मप्रकृतिनिका उदयकाल आवै तब स्वयमेव तिन प्रकृतिनिका अनुभागके अनुसार कार्य बनै। कर्म तिनके कार्यनिकौं निपजावता नाहीं। याका उदयकाल आए वह कार्य स्वयं बनै है। इतना ही निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध जानना। बहुरि जिस समयफल निपज्या तिसका अनन्तर समयविषैं तिन कर्मरूप पुद्गलनिकैं अनुभाग शक्तिके अभाव होनेतैं कर्मत्वपनाका अभाव हो है। ते पुद्गल अन्य-पर्यायरूप परिणमैं हैं। याका नाम सविपाक निर्जरा है। ऐसैं समय समय प्रति उदय होय कर्म खिरै है। कर्मत्वपना नास्ति भए पीछैं ते परमाणु तिस ही स्कंधविषैं रहो वा जुदे होय जाहु, किछू प्रयोजन रह्या नाहीं।

इहां इतना जानना—इस जीवके समय समय प्रति अनन्त परमाणु बंधै हैं तहां एक समयविषै बंधे परमाणु ते आबाधाकाल छोड़ अपनी स्थितिके जेते समय होंहि तिन विषै क्रमतैं उदय आवै है । बहुरि बहुत समयनिविषै बंधे परमाणु जे एक समय विषै उदय आवने योग्य हैं ते इकट्ठे होय उदय आवै हैं । तिन सब परमाणुनिका अनुभाग मिले जेता अनुभाग होय तितना फल तिस काल विषै निपजै है । बहुरि अनेक समयनिविषै बंधे परमाणु बंधसमयतैं लगाय उदयसमय पर्यन्त कर्मरूप आत्मिन्वको धरै जीवसों सम्बन्धरूप रहै हैं। ऐसें कर्मनिको बंध उदय सत्तारूप अवस्था जानना। तहां समयसमय प्रति एक समयप्रबद्ध मात्र परमाणु बंधै है, एक समय प्रबद्ध मात्र निर्जरै हैं। ड्याढगुणहानिकरि गुणित समय प्रबद्ध मात्र सदा काल सत्ता रहै है। सो इन सबनिका विशेष आगे कर्मअधिकारविषै लिखेंगे तहां जानना।

द्रव्यकर्म और भावकर्मका स्वरूप

बहुरि ऐसे यह कर्म है सो परमाणुरूप अनन्त पुद्गलद्रव्यनिकरि निपजाया कार्य है तातैं याका नाम द्रव्यकर्म है । बहुरि मोहके निमित्ततैं मिथ्यात्वक्रोधादिरूप जीवका परिणाम है सो अशुद्ध भावकरि निपजाया कार्य है तातैं याका नाम भावकर्म है। सो द्रव्यकर्मके निमित्ततैं भावकर्म होय अर भावकर्मके निमित्ततैं द्रव्यकर्म का बंध होय। बहुरि द्रव्यकर्मतैं भावकर्म, भावकर्मतैं द्रव्यकर्म, ऐसै ही परस्पर कारणकार्यभावकरि संसारचक्रविषै परिभ्रमण हो है। इतना विशेष जानना—तीव्र मन्द बन्ध होनेतैं वा संक्रमणादि होनेतैं वा एक

कालविषै बन्ध्या अनेककालविषें वा अनेककालविषें बधे एककाल-विषै उदय आवनेतें काहू कालविषै तीव्रउदय आवं तब तीव्रकषाय होय तब तीव्र ही नवीनबन्ध होय। अर काहूकालविषै मंद उदय आवै तब मंद कषाय होय तब मंद ही नवीनबन्ध होय। बहुरि तिन तीव्र-मंदकषायनिहीकै अनुसारि पूर्वबन्धे कर्मनिका भी संक्रमणादिक होय तो होय। या प्रकार अनादितें लगाय धाराप्रवाहरूप द्रव्यकर्म वा भावकर्मकी प्रवृत्ति जाननी।

बहुरि नामकर्मके उदयतें शरीर हो है सो द्रव्यकर्मवत् किंचित् सुख दुःखकों कारण है। तातें शरीरको नोकर्म कहिए है। इहा नो शब्द ईषत् कषायवाचक जानना। सो शरीर पुद्गलपरमाणुनिका पिंड है अर द्रव्यइन्द्रिय, द्रव्यमन, श्वासोश्वास अर वचन ए भी शरीरके अंग हैं सो ए भी पुद्गलपरमाणुनिके पिंड जानने। सो ऐसें शरीरके अर द्रव्यकर्मसम्बन्धसहित जीवके एक क्षेत्रावगाहरूप बधान होहै सो शरीर का जन्म समयतें लगाय जेती आयुकी स्थिति होय तितने काल पर्यन्त शरीरका सम्बन्ध रहै है। बहुरि आयु पूर्ण भए मरण हो है। तब तिस शरीरका सम्बन्ध छूटै है। शरीर आत्मा जुदे जुदे होय जाय हैं। बहुरि ताके अनंतर समयविषै वा दूसरे तीसरे चौथे समय जीव कर्म-उदयके निमित्ततें नवीन शरीर धरै है तहा भी अपने आयुपर्यन्त तैसें ही सम्बन्ध रहै है, बहुरि मरण हो है तब तिससों सम्बन्ध छूटै है। ऐसें ही पूर्व शरीरका छोडना नवीन शरीरका ग्रहण करना अनुक्रमतें हुआ करै है। बहुरि यह आत्मा यद्यपि असंख्यातप्रदेशी है तथापि संकोचविस्तारशक्तितें शरीरप्रमाण ही रहै है। विशेष इतना—समुद्घात

होतें शरीरतें बाह्य भी आत्माके प्रदेश फैलै हैं। बहुरि अंतराल समयविषै पूर्व शरीर छोड्या था तिस प्रमाण रहै है। बहुरि इस शरीरके अंग भूत द्रव्यइन्द्रिय अर मन तिनके सहायतै जीवकै जानपना की प्रवृत्ति हो है। बहुरि शरीरकी अवस्थाके अनुसार मोहके उदयतें सुखी दु.खी हो है। बहुरि कबहूँ तो जीवकी इच्छाके अनुसार शरीर प्रवर्तै है. कबहू शरीरकी अवस्थाके अनुसार जीव प्रवर्तै है। कबहूँ जीव अन्यथा इच्छारूप प्रवर्तै है, पुद्गल अन्यथा अवस्थारूप प्रवर्तै है। ऐसे इस नोकर्मकी प्रवृत्ति जाननी।

नित्य निगोद और इतर निगोद

तहा अनादितै लगाय प्रथम तो इस जीवके नित्यनिगोदरूप शरीर का सम्बन्ध पाइये है। तहां नित्यनिगोद शरीरकों धरि आयु पूर्ण भए मरि बहुरि नित्यनिगोदशरीरकों धारै है बहुरि आयु पूर्ण भए मरि नित्यनिगोदशरीरहीकों धारै है। याही प्रकार अनंतानन्त प्रमाण लिए जीवराशि है सो अनादितै तहा ही जन्ममरण किया करै है। बहुरि तहांतें छै महीना अर आठ समयविषै छैस्यै आठ जीव निकसै हैं ते निकसि अन्य पर्यायनिकों धारै हैं। सो पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, प्रत्येकवनस्पतीरूप एकेन्द्रिय पर्यायनिविषै वा बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय चौइन्द्रियरूप पर्यायनिविषै वा नारक तिर्यंच मनुष्य देवरूप पंचेन्द्रिय पर्यायनिविषै भ्रमण करै हैं, बहुरि तहाँ कितेकाल भ्रमणकरि फिर निगोदपर्यायको पावै सो वाका नाम इतरनिगोद है। बहुरि तहां कितेककाल रहै तहां तें निकसि अन्य पर्यायनिविषै भ्रमण करै है। तहा परिभ्रमण करने का उत्कृष्ट काल पृथ्वी आदि स्थावरनिविषै असख्यात कल्पमात्र है

अर द्वीन्द्रियादि पंचेन्द्रियपर्यंत त्रसनिविषैं साधिक दोय हजार सागर है अर इतरनिगोदविषै अढाई पुद्गलपरिवर्तनमात्र है सो यहु अनंतकाल है। बहुरि इतरनिगोदतैं निकसि कोई स्थावर पर्याय पाय बहुरि निगोद जाय ऐसैं एकेंद्रियपर्यायनिविषै उत्कृष्ट परिभ्रमणकाल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन मात्र है। बहुरि जघन्य सर्वत्र एक अंतर्मुहूर्त काल है। ऐसैं घना तो एकेन्द्रिय पर्यायनिका ही धरना है। अन्य पर्याय पावना तो काकतालीय न्यायवत् जानना। या प्रकार इस जीवकै अनादिहीतैं कर्मबन्धनरूप रोग भया है।

इति कर्म्मबन्धननिदान वर्णनम्।

अब इस कर्मबन्धनरूप रोगके निमित्ततैं जीवकी कैसी अवस्था होय रही है सो कहिए है। प्रथम तो इस जीवका स्वभाव चैतन्य है सो सबनिका सामान्यविशेष स्वरूपका प्रकाशनहारा है। जो उनका स्वरूप होय सो आपकौं प्रतिभासै है तिसहीका नाम चैतन्य है। तहाँ सामान्यरूप प्रतिभासनेका नाम दर्शन है, विशेषरूप प्रतिभासनेका नाम ज्ञान है। सो ऐसे स्वभावकरि त्रिकालवर्ती सर्वगुणपर्यायसहित सर्व पदार्थनिकों प्रत्यक्ष युगपत् बिना सहाय देखै जानै ऐसी आत्माविषैं शक्ति सदा काल है। परन्तु अनादिहीतैं ज्ञानावरण दर्शनावरणका सम्बन्ध है ताके निमित्ततैं इस शक्तिका व्यक्तपना होता नाहीं। तिन कर्मनिका क्षयोपशमतैं किंचित् मतिज्ञान, श्रुतज्ञान वा अचक्षुदर्शनपाइए है अर कदाचित् चक्षुदर्शन वा अवधिदर्शन भी पाइए है। सो इनिकी भी प्रवृत्ति कैसें है सो दिखाइए है।

सो प्रथम तो मतिज्ञान है सो शरीरके अगभूत जे जीम, नासिका,

नयन, कान, स्पर्शन ए द्रव्यइन्द्रिय अर हृदयस्थान विषै आठ पांखड़ीका फूल्या कमलके आकार द्रव्यमन तिनके सहायहीतें जानै है । जैसैं जाकी दृष्टि मन्द होय सो अपने नेत्रकरि ही देखै है परन्तु चश्मा दीए ही देखै, बिना चश्मेके देख सकै नाहीं । तैसें आत्माका ज्ञान मन्द है सो अपने ज्ञानहीकरि जानैं है परन्तु द्रव्यइन्द्रिय वा मनका सम्बन्ध भए ही जानै,तिन बिना जान सकै नाहीं । बहुरि जैसें नेत्र तो जैसाका तैसा है अर चश्मा विषै किछू दोष भया होय तो देखि सकै नाहीं अथवा थोरा दीसै अथवा औरका और दीसै, तैसें अपना क्षयोपशम तो जैसाका तैसा है अर द्रव्य इन्द्रिय वा मनके परमाणु अन्यथा परिणमें होंय तो जान सकै नाही, अथवा थोरा जानैं अथवा औरका और जानै । जातें द्रव्यइन्द्रिय वा मनरूप परमाणुनिका परिणमनकै अर मतिज्ञानकै निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है सो उनका परिणमनके अनुसार ज्ञानका परिणमन होय है । ताका उदाहरण-जैसें मनुष्यादिककै बाल वृद्ध अवस्थाविषै द्रव्यइन्द्रिय वा मन शिथिल होय तब जानपना भी शिथिल होय । बहुरि जसैं शीतवायु आदिके निमित्ततें स्पर्शनादि इन्द्रियनिके वा मनके परमाणु अन्यथा होय तब जानना न होय वा थोरा जानना होय वा अन्यथा जानना होय । बहुरि इस ज्ञानकै अर बाह्य द्रव्यनिकै भी निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध पाइए है । ताका उदाहरण-जैसें नेत्रइन्द्रियकै अन्धकारके परमाणु वा फूला आदिकके परमाणु वा पाषाणादिके परमाणु आदि आड़े आ जाएँ तो देखि न सकै । बहुरि लाल कांच आड़ा आवै तो सब लाल ही दीसै,हरित कांच आड़ा आवै तो हरितही दीसे ऐसैं अन्यथा जानना होय। बहुरि दुरबीन

चश्मा इत्यादि आडा आवै तो बहुत दीसने लग जाय। प्रकाश जल हिलव्वी कांच इत्यादिकके परमाणु आड़े आवै तो भी जैसाका तैसा दीखै। ऐसे अन्य इन्द्रिय वा मनकै भी यथासम्भव निमित्तनैमित्तिक-पना जानना। बहुरि मंत्रादिक प्रयोगतै वा मदिरा पानादिकतै वा घृतादिकके निमित्ततै न जानना वा थोरा जानना वा अन्यथा जानना हो है। ऐसे यहु ज्ञान बाह्य द्रव्यके भी आधीन जानना। बहुरि इस ज्ञानकरि जो जानना हो है सो अस्पष्ट जानना हो है। दूरतैं कैसा ही जानै, समीपतै कैसा ही जानै, तत्काल कैसा ही जानै, जानते बहुत बार होय जाय तब कैसा ही जानै। काहूकों संशय लिए जानै काहूकों अन्यथा जानै, काहूकों किंचित् जानै, इत्यादि रूपका निर्मल जानना होय सकै नाहीं। ऐसैं यहु मतिज्ञान पराधीनता लिए इन्द्रिय मन द्वारकरि प्रवर्तै है। तहाँ इन्द्रियनिकरि तो जितने क्षेत्रका विषय होय तितने क्षेत्र विषै जे वर्तमान स्थूल अपने जानने योग्य पुद्गलस्कंध होंय तिनहीको जानै। तिन वषैं भी जुदे जुदे इन्द्रियनि-करि जुदे जुदे कालविषै कोई स्कंधके स्पर्शादिकका जानना हो है। बहुरि मनकरि अपने जाननै योग्य किंचिन्मात्र त्रिकाल सम्बन्धी दूर क्षेत्रवर्ती वा समीप क्षेत्रवर्ती रूपी अरूपी द्रव्य वा पर्याय तिनकों अत्यन्त अस्पष्टपने जानै है सो भी इन्द्रियनिकरि जाका ज्ञान भया होय वा अनुमानादिक जाका किया होय तिसहीको जान सकै है। बहुरि कदाचित् अपनी कल्पनाही करि असत्को जानै है। जैसे सुपनें विषै वा जागते भी जे कदाचित् कहीं न पाइए ऐसे आकारादिक चितवै वा जैसें नाहीं तैसें मानै। ऐसें मन करि जानना होय है सो यहु

इन्द्रिय वा मन द्वारकरि जो ज्ञान हो है ताका नाम मतिज्ञान है। तहां पृथ्वी जल अग्नि पवन वनस्पतीरूप एकन्द्रियके स्पर्शहीका ज्ञान है। लट शंख आदि वेइन्द्रिय जीवनिकै स्पर्श रसका ज्ञान है। कीड़ा मकोड़ा आदि तेइन्द्रिय जीवनिकै स्पर्श रस गंधका ज्ञान है। भ्रमर मक्षिका पतंगादिक चौइन्द्रिय जीवानकै स्पर्श रस गंध वर्णका ज्ञान है। मच्छ गऊ कबूतर इत्यादिक तिर्यंच अर मनुष्य देव नारकी ए पंचेन्द्रिय है तिनकै स्पर्श रस गंध वर्ण शब्दनिका ज्ञान है। बहुरि तिर्यंचनिविषै केई सैनी है केई असैनी है। तहां सैनीनिकै मनजनित ज्ञान है, असैनी निकै नाहीं है। बहुरि मनुष्य देव नारकी सैनी ही है, तिन सबनिकै मनजनित ज्ञान पाइए है ऐसे मतिज्ञानकी प्रवृत्ति जानना।

बहुरि मतिज्ञानकरि जिस अर्थको जान्या होय ताके सम्बन्धतै अन्य अर्थको जाकरि जानिये सो श्रुतज्ञान है। सो दोय प्रकार है। अक्षरात्मक १, अनक्षरात्मक २। तहां जैसे 'घट' ए दोय अक्षर सुने वा देखे सो तो मतिज्ञान भया तिनके सम्बन्धतै घट पदार्थका जानना भया सो श्रुतज्ञान भया, ऐसै अन्य भी जानना। सो यहु तो अक्षरात्मक श्रुत ज्ञान है। बहुरि जैसै स्पर्शकरि शीतका जानना भया सो तो मतिज्ञान है ताके सम्बन्धतै यह हितकारी नाहीं यातै भाग जाना इत्यादिरूप ज्ञान भया सो श्रुतज्ञान है, ऐसै अन्य भी जानना। यह अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। तहाँ एकेन्द्रियादिक असंज्ञी जीवनिकै तो अनक्षरात्मक ही श्रुतज्ञान है अर शेष सज्ञी पंचेन्द्रियकै दोऊ है। सो यहु श्रुतज्ञान है सो अनेक प्रकार पराधीन जो मतिज्ञान ताके भी आधीन है वा अन्य अनेक कारणनिके आधीन है, तातै महापराधीन जानना।

बहुरि अपनी मर्यादाके अनुसार क्षेत्रकालका प्रमाण लिए रूपी पदार्थनिको स्पष्टपने जानकरि जानिये सो अवधिज्ञान है सो यहु देव नारकीनिकै तो सर्वकै पाइए है अर संज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यंच अर मनुष्यनिकै भी कोईकै पाइए है। असज्ञीपर्यन्त जीवनिकै यहु होता ही नाही। सो यहु भी शरीरादिक पुद्गलनिके आधीन है। बहुरि अवधि के तीन भेद है। देशावधि १, परमावधि २, सर्वावधि ३। सो इनविषै थोरा क्षेत्रकालकी मर्यादा लिए किंचिन्मात्र रूपी पदार्थको जाननहारा देशावधि है सो ही काई जीवकै होय है। बहुरि परमावधि, सर्वावधि अर मनःपर्यय ए ज्ञान मोक्षमार्गविषै प्रगटै हैं। केवलज्ञान मोक्षमार्ग-स्वरूप है। तातै इस अनादि ससार अवस्था विषै इनका सद्भाव ही नाही है, ऐसे तो ज्ञानकी प्रवृत्ति पाइए है। बहुरि इन्द्रिय वा मनकै स्पर्शादिक विषय तिनका सम्बन्ध होतै प्रथम कालविषै मतिज्ञानके पहले जो सत्तामात्र अवलोकनरूप प्रतिभास हो है ताका नाम चक्षु-दर्शन वा अचक्षुदर्शन है। तहा नेत्र इन्द्रियकरि दर्शन होय ताका नाम तो चक्षुदर्शन है सो तो चौइन्द्रिय पचेन्द्रिय जीवनिहीकै हो है। बहुरि स्पर्शन रसन घ्राण श्रोत्र इन च्यारि इन्द्रिय अर मन करि दर्शन होय ताका नाम अचक्षुदर्शन है सो यथायोग्य एकेन्द्रियादि जीवनिकै हो है।

बहुरि अवधिके विषयनिका सम्बन्ध होतें अवधिज्ञानके पहले जो सत्तामात्र अवलोकनरूप प्रतिभास होय ताका नाम अवधिदर्शन है सो जिनकै अवधिज्ञान सम्भवै तिनहीकै यहु हो है। जो यहु चक्षु अचक्षु अवधिदर्शन है सो मतिज्ञान वा अवधिज्ञानवत् पराधीन जानना। बहुरि केवलदर्शन मोक्षस्वरूप है ताका यहां सद्भाव ही नाहीं। ऐसें

दर्शनका सद्भाव पाइए है। या प्रकार ज्ञान दर्शनका सद्भाव ज्ञानावरण दर्शनावरणका क्षयोपशमके अनुसार हो है। जब क्षयोपशम थोरा हो है तब ज्ञानदर्शनकी शक्ति भी थोरी हो है। जब बहुत हो है तब बहुत हो है। बहुरि क्षयोपशमतै शक्ति तो ऐसी बनी रहै अर परिणमनकरि एक जीवकै एक कालविषै एक विषयहीका देखना वा जानना है। इस परिणमनहीका नाम उपयोग है। तहाँ एक जीवकै एक कालविषै कै तो ज्ञानोपयोग हो है कै दर्शनोपयोग हो है। बहुरि एक उपयोगका भी एक ही भेदकी प्रवृत्ति हो है। जैसे मतिज्ञान होय तब अन्य ज्ञान न होय। बहुरि एक भेदविषै भी एक विषयविषै ही प्रवृत्ति हो है। जैसे स्पर्शको जानै तब रसादिकको न जानै। बहुरि एक विषय विषै भी ताके कोऊ एक अंग ही विषै प्रवृत्ति हो है। जैसे उष्णस्पर्शकों जानै तब रूक्षादिककों न जानै। ऐसे एक जीवकै एक कालविषै एक ज्ञेय वा दृश्यविषै ज्ञान वा दर्शनका परिणमन जानना। सो ऐसे ही देखिए है। जब सुननेविषै उपयोग लग्या होय तब नेत्रनिके समीप तिष्टता भी पदार्थ न दीसै, ऐसे ही अन्य प्रवृत्ति देखिए है। बहुरि परिणमनविषै शीघ्रता बहुत है ताकरि काहू कालविषै ऐसा मानिए है कि अनेक विषयनिका युगपत् जानना वा देखना हो है सो युगपत् होता नाही, क्रम ही करि हो है, संस्कारबलतै तिनका साधन रहै है। जैसे कागलेके नेत्र के दोय गोलक हैं, पूतरी एक है सो फिरै शीघ्र है ताकरि दोऊ गोलकनिका साधन करै है तैसे ही इस जीवके द्वार तो अनेक हैं अर उपयोग एक सो फिरै शीघ्र है ताकरि सर्व द्वारनिका साधन रहै है।

इहां प्रश्न—जो एक कालविषं एक विषयका जानना वा देखना हो है ता इतना ही क्षयोपशम भया कहा, बहुत काहेकूं कहो ? बहुरि तुम कहो हो, क्षयोपशमतें शक्ति हो है तो शक्ति तो आत्माविषं केवलज्ञान-दर्शनकी भी पाइए है।

ताका समाधान—जैसें काहू पुरुषकै बहुत ग्रामनिविषै गमन करने की शक्ति है। बहुरि ताकों काहूने रोक्या अर यहु कह्या, पांच ग्रामनिविषं जावो परन्तु एक दिनविषै एक ही ग्रामको जावो। तहाँ उस पुरुष के बहुत ग्राम जानेकी शक्ति तो द्रव्य अपेक्षा पाइए है, अन्य काल विषै सामर्थ्य होय, वर्तमान सामर्थ्यरूप नाही है परन्तु वर्तमान पाच ग्रामनितें अधिक ग्रामनिविषै गमन करि सकै नाही। बहुरि पाच ग्रामनि विषे जानेकी पर्याय अपेक्षा वर्तमान सामर्थ्यरूप शक्ति है जातें इनविषं गमन करि सकै है। बहुरि व्यक्तता एक दिनविषं एक ग्रामको गमन करनेहीको पाइए है। तैसें इस जीवकै सर्वका देखनेको जानने-को शक्ति है। बहुरि याकों कर्मने रोक्या अर इतना क्षयोपशम भया कि स्पर्शादिक विषयनिको जानो वा देखो परन्तु एक काल विषै एक-हीको जानो वा देखो। तहा इस जीवके सबके देखने जाननेकी शक्ति तो द्रव्यअपेक्षा पाइए है. अन्य-कालविषै सामर्थ्य होय परन्तु वर्तमान सामर्थ्यरूप नाही, जातें अपने योग्य विषयनितें अधिक विषयनिकों देखि जानि सकै नाही। बहुरि अपने योग्य विषयनिकू देखने जाननेकी पर्याय अपेक्षा वर्तमान सामर्थ्य रूप शक्ति है जातें इनिकों देखि जानि सकै है; बहुरि व्यक्तता एक कालविष एकहीको देखने वा जाननेकी पाइए।

बहुरि इहां प्रश्न—जो ऐसें तो जान्या परन्तु क्षयोपशम तो पाइए

अर बाह्य इन्द्रियादिकका अन्यथा निमित्त भये देखना जानना न होय वा थोरा होय वा अन्यथा होय सो ऐसें कर्महीका निमित्त तो न रह्या?

ताका समाधान—जैसें रोकनहाराने यहु कह्या जो पांच ग्रामनिविषें एक ग्रामको एक दिनविषें जावो परन्तु इन किंकरनिकों साथ लेके जावो तहां वे किंकर अन्यथा परिणमै तो जाना न होय वा थोरा जाना होय वा अन्यथा जाना होय। तैसें कर्मका ऐसा ही क्षयोपशम भया है जो इतने विषयनिविषै एक विषयको एक कालविषै देखो वा जानो परन्तु इतने बाह्य द्रव्यनिका निमित्त भये देखो वा जानो। तहां वे बाह्य द्रव्य अन्यथा परिणमैं तो देखना जानना न होय वा अन्यथा होय। ऐसे यहु कर्मके क्षयोपशमहीका विशेष है तातैं कर्महीका निमित्त जानना। जैसें काहूक अंधकारके परमाणु आडे आएँ देखना न होय, घूघू मार्जारादिकनिकें तिनको आये भी देखना होय। सो ऐसा यहु क्षयोपशमहीका विशेष है। जैसैं जैसें क्षयोपशम होय तैसैं तैसेंही देखना जानना होय। ऐसें इस जीवकें क्षयोपशमज्ञानकी प्रवृत्ति पाइए है। बहुरि मोक्षमार्गविषें अवधि मनःपर्यय हो हैं ते भी क्षयोपशमज्ञान ही है, तिनिको भी ऐसें ही एक कालविषै एकको प्रतिभासना वा परद्रव्यका आधीनपना जानना। बहुरि विशेष है सो विशेष जानना। या प्रकार ज्ञानावरण दर्शनावरणका उदयके निमित्ततै बहुत ज्ञानदर्शनके अंशनि का तो अभाव है अर तिनके क्षयोपशमतैं थोरे अंशनिका सद्भाव पाइए है।

बहुरि इस जीवकै मोहके उदयतै मिथ्यात्व वा कषायभाव हो हैं। तहाँ दर्शनमोहके उदयतै तो मिथ्यात्वभाव हो है तावरि यह जीव

अन्यथा प्रतीतरूप अतत्त्वश्रद्धान करे है । जैसें है तैसें ता न मानै है अर जैसें नाही है तैसें मानै है । अमूर्त्तीक प्रदेशनिका पुंज प्रसिद्ध ज्ञानादिगुणनिका धारी अनादि निधनवस्तु आप है अर मूर्त्तीक पुद्गल द्रव्यनिकापिंड प्रसिद्ध ज्ञानादिकनिकरि रहित जिनका नवीन संयोग भया, ऐसे शरीरादिक पुद्गल पर है। इनका संयोगरूप नाना प्रकार मनुष्य तिर्यंचादि पर्याय हो हैं, तिस पर्यायनिविषै अहंबुद्धि धारे है, स्व-परका भेद नाही करि सकै है । जो पर्याय पावै तिसहीको आपा मानै । बहुरि तिस पर्यायविषै ज्ञानादिक हैं ते तो आपके गुण हैं अर रागादिक है ते आपके कर्मनिमित्ततें उपाधिक भाव भए है अर वर्णादिक हैं ते आपके गुण नाही है, शरीरादिक पुद्गलके गुण है अर शरीरादिकविषै वर्णादिकनिकी वा परमाणुनिको नाना प्रकार पलटनि हो है सो पुद्गल की अवस्था है सो इन सबनिहीको अपनो स्वरूप जानै है, स्वभाव परभावका विवेक नाही होय सकै है। बहुरि मनुष्यादिक पर्यायनिविषै कुटम्ब धनादिकका सम्बन्ध हो है, ते प्रत्यक्ष आपतै भिन्न हैं अर ते अपने आधीन होय नाही परिणमै है तथापि तिन विषै ममकार करै है । ए मेरे है वे काहू प्रकार भी आपने होने नाही, यह ही अपनी मानि तै अपने मानै है । बहुरि मनुष्यादि पर्यायनिविषै कदाचित् देवादिकका वा तत्त्वनिका अन्यथा स्वरूप जो कल्पित किया ताकी तो प्रतीत करै है अर यथार्थस्वरूप जैसें है तैसें प्रतीति न करै है। ऐसैं दर्शनमोहके उदय करि जीवकै अतत्त्वश्रद्धानरूप मिथ्यात्वभाव हो है। जहां तीव्र उदय होय है तहाँ सत्यश्रद्धानतें घना विपरीत श्रद्धान होय है । जब मंद

उदय होय है तब सत्यश्रद्धानतें थोरा विपरीत श्रद्धान हो है।

बहुरि चारित्रमोहके उदयतें इस जीवकें कषायभाव हो हैं तब वह देखता जानता सता परपदार्थनिविषै इष्ट अनिष्टपनो मानि क्रोधादिक करै है तहां क्रोधका उदय होतें पदार्थनिविषै अनिष्टपनो वा ताका बुरा होना चाहै। कोउ मंदिरादि अचेतन पदार्थ बुरा लागै तब फोरना तोरना इत्यादि रूपकरि वाका बुरा चाहै। बहुरि शत्रु आदि सचेतन पदार्थ बुरा लागै तब वाकों बध बन्धादिकरि वा मारनेकरि दुःख उपजाय ताका बुरा चाहै। बहुरि आप वा अन्य सचेतन अचेतन पदार्थ कोई प्रकार परिणए, आपको सो परिणमन बुरा लागै तब अन्यथा परिणमावनेकरि तिस परिणमनका बुरा चाहै। या प्रकार क्रोधकरि बुरा चाहनेकी इच्छा तो होय, बुरा होना भवितव्य आधीन है

बहुरि मानका उदय होतें पदार्थविषै अनिष्टपनो मानि ताकों नीचा किया चाहै, आप ऊँचा भया चाहै, मन धूलि आदि अचेतन पदार्थनिविषै घृणा वा निरादरादिककरि तिनकी हीनता, आपकी उच्चता चाहै। बहुरि पुरुषादिक सचेतन पदार्थनिकों नमावना, अपने आधीन करना इत्यादि रूपकरि तिनकी हीनता, आपकी उच्चता चाहै। बहुरि आप लोकविषै जैसें ऊचा दीसै तैसें शृंगारादि करना वा धन खरचना इत्यादि रूपकरि औरनिकों हीन दिखाय,आप ऊंचा हुआ चाहै। बहुरि अन्य कोई आपतें ऊंचा कार्य करै ताको कोई उपाय करि नीचा दिखावै और आप कार्य करै ताकू ऊंचा दिखावै;या प्रकार मानकरि अपनी महतताकी इच्छा तो होय, महंतता होनी भवितव्य

बहुरि मायाका उदय होतें कोई पदार्थकों इष्ट मानि नाना प्रकार छलनिकरि ताको सिद्ध किया चाहै । रत्न सुवर्णादिक अचेतन पदार्थनिकी वा स्त्री दासी दासादि सचेतन पदार्थनिकी सिद्धिके अर्थि अनेक छल करै। परको ठगनेके अर्थि अपनी अवस्था अनेक प्रकार करै वा अन्य अचेतन सचेतन पदार्थनिकी अवस्था पलटावै इत्यादिरूप छलकरि अपनाअभिप्राय सिद्ध किया चाहै । या प्रकार मायाकरि इष्टसिद्धिके अर्थि छल तो करै अर इष्टसिद्धि होना भवितव्य आधीन है।

बहुरि लोभका उदय होते पदार्थनिकों इष्ट मानि तिनकी प्राप्ति चाहै। वस्त्राभरण धनधान्यादि अचेतन पदार्थनिकी तृष्णा होय, बहुरि स्त्री पुत्रादिक चेतन पदार्थनिकी तृष्णा होय । बहुरि आपकै वा अन्य सचेतन अचेतन पदार्थकै कोई परिणमन होना इष्ट मानि तिनकों तिस परिणमनरूप परिणमाया चाहै । या प्रकार लोभकरि इष्टप्राप्ति की इच्छा तो होय अर इष्ट प्राप्ति होनी भवितव्य आधीन है। ऐसैं क्रोधादिका उदयकरि आत्मा परिणमै है । तहां एक एक कषाय चार चार प्रकार है । अनंतानुबन्धी १, अप्रत्याख्यानावरण २, प्रत्याख्यानावरण ३, संज्वलन ४ । तहाँ जिनका उदयतें आत्माकै सम्यक्त्व न होय, स्वरूपाचरण चारित्र न होय सकै ते अनंतानुबधीकषाय हैं ।*) जिनका उदय होतें देशचारित्र न होय तातें किंचित् त्याग भी न होय सकै, ते अप्रत्याख्यानावरण कषाय हैं। बहुरि जिनका उदय होतें सकलचारित्र न होय तातें सर्वका त्याग न होय सकै, ते प्रत्याख्याना-

* यह पंक्ति खरड़ा प्रति मे नही है।

वरण कषाय है । बहुरि जिनका उदय होते सकलचारित्रकों दोष उपज्या करै ताते यथाख्यातचारित्र न होय सकै,ते संज्वलन कषाय है। सो अनादि ससार अवस्थाविषै इन चारयो ही कषायनिका निरतर उदय पाइए है । परमकृष्णलेश्यारूप तीव्रकषाय होय तहां भी अर शुक्ललेश्यारूप मदकषाय होय तहां भी निरन्तर च्यारचोंहीका उदय रहै है। जाते तीव्रमन्दको अपेक्षा अनन्तानुबन्धी आदि भेद नाही हैं, सम्यक्त्वादि घातनेकी अपेक्षा ए भेद है। इनही प्रकृतिनिका तीव्र अनुभाग उदय होत तीव्र क्रोधादिक हो है, मन्द अनुभाग उदय होते मन्द उदय हो है। बहुरि मोक्षमार्ग भए इन च्यारों विषै तीन, दोय, एकका उदय हो है, पीछे च्यारचोंका अभाव हो है। बहुरि क्रोधादिक च्यारचों कषायनिविषै एककाल एकहीका उदय हो है। इन कषायनिकै परस्पर कारणकार्यपनो है। क्रोधकरि मानादिक होय जाय, मानकरि क्रोधादिक होय जाय, ताते काहूकाल भिन्नता भासै काहूकाल न भासै है। ऐसैं कषायरूप परिणमन जानना। बहुरि चारित्र-मोहहीके उदयतै नोकषाय होयहै तहा हास्यका उदयकरि कही इष्टपना मानि प्रफुल्लित हो है,हर्ष मानै है। बहुरि रतिका उदयकरि काहूकों इष्ट मान प्रीति करै है तहा आसक्त हो है। बहुरि अरतिका उदयकरि काहूकों अनिष्ट मान अप्रीति करै है तहां उद्वेगरूप हो है। बहुरि शोक का उदयकरि कही अनिष्टपनों मान दिलगीर हो है, विषाद मानै है। बहुरि भयका उदयकरि किसीको अनिष्ट मान तिसतै डरै है, वाका संयोग न चाहै है। बहुरि जुगुप्साका उदयकरि काहूपदार्थकों अनिष्ट मान ताकी घृणा करै है, वाका वियोग चाहै है। ऐसै ए हास्यादिक

छह जानने। बहुरि वेदनिके उदयतै याकै काम परिणाम हो है तहाँ स्त्रीवेदके उदयकरि पुरुषसो रमनेकी इच्छा हो है अर पुरुषवेदके उदयकरि स्त्रीसों रमनेकी इच्छा हो है अर नपुन्सकवेदके उदयकरि युगपत् दोऊनिसो रमनेकी इच्छा हो है, ऐसे ए नव तो नोकषाय है। क्रोधादि सारिखे ए बलवान नाही तातै इनको ईषत्कषाय कहै है। यहाँ नोशब्द ईषत् वाचक जानना। इनका उदय तिन क्रोधादिकनिकी साथ यथासम्भव हो है। ऐसें मोहके उदयतै मिथ्यात्व वा कषायभाव हो है सो ए संसारके मूल कारण ही है। इनही करि वर्तमान काल विषै जीव दुःखी है अर आगामी कर्मबन्धनके भी कारण ए ही है। बहुरि इनहीका नाम राग द्वेष मोह है। तहाँ मिथ्यात्वका नाम मोह है जातै तहाँ सावधानीका अभाव है। बहुरि माया लोभ कषाय अर हास्य रति तीन वेदनिका नाम राग है जातै तहाँ इष्टबुद्धि करि अनुराग पाइए है। बहुरि क्रोध मान कषाय अर अरति शोक भय जुगुप्सानिका नाम द्वेष है जातै तहां अनिष्ट बुद्धि करि द्वेष पाइए है। बहुरि सामान्यपने सबही का नाम मोह है। तातै इन विषै सर्वत्र अमावधानी पाइए है। बहुरि अन्तरायके उदयतै जीव चाहै सो न होय। दान दिया चाहै देय न सकै। वस्तुकी प्राप्ति चाहै सो न होय। भोग किया चाहै सो न होय। उपभोग किया चाहै सो न होय। अपनी ज्ञानादि शक्तिको प्रगट किया चाहै सो न प्रगट होय सकै। ऐसें अंतरायके उदयतें चाह्या चाहै सो होय नाही। बहुरि तिसहीका क्षयोपशमतें किंचिंन्मात्र चाह्या भी हो है। चाहिए तो बहुत है परन्तु किंचिन्मात्र (चाह्या हुआ होय है। बहुत दान देना चाहै है परन्तु

थाड़ा हो※) दान देय सकै है। बहुत लाभ चाहै है परन्तु थोड़ाही लाभ हो है। ज्ञानादिक शक्ति प्रगट हो है तहाँ भी अनेक बाह्य कारण चाहिएं। या प्रकार घातिकर्मनिके उदयतै जीवकै अवस्था हो है। बहुरि अघातिकर्मनिविषै वेदनीयके उदयकरि शरीर विषं बाह्य सुख दुःखका कारण निपजै है। शरीरविषै आरोग्यपना रोगीपनो शक्तिवानपनो दुर्बलपनो इत्यादि अर क्षुधा तृषा रोग खेद पीडा इत्यादि सुख दुःखनिके कारण हो है। बहुरि बाह्यविषै सुहावना ऋतु पवनादिक वा इष्ट स्त्री पुत्रादिक वा मित्र धनादिक, असुहावना ऋतु पवनादिक वा अनिष्ट स्त्री पुत्रादिक वा शत्रु दरिद्र वध बंधनादिक सुख दुःखको कारण हो हैं। ए बाह्य कारण कहे तिन विषै केई कारण तो ऐसे है जिनके निमित्तस्यों शरीरकी अवस्था हो सुख दुःखको कारण हो है अर वे ही सुख दुःखकों कारण न हो हैं। बहुरि केई कारण ऐसे हैं जे प्राप्त हो सुख दु.खकों कारण हो हैं। ऐसे कारणका मिलना वेदनीयके उदयतै हो है। तहा साता वेदनीयतैं सुखके कारण मिलै अर असातावेदनीयतै दु.खके कारण मिलै। सो इहाँ ऐसा जानना, ए कारणही तो सुखदुःखको उपजावै नाही, आत्मा मोहकर्म का उदयतै आप सुखदुःख मानै है। तहा वेदनीयकर्मका उदयकै अर मोहकर्मका उदयकै ऐसाही सम्बन्ध है। जब सातावेदनीयका निपजाया बाह्य कारण मिलै तब तो सुख माननेरूप मोहकर्मका उदय होय अर जब असातावेदनीयका निपजाया बाह्यकारण मिलै तब दुःख मानने-

※ यह पंक्ति खरड़ा प्रति में नहीं है किन्तु अन्य सब प्रतियों में है, इस कारण आवश्यक जान यहा दे दी गई है।

रूप मोहकर्मका उदय होय। बहुरि एक ही कारण काहूकों सुखका, काहूकों दुःखका कारण हो है। जैसें काहूकै सातावेदनीयका उदय होतें मिल्या जैसा वस्त्र सुखका कारण हो है तैसा ही वस्त्र काहूकों असाता वेदनीयका उदय होतें मिल्या दुःखका कारण हो है। तातैं बाह्य वस्तु सुखदुःखका निमित्त मात्र हो है। सुख दुःख हो है सो मोहके निमित्ततैं हो है। निर्मोही मुनिनकै अनेक ऋद्धि आदि परीसह आदि कारण मिलै तो भी सुख दुःख न उपजै। मोही जीवकै कारण मिले वा बिना कारण मिले भी अपने संकल्प हीतै सुख दुःख हुआ ही करै है। तहाँ भी तीव्रमोहीकै जिस कारणको मिले तीव्र सुख दुःख होय तिसही कारणको मिले मंदमोहीकै मंद सुखदुःख होय। तातैं सुख दुःखका मूल बलवान कारण मोहका उदय है। अन्य वस्तु हैं सो बलवान कारण नाहीं। परन्तु अन्य वस्तुकै अर मोही जीवके परिणामनिकै निमित्तनैमित्तिककी मुख्यता पाइए है। ताकरि मोहीजीव अन्य वस्तुहीकों सुखदुःखका कारण मानै है। ऐसें वेदनीयकरि सुखदुःखका कारण निपजै है। बहुरि आयुकर्मके उदयकरि मनुष्यादि पर्यायनिकी स्थिति रहै है। यावत् आयुका उदय रहै तावत् अनेक रोगादिक कारण मिलो, शरीरस्यों सम्बन्ध न छूटै। बहुरि जब आयुका उदय न होय तब अनेक उपाय किए भी शरीरस्यों सम्बन्ध रहै नाहीं, तिसही काल आत्मा अर शरीर जुदा होय। इस संसारविषै जन्म, जीवन, मरणका कारण आयुकर्म ही है। जब नवीन आयुका उदय होय तब नवीन-पर्यायविषै जन्म हो है। बहुरि यावत् आयुका उदय रहै तावत् तिस पर्यायरूप प्राणनिके धारणतै जीवना हो है। बहुरि आयुका क्षय होय

तब तिस पर्यायरूप प्राण छूटनेतैं मरण हो है। सहज ही ऐसा आयुकर्मका निमित्त है। और कोई उपजावनहारा,क्षपावनहारा,रक्षाकरनहारा है नाहीं ऐसा निश्चय करना। बहुरि जैसे नवीन वस्त्र पहरि कितेक काल पहरे रहै, पीछै ताकूं छाड़ि अन्य वस्त्र पहरै तैसें जीव नवीन शरीर धरै कितेक काल धरे रहै, पीछै ताकूं छोड़ि अन्य शरीर धरै है। तातैं शरीरसम्बन्धअपेक्षा जन्मादिक हैं। जीव जन्मादिरहित नित्य ही है तथापि मोही जीवकै अतीत अनागतका विचार नाहीं। तातैं पर्याय-पर्याय मात्र अपना अस्तित्व मानि पर्याय सम्बन्धी कार्यनिविषै ही तत्पर होय रह्या है। ऐसैं आयुकरि पर्यायकी स्थिति जाननी। बहुरि नामकर्मकरि यहु जीव मनुष्यादिगतिनिविषै प्राप्त हो है, तिस पर्यायरूप अपनी अवस्था हो है। बहुरि तहां त्रसस्थावरादि विशेष निपजै है। बहुरि तहां एकेंद्रियादि जातिकौ धारै है। इस जातिकर्मका उदयकै अर मतिज्ञानावरणका क्षयोपशमकै निमित्तनैमित्तिकपना जानना। जैसा क्षयोपशम होय तैसा जाति पावै। बहुरि शरीरनिका सम्बन्ध हो है तहां शरीरके परमाणु अर आत्माके प्रदेशोंका एक बन्धन हो है अर संकोच विस्ताररूप होय शरीरप्रमाण आत्मा रहै है। बहुरि नोकर्मरूप शरीरविषै अंगोपांगादिकका योग्यस्थान प्रमाण लिए हो है। इसहीकरि स्पर्शन रसना आदि द्रव्यइन्द्रिय निपजै है वा हृदयस्थान विषै आठ पांखड़ीका फूल्या कमलके आकार द्रव्य मन हो है। बहुरि तिस शरीरहीविषै आकारादिकका विशेष होना अर वर्णादिकका विशेष होना अर स्थूलसूक्ष्मत्वादिकका होना इत्यादि कार्य निपजै है सो ए शरीररूप परणिए परमाणु ऐसे परिणमै हैं। बहुरि श्वासो-

च्छ्वास वा स्वर निपजै है सो ए भी पुद्गलके पिंडहैं अर शरीरस्यों एक
बधानरूप हैं। इनविर्षे भी आत्माके प्रदेश व्याप्त हैं। तहां श्वासोच्छ्-
वास तो पवनहै सो जैसे आहारकों ग्रहै नीहारकों निकासै तबही जीवनो
होय तैसे बाह्यपवनको ग्रहै अर अभ्यतर पवनको निकासै तब ही
जीवितव्य रहै। तातै श्वासोच्छ्वास जीवितव्यका कारण है। इस
शरीरविष जैसे हाड मासादिक है तैसे ही पवन जानना। बहुरि
जैसें हस्तादिकसो कार्य करिए तैसे ही पवनतै कार्य करिए है।
मुखमें ग्रास धरचा ताकों पवनतै निगलिए है, मलादिक पवनतै ही
बाहर काढिए है, तैसे ही अन्य जानना। बहुरि नाडो वा वायुरोग
वा वायगोला इत्यादि ए पवनरूप शरीरके अग जानने। बहुरि स्वर
है सो शब्द है। सो जैसे वीणाको तातकों हलाए भाषारूप होने योग्य
पुद्गलस्कधहै, ते साक्षर वा अनक्षर शब्दरूप परिणमै है; तैसे तालवा
होठ इत्यादि अगनिको हलाएं भाषापर्याप्तिविषै ग्रहे पुद्गलस्कध हैं, ते
साक्षर वा अनक्षर शब्दरूप परिणमै है। बहुरि शुभ अशुभ गमनादिक
हो है। इहां ऐसा जानना, जैसे दोयपुरुषनिकै इकदडा बेडा है तहां
एक पुरुष गमनादिक किया चाहै अर दूसरा भी गमनादिक करै तो
गमनादिक होय सकै, दोऊनिविषै एक बैठि रहै तो गमनादि होय सकै
नाही अर दोऊनिविषै एक बलवान होय तो दूसरेको भी घसोट ले जाय
तैसे आत्माकै अर शरीरादिकरूप पुद्गलकै एकक्षेत्रावगाहरूप बधान
है तहां आत्मा हलनचलनादि किया चाहै अर पुद्गल तिस शक्तिकरि
रहित हुआ हलन चलन न करै वा पुद्गलविषै शक्ति पाइए है अर
आत्माको इच्छा न होय तो हलनचलनादि न होय सकै। बहुरि इन

विषै पुद्गल बलवान होय हालै चालै तो ताकी साथ बिना इच्छा भी आत्मा आदि हालै चालै। ऐसें हलन चलनादि होय है। बहुरि याका अपजस आदि बाह्य निमित्त बनै है। ऐसें ए कार्य निपजै हैं, तिनकरि मोहके अनुसार आत्मा सुखी दुःखी भी हो है। नामकर्मके उदयतें स्वयमेव ऐसे नानाप्रकार रचना हो है, और कोई करनहारा नाहीं है। बहुरि तीर्थंकरादि प्रकृति यहाँ हैं हो नाही। बहुरि गोत्रकरि ऊँचा नीचाकुलविषै उपजना हो है तहाँ अपना अधिकहीनपना प्राप्त हो है। मोहके निमित्ततै तिनकरि आत्मा सुखी दुःखी भी हो है। ऐसें अघाति कर्मनिका निमित्ततै अवस्था हो है। या प्रकार इस अनादि संसारविषै घाति अघाति कर्मनिका उदयके अनुसार आत्माकै अवस्था हो है। सो हे भव्य! अपने अन्तरगविषै विचारकरि देख, ऐसें ही है कि नाहीं। सो ऐसा विचार किए ऐसे ही प्रतिभासै। बहुरि जो ऐसे है तो तू यह मान कि 'मेरै अनादि संसार रोग पाइए है, ताके नाशका मोकों उपाय करना', इस विचारतें तेरा कल्याण होगा।

इति श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रविषै संसारअवस्थाका निरूपक द्वितीय अधिकार सम्पूर्ण भया ॥२॥

तीसरा अधिकार

संसार अवस्थाका स्वरूप-निर्देश

दोहा

सो निजभाव सदा सुखद, अपनो करो प्रकाश ।
जो बहुविधि भवदुःखनिको, करि है सत्तानाश ।।१।।

अब इस संसार अवस्थाविषै नाना प्रकार दुःख है तिनका वर्णन करिए है—जातैं जो संसारविषैं भी सुख होय तो ससारतैं मुक्त होने का उपाय काहेको करिए। इस संसारविषै अनेक दुःख हैं, तिसहीतैं संसारतैं मुक्त होनेका उपाय कीजिए है। बहुरि जैसे वैद्य है सो रोग का निदान अर ताकी अवस्थाका वर्णनकरि रोगीको ससार रोगका निश्चय कराय पीछे तिसका इलाज करनेकी रुचि करावै है तसैं यहाँ संसारका निदान वा ताकी अवस्थाका वर्णनकरि संसारीको संसार रोगका निश्चय कराय अब तिनका उपाय करनेकी रुचि कराईए है। जैसे रोगी रोगतैं दुःखी होय रह्या है परन्तु ताका मूल कारण जानैं नाहीं, साँचा उपाय जानै नाहीं अर दुःख भी सह्या जाय नाहीं। तब आपकों भास सो ही उपाय करै तातैं दुःख दूरि होय नाही। तब तड़फि तड़फि परवश हुवा तिन दुःखनिकों सहै है परन्तु ताका मूल कारण जानै नाहीं। याकों वैद्य दुःखका मूलकारण बतावै, दुःखका स्वरूप बतावै, या के किये उपायनिकूं झूठ दिखावै तब साचे उपाय करनेकी रुचि होय। तैसैंही यह संसारी संसारतैं दुःखी होय रह्या है

परन्तु ताका मूल कारण जानै नाही अर साँचा उपाय जानै नाहीं अर दुःख भी सह्या जाय नाहीं। तब आपको भासै सो ही उपाय करै तातैं दुःख दूर होय नाहीं। तब तडफि-तड़फि परवश हुवा तिन दुःखनिको सहै है।

दुःखोंका मूल कारण

याकौं यहाँ दुःखका मूलकारण बताइए है, दुःखका स्वरूप बताइए है अर तिन उपायनिकू झूठे दिखाइए तो सांचे उपाय करनेकी रुचि होय तातैं यह वर्णन इहाँ करिये है। तहाँ सब दुःखनिका मूल-कारन मिथ्यादर्शन, अज्ञान अर असयम है। जो दर्शनमोहके उदयतैं भया अतत्त्वश्रद्धान मिथ्यादर्शन है ताकरि वस्तुस्वरूपकी यथार्थ प्रतीति न होय सकै है, अन्यथा प्रतीति हो है। बहुरि तिस मिथ्या-दर्शनहीके निमित्ततैं क्षयोपशमरूपज्ञान है सो अज्ञान होय रह्या है। ताकरि यथाथ वस्तुस्वरूपका जानना न हो है, अन्यथा जानना हो है। बहुरि चारित्रमोहके उदयतैं भया कषायभाव ताका नाम असयम है ताकरि जैसे वस्तुका स्वरूप है तैसा नाही प्रवर्तै है, अन्यथा प्रवृत्ति हो है। ऐसें ये मिथ्यादर्शनादिक है तेई सब दुःखनिके मूल कारन हैं। कैसै ? सो दिखाइये है:—

मिथ्यात्वका प्रभाव

मिथ्यादर्शनादिककरि जीवकैं स्व पर-विवेक नाही होइ सकै है, एक आप आत्मा अर अनन्त पुद्गलपरमाणुमय शरीर इनका सयोगरूप मनुष्यादिपर्याय निपजै है तिस पर्यायहीको आपो मानै है। बहुरि

आत्माका ज्ञानदर्शनादि स्वभाव है ताकरि किंचित् जानन ादेखना हो है। अर कर्मउपाधितैं भए क्रोधादिकभाव तिनरूप परिणाम पाइए है। बहुरि शरीरका स्पर्श रस गंध वर्ण स्वभाव है सो प्रगटै है अर स्थूल कृषादिक होना वा स्पर्शादिकका पलटना इत्यादि अनेक अवस्था हो है। इन सबनिको अपना स्वरूप जानै है। तहाँ ज्ञानदर्शनकी प्रवृत्ति इन्द्रिय मनके द्वारे हो है तातै यहु मानै है कि ए त्वचा जीभ नासिका नेत्र कान मन ये मेरे अंग है। इनकरि मैं देखूं जानू हूँ, ऐसी मानि तातैं इन्द्रियनिविषैं प्रीति पाइए है।

मोहजनित विषयाभिलाषा

बहुरि मोहके आवेशतै तिन इन्द्रियनिके द्वारा विषय ग्रहण करने का इच्छा हो है। बहुरि तिनविषै इनका ग्रहण भए तिस इच्छा के मिटनेतैं निराकुल हो है तब आनन्द मानै है। जैसे कूकरा हाड चाबै ताकरि अपना लोही निकसै ताका स्वाद लेय ऐसै मानै, यहु हाड़निका स्वाद है। तैसैं यहु जीव विषयनिको जानै ताकरि अपना ज्ञान प्रवर्त्तै, ताका स्वाद लेय ऐसै मानै, यहु विषयका स्वाद है सो विषयमे ता स्वाद है नाहीं। आप ही इच्छा करी थी ताको आप ही जानि आप ही आनन्द मान्या परन्तु मै अनादि अनंतज्ञानस्वरूप आत्मा हूं ऐसा निःकेवलज्ञानका तो अनुभव है नाहीं। बहुरि मै नृत्य देख्या, राग सुन्या, फूल सूंघ्या, पदार्थ स्पर्शा, स्वाद जान्या तथा मोकों यहु जानना, इस प्रकार ज्ञेयमिश्रित ज्ञानका अनुभव है ताकरि विषय-निकरि ही प्रधानता भासै है। ऐसैं इस जीवके मोहके निमित्ततै विषयनिकी इच्छा पाइए है।

सो इच्छा तो त्रिकालवर्त्ती सर्वविषयनिके ग्रहण करनेकी है। मैं सर्वको स्पर्शू, सर्वकूं स्वादूं, सर्व को सूंघूं, सर्वको देखूं, सर्वका सुनू सर्वको जानूं,सो इच्छा तो इतनी है अर शक्ति इतनी ही है जो इन्द्रियनिके सन्मुख भया वर्तमान स्पर्श रस गन्ध वर्ण शब्द तिनविषै काहूको किंचिन्मात्र ग्रहै वा स्मरणादिकतै मनकरि किछू जानै सो भी बाह्य अनेक कारन मिले सिद्धि होय। तातैं इच्छा कबहूँ पूर्ण होय नाही। ऐसी इच्छा तो केवलज्ञान भए सम्पूर्ण होय। क्षयोपशमरूप इन्द्रियकरि तो इच्छा पूर्ण होय नाहीं तातैं मोहके निमित्ततैं इन्द्रियनिकै अपने अपने विषय ग्रहणकी निरन्तर इच्छा रहिबो ही करै ताकरि आकुलित हुवा दुःखी हो रह्या है। ऐसा दुःखी हो रह्या है जो एक कोई विषयका ग्रहणके अर्थि अपना मरनको भी नाही गिनै है। जैसै हाथीकै कपटकी हथनीका शरीर स्पर्शनेकी अर मच्छकै बड़सीकै लाग्या मांस स्वादनेकी अर भ्रमरकै कमलसुगन्ध सूंघनेकी अर पतग कै दीपकका वर्ण देखनेकी अर हिरणकै राग सुननेकी इच्छा ऐसी हो है जो तत्काल मरन भासै तो भी मरनको गिनै नाहीं. विषयनिका ग्रहण करै, जातै मरण होनेतै इन्द्रियनिकरि विषयसेवन की पीड़ा अधिक भासै है। इन इन्द्रियनिकी पीडाकरि सर्व जीव पीडितरूप निर्विचार होय जैसें कोऊ दुःखी पर्वततै गिर पड़ै तैसै विषयनिविषै झपापात लै है। नाना कष्टकरि धनको उपजावै ताको विषयके अर्थि खोवै। बहुरि विषयनिके अर्थि जहां मरन होता जानै तहां भी जाय, नरकादिको कारन जे हिंसादिक कार्य तिनको करै वा क्रोधादि कषायनिकों उपजावै, कहा करै, इन्द्रियनिकी पीड़ा सही न जाय तातै अन्य विचार

किछू भावता नाहीं। इस पीड़ाहीकरि पीड़ित भए इन्द्रादिक हैं ते भी विषयनिविषें अति आसक्त हो रहे हैं। जैसे खाज रोगकरि पीड़ित हुआ पुरुष आसक्त होय खुजावै है, पीडा न होय तो काहेकों खुजावै; तैसें इन्द्रिय रोगकरि पीड़ित भए इन्द्रादिक आसक्त होय विषय सेवन करै हैं, पीड़ा न होय तो काहेकों विषय सेवन करें? ऐसें ज्ञानावरण दर्शनावरणका क्षयोपशमतें भया इन्द्रियादिजनित ज्ञान है सो मिथ्यादर्शनादिके निमित्ततें इच्छासहित होय दुःखका कारण भया है।

दुःख निवृत्तिका उपाय

अब इस दुःख दूर होनेका उपाय यह जीव कहा करै है सो कहिए है—इन्द्रियनिकरि विषयनिका ग्रहण भए मेरी इच्छा पूरन होय ऐसा जानि प्रथम तो नाना प्रकार भोजनादिकनिकरि इन्द्रियनिको प्रबल करै है अर ऐसे ही जानै है जो इन्द्रिय प्रबल रहे मेरे विषय ग्रहणकी शक्ति विशेष हो है। बहुरि तहां अनेक बाह्यकारण चाहिए हैं तिनका निमित्त मिलावै है। बहुरि इन्द्रिय हैं ते विषयको सन्मुख भए ग्रहैं तातै अनेक बाह्य उपाय करि विषयनिका अर इन्द्रियनिका संयोग मिलावै है। नाना प्रकार वस्त्रादिकका वा भोजनादिकका वा पुष्पादिकका वा मन्दिर आभूषणादिकका वा गायक वादित्रादिकका संयोग मिलावनेके अर्थि बहुत खेदखिन्न हो है। बहुरि इन इन्द्रियनिके सन्मुख विषय रहै तावत् तिस विषयका किंचित् स्पष्ट जानपना रहै। पीछे मन द्वारे स्मरणमात्र रह जाय। काल व्यतीत होते स्मरण भी मन्द होता जाय तातें तिन विषयनिकों अपने आधीन राखनेका उपाय करै अर शीघ्र शीघ्र तिनका ग्रहण किया करै। बहुरि इन्द्रियनिके

तो एक कालविषै एक विषयहीका ग्रहण होय अर यह बहुत बहुत ग्रहण किया चाहै तातैं आखता* होय शीघ्र शीघ्र एक विषयको छोड़ि औरको ग्रहै। बहुरि वाको छोडि औरको ग्रहै, ऐसैं हापटा मारै है। बहुरि जो उपाय याको भासै है सो करै है सो यह उपाय झूठा है। जातैं प्रथम तो इन सबनिका ऐसैं ही होना अपने आधीन नाहीं, महाकठिन है। बहुरि कदाचित् उदय अनुसार ऐसैं ही विधि मिलै तौ इन्द्रियनिको प्रबल किए किछू विषय ग्रहणकी शक्ति बधै नाहीं। यह शक्ति तौ ज्ञानदर्शन बधे× बधै+। सो यह कर्मका क्षयोपशमके आधीन है। किसीका शरीर पुष्ट है ताकै ऐसी शक्ति घाटि देखिए है। काहूका शरीर दुर्बल है ताकै अधिक देखिए है। तातैं भोजनादिव करि इन्द्रियपुष्ट किए किछू सिद्धि है नाहीं। कषायादि घटनेतैं कर्मका क्षयोपशम भए ज्ञानदर्श. बधै तब विषय ग्रहणकी शक्ति बधै है। बहुरि विषयनिका सयोग मिलावै सो बहुतकालताई रहता नाहीं अथवा सर्व विषयनिका सयोग मिलता ही नाहीं। तातैं यह आकुलता रहिबो ही करै। बहुरि तिन विषयनिको अपने आधीन राखि शीघ्र शीघ्र ग्रहण करै सो वे आधीन रहते नाहीं। वे तो जुदे द्रव्य अपने आधीन परिणमैं हैं वा कर्मोदयके आधीन है। सो ऐसा कर्मका बन्ध यथायोग्य शुभ भाव भए होय। फिर पीछे उदय आवै सो प्रत्यक्ष देखिए है। अनेक उपाय करते भी कर्मका निमित्त विना सामग्री मिलै नाहीं। बहुरि एक विषय को छोडि अन्यका ग्रहणकों ऐसैं हापटा मारै है सो कहा सिद्धि हो है। जैसैं मणकी भूख वालेको कण मिल्या तो भूख कहा मिटै? तैसैं सर्व

* उतावला, × बढ़ने पर. + बढ़ै।

का ग्रहणकी जाकै इच्छा ताकै एक विषयका ग्रहण भए इच्छा कैसैं मिटै? इच्छा मिटे बिना सुख होता नाहीं। तातैं यह उपाय झूठा है।

कोऊ पूछै कि इस उपायतै केई जीव सुखी होते देखिए है, सर्वथा झूठ कैसै कहो हो?

ताका समाधान - सुखी तो न हो है, भ्रमतै सुख मानै है। जो सुखी भया तो अन्य विषयनिकी इच्छा कैसे रहेगी। जैसे रोग मिटे अन्य औषध काहेका चाहै तैसे दुःख मिटे अन्य विषयको काहेको चाहै। तातैं विषयका ग्रहणकरि इच्छा थभि जाय तो हम सुख मानै। सो तो यावत् जो विषय ग्रहण न होय तावत् काल तो तिसकी इच्छा रहै अर जिस समय ताका ग्रहण भया तिसही समय अन्य विषय ग्रहणकी इच्छा होती देखिए है तो यह सुख मानना कैसे है। जसै कोऊ महा क्षुधावान् रक ताको एक अन्नका कण मिल्या ताका भक्षण करि चैन मानै, तैसे यह महातृष्णावान् याको एक विषयका निमित्त मिल्या ताका ग्रहणकरि सुख मानै है। परमार्थतै सुख है नाहीं।

कोऊ कहै जैसे कण कणकरि अपनी भूख मेटै तैसें एक एक विषयका ग्रहणकरि अपनी इच्छा पूरण करै तो दोष कहा?

ताका समाधान- जो कण भेले होय तो ऐसै ही मानैं। परन्तु जब दूसरा कण मिलै तब तिस कण का निर्गमन हो जाय तो कैसे भूख मिटै? तैसे ही जानने विषै विषयनिका ग्रहण भेले होता जाय तो इच्छा पूरन होय जाय परन्तु जब दूसरा विषय ग्रहण करै तब पूर्व विषय ग्रहण किया था ताका जानना रहै नाहीं तो कैसे इच्छा पूरण होय? इच्छा पूरन भये बिना आकुलता मिटै नाहीं। आकुलता मिटे

बिना सुख कैसे कह्या जाय। बहुरि एक विषयका ग्रहण भी मिथ्या-दर्शनादिकका सद्भावपूर्वक करै है तातै आगामी अनेक दुःखका कारन कर्म बंधे है। जातै यह वर्त्तमानविषै सुख नाहीं,आगामी सुखका कारन नाहीं, तातैं दुःख ही है। सोई प्रवचनसार विषै कह्या है -

"सपरं बाधासहियं विच्छिण्णं बंधकारणं विसमं।
जं इंदिएहिं लद्धं तं सोक्खं दुक्खमेव बद्धाधा* ॥१॥

जो इन्द्रियनिकरि पाया सुख सो पराधीन है, बाधासहित है, विनाशीक है,बधका कारण है,विषम है सो ऐसा सुख तैसा दुःखही है, ऐसें इस संसारीकरि किया उपाय झूठा जानना। तो सांचा उपाय कहा

दुःख निवृत्तिका सांचा उपाय

जब इच्छा तो दूरि होय अर सर्व विषयनिका युगपत् ग्रहण रह्या करै तब यह दुःख मिटै। सो इच्छा तो मोह गए मिटै और सबका युगपत् ग्रहण केवलज्ञान भएहोय। सो इनका उपाय सम्यग्दर्शनादिक है, सोई साँचा उपाय जानना। ऐसै तो मोहके निमित्त तै ज्ञानावरण दर्शनावरणका क्षयोपशम भी दुःखदायक है, ताका वर्णन किया।

इहां कोऊ कहै–ज्ञानावरण दर्शनावरण का उदयतै जानना न भया ताकूं दुःखका कारण कह्यो, क्षयोपशमको काहेको कह्यो ?

ताका समाधान—जो जानना न होना दुःखका कारण होय तो पुद्गलकै भी दुःख ठहरै। तातै दुःखका मूलकारण तो इच्छा है सो इच्छा क्षयोपशमहीतै हो है,तातैं क्षयोपशमको दुःख का कारण कह्या है,परमार्थतै क्षयोपशम भी दुःखका कारण नाहीं। जो मोहतैं विषय-

* प्रवचनसार १-७६ मे 'तहा' पाठ दिया है।

ग्रहणकी इच्छा है सोई दुःखका कारण जानना। बहुरि मोहका उदय है सो दुःखरूप ही है। कैसें सो कहिए है—

दर्शनमोहसे दुःख और उसकी निवृत्ति

प्रथम तो दर्शनमोहके उदयतें मिथ्यादर्शन हो है ताकरि जैसें याक श्रद्धान है तैसें तो पदार्थ है नाहीं, जैसें पदार्थ है तैसें यह मानै नाहीं, तातें याकै आकुलता ही रहै। जैसें बाउलाको काहूने वस्त्र पहराया.वह बाउला तिस वस्त्रकों अपना अंग जानि आपकूं अर शरीरको एक मानै। वह वस्त्र पहरावनेवालेके आधीन है सो वह कबहू फारै, कबहू जोरै, कबहू खोसै, कबहू नवा पहरावै इत्यादि चारित्र करै। वह बाउला तिसको अपने आधीन मान, वाकी पराधीन क्रिया होय तात महाखेदखिन्न होय। तैसें इस जोवको कर्मोदयने शरीर सम्बन्ध कराया, वह जीव तिस शरीरको अपना अंग जानि आपको अर शरीरको एक मानै सो शरीर कर्मके आधोन कबहू कृष होय, कबहू स्थूल होय,कबहू नष्ट होय,कबहू नवीन निपजै इत्यादि चरित्र होय। यह जीव तिसको आपके आधीन जानै, वाकी पराधीन क्रिया होय तातें महाखेदखिन्न हो है। बहुरि जैसें जहां बाउला तिष्ठै था तहाँ मनुष्य घोटक धनादिक कहींतें आन उतरे वह बाउला तिनकों अपने जानै, वे तो उनहीके आधीन, कोऊ आवै, कोऊ जावै,कोऊ अनेक अवस्थारूप परिणमै। यह बाउला तिनको अपने आधीन मानै, उनकी पराधीन क्रिया होइ तब खेदखिन्न होय। तैसें यह जीव जहाँ पर्याय धरै तहाँ स्वयमेव पुत्र घोटक धनादिक कहींतें आन प्राप्त भए, यह जीव तिनकों अपने जानै सो वे तो उनहीके आधीन, कोऊ आवै कोऊ जावै,कोऊ अनेक अवस्थारू

परिणमै । यह जीव तिनको अपने आधीन मानै,उनकी पराधीन क्रिया होइ तब खेदखिन्न होय ।

इहां कोऊ कहै. काहूकाल विषै शरीरकी वा पुत्रादिककी इस जीव के आधीन भी तो क्रिया होती देखिए है तब तो सुखी हो है ।

ताका समाधान – शरीरादिककी,भवितव्यकी अर जीवकी इच्छा की विधि मिले कोई एक प्रकार जैसै वह चाहै तैसै परिणमै तातै काहू कालविषै वाहीका विचार होतें सुखकी सी आभासा होय परन्तु सर्व ही तो सर्व प्रकार यह चाहै तैसै न परिणमै । तातै अभिप्रायविषै तो अनेक आकुलता सदाकाल रहबो ही करै । बहुरि कोई कालविषै कोई प्रकार इच्छा अनुसार परिणमता देखिकरि यह जीव शरीर पुत्रादिक विषै अहंकार ममकार करै है । सो इस बुद्धिकरि तिनके उपजावनेकी वा बधावनेकी वा रक्षा करनेकी चिताकरि निरतर व्याकुल रहै है । नाना प्रकार कष्ट सहकरि भी तिनका भला चाहै है । बहुरि जो विषयनिकी इच्छा हो है, कषाय हो है, बाह्य सामग्रीविषै इष्ट अनिष्टपनों मानै है, उपाय अन्यथा करै है साँचा उपायको न श्रद्धहै है, अन्यथा कल्पना करै है सो इन सबनिका मूलकारण एक मिथ्यादर्शन है । याका नाश भए सबनिका नाश होइ जाय तातै सब दु.खनिका मूल यह मिथ्यादर्शन है । बहुरि इस मिथ्यादर्शनके नाशका उपाय भी नाहीं करै है । अन्यथा श्रद्धानकों सत्य श्रद्धान मानै, उपाय काहेको करै । बहुरि सज्ञी पचेन्द्रिय कदाचित् तत्व निश्चय करनेका उपाय विचारै तहां अभाग्यतै कुदेव कुगुरु कुशास्त्रका निमित्त बनै तो अतत्व श्रद्धान पुष्ट होइ जाय, यह तो जानै कि इनतै मेरा भला होगा,वे ऐसा उपाय

करै जाकरि यह अचेत होय जाय । वस्तु स्वरूपका विचार करनेका उद्यमी भया सो विपरीत विचारविषै दृढ होय जाय । तब विषयकषाय की वासना बधनेतैं अधिक दु:खी होइ । बहुरि कदाचित् सुदेव सुगुरु सुशास्त्रका भी निमित्त बनि जाय तो तहां तिनका निश्चय उपदेशको तो श्रद्धहै नाही, व्यवहार श्रद्धानकरि अतत्वश्रद्धानी ही रहै । तहां मंद कषाय वा विषय इच्छा घटै तो थोरा दु:खी होय, पीछे बहुरि जैसाका तैसा होइ जाय । तातै यह संसारी उपाय करै सो भी झूठा ही होय । बहुरि इस संसारीकै एक यह उपाय है जो आपके जैसा श्रद्धान है तैसै पदार्थनिको परिणमाया चाहै सो वे परिणमैं तो याका सांचा श्रद्धान होय जाय परन्तु अनादि निधन वस्तु जुदी जुदी अपनी मर्यादा लिये परिणमै है. कोऊ कोऊके आधीन नाही । कोऊ किसीका परिणमाया परिणमै नाहीं । तिनको परिणमाया चाहै सो उपाय नाही । यह तो मिथ्यादर्शन ही है । तो सांचा उपाय कहा है ? जैसे पदार्थनिका स्वरूप है तैसे श्रद्धान होइ तो सर्व दु:ख दूरि हो जाय। जैसे कोऊ मोहित होय मुरदाको जीवता मानै वा जिवाया चाहै सो आप ही दु:खी हो है। बहुरि वाकों मुरदा मानना अर यह जिवाया जीवेगा नाही ऐसा मानना सो ही तिस दु:ख दूर होनेका उपाय है । तैसे मिथ्यादृष्टी होइ पदार्थनिको अन्यथा मानै, अन्यथा परिणमाया चाहै तो आप ही दु:खी हो है । बहुरि उनको यथार्थ मानना अर ए परिणमाए अन्यथा परिणमैगे नाही ऐसा मानना सोही तिस दु:खके दूर होनेका उपाय है । भ्रमजनित दु:खका उपाय भ्रम दूर करना ही है । सो भ्रम दूर होनेतैं सम्यक्श्रद्धान होय सो ही सत्य उपाय जानना ।

चारित्रमोहसे दुःख और उसकी निवृत्ति

बहुरि चारित्रमोहके उदयतैं क्रोधादि कषायरूप वा हास्यादि नोकषायरूप जीवके भाव हो हैं। तब यहु जीव क्लेशवान होय दुःखी होता संता विह्वल होय नाना कुकार्यनिविषै प्रवर्ते है। सोई दिखाइए है—जब याकै क्रोध कषाय उपजै तब अन्यका बुरा करने की इच्छा होई। बहुरि ताके अर्थि अनेक उपाय विचारै। मरमच्छेद गालीप्रदानादिरूप वचन बोलै। अपने अंगनि करि वा शस्त्रपाषाणादिकरि घात करै। अनेक कष्ट सहनेकरि वा धनादि खर्चनेकरि वा मरणादिकरि अपना भी बुरा कर अन्यका बुरा करनेका उद्यम करै। अथवा औरनि करि बुरा होता जानै तो औरनिकरि बुरा करावै। वाका स्वयमेव बुरा होय तो अनुमोदना करै। वाका बुरा भए अपना किछू भी प्रयोजन सिद्ध न होय तो भी वाका बुरा करै। बहुरि क्रोध होते कोई पूज्य वा इष्ट भी बीचि आवै तो उनको भी बुरा कहै। मारने लगि जाय, किछू विचार रहता नाहीं। बहुरि अन्यका बुरा न होई तो अपने अंतरंग विषै आप ही बहुत सन्तापवान होइ वा अपने ही अंगनिका घात करै वा विषादकरि मरि जाय। ऐसी अवस्था क्रोध होते होहै। बहुरि जब याकै मानकषाय उपजै तब औरनिको नीचा वा आपको ऊंचा दिखावनेकी इच्छा होइ। बहुरि ताके अर्थि अनेक उपाय विचारै, अन्यकी निंदा करै, आपकी प्रशंसा करै वा अनेक प्रकारकरि औरनिकी महिमा मिटावै, आपकी महिमा करै। महाकष्टकरि धनादिकका संग्रह किया ताको विवाहादि कार्यनिविषै खरचै वा देना करि भी खर्चे। मूए पीछे हमारा जस रहेगा ऐसा विचारि अपना मरन करिकैं भी

अपनी महिमा बधावं। जो अपना सन्मानादि न करै ताकों भय आदिक दिखाय दुःख उपजाय अपना सम्मान करावै। बहुरि मान होतें कोई पूज्य बड़े होंहि तिनका भी सम्मान न करे, किछू विचार रहता नाहीं। बहुरि अन्य नीचा, आप ऊँचा न दीसे तो अपने अंतरंग विषै आप बहुत सन्तापवान् होय वा अपने अंगनिका घात करै वा विषादकरि मरि जाय। ऐसी अवस्था मान होते होय है। बहुरि जब याकै माया-कषाय उपजै तब छलकरि कार्य सिद्ध करनेकी इच्छा होय। बहुरि ताके अर्थि अनेक उपाय विचारै, नाना प्रकार कपटके वचन कहै, कपटरूप शरीर की अवस्था करै,बाह्य वस्तुनिको अन्यथा दिखावै। बहुरि जिन विषै अपना मरन जानै ऐसे भी छल करै, बहुरि कपट प्रगट भए अपना बहुत बुरा होई, मरनादिक होई तिनको भी न गिनै। बहुरि माया होतें कोई पूज्य वा इष्टका भी सम्बन्ध बनै तो उनस्यों भी छल करै, किछू विचार रहता नाहीं। बहुरि छलकरि कार्यसिद्ध न होइ तो आप बहुत संतापवान होय, अपने अंगनिका घात करै वा विषादि-करि मरि जाय। ऐसी अवस्था माया होते हो है। बहुरि जब वाकै लोभ कषाय उपजै तब इष्ट पदार्थका लाभ की इच्छा होय,ताके अर्थि अनेक उपाय विचारै। याके साधनरूप वचन बोलै, शरीरकी अनेक चेष्टा करै, बहुत कष्ट सहै,सेवा करै, विदेशगमन करै, जाकरि मरन होता जान सो भी कार्य करै। घना दुःख जिनविषै उपजै ऐसा कार्य प्रारम्भ करै। बहुरि लोभ होते पूज्य वा इष्टका भी कार्य होय तहां भी अपना प्रयोजन साधै,किछू विचार रहता नाहीं। बहुरि जिस इष्ट वस्तुकी प्राप्ति भई है ताकी अनेक प्रकार रक्षा करैहै;बहुरि इष्टवस्तुकी

प्राप्ति न होय वा इष्टका वियोग होइ तो आप बहुत सन्तापवान होय अपने अंगनिका घात करै वा विषादकरि मरि जाय,ऐसी अवस्था लोभ होते हो है;ऐसैं कषायनिकरि पीड़ित हुवा इन अवस्थानिविषैं प्रवर्तै है।

बहुरि इन कषायनिकी साथ नोकषाय हो है । जहाँ जब हास्य कषाय होइ तब आप विकसित होइ प्रफुल्लित होइ सो यह ऐसा जानना जैसा वायवालेका हसना, नाना रोगकरि आप पीड़ित है, कोई कल्पनाकरि हसने लग जाय है। ऐसे ही यह जीव अनेक पीड़ा-सहित है, कोई झूठी कल्पनाकरि आपका सुहावता कार्य मानि हर्ष मानै है। परमार्थतै दुखी ही है। सुखी तो कषायरोग मिटे होगा। बहुरि जब रति उपजै है, तब इष्ट वस्तुविषै अति आसक्त हो है। जैसे बिल्ली मूसाकों पकरि आसक्त हो है, काऊ मारै तो भी न छोरै। सो इहां इष्टपना है। बहुरि वियोग होनेका अभिप्राय लिये आसक्तता हो है तातै दुखही है। बहुरि जब अरति उपजै तब अनिष्ट वस्तुका संयोग पाय महा व्याकुल हो है । अनिष्टका संयोग भया सो आपकू सुहावना नाहीं। सो यह पीडा सही न जाय तातै ताका वियोग करनेकी तड़फड़ै है सो यह दुख ही है । बहुरि जब शोक उपजै है तब इष्टका वियोग वा अनिष्टका संयोग होते अतिव्याकुल होइ सन्ताप उपजावै, रोवै, पुकारै, असावधान होइ जाय,अपना अंग-घात करि मरि जाय किछू सिद्धि नाहीं तो भी आपही महादुःखी हो है। बहुरि जब भय उपजै है तब काहूको इष्टवियोग, अनिष्टसंयोगका कारण जानि डरै, अति विह्वल होइ, भागै वा छिपै वा शिथिल होइ जाय, कष्ट होनेके ठिकाने प्राप्त होंय वा मरि जाय सो यह दुःख रूपही

है। बहुरि जुगुप्सा उपजै है तब अनिष्ट वस्तुसों घृणा करै। ताका तो संयोग भया, आप घृणाकरि भाग्या चाहै, खेदखिन्न होई कैं वाकूं दूर किया चाहै, महादुःखको पावै है। बहुरि तीनूं वेदनिकरि जब काम उपजै है तब पुरुषवेदकरि स्त्रीसहित रमनेकी अर स्त्रीवेदकरि पुरुष सहित रमनेकी अर नपुंसकवेदकरि दोऊनिस्यों रमनेकी इच्छा हो है। तिसकरि अति व्याकुल हो है, आताप उपजै है, निर्लज्ज हो है, धन खर्चै है। अपजसको न गिनै है। परम्परा दुःख होइ वा दण्डादिक होय ताको न गिनै है। काम पीड़ातै बाउला हो है, मरि जाय है। सो रसग्रथनिविषै कामकी दश दशा कही हैं। तहाँ बाउला होना मरण होना लिख्या है। वैद्यक शास्त्रनिमें ज्वरके भेदनिविषै कामज्वर मरणका कारण लिख्या है। प्रत्यक्ष कामकरि मरणपर्यन्त होते देखिए है। कामान्धकै किछू विचार रहता नाहीं। पिता पुत्री वा मनुष्य निर्यञ्चणी इत्यादितै रमने लगि जाय है। ऐसी कामकी पीड़ा महादुःखरूप है। या प्रकार कषाय वा नोकषायनिकरि अवस्था हो है। इहाँ ऐसा विचार आवै है जो इन अवस्थानिविषै न प्रवर्त्तै तो क्रोधादिक पीडै अर अवस्थानिविषै प्रवर्त्तै तो मरण पर्यन्त कष्ट होइ। तहाँ मरण पर्यन्त कष्ट तो कबूल करिए है अर क्रोधादिककी पीड़ा सहनी कबूल न करिए है। तातैं यह निश्चय भया जो मरणादिकतै भी कषायनिकी पीड़ा अधिक है। बहुरि जब याकै कषायका उदय होइ तब कषाय किए बिना रह्या जाता नाहीं। बाह्य कषायनिके कारण आय मिलै तो उनके आश्रय कषाय करै, न मिलै तो आप कारण बनावै। जैसैं व्यापारादि कषायनिका कारण न होइ तो जूआ खेलना वा अन्य

क्रोधादिकके कारण अनेक ख्याल खेलना वा दुष्ट कथा कहनी सुननी इत्यादिक कारण बनावं है। बहुरि काम क्रोधादि पीड़े शरीरविषैं तिनरूप कार्य करनेकी शक्ति न होइ ता औषधि बनावै, अन्य अनेक उपाय करै। बहुरि कोई कारण बनै नाहीं तो अपने उपयोग विषै कषायनिको कारणभूत पदार्थनिका चिंतवनकरि आप ही कषायरूप परिणमं। ऐसें यह जीव कषायभावनिकरि पीड़ित हुवा महान् दुःखीहो है। बहुरि जिस प्रयोजनको लिए कषायभाव भया है तिस प्रयोजनकी सिद्धि होय तो यह मेरा दुःख दूरि होय अर मोकूं सुख होय, ऐसें विचारि तिस प्रयोजनकी सिद्धि होनेके अर्थि अनेक उपाय करना सो तिस दुःख दूर होनेका उपाय मानै है। सो इहाँ कषायभावनितै जो दुःख हो है सो तो साचा ही है, प्रत्यक्ष आप ही दुःखी हो है। बहुरि यह उपाय करै है सो झूंठा है। काहेतें सो कहिए है—क्रोध विषै तो अन्यका बुरा करना, मानविषै औरनिकूं नीचा करि आप ऊँचा होना, मायाविषै छलकरि कार्य सिद्धि करना, लोभविषै इष्टका पावना, हास्यविषै विकसित होनेका कारण बन्या रहना, रतिविषै इष्टसयोगका बन्या रहना, अरतिविषै अनिष्टका दूर होना, शोकविषै शोकका कारण मिटना, भयविषं भयका मिटना, जुगुप्साविषै जुगुप्साका कारण दूर होना, पुरुषवेदविषै स्त्रीस्यों रमना, स्त्रीवेदविषै पुरुषस्यो रमना, नपुंसकवेदविषै दोऊनिस्यों रमना, ऐसें प्रयोजन पाइए है। सो इनकी सिद्धि होय तो कषाय उपशमनेतै दु.ख दूरि होय जाय, सुखी होय परन्तु इनकी सिद्धि इनके किए उपायनिके आधीन नाही, भवितव्यके आधीन है। जातै अनेक उपाय करते देखिये है अर सिद्धि न

हो है । बहुरि उपाय बनना भी अपने आधीन नाहीं, भवितव्यके आधीन है। जातैं अनेक उपाय करना विचारै और एक भी उपाय न होता देखिए है । बहुरि काकतालीय न्यायकरि भवितव्य ऐसा ही होय, जैसा आपका प्रयोजन होय तैसा ही उपाय होय अर तातैं कार्य की सिद्धि भी होय जाय तो तिस कार्य सम्बन्धी कोई कषायका उपशम होय परन्तु तहाँ थम्भाव होता नाहीं। यावत् कार्य सिद्ध न भया तावत् तो तिस कार्यसम्बन्धी कषाय थी, जिस समय कार्य सिद्ध भया तिस ही समय अन्य कार्यसम्बन्धी कषाय होइ जाय। एक समय मात्रभी निराकुल रहै नाहीं। जैसें कोऊ क्रोधकरि काहूका बुरा विचारै था, वाका बुरा होय चुक्या तब अन्य सों क्रोधकरि वाका बुरा चाहने लाग्या अथवा थोरी शक्ति थी तब छोटेंनिका बुरा चाहै था, घनी शक्ति भई तब बड़ेनिका बुरा चाहने लाग्या। ऐसे ही मानमाया लोभादिक करि जो कार्य विचारै था सो सिद्ध होय चुक्या तब अन्य विषैं मानादिक उपजाय तिस की सिद्धि किया चाहै। थोरी शक्ति थी तब छोटे कार्यकी सिद्धि किया चाहै था, घनी शक्ति भई तब बड़े कार्य की सिद्धि करनेका अभिलाषी भया। कषायनिविषैं कार्यका प्रमाण होइ तो तिस कार्यकी सिद्धि भए सुखी होइ जाय सो प्रमाण है नाहीं, इच्छा बधती ही जाय। सोई आत्मानुशासनविषैं कह्या है—

"आशागर्तःप्रतिप्राणी यस्मिन्विश्वमणूपमम् ।
कस्य किं कियदायाति वृथा वो विषयैषिता ॥३६॥"

याका अर्थ—आशारूपी खाडा प्राणी प्राणी प्रति पाइए है। अनंता-

नंत जीव हैं तिन सबनिके ही आशा पाइए है । बहुरि वह आशा-रूपी खाड़ा कैसा है, जिस एक ही खाड़े विषै समस्त लोक अणुसमान है । अर लोक एक ही सो अब इहाँ कौन कौनके कितना कितना बट-वारे*आवै । तुम्हारे यह विषयनिकी इच्छा है सो वृथा ही है । इच्छा पूर्ण तो होती ही नाही । तातै कोई कार्य सिद्ध भए भी दुःख दूर न होय अथवा कोई कषाय मिटै तिस ही समय अन्य कषाय होइ जाय । जैसें काहूको मारनेवाले बहुत होंय, जब कोई वाकूं न मारै तब अन्य मारने लगि जांय । तैसे जीवकों दुःख द्याकनेवाले अनेक कषाय हैं, जब क्रोध न होय तब मानादिक होइ जाय, जब मान न होइ तब क्रोधादिक होइ जाँय । ऐसे कषायका सद्भाव रह्या ही करै । कोईएक समय भी कषाय रहित होय नाही । तातै कोई कषायका कोई कार्य सिद्ध भए भी दुःख दूर कैसे होइ ? बहुरि याकै अभिप्राय तो सर्व-कषायनिका सर्वप्रयोजन सिद्ध करनेका है सो होइ तो सुखी होइ । सो तो कदाचित् होइ सकै नाही । तातै अभिप्राय विषै शाश्वत दुःखी ही रहै है । तातै कषायनिका प्रयोजनकों साधि दुःख दूरिकरि सुखी भया चाहै है,सो यह उपाय झूठा ही है तो सांचा उपाय कहा है? सम्यग्-दर्शनज्ञानतै यथावत् श्रद्धान वा जानना होइ तब इष्ट अनिष्ट बुद्धि मिटै । बहुरि तिनहीके बलकरि चारित्रमोहका अनुभाग हीन होय । ऐसें होते कषायनिका अभाव होइ तब तिनकी पीड़ा दूर होय । तब प्रयोजन भी किछू रहै नाही, निराकुल होनेतें महासुखी होइ । तातें सम्यग्दर्शनादिक ही इस दुःख मेटनेका सांचा उपाय है । बहुरि अन्त-

* बांटमें — हिस्सेमे ।

रायका उदयतै जीवके मोहकरि दान लाभ भोग उपभोग वीर्य शक्ति का उत्साह उपजै परन्तु होइ सकै नाही। तब परम आकुलता होइ सो यह दुःखरूप है हो,याका उपाय यह करैहै कि जो विघ्नके बाह्य कारण सूझै तिनके दूर करनेका उद्यम कर सो यह झूठा उपाय है । उपाय किये भी अन्तरायका उदय होते विघ्न होता देखिए है। अन्तरायका क्षयोपशम भए उपाय बिना भी कार्य विषै विघ्न न हो है। तातै विघ्न का मूलकारण अंतराय है। बहुरि जैसे कूकराकै पुरुषकरि वाही हुई लाठी लागी, वह कूकरा लाठीस्यो वृथा ही द्वष करै है । तैसे जीवके अन्तरायकरि निमित्तभूत किया बाह्य चेतन अचेतन द्रव्यकरि विघ्न भया,'यह जीव तिन बाह्य द्रव्यनिसों वृथा खेदकरै है। अन्यद्रव्य याकै विघ्न किया चाहै अर याकै न होइ। बहुरि अन्य द्रव्य विघ्न किया न चाहै अर याकै होइ। तातै जानिए है, अन्य द्रव्यका किछु वश नाहीं, जिनका वश नाही तिनिसों काहेको लरिये। तातै यह उपाय झूठा है। सो सांचा उपाय कहा है ? मिथ्यादर्शनादिकतैं इच्छाकरि उत्साह उपजै था सो सम्यग्दर्शनादिककरि दूर होय अर सम्यग्दर्शनादिक ही करि अंतरायका अनुभाग घटै तब इच्छा तो मिट जाय, शक्ति बधि जाय तब वह दुःख दूर होइ।निराकुल सुख उपजै। तातै सम्यग्दर्शनादिकही साचा उपाय है। बहुरि वेदनीयके उदयतैं दुःख सुखके कारण का सयोग हो है। तहाँ केइ तो शरीर विषै ही अवस्था हो है। केई शरीरकी अवस्थाको निमित्तभूत बाह्य संयोग हो हैं। केइ बाह्य ही वस्तुनिका संयोग हो है। तहाँ असाताके उदयकरि शरीर विषै तो क्षुधा,तृषा,उल्लास,पीड़ा,रोग इत्यादि हो है। बहुरि शरीरकी अनिष्ट

अवस्थाको निमित्तभूत बाह्य अति शीत उष्ण पवन बंधनादिकका संयोग हो है । बहुरि बाह्य शत्रु कुपुत्रादिक वा कुवर्णादिक सहित स्कंधनिका सयोग हो है। सो मोहकरि इन विषै अनिष्ट बुद्धि हो है। जब इनका उदय होय तब मोहका उदय ऐसा ही आवं जाकरि परिणामनिमें महाव्याकुल होइ इनका दूर किया चाहै । यावत् ए दूर न होंय तावत् दुःखी हो है सो इनको होते तो सर्व ही दुःख मानै हैं;बहुरि साताके उदयकरि शरीरविषे आरोग्यवानपनो बलवानपनो इत्यादि हो हैं। बहुरि शरीरकी इष्ट अवस्थाको निमित्तभूत बाह्य खानपानादिक वा सुहावना पवनादिकका सयोग हो है। बहुरि बाह्य मित्र सुपुत्र स्त्री किंकर हस्ती घोटक धन धान्य मन्दिर वस्त्रादिकका सयोग हो है सो मोहकरि इनवषै इष्टबुद्धि हो है । जब इनका उदय होय तब मोहका उदय ऐसा ही आवं जाकरि परिणामनिमें चैन मानै । इनकी रक्षा चाहै, यावत् रहै तावत सुख मानै। सो यह सुख मानना ऐसा है जैसें कोऊ घने रोगनिकरि बहुत पीड़ित होय रह्या था ताके कोई उपचारकरि कोई एक रोगकी कितेक काल किछू उपशाँतता भई तब वह पूर्व अवस्थाको अपेक्षा आपको सुखी कहै, परमार्थतै सुख है नाहीं । तसं यहु जीव घने दुःखनिकरि बहुत पीड़ित होइ रह्या था ताके कोई प्रकार करि कोऊ एक दुःखकी कितेक काल किछु उपशातता भई। तब यहु पूर्व अवस्थाकी अपेक्षा आपको सुखी कहै है,परमार्थतै सुखहै नाही। बहुरि याकों असाताका उदय होते जो होय ताकरि तो दुःख भासै है तातैं ताके दूर करनेका उपाय करै है अर साताका उदय होतें जो होय ताकरि सुख भासै है तातैं ताको होनेका उपाय करै है।

सो यहु उपाय झूठा है। प्रथम तो याका उपाय याके आधीन नाहीं, वेदनीयकर्मका उदयके आधीन है। असाताके मेटनेके अर्थि साताकी प्राप्तिके अर्थितो सर्वहीकै यत्न रहैहै परन्तु काहूकै थोरा यत्न किए भी वा न किए भी सिद्धि होइ जाय, काहूके बहुत यत्न किए भी सिद्धि न होय, तातैं जानिए है याका उपाय याके आधीन नाही;बहुरि कदाचित् उपाय भी करै अर तैसा ही उदय आवै तो थोरे काल किंचित् काहू प्रकारकी असाताका कारण मिटै अर साताका कारण होय, तहाँ भी मोहके सद्भावतैं तिनको भोगनेकी इच्छाकरि आकुलित होय। एक भोग्यवस्तुकी भोगनेकी इच्छा होय,वह यावत् न मिलै तावत् तो वाकी इच्छाकरि आकुलित होय अर वह मिल्या अर उसही समय अन्यको भोगनेकी इच्छा होइ जाय, तब ताकरि आकुलित होइ। जैसे काहूको स्वाद लेनेकी इच्छा भई थी, वाका आस्वाद जिस समय भया तिसही समय अन्य वस्तुका स्वाद लेनेकी वा स्पर्शनादि करनेकी इच्छा उपजै है। अथवा एक ही वस्तुको पहिले अन्य प्रकार भोगनेकी इच्छा होइ, वह यावत् न मिलै तावत् वाकी आकुलता रहै अर वह भोग भया अर उसही समय अन्य प्रकार भोगनेकी इच्छा होय। जैसै स्त्रीको देख्या चाहै था, जिस समय अवलोकन भया उस ही समय रमनेकी इच्छा हो है। बहुरि ऐसै भोग भोगते भी तिनके अन्य उपाय करनेकी आकुलता हो है सो तिनको छोरि अन्य उपाय करनेको लागै है। तहाँ अनेक प्रकार आकुलता हो है। देखो एक धनका उपाय करनेमें व्यापारादिक करते बहुरि वाकी रक्षा करनेमें सावधानी करते केती आकुलता हो है। बहुरि क्षुधा तृषा शीत उष्ण मल श्लेष्मादि असाताका

उदय आया ही करै, ताका निराकरणकरि सुख मानै सो काहेका सुख है, यह तो रोगका प्रतिकार है। यावत् क्षुधादिक रहैं तावत् तिनकों मिटावनेकी इच्छाकरि आकुलता होय, वह मिटै तब कोई अन्य इच्छा उपजै ताकी अकुलता होय,बहुरि क्षुधादिक होय तब उनकी आकुलता होइ आवै। ऐसें याके उपाय करते कदाचित् असाता मिटि साता होइ तहाँ भी आकुलता रह्या ही करै,तातैं दुःख ही रहै है। बहुरि ऐसें भी रहना तो होना नाही, आपको उपाय करते करते ही कोई असाताका उदय ऐसा आवै ताका किछु उपाय बनि सकै नाही अर ताकी पीडा बहुत होय,सही जाय नाही,तब ताकी आकुलताकरि विह्वल होइ जाय तहाँ महादुःखी होय। सो इस संसारमें साताका उदय तो कोई पुण्यका उदयकरि काहूकै कदाचित् ही पाईए है, घने जीवनिकैं बहुत काल असाताहीका उदय रहै है। तातै उपाय करै सो झूठा है। अथवा बाह्य सामग्रीतै सुख दुःख मानिए है सो ही भ्रम है। सुख दुःख तो साता असाताका उदय होते मोहका निमित्ततै हो है सो प्रत्यक्ष देखिये है। लक्ष धनका धनीकै सहस्र धनका व्यय भया तब वह दुःखी हो है अर शत धनका धनीकै सहस्रधन भया तब वह सुख मानै है;बाह्यसामग्री तो वाकै यातै निन्याणवै गुणी है। अथवा लक्ष धनका धनीकै अधिक धनकी इच्छा है तो वह दुःखी है अर शत धनका धनीकै सन्तोष है तो यहु सुखी है। बहुरि समान वस्तु मिले कोऊ सुख मानै है, कोऊ दुःख मानै है। जैसे काहूको मोटा वस्त्रका मिलना दुःखकारी होइ, काहूको सुखकारी होइ, बहुरि शरीर विषै क्षुधा आदि पीडा वा बाह्य इष्टका वियोग अनिष्टका सयोग भए काहूकै बहुत दुःख होइ,काहूकै थोरा होइ

काहूकै न होइ। तातें सामग्रीके आधीन सुख दुःख नाहीं। सातामसाता का उदय होतें मोहपरिणामनिके निमित्ततें ही, सुख दुःख मानिए है।

इहां प्रश्न—जो बाह्य सामग्रीकी,तो तुम कहो हो तैसें ही है परन्तु शरीरविषें तो पीड़ा भए दुःखी होय ही होय अर पीड़ा न भए सुखी होय सो यह तो शरीरअवस्था होके आधीन सुख दुःख भासै है।

ताका समाधान—आत्माका तो ज्ञान इन्द्रियाधीन है अर इन्द्रिय शरीरका अंग है। सो यामें जो अवस्था बीतै ताका जाननेरूप ज्ञान परिणमै ताकी साथ ही मोहभाव होइ ताकरि शरीर अवस्थाकरि सुख दुःख विशेष जानिए है। बहुरि पुत्र धनादिकस्यों अधिक मोह होय तो अपना शरीरका कष्ट सहै ताका थोरा दुःख मानै,उनकों दुःख भए वा सयोग मिटे बहुत दुःख मानै। अर मुनि है सो शरीरको पीड़ा होतेभी किछु दुःख मानते नाही। तातै सख दुःख मानना तो मोहहीके आधीन है। मोहके अर वेदनीयके निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है, तातें साता असाताका उदयतें सुख दुःखका होना भासै है। बहुरि मुख्यपनै केतीक सामग्री साताके उदयतें हो है, केतीक असाताके उदयतें हो है तातें सामग्रीनिकरि सुख दुःख भासै है। परन्तु निर्द्धार किए मोहहीतें सुख दुःख का मानना हो है, औरनिकरि सुख दुःख होने का नियम नाही। केवलीकै साता असाताका उदयभी है अर सुखदुःखको कारण सामग्रीका संयोग भी;है परन्तु मोहका अभावतें किंचिन्मात्र भी सुख दुःख होता नाहीं, तातें सुख दुःख मोहजनित ही मानना। तातें तू सामग्रीके दूरकरनेका वा होनेका उपायकरि दुःखमेट्या चाहै, सखी भया चाहै सो यहु उपाय झूठा है, तो साँचा उपाय कहा है?

सम्यग्दर्शनादिकतें भ्रम दूर होई तब सामग्रीतें सुख दुःख भासै नाहीं, अपने परिणामहीतें भासै; बहुरि यथार्थ विचारका अभ्यासकरि अपने परिणाम जैसें सामग्रीके निमित्ततें सुखी दुःखी न होय तैसें साधन करै । सम्यग्दर्शनादि भावनाहीतें मोह मंद होइ जाय तब ऐसी दशा होइ जाय जो अनेक कारण मिले आपकों सुख दुःख होइ नाहीं । जबएक शांतदशारूप निराकुल होइ सांचासुखको अनुभवै तब सर्वदुःख मिटे सुखी होय, यहु सांचा उपाय है । बहुरि आयुकर्मके निमित्ततें पर्याय का धारना सो जीवितव्य है, पर्याय छूटना सो मरन है । बहुरि यह जीव मिथ्यादर्शनादिकतै पर्यायहीको आपो अनुभवै है, तातैं जीवितव्य रहे अपना अस्तित्व मानै है, मरन भए अपना अभाव होना मानै है । इसही कारणतै सदा काल याके मरनका भय रहै है, तिस भयकरि सदा आकुलता रहै है । जिनको मरनका कारण जानै तिनसों बहुत डरै । कदाचित् उनका संयोग बनै तो महाविह्वल होइ जाय । ऐसें महा दुःखी रहै है । ताका उपाय यहु करै है जो मरनेके कारणनिकों दूर राखै है वा उनसों आप भागै है । बहुरि औषधादिकका साधन करै है, गढ़ कोट आदिक बनावै है इत्यादि उपाय करै है । सो यहु उपाय झूठा है, जातै आयु पूर्ण भए तो अनेक उपाय करै है, अनेक सहाई होइ तो भी मरन होइ ही होइ, एक समय मात्र भी न जीवै । अर यावत् आयु पूरी न होइ तावत् अनेक कारण मिलो, सर्वथा मरन न होइ । तातै उपाय किए मरन मिटता नाहीं । बहुरि आयुकी स्थिति पूर्ण होइ ही होइ तातै मरन भी होइ ही होइ, याका उपाय करना झूठा ही है तो सांचा उपाय कहा है ?

सम्यग्दर्शनादिकतैं पर्यायविषै अहंबुद्धि छूटे, अनादिनिधन आप चैतन्यद्रव्य है तिसविषै अहंबुद्धि आवै। पर्यायको स्वांग समान जानै तब मरणका भय रहै नाहीं। बहुरि सम्यग्दर्शनादिकहीतैं सिद्धपद पावै तब मरणका अभाव ही होय। तातैं सम्यग्दर्शनादिकही सांचा उपाय है।

बहुरि नामकर्मके उदयतैं गति जाति शरीरादिक निपजै हैं तिनविषै पुण्यके उदयतैं जे हो हैं ते तो सुखके कारण हो हैं। पापके उदयतैं हो हैं ते दुःखके कारण हो हैं। सो इहां सुख मानना भ्रम है;बहुरि यहु दुःखके कारण मिटावनेका, सुखके कारण होनेका उपाय करै सो झूठा है। सांचा उपाय सम्यग्दर्शनादिक है। सो जैसें वेदनीयका कथन करते निरूपण किया तैसैं इहाँ भी जानना। वेदनीय अर नामके सुख दुःखका कारणपनाकी समानतातैं निरूपणकी समानता जाननी। बहुरि गोत्र कर्मके उदयतै नीच ऊँच कुलविषै उपजै है। तहां ऊँचा कुलविषै उपजे आपको ऊँचा मानै है अर नीचा कुलविषै उपजे आपको नीचा मानै है; सो कुल पलटनेका उपाय तो याको भासै नाही तातैं जैसा कुल पाया तिसही कुल विषै आपो मानै है। सो कुल अपेक्षा आपको ऊँचा नीचा मानना भ्रम है। ऊँचा कुलका कोई निंद्य कार्य करै तो वह नीचा होइ जाय अर नीचा कुलविषै कोई श्लाघ्य कार्य करै तो वह ऊँचा होइ जाय। लोभादिकतैं नीच कुलवालेकी उच्चकुलवाला सेवा करने लगि जाय। बहुरि कुल कितेक काल रहै ? पर्याय छूटे कुलको पलटन होइ जाय। तातै ऊँचा नीचा कुलकरि आपकूं ऊँचा नीचा मानै। ऊँचाकुल वालेको नीचा होनेके भयका अर नीचाकुलवालेको पाए हुए नीचापने का दुःख ही है तो याका साँचा उपाय कहाहै? सो कहिए है। सम्यग्द-

र्शनादिकतै ऊँचा नीचा कुलविषै हर्षविषाद न मानै। बहुरि तिनहीतैं जाकी बहुरि पलटन न होइ ऐसा सर्वतैं ऊंचा सिद्धपद पावै, तब सब दुःखमिटै, सुखी होय (तातै सम्यग्दर्शनादिक दुःख मेटने अरु सुख करने का सांचा उपाय है ❀)। या प्रकार कर्मका उदयकी अपेक्षा मिथ्या-दर्शनादिजके निमित्ततै संसारविषै दुःख ही दुःख पाइए है ताका वर्णन किया। अब इसही दुःखकों पर्याय अपेक्षाकरि वर्णन करिए है।

एकेन्द्रिय जीवोंके दुःख

इस ससारविषै बहुत काल तो एकेन्द्रिय पर्यायही विषै बीत है। तातै अनादिहीतै तो नित्यनिगोद विषै रहना, बहुरि तहांतै निकसना ऐसैं जैसे भारभूनतैं चणाका उछटि जानासो तहांतें निकसि अन्य पर्याय धरै तो त्रसविषै तो बहुत थोरेही काल रहै, एकेंद्रीही विषैं बहुत काल व्यतीत करै है। तहाँ इतरनिगोदविषै बहुत रहना होइ। अर कितेक काल पृथिवी अप तेज वायु प्रत्येक वनस्पतीविषै रहना होइ। नित्य निगोदतै निकसे पीछै त्रसविषै तो रहनेका उत्कृष्ट काल साधिक दो हजार सागर ही है अर एकेन्द्रियविषै उत्कृष्ट रहनेका काल असख्यात पुद्गल परावर्तन मात्र है अरु पुद्गल परावर्तनका काल ऐसा है जाका अनतवाँ भागविषैभी अनते सागर हो है। तातैं इस ससारीके मुख्यपने एकेन्द्रिय पर्यायविषैही काल व्यतीत हा है। तहां एकेन्द्रियकै ज्ञानदर्शन की शक्ति तो किंचिन्मात्र ही रहै है। एक स्पर्शन इन्द्रियके निमित्ततैं भया मतिज्ञान अर ताके निमित्ततै भया श्रुतज्ञान अर स्पर्शनइन्द्रिय-जनित अचक्षुदर्शन जिनकर शीत उष्णादिकको किंचित् जानै देखै है,

❀ यह पंक्ति खरडा प्रति मे नही है।

ज्ञानावरण दर्शनावरणके तीव्र उदयकरि यातैं अधिक ज्ञानदर्शन न पाइए है अर विषयनिकी इच्छा पाइए है तातै महादुःखी है। बहुरि दर्शनमोहके उदयतैं मिथ्यादर्शन हो है ताकरि पर्यायहीको आपो श्रद्धै है, अन्यविचार करनेकी शक्ति ही नाहीं। बहुरि चारित्रमोहके उदयतैं तीव्र क्रोधादि कषायरूप परिणमैं है जातै उनके केवली भगवानने कृष्ण नील कापोत ए तीन अशुभ लेश्याही कही हैं। सो ए तीव्र कषाय होते ही हो हैं सो कषाय तो बहुत अर शक्ति सर्व प्रकारकरि महाहीन तातैं बहुत दुःखी होय रहे हैं, किछू उपाय कर सकते नाही।

इहाँ कोऊ कहै—ज्ञान तो किंचिन्मात्रही रह्या है,वे कहा कषाय करें?

ताका समाधान--जो ऐसा तो नियम है नाहीं जेता ज्ञान होय तेता ही कषाय होय। ज्ञान तो क्षयोपशम जेता होय तेता हो है। सो जैसें कोऊ आंधा बहरा पुरुषकैं ज्ञान थोरा होते भी बहुत कषाय होते देखिए है तैसे एकेन्द्रियके ज्ञान थोरा होते भी बहुत कषायका होना मानना है। बहुरि बाह्य कषाय प्रगट तब हो है जब कषायके अनुसार किछु उपाय करै। सो वे शक्तिहीन हैं तातै उपाय करि सकते नाही। तातै उनकी कषाया प्रगट नाही हो है। जैसें कोऊ पुरुष शक्तिहीन है ताके कोई कारणतें तीव्र कषाय होय परन्तु किछु करि सकते नाही। तातै वाका कषाय बाह्य प्रगट नाही हो है,यूं ही अति दुःखो हो है। तैसें एकेन्द्रिय जीव शक्तिहीन हैं, तिनकै कोई कारणतें कषाय हो है परन्तु किछु कर सकै नाहीं, तातै उनकी कषाय बाह्य प्रगट नाही हो है; वे आप ही दुःखी हो हैं। बहुरि ऐसा जानना, जहाँ कषाय बहुत होय अर शक्तिहीन होय तहाँ घना दुःखी हो है। बहुरि जैसें कषायघटती जाय,शक्ति बधती

जाय तैसें दुःख घटता हो है। सो एकेन्द्रियनिके कषाय बहुत अर शक्ति-हीन तातें एकेन्द्रिय जीव महादुःखी हैं। उनके दुःख वे ही भोगवें हैं अर केवली जानै हैं। जैसे सन्निपातीका ज्ञान घट जाय अर बाह्य शक्तिके हीनपनेतें अपनादुःख प्रगट भी न करि सकै परन्तु वह महादुःखी है,तैसे एकेन्द्रियका ज्ञान थोरा है अर बाह्य शक्तिहीनपनातें अपना दुःखकों प्रगट भी न करि सकै है परन्तु महादुःखी है। बहुरि अन्तरायके तीव्र उदयकरि चाह्या होता नाही तातें भी दुःखी ही हो है। बहुरि अघातिकर्मनिविषै विशेषपने पापप्रकृतिका उदय है तहाँ असातावेदनीयका उदय होतें तिसके निमित्ततें महादुःखी हो है। बहुरि वनस्पती है सो पवनते टूटै है,शीत उष्णकरि सूकि जाय है,जल न मिलै सूकि जाय है,अगनिकरि बलै है,ताको कोऊ छेदै है, भेदै है,मसलै है, खाय है,तोरै हैं इत्यादि अवस्था हो है। ऐसे ही यथासम्भव पृथ्वी आदिविषै अवस्था हो है। तिन अवस्थाको होतें वे महादुःखी हो हैं। जैसे मनुष्यके शरार विषै ऐसी अवस्था भए दुःख हो है तैसे ही उनके हो है। जातें इनका जानपना स्पर्शन इन्द्रियतें हो है सो वाकै स्पर्शनइन्द्रिय है ही, ताकरि उनको जानि मोहके वशतें महाव्याकुल हो हैं परन्तु भागनेकी वा लरनेकी वा पुकारनेकी शक्ति नाही तातें अज्ञानी लोक उनके दुःखको जानते नाही। बहुरि कदाचित् किंचित् साताका उदय होय सो वह बलवान् होता नाही। बहुरि आयुकर्मतें इन एकेंद्रिय जीवनिविषै जे अपर्याप्त हैं तिनके तो पर्यायकी स्थिति उश्वासके अठारहवें भाग मात्र ही है अर पर्याप्तनिकी अन्तर्मुहूर्त्त आदि कितेकवर्ष पर्यंत है। सो आयुकर्म थोरा तातें जन्ममरण हुवाही करै,ताकरि दुःखी हैं; बहुरि नामकर्मविषै तिर्यंच

गति आदि पापप्रकृतिनिकाही उदय विशेषपने पाइएहै। कोईहीनपुण्य प्रकृतिका उदय होइ ताका बलवानपना नाहीं तातै तिनकरिभी मोहके बशतैं दु:खी हो है। बहुरि गोत्रकर्मविषैं नीचगोत्रही का उदय है नातैं महंतता होय नाहीं तातें भी दु:खी ही हैं। ऐसें एकेन्द्रिय जीव महा-दु:खी हैं अर इस संसारविषै जैसे पाषाण आधारविषै तो बहुत काल रहै है, निराधार आकाशविषै तो कदाचित् किंचिन्मात्रकाल रहै, तैसें जीव एकेन्द्रिय पर्यायविषै बहुतकाल रहैहै.अन्य पर्यायविषै तो कदाचित् किंचिन्मात्र काल रहै है। तातै यहु जीव ससारविषै महादु:खी है।

दो इन्द्रियादिक जीवों के दु:ख

बहुरि द्वीन्द्रिय तेन्द्रिय चतुरेन्द्रिय असञ्ज्ञीपंचेन्द्रिय पर्यायनिकों जीव धरै तहाँ भी एकेन्द्रियवत् दु:ख जानना। विशेष इतना—इहाँ क्रमतें एक एक इन्द्रियजनित ज्ञानदर्शनकी वा किछु शक्तिकी अधिकता भई है बहुरि बोलने चालनेकी शक्ति भई है। तहाँ भी जे अपर्याप्त हैं वा पर्याप्त भी हीन शक्ति के धारक छोटे जीव हैं. तिनकी शक्ति प्रगट होती नाही। बहुरि केई पर्याप्त बहुत शक्तिके धारक बडे जीव हैं, तिनकी शक्ति प्रगट हो है। तातैं ते जीव विषयनिका उपाय करै हैं, दु:ख दूर होनेका उपाय करै हैं। क्रोधादिककरि काटना,मारना,लरना छलकरना, अन्नादिका संग्रह करना, भागना इत्यादि कार्य करै हैं। दु:खकरि तड़भड़ाट करना, पुकारना इत्यादि क्रिया करै हैं। तातें तिनका दु:ख किछु प्रगट भी हो है। सो लट कीड़ी आदि जीवन के शीत उष्ण छेदन भेदनादिकतै वा भूख तृषा आदितैं परम दु:ख देखिए है। जो प्रत्यक्ष दीसै ताका विचार करि लेना। इहाँ विशेष

कहा लिखे। ऐसे द्वीन्द्रियादिक जीव भी महादुःखी हो जानने।

नरकगति के दुःख

बहुरि सज्ञोपचेन्द्रियनिविषे नारकी जीव हैं ते तो सर्व प्रकार घने दुःखी हैं। ज्ञानादिकी शक्ति किछु है परन्तु विषयनिकी इच्छा बहुत अर इष्टविषयनिकी सामग्री किंचित् भी न मिलै ताते तिस शक्तिके होने करि भी घने दुःखी है, बहुरि क्रोधादि कषायका अति तीव्रपना पाइए है, जाते उनके कृष्णादि अशुभलेश्या ही है। तहा क्रोध मानकरि परस्पर दुःख देनेका निरन्तर कार्य पाइए है। जो परस्पर मित्रता करै तो यह दुःख मिट जाय। अर अन्यको दुःख दिए किछु उनका कार्य भी होता नाही परन्तु क्रोध मानका अति तीव्रपना पाईए है ताकरि परस्पर दुःखदेनेहीकी बुद्धि रहै। विक्रियाकरि अन्यको दुःखदायक शरीर के अंग बनावै वा शस्त्रादि बनावै, तिनकरि अन्यको आप पीडे अर आपको कोई और पीडे, कदाचित् कषाय उपशांत होय नाही। बहुरि माया लोभ की भी अति तीव्रता है परन्तु कोई इष्ट सामग्री तहाँ दीखै नाही। ताते तिन कषायनिका कार्य प्रगट करि सकते नाहीं तिनकरि अंतरंगविषै महादुःखी हैं। बहुरि कदाचित् किंचित् कोई प्रयोजन पाय तिनका भी कार्य हो है। बहुरि हास्य रति कषाय है परन्तु बाह्य निमित्त नाही ताते प्रगट होते नाही, कदाचित् किंचित् किसी कारणते हो हैं। बहुरि अरति शोक भय जुगुप्सानिके बाह्य कारण बनि रहे है, ताते ए कषाय तीव्र प्रगट होय हैं। बहुरि वेदनिविषे नपुंसक वेद है सो इच्छा तो बहुत और स्त्री पुरुषसो रमनेका निमित्त नाहीं, ताते महापीड़ित हैं। ऐसे कषायनिकरि अति दुःखी हैं। बहुरि वेदनीय विषै

असाताहीका उदय है ताकरि तहां अनेक वेदनाका निमित्त है। शरीर विषै कोढ़ कास श्वासादि अनेकरोग युगपत् पाइएहैं अर क्षुधातृषा ऐसी है, सर्वका भक्षण पान किया चाहै है अर तहांकी माटीहोका भोजन मिलै है सो माटीभी ऐसी है जो इहा आवै तो ताका दुर्गंधतै केई कोसनिके मनुष्य मरि जांय। अर शीत उष्ण तहां ऐसी है जो लक्ष योजन का लोहाका गोला होइ तो भी तिनकरि भस्म होय जाय। कही शीत है, कहीं उष्ण है। बहुरि तहां पृथ्वी शस्त्रनितै भी महातीक्ष्ण कंटकनि कर सहित है। बहुरि तिस पृथ्वीविषै वन हैं सो शस्त्रकी धारा समान पत्रादि सहित है। नदी है सो ताका स्पर्श भए शरीर खड खड होइ जाय ऐसे जल सहितहै। पवन ऐसा प्रचड है जाकरि शरीर दग्ध हुवा जाय है। बहुरि नारकी नारकीको अनेक प्रकार पीड़ै,घाणीमे पेलै,खड खंड करें, हाडोमें राधै, कोरडा मारैं, तप्त लोहादिकका स्पर्श करावै इत्यादि वेदना उपजावै। तीसरी पृथिवी पर्यंत असुरकुमारदेव जाय ते आप पीड़ा दे वा परस्पर लडावै। ऐसी वेदना होते भी शरीर छूटै नाहीं, परावत् खड खंड होई जाय तो भी मिल जाय,ऐसी महा पीड़ा है। बहुरि साताका निमित्त तो किछु है नाहीं। कोई अंश कदाचित् कोईकै अपनी मानतै कोई कारण अपेक्षा साताका उदय हो है सो बलवान् नाही। बहुरि आयु तहां बहुत,जघन्य दशहजार वर्ष, उत्कृष्ट तेतीस सागर। इतने काल ऐसे दुःख तहाँ सहने होंय। बहुरि नामकर्मको सर्वपापप्रकृतिनिहीका उदय है, एक भी पुण्यप्रकृतिका उदय नाहीं,तिन करि महादुःखी है। बहुरि गोत्रविषै नीचगोत्रहीका उदय है ताकारि महंतता न होइ तातै दुःखी ही है;ऐसे नरकगतिविषै महादुःख जानने।

तिर्यंच गतिके दुःख

बहुरि तिर्यंचगतिविषै बहुत लब्धि अपर्याप्त जीव हैं तिनका तो उश्वासके अठारवें भाग मात्र आयु है । बहुरि केई पर्याप्त भी छोटे जीव हैं सो इनकी शक्ति प्रगट भासै नाही । तिनके दुःख एकेन्द्रियवत् जानना । ज्ञानादिकका विशेष है सो विशेष जानना । बहुरि बड़े पर्याप्त जीव केई सम्मूर्छन हैं, केई गर्भज है। तिनविषै ज्ञानादिक प्रगट हो है सो विषयनिकी, इच्छाकरि आकुलित है । बहुतको तो इष्टविषयकी प्राप्ति नाही है, काहूको कदाचित् किंचित् हो है । बहुरि मिथ्यात्व भावकरि अतत्त्व श्रद्धानी होय रहे हैं । बहुरि कषाय मुख्यपने तीव्र ही पाइए है । क्रोध मानकरि परस्पर लरै है, भक्षण करै है, दुःखदेय है, माया लोभकरि छल करै है, वस्तुको चाहै है, हास्यादिककरि तिन कषायनिका कार्यनिविषै न प्रवर्तै हैं । बहुरि काहूकै कदाचितमदकषाय हो है परन्तु थोरे जीवनिकै हो है तातै मुख्यता नाही । बहुरि वेदनीयविषै मुख्य असाताका उदय है ताकरि रोग पीडा छुधा तृषा छेदन भेदन बहुतभारवहन शीत उष्ण अंगभगादि अवस्था हो है ताकरि दुःखी होते प्रत्यक्ष देखिए है । तातैं बहुत न कह्या है । काहूकै कदाचित् किंचित् साताका भी उदय हो है परन्तु थोरे जीवनिके हो है, मुख्यता नाही । बहुरिआयु अन्तर्मुहूर्त्त आदि कोटिवर्ष पर्यंत है । तहा घने जीव स्तोक आयुके धारक हो हैं तातै जन्म मरनका दुःख पावै है । बहुरि भोगभूमियोंकी बड़ी आयु है अर उनकै साताका भी उदय है सो वे जीव थोरे हैं । बहुरि नामकर्मकी मुख्यपने तो तिर्यंचगति आदि पापप्रकृतिनिकाही

उदय है। काहूकै कदाचित् कोई पुण्य प्रकृतिनिका भी उदय हो है परन्तु थारे जोवनिकै थोरा हो है, मुख्यता नाही। बहुरि गोत्रविषै नोच गोत्रहीका उदय है तातें हीन होय रहे हैं। ऐसे तिर्यचगतिविषै महादुःख जानने।

मनुष्यगतिके दुःख

बहुरि मनुष्यगतिविषै असख्याते जीव तो लब्धि अपर्याप्त है ते सम्मूर्छन ही हैं, तिनकी तो आयु उश्वासके अठारवें भागमात्र है। बहुरि केई जोव गर्भमें आय थोरे ही कालमें मरन पावें हैं, तिनकी तो शक्ति प्रगट भासै नाहीं है। तिनके दुःख एकेंद्रियवत् जानना। विशेष है सो विशेष जानना। बहुरि गर्भजनिके कितेक काल गर्भमें रहना पोछे बाह्य निकसना हो है। सो तिनका दुःखका वर्णन कर्म अपेक्षा पूर्वं वर्णन किया है तैसे जानना। वह सर्व वर्णन गर्भज मनुष्यनिकै सम्भवै है अथवा तिर्यंचनिका वर्णन किया है तैसे जानना। विशेष यहु है,इहा कोइ शक्ति विशेष पाइए है वा राजादिकनिकै विशेष साताका उदय हो है वा क्षत्रियादिकनिकै उच्चगोत्रका भी उदय हो है। बहुरि धन कुटुम्बादिकका निमित्त विशेष पाइए है इत्यादि विशेष जानना। अथवा गर्भ आदि अवस्थाके दुःख प्रत्यक्ष भासै हैं। जैसें विष्टाविषै लट उपजै तैसें गर्भमें शुक्र शोणितका बिन्दुको अपना शरीररूपकरि जीव उपजै। पीछे तहां क्रमतै ज्ञानादिकको वा शरीरकी वृद्धि होइ। गर्भका दुःख बहुत है। संकोचरूप अधोमुख क्षुधातृषादि सहित तहा काल पूरण करै। बहुरि बाह्य निकसै तब बाल्यअवस्थामें महा दुःख हो है। कोऊ कहै–बाल्यावस्थामें दुःख थोरा है सो नाही है। शक्ति

थोरी है तातैं व्यक्त न होय सक है। पीछें व्यापारादि वा विषयइच्छा आदि दुःखनिकी प्रगटता हो है। इष्ट अनिष्ट जनित आकुलता रहवो ही करै। पीछें वृद्ध होइ तब शक्तिहीन होइ जाय तब परमदुःखी हो है। सो ए दुःख प्रत्यक्ष होते देखिए हैं। हम बहुत कहा कहै। प्रत्यक्ष जाको न भासै सो कह्या कैसे सुनै। काहूकै कदाचित् किंचित् साताका उदय हो है सो आकुलतामय है। अर तीर्थंकरादि पद मोक्षमार्ग पाए बिना होय नाही। ऐसे मनुष्य पर्यायविषै दुःख ही हैं। एक मनुष्य पर्यायविषै कोई अपना भला होनेका उपाय करै तो होय सकै है। जैसे काना सांठा * की जड वा बाड ×तो चूसने योग्य नाही अर बीचकी पेली कानी सो भी चूसी जाय नाही। कोई स्वादका लोभी वाकूं बिगारै तो बिगारो। अर जो वाको बोइ दे तो वाके बहुत साठे होइ, तिनका स्वाद बहुत मीठा आवै। तैसे मनुष्यपर्यायका बालकवृद्धपना तो सुख भोगने योग्य नाहीं अर बीचकी अवस्था सो रोग क्लेशादिकरि युक्त तहां सुख होइ सकै नाही। कोई विषय सुखका लोभी याको बिगारै तो बिगारो। अर जो वाको धर्मसाधनविषै लगावै तो बहुत ऊंचे पदको पावै। तहां सुख बहुत निराकुल पाइए। तातै इहां अपना हित साधना, सुख होनेका भ्रमकरि वृथा न खोवना।

देवगतिके दुःख

बहुरि देवपर्यायविषै ज्ञानादिककी शक्ति किछु औरनितै विशेष है। मिथ्यात्वकरि अतत्त्वश्रद्धानी होय रहे है। बहुरि तिनकै कषाय किछु

* गन्ना × गन्ने के ऊपरका फीका भाग।

मंद है, तहां भवनवासी व्यंतर ज्योतिष्कनिकै कषाय बहुत मन्द नाहीं अर उपयोग तिनका चचल बहुत अर किछु शक्ति भीहै सो कषायनिके कार्यनिविषै प्रवर्तै है । कौतूहल विषयादि कार्यनिविषै लगि रहे हैं सो तिस आकुलताकर दुःखी हो है । बहुरि वमानिकनिकै ऊपरि-ऊपरि विशेष मंद कषाय है अर शक्ति विशेष है तातै आकुलता घटनेतै दुःख भी घटता है । इहां देवनिकै क्रोधमान कषाय है परन्तु कारन थोरा है । तातै तिनके कार्य की गौणता है । काहूका बुरा करना वा काहूको हीन करना इत्यादि कार्य निकृष्ट देवनिकै तो कौतूहलादिकरि होइ है अर उत्कृष्ट देवनिकै थोरा हो है,मुख्यता नाहीं । बहुरि माया लोभ कषायनिके कारण पाइए है तातै तिनके कार्य की मुख्यता है । तातै छल करना विषयसामग्रीको चाह करनी इत्यादि कार्य विशेष हो है । सो भी ऊँचे ऊँचे देवनिकै घाटि*है । बहुरि हास्य रतिकषायके कारन घने पाइए है तातै इनके कार्यनिकी मुख्यता है । बहुरि अरति शोक भय जुगुप्सा इनके कारण थोरे है तातै तिनके कार्यनिकी गौणता है । बहुरि स्त्रीवेद पुरुषवेदका उदय है अर रमनेका भी निमित्त है सो कामसेवन करै हैं । ए भी कषाय ऊपरि ऊपरि मन्द है । अहमिंद्रनिके वेदनिकी मंदताकरि कामसेवनका अभाव है । ऐसें देवनिकै कषायभाव हैं सो कषायहीतै दुःख है । अर इनके कषाय जेता थोरा है तितना दुःख भी थोरा है तातैं औरनिकी अपेक्षा इनको सुखी कहिए है । परमार्थतै कषायभाव जीवै है ताकरि दुःखी ही हैं । बहुरि वेदनीयविषै साताका उदय बहुत है । तहां भवनत्रिककै थोरा है । वैमानिकनिकै

* कम है ।

ऊपरि ऊपरि विशेष है। इष्ट शरीरकी अवस्था स्त्रीमंदिरादि सामग्री का सयोग पाइए है। बहुरि कदाचित् किंचित् असाताका भी उदय कोई कारण करि हो है। तहां निकृष्टदेवनिकै किछु प्रगट भी है अर उत्कृष्ट देवनिकै विशेष प्रगट नाहीं है। बहुरि आयु बड़ी है। जघन्य दशहजार वर्ष उत्कृष्ट तेतीस सागर है। अर ३१ सागर से अधिक आयुका धारी मोक्षमार्ग पाए बिना होना नाहीं। सो इतना काल विषय सुखमें मगन रहै है। बहुरि नामकर्मकी देवगति आदि सर्व पुण्य प्रकृतिनिहीका उदय है तातै सुखका कारण है। अर गोत्र विषै उच्च गोत्रहीका उदय है तातै महतपदको प्राप्त है। ऐसें इनके पुण्यउदयकी विशेषताकरि इष्ट सामग्री मिली है अर कषायनिकरि इच्छा पाइए है, तातैं तिनके भोगनेविषै आसक्त होय रहे हैं परन्तु इच्छा अधिक ही रहै है तातै सुखी होते नाही। ऊँचे देवनिके उत्कृष्ट पुण्य का उदय है. कषाय बहुत मद है तथापि तिनकै भी इच्छाका अभाव होता नाही. तातै परमार्थतैं दुःखी ही हैं। ऐसें सर्वत्र संसारविषै दुःख ही दुःख पाइए है। ऐसें पर्याय अपेक्षा दुःखका वर्णन किया।

दुःखका सामान्य स्वरूप

अब हम सर्व दुःखका सामान्यस्वरूप कहिए है। दुःखका लक्षण आकुलता है सो आकुलता इच्छा होतें हो है। सोई संसारी-जीवकै इच्छा अनेक प्रकार पाइए है। एक तो इच्छा विषय ग्रहण की है सो देख्या जान्या चाहै। जैसे वर्ण देखनेकी, राग सुननेकी, अव्यक्तको जानने इत्यादिकी इच्छा हो है। सो तहाँ अन्य किछु पीड़ा नाहीं परन्तु यावत् देखै जानै नाही तावत् महाव्याकुल होय। इस इच्छाका

नाम विषय है। बहुरि एक इच्छा कषाय भावनिके अनुसारि कार्य करने की है सो कार्य किया चाहै। जैसे बुरा करनेकी, हीन करनेकी इत्यादि इच्छा हो है। सो इहाँ भी अन्य कोई पीड़ा नाहीं। परन्तु यावत् वह कार्य होइ तावत् महाव्याकुल होय। इस इच्छा का नाम कषाय है। बहुरि एक इच्छा पापके उदयतें शरीरविषै या बाह्य अनिष्ट कारण मिले तब उनके दूरि करनेको हो है। जैसे रोग पीड़ा क्षुधा आदिका सयोग भए उनके दूरकरनेकी इच्छाहो है सो इहाँ यह ही पीडा मानै है। यावत् वह दूरि न होइ तावत् महाव्याकुल रहै। इस इच्छाका नाम पापका उदय है। ऐसै इन तीन प्रकारकी इच्छा होते सर्व हो दुःख मानै हैं सो दुःख ही है। बहुरि एक इच्छा बाह्य निमित्ततें बनै है सो इन तीन प्रकार इच्छानिके अनुसारि प्रवर्तनेकी इच्छा हो है। सो तीन प्रकार इच्छानिविषै एक एक प्रकारकी इच्छा अनेक प्रकार है। तहां केई प्रकारको इच्छा पूरण करनेका कारण पुण्यउदयतै मिलै। तिनिका साधन युगपत् होइसकै नाही। तातै एकको छोरि अन्यको लागै, आगै भी वाकों छोरि अन्यको लागै। जैसे काहूकै अनेक सामग्री मिलो है, वह काहूका देखै है, वाको छोरि राग सुनै है, वाकों छोरि काहूका बुरा करनै लगि जाय, वाको छोरि भोजन करै है अथवा देखने विषै ही एकको देखि अन्यको देखै है। ऐसें ही अनेक कार्यनिकी प्रवृत्ति विषै इच्छा हो है सो इस इच्छाका नाम पुण्य का उदय है। याको जगत सुख मानै है सो सुख है नाही, दुःख हो है। काहेतें—प्रथम तो सर्वप्रकार इच्छा पूरन होनेके कारण काहूकै भी न बनै। अर कोई प्रकार इच्छा पूरन करनेके कारण बनें तो युगपत् तिन

का साधनन होय। सो एकका साधन यावत् न होय तावत् वाकी आकुलता रहै है, वाका साधन भए उस ही समय अन्यका साधनकी इच्छा हो है तब वाकी आकुलता होय। एक समयभी निराकुल न रहै, तातै दुःख ही है। अथवा तीन प्रकारके इच्छा रोगके मिटावनेका किंचित् उपाय करै है, तातै किंचित् दुःख घाटि हो है, सर्व दुःखका तो नाश न होइ तातै दुःख ही है। ऐसे संसारी जीवनिकै सर्वप्रकार दुःख ही है। बहुरि यहाँ इतना जानना तीनप्रकार इच्छानिकरि सर्वजगत पीडित है अर चौथी इच्छा तो पुण्यका उदय आए होइ सो पुण्यका बंध धर्मानुरागतै होइ सो धर्मानुराग विषै जीव थोरा लागै। जीव तो बहुत पाप क्रियानिविषै ही प्रवर्तै है। तातै चौथी इच्छा कोई जीवकै कदाचित् कालविषैही हो है। बहुरि इतना जानना—जो समान इच्छावान् जीवनिकी अपेक्षा तो चौथी इच्छावालाकै किछु तीन प्रकार इच्छाके घटनेतै सुख कहिये है। बहुरि चौथी इच्छावालाकी अपेक्षा महान् इच्छावाला चौथी इच्छा होतेभी दुःखीहो है। काहूकै बहुत विभूति है अर वाकै इच्छा बहुत है तो वह बहुत आकुलतावान है। अर जाकै थोरी विभूति है अर वाकै इच्छा थोरी है तो वह थोरा आकुलतावान है। अथवा कोऊकै अनिष्ट सामग्री मिली है,ताकै उसके दूर करनेकी इच्छा थोरी है तो वह थोरा आकुलतावान् है। बहुरि काहूकै इष्ट सामग्री मिली है परन्तु ताकै उनके भोगनेकी वा अन्य सामग्रीकी इच्छा बहुत है तो वह जीव घना आकुलतावान् है। तातै सुखी दुःखी होना इच्छाके अनुसार जानना; बाह्य कारणके आधीन नाही है। नारकी दुःखी अर देव सुखी कहिए है सो भी इच्छाहीकी अपेक्षा कहिए

है। तातें नारकीनिकै तीव्रकषायतें इच्छा बहुत है। देवनिकै मन्द कषायतें इच्छा थोरी है। बहुरि मनुष्य तिर्यंच भी सुखी दुःखी इच्छा हीकी अपेक्षा जानने। तीव्र कषायतें जाकै इच्छा बहुत ताको दुःखी कहिए है। मद कषायतें जाके इच्छा थोरी ताको सुखी कहिए है। परमार्थतै घना वा थोरा दुःखही है, सुख नाही है, देवादिककै भी सुख मानिए है सो भ्रम ही है। उनकै चौथी इच्छाकी मुख्यता है तातें आकुलित है। या प्रकार जो इच्छा है सो मिथ्यात्व अज्ञान असयमतें हो है। बहुरि इच्छा है सो आकुलतामयहै अर आकुलता है सोदुःख है। ऐसै सर्वजीव ससारी नानाप्रकारके दुःखनिकरि पीडित ही होइ रहेहैं।

दुःख निवृत्तिका उपाय

अब जिन जीवनिको दुखतें छूटना होय सो इच्छा दूर करनेका उपाय करो। बहुरि इच्छा दूर तब ही होइ जब मिथ्यात्व अज्ञान असयमका अभाव होइ अर सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकी प्राप्ति होय। तातें इस ही कार्यका उद्यम करना योग्य है। ऐसा साधन करते जेती जेती इच्छा मिटै तेता तेताही दुःखदूर होता जाय। बहुरि जब मोहके सर्वथा अभावतें सर्वथा इच्छाका अभाव होइ तब सर्व दुःख मिटै, सांच सुख प्रगटै। बहुरि ज्ञानावरण दर्शनावरण अतरायका अभाव होय तब इच्छाका कारण क्षयोपशम ज्ञानदर्शनका वा शक्तिहीनपनाका भी अभाव होय। अनतज्ञानदर्शनवीर्यकी प्राप्ति होय। बहुरि केतेक काल पीछै अघाति कर्मनिकाभी अभाव होय, तब इच्छाके बाह्य कारण तिनका भी अभाव होय। मोह गए पीछै एक समय मात्र भी किछु इच्छा उपजावनेको समर्थ थे नाहीं, मोह होते कारण थे तातें कारण कहे

हैं सो इनका भी अभाव भया तब सिद्धपदको प्राप्त हो हैं । तहाँ दुःखका वा दुःखके कारणनिका सर्वथा अभाव होनेतें सदा काल अनौपम्य अखंडित सर्वोत्कृष्ट आनन्दसहित अनन्तकाल विराजमान रहै हैं। सोई दिखाइए है—

सिद्ध अवस्थामें दुःखके अभावकी सिद्धि

ज्ञानावरण दर्शनावरणका क्षयोपशम होते वा उदय होते मोह करि एक एक विषय देखने जाननेकी इच्छाकरि महाव्याकुल होता था सो अब मोहका अभावतें इच्छाका भी अभाव भया । तातें दुःखका अभाव भया है । बहुरि ज्ञानावरण दर्शनावरणका क्षय होनेतें सर्व इन्द्रियनिको सर्वविषयनिका युगपत् ग्रहण भया, तातें दुःखका कारण भी दूर भया है सोई दिखाइए है—जैसें नेत्रकरि एक विषयको देख्या चाहै था, अब त्रिकालवर्ती त्रिलोकके सर्व वर्णनिको युगपत् देखै है। कोऊ बिना देख्या रह्या नाहीं, जाके देखनेकी इच्छा उपजै। ऐसें ही स्पर्शनादिककरि एक एक विषयको ग्रह्या चाहै था, अब त्रिकालवर्ती त्रिलोक के सर्व स्पर्श रस गध शब्दनिको युगपत् ग्रहै है । कोऊ बिना ग्रह्या रह्या नाहीं, जाके ग्रहण की इच्छा उपजै ।

इहां कोऊ कहै, शरीरादिक बिना ग्रहण कैसे होइ ?

ताका समाधान—इन्द्रियज्ञान होते तो द्रव्यइन्द्रियादि बिना ग्रहण न होता था । अब ऐसा स्वभाव प्रगट भया जो बिनाही इन्द्रिय ग्रहण हो है । इहां कोऊ कहै, जैसे मनकरि स्पर्शादिकको जानिए है तैसें जानना होता होगा । त्वचा जीभ आदि करि ग्रहण हो है तैसे न होता होगा । सो ऐसें नाहीं है । मनकरि तो स्मरणादि होते अस्पष्ट जानना किछु हो है । इहाँ तो स्पर्शरसादिकको जैसे त्वचा जीभ इत्यादि करि

स्पर्शे स्वादै सूघै देखै सुनै जैसा स्पष्ट जानना हो है तिसतैं भी अनन्त गुणा स्पष्ट जानना तिनकै हो है। विशेष इतना भया है—वहां इन्द्रिय विषयका संयोग होतैं ही जानना होता था, इहां दूर रहे भी वैसा ही जानना हो है। सो यहु शक्तिकी महिमा है। बहुरि मनकरि किछु अतीत अनागतको वा अव्यक्तको जान्या चाहै था, अब सर्वही अनादितैं अनतकालपर्यन्त जे सर्व पदार्थनिके द्रव्य क्षेत्र काल भाव तिनको युगपत् जानै है। कोऊ बिना जान्या रह्या नाही, जाके जाननेको इच्छा उपजै। ऐसे इन दुःख और दुःखनिके कारण तिनका अभाव जानना। बहुरि मोहके उदयतै मिथ्यात्व वा कषायभाव होते थे तिनका सर्वथा अभाव भया तातै दुःखका अभाव भया। बहुरि इनके कारणनिका अभाव भया तातै दुःखके कारणका भी अभाव भया। सो कारणका अभाव दिखाइए है।

सब तत्व यथार्थ प्रतिभासै, अतत्त्वश्रद्धानरूप मिथ्यात्व कैसे होइ ? कोऊ अनिष्ट रह्या नाही,निदक स्वयमेव अनिष्ट पावै हो है,आप क्रोध कौनसों करै ? सिद्धनितै ऊँचा कोई है नाही। इन्द्रादिक आपहीतै नमै हैं,इष्ट पावे है तो कौनसो मान करै ? सर्व भवितव्य भासि गया, कोऊ कार्य रह्या नाही, काहूसो प्रयोजन रह्या नाही, काहेका लोभ करै ? कोऊ अन्य इष्ट रह्या नाही, कौन कारणतैं हास्य होइ ? कोऊ अन्य इष्ट प्रीति करने योग्य है नाही,इहाँ कहा रति करै? कोऊ दुःखदायक संयोग रह्या नाही, कहा अरति करै ? कोऊ इष्ट अनिष्ट सयोग वियोग होता नाही, काहेको शोक करै?कोऊअनिष्ट करनेवाला कारण रह्या नाहीं, कौनका भय करै ? सर्ववस्तु अपने स्वभाव लिए भासै,आपको अनिष्ट

नाही, कहा जुगुप्सा करै ? काम पीड़ा दूर होनेतें स्त्री पुरुष उभयसों रमनेका किछु प्रयोजन रह्या नाही, काहेको पुरुष स्त्री नपुंसकवेद रूप भाव होई ? ऐसे मोह उपजनेके कारणनिका अभाव जानना। बहुरि अंतरायके उदयतें शक्ति हीनपनाकरि पूरण न होती थी, अब ताका अभाव भया, तातें दुःखका अभाव भया। बहुरि अनंत शक्ति प्रगट भई, तातें दुःखके कारणका भी अभाव भया।

इहाँ कोऊ कहै, दान लाभ भोग उपभोग तो करते नाही, इनकी शक्ति कैसे प्रगट भई ?

ताका समाधान—ए कार्य रोगके उपचार थे। जब रोग ही नाही तब उपचार काहेको करै। तातें इन कार्यनिका सद्भाव तो नाही। अर इनका रोकनहारा कर्मका अभाव भया, तातें शक्ति प्रगटी कहिए है। जैसें कोऊ नाही गमन किया चाहै ताको काहूनै रोक्या था तब दुःखी था। जब वाकै रोकना दूर भया अर जिस कार्यके अर्थि गया चाहै था सो कार्य न रह्या तब गमन भी न किया। तब वाकै गमन न करते भी शक्ति प्रगटी कहिए। तैसें ही इहाँ जानना। बहुरि ज्ञानादि की शक्तिरूप अनंतवीर्य प्रगट उनके पाइए है। बहुरि अघाति कर्मनि विषें मोहतें पाप प्रकृतिनिका उदय होतें दुःख मानै था, पुण्यप्रकृतिनि का उदय होतें सुख मानै था, परमार्थतें आकुलताकरि सर्व दुःख ही था। अब मोहके नाशतें सर्व आकुलता दूर होनेतें सर्व दुःखका नाश भया। बहुरि जिन कारणनिकरि दुःख मानै था, ते तो कारण सर्व नष्ट भए। अर जिनकरि किंचित् दुःख दूर होनेतें सुख मानै था, सो अब मूलहीमें दुःख रह्या नाही। तातें तिन दुःखके उपचारनिका किछु

प्रयोजन रह्या नाहीं, जो तिनकरि कार्यकी सिद्धि किया चाहै। ताकी स्वयमेव ही सिद्धि होय रही है। इसहीका विशेष दिखाइये हैं—

वेदनीय विषैं असाताका उदयतै दुःखके कारण शरीर विषै रोग क्षुधादिक होते थे। अब शरीर ही नाही तब कहा होय? अर शरीरकी अनिष्ट अवस्थाको कारण आतापादिक थे सो अब शरीर बिना कौन को कारण होय? अर बाह्य अनिष्ट निमित्त बनै था सो अब इनके अनिष्ट रह्या ही नाही। ऐसै दुःखका कारणका तो अभाव भया। बहुरि साताके उदयतै किंचित् दुःख मेटनेके कारण औषधि भोजनादिक थे, तिनका प्रयोजन रह्या नाही। अर इष्ट कार्य पराधीन रह्या नाही, तातै बाह्य भी मित्रादिकको इष्ट मानने का प्रयोजन रह्या नाही। इन करि दुःख मेटया चाहै था वा इष्ट किया चाहै था सो अब सम्पूर्ण दुःख नष्ट भया अर सम्पूर्ण इष्ट पाया। बहुरि आयुके निमित्ततै मरण जीवन था तहां मरणकरि दुःख मानै था सो अविनाशी पद पाया, तातै दुःखका कारण रह्या नाही। बहुरि द्रव्य प्राणनिको धरे कितेक काल जीवनतै सुख मानै था, तहाँ भी नरक पर्याय विषै दुःखकी विशेषताकरि तहा जीवना न चाहै था, सो अब इस सिद्धपर्याय विषै द्रव्यप्राण बिना ही अपने चैतन्य प्राणकरि सदाकाल जीवै है अर तहा दुःख का लवलेश भी न रह्या है। बहुरि नामकर्मतै अशुभ गति जाति आदि होते दुःख मानै था सो अब तिन सबनिका अभाव भया, दुःख कहातै होय? अर शुभगति जाति आदि होते किंचित् दुःख दूर होनेतै सुख मानै था, सो अब तिन बिना ही सर्व दुःख का नाश अर सर्व सुख का प्रकाश पाईए है। तातै तिनका भी किछु प्रयोजन

रह्या नाही। बहुरि गोत्रके निमित्ततें नीचकुल पाए दुःख मानें था सो ताका अभाव होने तें दुःखका कारण रह्या नाही। बहुरि उच्चकुल पाए सुख मानें था सो अब उच्चकुल बिनाही त्रैलोक्यपूज्य उच्चपदको प्राप्त है, या प्रकार सिद्धनिके सर्वकर्मके नाश होनेतें सर्व दुःख का नाश भया है।

दुःखका लक्षण आकुलता है सो आकुलता तब ही हो है जब इच्छा होय। सो इच्छा का वा इच्छा के कारणनिका सर्वथा अभाव भया तातें निराकुल होय सर्व दुःख रहित अनन्त सुखको अनुभवै है, जातें निराकुलपना ही सुख का लक्षण है। संसारविषै भी कोई प्रकार निराकुलित होइ तब ही सुख मानिए है। जहा सर्वथा निराकुल भया तहाँ सुख सम्पूर्ण कैसे न मानिए? या प्रकार सम्यग्दर्शनादि साधनतें सिद्ध पद पाए सर्व दुःख का अभाव हो है, सर्व सुख प्रगट हो है।

अब इहाँ उपदेश दीजिए है—हे भव्य! हे भाई! जो तोकूं संसारके दुःख दिखाए, ते तुझ विषै बीतै है कि नाही सो विचारि। अर तू उपाय करै है ते झूठे दिखाए सो ऐसै ही हैं कि नाही सो विचारि। अर सिद्धपद पाए सुख होय कि नाही सो विचारि। जो तेरे प्रतीति जैसे कही है तैसे ही आवै है तो तू ससारतैं छूटि सिद्धपद पावने का हम उपाय कहै है सो करि, विलम्ब मति करै। इह उपाय किए तेरा कल्याण होगा।

इति श्री मोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रविषै संसार दुःखका वा मोक्ष सुखका निरूपक तृतीय अधिकार सम्पूर्ण भया ॥३॥

चौथा अधिकार

मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्रका निरूपण

दोहा

इस भवके सब दुःखनिके, कारण मिथ्याभाव ।
तिनकी सत्ता नाश करि, प्रगटै मोक्ष उपाव ।।१।।

अब इहा संसार दुःखनिके बीजभूत मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र है तिनका स्वरूप विशेष निरूपण कीजिए हैं। जैसें वैद्य है सो रोगके कारणनिका विशेष कहै तो रोगीकुपथ्य सेवन न करै तब रोगरहित होय, तैसे इहाँ ससारके कारणनिका विशेष निरूपण करिए है तो ससारी मिथ्यात्वादिकका सेवन न करै तब संसार रहित होय। तातै मिथ्यादर्शनादिकनिका स्वरूप विशेष कहिए है—

मिथ्यादर्शनका स्वरूप

यहु जीव अनादितै कर्मसम्बन्धसहित है। याकै दर्शनमोहके उदयतै भया जो अतत्व श्रद्धान ताका नाम मिथ्यादर्शन है। जातै तद्भाव जो श्रद्धान करनेयोग्य अर्थहै ताका जो भाव अथवा स्वरूप ताका नाम तत्व है। तत्व नाही ताका,नाम अतत्व है। अर जो अतत्व है सो असत्य है, तातै इसहीका नाम मिथ्या है। बहुरि ऐसे ही यहु है, ऐसा प्रतीति भाव ताका नाम श्रद्धान है। इहाँ श्रद्धानहीका नाम दर्शन है। यद्यपि दर्शन शब्दका अर्थ सामान्य अवलोकन है तथापि इहा प्रकरणके वशतै इस ही धातुका अर्थ श्रद्धान जानना। सो ऐसे ही सर्वार्थसिद्धि नाम

सूत्रकी टीकाविषै कह्या है। जातै सामान्यअवलोकन संसारमोक्षको कारण होई नाहीं। श्रद्धान ही संसार मोक्षका कारण है, तातै संसार मोक्षका कारणविषै दर्शनका अर्थ श्रद्धान ही जानना। बहुरि मिथ्यारूप जो दर्शन कहिए श्रद्धान ताकानाम मिथ्यादर्शन है। जैसे वस्तुका स्वरूप नाही तैसें मानना, जैसें है तैसें न मानना ऐसा विपरीताभिनिवेश कहिए विपरीत अभिप्राय ताकों लिए मिथ्यादर्शन हो है।

इहाँ प्रश्न— जो केवलज्ञान बिना सर्व पदार्थ यथार्थ भासैं नाहीं अर यथार्थ भासे बिना यथार्थ श्रद्धान न होइ, तातैं मिथ्यादर्शनका त्याग कैसें बनै ?

ताका समाधान—पदार्थनिका जानना, न जानना, अन्यथा जानना तो ज्ञानावरण के अनुसार है। बहुरि प्रतीति हो है सो जाने ही हो है, बिना जाने प्रतीति कैसे आवै ? यहु तो सत्य है। परन्तु जैसें कोऊ पुरुष है सो जिनसे प्रयोजन नाही, तिनको अन्यथा जाने वा यथार्थ जाने बहुरि जैसे जानै तैसे ही मानै, किछु वाका बिगार सुधार है नाही, तातै बाउला स्याना नाम पावै नाही। बहुरि जिनमों प्रयोजन पाइए है, तिनको जो अन्यथा जानै अर तैसै ही मानै तो बिगार होई तातै वाकों बाउला कहिए। बहुरि तिनको जो यथार्थ जानै अर तैसे ही मानै तो सुधार होई तातै वाकों स्याना कहिए। तैसे ही जीव है सो जिनस्यो प्रयोजन नाही, तिनकों अन्यथा जानो वा यथार्थ जानो बहुरि जैसे जानै तैसै श्रद्धान करै, किछु याका बिगार सुधार नाही तातै मिथ्यादृष्टि सम्यग्दृष्टि नाम पावै नाही। बहुरि जिनस्यों प्रयोजन पाइए है तिनको जो अन्यथा जानै अर तैसें

ही श्रद्धान करै तो बिगार होइ तातै याको मिथ्यादृष्टि कहिए। बहुरि तिनकों जो यथार्थ जानै अर तैसे ही श्रद्धान करै तो सुधार होइ तातै याको सम्यग्दृष्टि कहिए। इहाँ इतना जानना कि अप्रयोजन-भूत या प्रयोजनभूत पदार्थनिका न जानना वा यथार्थ अयथार्थ जानना जो होइ तामें ज्ञानकी हीनता अधिकता होना, इतना जीवका बिगार सुधार है। ताका निमित्त तो ज्ञानावरण कर्म है। बहुरि तहा प्रयोजनभूत पदार्थनिको अन्यथा वा यथार्थ श्रद्धान किए जीवका किछु और भी बिगार सुधार हो है। तातै याका निमित्त दर्शनमोह नामा कर्म है।

इहाँ कोऊ कहै कि जैसा जानै तैसा श्रद्धान करै तातै ज्ञानावरण-ही के अनुसारि श्रद्धान भासै है, इहा दर्शनमोहका विशेष निमित्त कैसे भासै ?

ताका समाधान—प्रयोजनभूत जीवादि तत्वनिका श्रद्धान करने योग्य ज्ञानावरणका क्षयोपशम तो सर्व सञ्ज्ञी पंचेन्द्रियनिकै भया है। परन्तु द्रव्यलिगी मुनि ग्यारह अग पर्यत पढै वा ग्रैवेयकके देव अवधि ज्ञानादियुक्त है तिनकै ज्ञानावरणका क्षयोपशम बहुत होते भी प्रयोजनभूत जीवादिका श्रद्धान न होइ। अर तिर्यचादिककै ज्ञाना-वरणका क्षयोपशम थोरा होते भी प्रयोजनभूत जीवादिकका श्रद्धान होइ, तातै जानिए है ज्ञानवरणहीके अनुसारि श्रद्धान नाही। कोई जुदा कर्म है सो दर्शनमोह है। याके उदयतै जीवकै मिथ्यादर्शन हो है तब प्रयोजनभूत जीवादितत्वनिका अन्यथा श्रद्धान करै है।

प्रयोजन अप्रयोजनभूत पदार्थ

इहां कोऊ पूछै कि प्रयोजनभूत अप्रयोजनभूत पदार्थ कौन कौन हैं?

ताका समाधान- इस जीवके प्रयोजन तो एक यहु ही है कि दुःख न होय, सुख होय। अन्य किछू भी कोई ही जीवकै प्रयोजन है नाहीं। बहुरि दुःख न होना, सुख का होना एक ही है, जातै दुःख का अभाव सोई सुख है। सो इस प्रयोजनकी सिद्धि जीवादिकका सत्य श्रद्धान किए हो है। कैसे ? सो कहिए है।

प्रथम तो दुःख दूर करने विषै आपापरका ज्ञान अवश्य चाहिए। जो आपापरका ज्ञान नाहीं होय तो आपको पहिचाने बिना अपना दुःख कैसे दूरि करै। अथवा आपापरको एक जानि अपना दुःख दूर करनेके अर्थि परका उपचार करै तो अपना दुःख दूर कैसे होइ? अथवा आपतै पर भिन्न अर यहु परविषै अहंकार ममकार करै तातं दुःख ही होय। आपापरका ज्ञान भए ही दुःख दूर हो है। बहुरि आपापरका ज्ञान जीव अजीवका ज्ञान भए ही होइ। जातै आप जीव है, शरीरादिक अजीव हैं। जो लक्षणादिककरि जीव अजीव की पहिचान होइ तो आपापरको भिन्नपनो भासै। तातै जीव अजीवको जानना अथवा जीव अजीवका ज्ञान भए जिन पदार्थनिका अन्यथा श्रद्धानतै दुःख होता था तिनका यथार्थ ज्ञान होनेतै दुःख दूरि होइ तातै जीव अजीवको जानना। बहुरि दुःखका कारन तो कर्मबन्धन है अर ताका कारण मिथ्यात्वादिक आस्रव है। सो इनको न पहिचानै, इनको दुःख का मूलकारन न जानै तो इनका अभाव कैसे करै? अर इनका अभाव न करै तब कर्मबन्धन होइ, तातैं दुःख ही होय। अथवा

मिथ्यात्वादिक भाव हैं सो दुःखमय हैं । सो इनको जैसेके तैसे न जानै तो इनका अभाव न करै तब दुःखी ही रहै तातैं आस्रवको जानना । बहुरि समस्त दुःखका कारण कर्मबन्धन है सो याकों न जानै तब यातैं मुक्त होनेका उपाय न करै तब ताके निमित्ततैं दुःखी होइ तातैं बंधको जानना ।। बहुरि आश्रवका अभाव करना सो सवर है, याका स्वरूप न जानै तो या विषै न प्रवर्तै तब आस्रव ही रहै तातैं वर्तमान या आगामी दुःख ही होइ तातैं संवरको जानना । बहुरि कथंचित् किंचित् कर्मबधका अभाव ताकानाम निर्जरा है सो याको न जानै तब याको प्रवृत्तिका उद्यमी न होइ। तब सर्वथा बधही रहै तातैं दुःख ही होइ तातैं निर्जराको जानना । बहुरि सर्वथा सर्व कर्मबधका अभाव होना ताका नाम मोक्ष है। सो याकों न पहिचानै तो याका उपाय न करै, तब संसारविषै कर्मबधतै निपजे दुःखनिहीकों सहै तातैं मोक्षको जानना। ऐसें जीवादि सप्त तत्त्व जानने । बहुरि शास्त्रादिक करि कदाचित् तिनकों जानै अर ऐसै ही है ऐसी प्रतीति न आई तो जाने कहा होय तातैं तिनका श्रद्धान करना कार्यकारी है । ऐसे जीवादि तत्त्वनिका सत्यश्रद्धान किएही दुःख होनेका अभावरूप प्रयोजनकी सिद्धि हो है । तातैं जीवादिक पदार्थ है ते ही प्रयोजनभूत जानने । बहुरि इनके विशेषभेद पुण्यपापादिकरूप तिनका भी श्रद्धान प्रयोजनभूत है जातै सामान्यतै विशेष बलवान् है । ऐसै ये पदार्थ तो प्रयोजनभूत हैं तातै इनका यथार्थ श्रद्धान किए तो दुःख न होय, सुख होय अर इनको यथार्थ श्रद्धान किए बिना दुःखहो है, सुखन हो है । बहुरि इन बिना अन्य पदार्थ है, ते अप्रयोजनभूत हैं । जातै तिनकों

यथार्थश्रद्धान करो वा मति करो, उनका श्रद्धान किछू सुख दुःखकों कारण नाहीं।

इहाँ प्रश्न उपजै है, जो पूर्वे जीव अजीव पदार्थ कहे तिनविषै तो सर्व पदार्थ आय गए, तिन बिना अन्य पदार्थ कौन रहे जिनकों अप्रयोजनभूत कहे।

ताका समाधान—पदार्थ तो सर्व जीव अजीवविषै ही गर्भित हैं परन्तु तिन जीव अजीवनिके विशेष बहुत हैं। तिन विषै जिन विशेषनिकरि सहित जीव अजीवको यथार्थ श्रद्धान किये स्व-परका श्रद्धान होय रागादिक दूर करनेका श्रद्धान होइ, तातैं सुख उपजै; अयथार्थ श्रद्धान किए स्व-परका श्रद्धान न होई रागादिक दूर करनेका श्रद्धान न होइ, तातै दुःख उपजै, तिन विशेषनिकरि सहित जीव अजीव पदार्थ तो प्रयोजनभूत जानने। बहुरि जिन विशेषनिकरि सहित जीव अजीवकको यथार्थ श्रद्धान किए वा न किए स्व-परका श्रद्धान होइ वा न होइ अर रागादिक दूर करनेका श्रद्धान होइ वा न होइ, किछू नियम नाहीं तिन विशेषनिकरि सहित जीव अजोव पदार्थ अप्रयोजनभूत जानने। जैसे जीव अर शरीरका चैतन्य मूर्त्तत्वादिक विशेषनिकरि श्रद्धान करना तो प्रयोजनभूत है अर मनुष्यादि पर्यायनिको वा घटादिकी अवस्था आकारादि विशेषनिकरि श्रद्धान करना अप्रयोजनभूत है। ऐसेही अन्य जानने। या प्रकार कहे जे प्रयोजनभूत जीवादिक तत्त्व तिनका अयथार्थ श्रद्धान ताका नाम मिथ्यादर्शन जानना।

अब संसारी जीवनिकै मिथ्यादर्शनकी प्रवृत्ति कैसे पाइए है सो कहिए हैं। इहाँ वर्णन तो श्रद्धानका करना है परन्तु जानै तब श्रद्धान करै, तातैं जाननेकी मुख्यताकरि वर्णन करिए है।

मिथ्यादर्शनकी प्रवृत्ति

अनादितैं जीव है सो कर्मके निमित्ततैं अनेक पर्याय धरै है, तहाँ पूर्व पर्यायको छोरै, नवीन पर्याय धरै। बहुरि वह पर्याय है सो एक तो आप आत्मा अर अनन्त पुद्गलपरमाणुमय शरीर तिनका एक पिंड बधानरूप है। बहुरि जीवकै तिस पर्यायविषै यह मै हूं, ऐसें अहंबुद्धि हो है। बहुरि आप जीव है ताका स्वभाव तो ज्ञानादिक है अर विभाव क्रोधादिक हैं अर पुद्गल परमाणूनिके वर्ण गंध रस स्पर्शादि स्वभाव हैं तिन सबनिको अपना स्वरूप मानै है। ए मेरे हैं, ऐसै मम बुद्धि हो है। बहुरि आप जीव है ताको ज्ञानादिककी वा क्रोधादिककी अधिक हीनतारूप अवस्था हो है अर पुद्गलपरमाणूनिकी वर्णादि पलटनेरूप अवस्था हो है तिन सबनिको अपनी अवस्था मानै है। ए मेरी अवस्था हैं, ऐसें मम बुद्धि करै है। बहुरि जीवकै अर शरीरकै निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है तातै जो क्रिया हो है ताको अपनी मानै है। अपना दर्शनज्ञानस्वभाव है, ताको प्रवृत्तिको निमित्त मात्र शरीरका अंगरूपस्पर्शनादि द्रव्यइन्द्रिय हैं। यहु तिनको एक मान ऐसे मानै है जो हस्तादि स्पर्शनकरि मै स्पर्श्या, जीभकरि चाख्या, नासिकाकरि सूंघ्या, नेत्रकरि देख्या, काननिकरि सुन्या, ऐसें मानै है। मनोवर्गणारूप आठ पाँखुड़ीका फूल्या कमलके आकार हृदय स्थानविषै द्रव्यमन है, दृष्टिगम्य नाहीं ऐसा है सो शरीरका अंग है, ताका निमित्त भए स्मरणादिरूप ज्ञानकी प्रवृत्ति हो है। यहु द्रव्यमनको अर ज्ञानको एक मानि ऐसें मानै है कि मैं मनकरि जान्या। बहुरि अपने बोलनेकी इच्छा हो है तब अपने प्रदेशनिकों जैसें बोलना बनै हलावै, तब

एक क्षेत्रावगाह सम्बन्धतै शरीरके अंग भी हालै, ताके निमित्ततै भाषा वर्गणारूप पुद्गल वचनरूप परिणमैं। यहु सबको एक मानि ऐसे मानै जो मैं बोलू हूं। बहुरि अपने गमनादि क्रियाकी वा वस्तु ग्रहणादिक की इच्छा होय तब अपने प्रदेशनिको जैसे कार्य बनै तैसे हलावै, तब एक क्षेत्रावगाहतै शरीरके अंग हालै तब वह कार्य बनै। अथवा अपनी इच्छा बिना शरीर हालै तब अपने प्रदेश भी हालैं, यहु सबको एक मानि ऐसैं मानै, मैं गमनादि कार्य करूँ हू वा वस्तु ग्रहू हूँ वा मै किया है इत्यादिरूप मानै है। बहुरि जीवकै कषायभाव होय तब शरीरकी ताके अनुसार चेष्टा होइ जाय। जैसै क्रोधादिक भए रक्त नेत्रादि होइ जाय, हास्यादि भए प्रफुल्लित वदनादि होइ जाय, पुरुष वेदादि भए लिंगकाठिन्यादि होइ जाय। यहु सबकों एक मानि ऐसा मानै कि ए सर्व कार्य मै करू हूँ। बहुरि शरीरविषै शीत उष्ण क्षुधा तृषा रोग इत्यादि अवस्था हो है ताके निमित्ततै मोहभावकरि आप सुखदुःख मानै। इन सबनिको एक जानि शीतादिकको वा सुख दुःख को अपने ही भए मानै है। बहुरि शरीरका परमाणूनिका मिलना बिछुरनादि होनेकरि वा तिनकी अवस्था पलटनेकरि वा शरीर स्कध का खंडादि होनेकरि स्थूल कृशादिक वा बाल वृद्धादिक वा अंगहीनादिक होय अर ताके अनुसार अपने प्रदेशनिका सकोच विस्तार होय। यहु सबको एक मानि मै स्थूल हूँ, मै कृश हूं, मैं बालक हूँ, मै वृद्ध हूँ, मेरे इन अंगनिका भग भया है इत्यादि रूप मानै है। बहुरि शरीरकी अपेक्षा गतिकुलादिक होइ तिनको अपने मानि मै मनुष्य हू, मैं तिर्यंच हूँ, मै क्षत्रिय हूँ, मै वैश्य हू इत्यादिरूप मानै है। बहुरि

शरीर सयोग होने छूटनेकी अपेक्षा जन्म मरण होय, तिनको अपना जन्म मरण मानि मैं उपज्या,मैं मरूँगा ऐसा मानै है। बहुरि शरीरही की अपेक्षा अन्य वस्तुनिस्यों नाता मानै है। जिनकरि शरीर निपज्या-तिनकों अपने माता पिता मानै है। जो शरीरको रमावै ताको अपनी रमनी मानै है। जो शरीरकरि निपज्या ताको अपना पुत्र मानै है। जो शरीरको उपकारी ताको मित्र मानै है। जो शरीर का बुरा करै ताको शत्रु मानै है इत्यादिरूप मानि हो है। बहुत कहा कहिए जिस तिस प्रकारकरि आप अर शरीरको एक ही मानै है। इन्द्रादिक का नाम तो इहा कह्या है। याको तो किछु गम्य नाही। अचेत हुआ पर्यायविषै अहबुद्धि धारै है। सो कारण कहा है? सो कहिए है।

इस आत्माकै अनादितै इन्द्रियज्ञान है ताकरि आप अमूर्तीक है सो तो भासै नाही अर शरीर मूर्तीक है सोही भासै। अर आत्मा काहूको आपो जानि अहबुद्धि धारै ही धारै सो आप जुदा न भास्या तब तिनका समुदायरूप पर्यायविषै ही अहबुद्धि धारै है। बहुरि आपकै अर शरीरकै निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध घना ताकरि भिन्नता भासै नाहीं। बहुरि जिस विचारकरि भिन्नता भासै सो मिथ्यादर्शनके जोर तै होइ सकै नाही तातै पर्याय ही विषै अहंबुद्धि पाइए है। बहुरि मिथ्यादर्शनकरि यहु जीव कदाचित् बाह्य सामग्रीका संयोग होते तिन को भी अपनी मानै है। पुत्र, स्त्री, धन, धान्य, हाथी, घोड़े, मन्दिर, किंकरादिक प्रत्यक्ष आपतै भिन्न अर सदा काल अपने आधीन नाहीं, ऐसे आपकों भासै तो भी तिन विषै ममकार करै है। पुत्रादिकविषै ए हैं सो मैं ही हूँ, ऐसी भी कदाचित् भ्रमबुद्धि हो है। बहुरि मिथ्या-

दर्शनतें शरीरादिकका स्वरूप अन्यथा ही भासै है। अनित्यको नित्य मानै, भिन्नको अभिन्न मानें, दुःख के कारणको सुखका कारण मानै, दुःखको सुख मानै इत्यादि विपरीत भासै है। ऐसे जीव अजीव तत्त्वनिका अयथार्थज्ञान होते अयथार्थ श्रद्धान हो है।

बहुरि इस जीवके माहके उदयतें मिथ्यात्व कषायादिक भाव हो हैं। तिनकों अपना स्वभाव मानै है, कर्म उपाधितें भए न जानै है। दर्शन ज्ञान उपयोग अर ए आस्रवभाव तिनकों एक मानै है। जातें इनका आधारभूत तो एक आत्मा अर इनका परिणमन एकै काल होइ, तातें याकों भिन्नपनो न भासै अर भिन्नपनो भासनेका कारण जो विचार है सो मिथ्यादर्शनके बलतें होइ सकै नाहीं। बहुरि ए मिथ्यात्व कपायभाव आकुलता लिए है, तातें वर्तमान दुःखमय हैं अर कर्मबंधके कारण हैं तातें आगामी दुःख उपजावेंगे, तिनको ऐसें न मानै है। आप भला जानि इनभावनिरूप होइ प्रवर्त्तै है। बहुरि यहु दुःखी तो अपने इन मिथ्यात्व कषायभावनितें होइ अर वृथा ही औरनिकों दुःख उपजावनहारे मानैहै। जैसें दुःखीतो मिथ्यात्वश्रद्धानतें होइ अर अपने श्रद्धानके अनुसार जो पदार्थ न प्रवर्त्तै ताकों दुःखदायक मानै। बहुरि दुःखी तो क्रोधतै हो है। अर जासो क्रोध किया होय ताको दुःखदायक मानै। दुःखी तो लोभतें होइ अर इष्ट वस्तुकी अप्राप्तिकों दुःखदायक मानै, ऐसें ही अन्यत्र जानना। बहुरि इन भावनिका जैसा फल लागै तैसा न भासै है। इनकी तीव्रताकरि नरकादिक हो है, मन्दताकरि स्वर्गादिक हो है। तहां घनी थोरी आकुलता हो है सो भासै नाही, तातै बुरे न लागै हैं। कारण कहा

है—ए आपके किए भासे तिनकौं बुरे कैसें मानै ? बहुरि ऐसें ही आस्रव तत्वका अयथार्थ ज्ञान होतें अयथार्थ श्रद्धान हो है।

बहुरि इन आस्रवभावनिकरि ज्ञानावरणादिकर्मनिका बंध हो है। तिनका उदय होतें ज्ञानदर्शनका हीनपना होना, मिथ्यात्व-कषायरूप परिणमन, चाह्या न होना, सुख-दुःखका कारन मिलना, शरीर सयोग रहना, गतिजाति शरीरादिकका निपजना, नीचा ऊँचा कुल पावना होय। सो इनके होनेविषें मूल कारन कर्म है। ताकौं तो पहिचानै नाही, जाते यहु सूक्ष्म है, याकौं सूझता नाहीं। अर वह आपको इन कार्यनिका कर्ता दोसै नाहीं, तातें इनके होनेविषें कै तो आपको कर्त्ता मानै, कै काहू औरको कर्त्ता मानै। अर आपका वा अन्यका कर्त्तापना न भासै तो गहलरूप होई भवितव्य मानै। ऐसें ही बधतत्वका अयथार्थ ज्ञान होते अयथार्थ श्रद्धान हो है।

बहुरि आस्रवका अभाव होना सो सवर है। जो आस्रवको यथार्थ न पहिचानै, ताके संवरका यथार्थश्रद्धान कैसे होइ? जैसें काहूकै अहित आचरण है, वाकों वह अहित न भासै तो ताके अभावको हितरूप कैसे मानै? तैसे ही जीवकै आस्रव की प्रवृत्ति है। याकों यहु अहित न भासै तो ताके अभावरूप संवरको कैसें हित मानै। बहुरि अनादितै इस जीवकै आस्रवभाव ही भया, संवर कबहू न भया, तातै सवर का होना भासै नाहीं। संवर होते सुख हो है सो भासै नाही। संवरतै आगामी दुःख न होसी सो भासै नाहीं। तातै आस्रवका तो संवर करै नाहीं अर तिन अन्य पदार्थनिकों दुःखदायक मानै है। तिनहीके न होने का उपाय किया करै है सो वे

अपने आधीन नाहीं, वृथा ही खेदखिन्न हो है। ऐसें संवर तत्वका अयथार्थ ज्ञान होतें अयथार्थ श्रद्धान हो है।

बहुरि बंधका एकदेश अभाव होना सो निर्जरा है। जो बंधको यथार्थ न पहिचानै, ताके निर्जराका यथार्थ श्रद्धान कैसे होय? जैसे भक्षण किया हुवा विष आदिकतें दुःख होता न जानै तो ताके उषालक्ष्का उपायको कैसे भला जानै। तैसे बंधनरूप किए कर्मनितै दुःख होता न जानै तो तिनकी निर्जराका उपायको कैसें भला जानै। बहुरि इस जीवकै इन्द्रियनितै सूक्ष्मरूप जे कर्म तिनका तो ज्ञान होता नाहीं। बहुरि तिनविषै दुःखकू कारणभूत शक्ति है ताका ज्ञान नाही। तातें अन्य पदार्थनिहीके निमित्तको दुःखदायक जानि तिनके ही अभाव करनेका उपाय करै है सो वे अपने आधीन नाही। बहुरि कदाचित दुःख दूरि करनेके निमित्त कोई इष्ट सयोगादि कार्य बनै है सो वह भी कर्मके अनुसार बनै है। तातें तिनका उपायकरि वृथा ही खेद करै है। ऐसे निर्जरातत्वका अयथार्थ ज्ञान होतें अयथार्थ श्रद्धान हो है।

बहुरि सर्व कर्मबंधका अभाव ताका नाम मोक्ष है। जो बंधको वा बंधजनित सर्व दुःखनिको नाहीं पहिचानै, ताके मोक्षका यथार्थ श्रद्धान कैसे होइ। जैसे काहूकै रोग है, वह रोगको वा रोग-जनित दुःखनिको न जानै तो सर्वथा रोगके अभावको कैसे भला जानै? तैसें याकै कर्मबंधन है, यहु तिस बंधनको वा बंधजनित दुःखको न जानै तो सर्वथा बंधके अभावको कैसे भला जानै? बहुरि इस जीवकै कर्मका वा तिनकी शक्तिका तोज्ञा न नाही, तातै बाह्यपदार्थ

* नष्ट करना

निको दु:खका कारन जानि तिनके सर्वथा अभाव करनेका उपाय करे है। अर यहु तो जानै,सर्वथा दु:ख दूर होनेका कारन इष्ट सामग्रीनिको मिलाय सर्वथा सुखी होना सो कदाचित् होय सकै नाही। यहु वृथा ही खेद करै है। ऐसैं मिथ्यादर्शनतैं मोक्षतत्वका अयथार्थ ज्ञान होनेतैं अयथार्थ श्रद्धान हो है। या प्रकार यहु जीव मिथ्यादर्शनतै जीवादि सप्त तत्व जे प्रयोजनभूत हैं तिनका अयथार्थ श्रद्धान करै है। बहुरि पुण्यपाप हैं ते इनहीके विशेष है। सो इन पुण्यपापनिकी एक जाति है तथापि मिथ्यादर्शनतै पुण्यको भला जानै है, पापको बुरा जानै है। पुण्यकरि अपनी इच्छाके अनुसार किंचित् कार्य बनै है, ताको भला जानै है। पापकरि इच्छाके अनुसार कार्य न बनै है, ताको बुरा जानै है सो दोनों ही आकुलताके कारण हैं, तातै बुरे ही हैं। बहुरि यहु अपनी मानितै तहाँ सुख दु:ख मानै है। परमार्थतै जहाँ आकुलता है तहाँ दु:ख ही है। तातै पुण्यपापके उदयको भला बुरा जानना भ्रम ही है। बहुरि केई जीव कदाचित् पुण्यपापके कारन जे शुभ अशुभ भाव तिनको भले बुरे जानै है सो भी भ्रम ही है, जातै दोऊ ही कर्मबन्धनके कारन है। ऐसै पुण्यपापका अयथार्थज्ञान होते अयथार्थ-श्रद्धान हो है। या प्रकार अतत्वश्रद्धानरूप मिथ्यादर्शनका स्वरूप कह्या। यहु असत्यरूप है तातै याहीका नाम मिथ्यत्व है। बहुरि यहु सत्यश्रद्धानतै रहित है तातै याहीका नाम अदर्शन है।

मिथ्याज्ञानका स्वरूप

अब मिथ्याज्ञानका स्वरूप कहिए है—प्रयोजनभूत जीवादि

तत्वनिका अयथार्थ जानना ताका नाम मिथ्याज्ञान है। तार्कार तिनके जाननेविषै संशय विपर्यय अनध्यवसाय हो है। तहां ऐसे है कि ऐसे है, ऐसा परस्पर विरुद्धता लिए दोयरूप ज्ञान ताका नाम संशय है. जैसें 'मैं आत्मा हू कि शरीर हूँ' ऐसा जानना। बहुरि ऐसे ही है,ऐसा वस्तुस्वरूपतें विरुद्धता लिए एक रूप ज्ञान ताका नाम विपर्यय है, जैसे 'मै शरीर हूँ' ऐसा जानना। बहुरि किछु है, ऐसा निर्द्धाररहित विचार ताका नाम अनध्यवसाय है जैसे 'मैं कोई हूँ' ऐसा जानना। या प्रकार प्रयोजनभूत जीवादि तत्वनिविषै संशय विपर्यय अनध्यवसायरूप जो जानना होय ताका नाम मिथ्याज्ञान है। बहुरि अप्रयोजनभूत पदार्थनिको यथार्थ जानै वा अयथार्थ जानै ताकी अपेक्षा मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान नाम नाही है। जैसे मिथ्यादृष्टि जेवरीको जेवरी जानै तो सम्यग्ज्ञान नाम न होय अर सम्यग्दृष्टि जेवरीको सांप जानै तो मिथ्याज्ञान नाम न होय।

इहां प्रश्न –जो प्रत्यक्ष सांचा झूठा ज्ञानको सम्यग्ज्ञान मिथ्याज्ञान कैसे न कहिए ?

ताका समाधान—जहां जाननेहीका सांच झूठ निर्द्धार करनेही का प्रयोजन होय तहां तो कोई पदार्थ है ताका सांचा झूठा जाननेकी अपेक्षा ही मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान नाम पावै है। जैसे परोक्ष-प्रमाणका वर्णनविषै कोई पदार्थ हो है ताका सांचा जानने रूप सम्यग्ज्ञानका ग्रहण किया है। संशयादिरूप जाननेको अप्रमाणरूप मिथ्याज्ञान कह्या है। बहुरि इहां संसार मोक्षके कारणभूत सांचा झूठा जाननेका निर्द्धार करना है सो जेवरी सर्पादिकका यथार्थ वा

अन्यथा ज्ञान संसार मोक्षका कारण नाही । तातैं तिनकी अपेक्षा इहां मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान न कह्या । इहां प्रयोजनभूत जीवादिक-तत्वनिहीका जाननेकी अपेक्षा मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान कह्या है । इस ही अभिप्रायकरि सिद्धान्तविषैं मिथ्यादृष्टिका तो सर्वजानना मिथ्याज्ञान ही कह्या अर सम्यग्दृष्टिका सर्वजानना सम्यग्ज्ञान कह्या।

इहाँ प्रश्न–जो मिथ्यादृष्टिकै जीवादि तत्वनिका अयथार्थ जानना है ताको मिथ्याज्ञान कहो। जेवरी सर्पादिकके यथार्थ जाननेको तो सम्यग्ज्ञान कहो ?

ताका समाधान – मिथ्यादृष्टि जानै है, तहाँ वाकै सत्ता असत्ता का विशेष नाहीं है। तातै कारणविपर्यय वा स्वरूपविपर्यय वा भेदाभेद विपर्ययको उपजावै है। तहाँ जाको जानै है ताका मूल कारणको न पहिचानै। अन्यथा कारण मानै सो तो कारण विपर्यय है। बहुरि जाको जानै ताका मूलवस्तु तत्वस्वरूप ताको नाहीं पहिचानै, अन्यथा स्वरूप मानै सो स्वरूप विपर्यय है। बहुरि जाको जानै ताको यहु इनतै भिन्न है,यहु इनतैं अभिन्न है ऐसा न पहिचानै,अन्यथा भिन्न अभिन्नपनों मानै सो भेदाभेदविपर्यय है। ऐसै मिथ्यादृष्टिकै जाननेविष विपरीतता पाइए है। जैसै मतवाला माताको भार्या मानै, भार्याको माता मानै, तैसैं मिथ्यादृष्टिकै अन्यथा जानना है। बहुरि जैसे काहू-कालविषै मतवाला माताको माता वा भार्याको भार्या भी जानै तो भी वाकै निश्चयरूप निर्द्धारकरि श्रद्धान लिए जानना न हो है। तातै वाकै यथार्थज्ञान न कहिए। तैसे मिथ्यादृष्टि काहू काल विषै किसी पदार्थको सत्य भी जानै तो भी वाकै निश्चयरूप निर्द्धारकरि श्रद्धान

लिए जानना न हो है। अथवा सत्य भी जानै परन्तु तिनकरि अपना प्रयोजन तो अयथार्थ ही साधै है तातैं वाकै सम्यग्ज्ञान न कहिए। ऐसे मिथ्यादृष्टीके ज्ञानको मिथ्याज्ञान कहिए है।

इहां प्रश्न—जो इस मिथ्याज्ञानका कारण कौन है?

ताका समाधान—मोहके उदयतै जो मिथ्यात्वभाव होय,सम्यक्त्व न होय सो इस मिथ्याज्ञानका कारण है। जैसे विषके संयोगतै भोजन भी विषरूप कहिए।तैसे मिथ्यात्वके सम्बन्धतै ज्ञान है सो मिथ्याज्ञान नाम पावै है।

इहाँ कोऊ कहै–ज्ञानावरणका निमित्त क्यों न कहो?

ताका समाधान—ज्ञानावरणके उदयतै तो ज्ञानका अभावरूप अज्ञानभाव हो है। बहुरि क्षयोपशमतै किंचित् ज्ञानरूप मतिज्ञान आदि ज्ञान हो है। जो इनविषै काहूको मिथ्याज्ञान काहूको सम्यग्ज्ञान कहिए तो दोऊहीका भाव मिथ्यादृष्टि वा सम्यग्दृष्टीकै पाइए है तातै तिन दोऊनिकै मिथ्याज्ञान वा सम्यग्ज्ञानका सद्भाव होइ जाय सो तो सिद्धान्तविषै विरुद्ध होइ। तातै ज्ञानावरणका निमित्त बनै नाही।

बहुरि इहा कोऊ पूछै कि जेवरी सर्पादिकके अयथार्थज्ञानका कौन कारण है तिसहीको जीवादि तत्वनिका अयथार्थज्ञानका कारण कहो?

ताका उत्तर—जो जाननेविषै जेता अयथार्थपना हो है तेता तो ज्ञानावरणका उदयतैं हो है। अर जेता यथार्थपना हो है तेता ज्ञानावरणके क्षयोपशमतैंहो है। जैसे जेवरीको सर्प जान्या सो यथार्थ जानने की शक्तिका कारण उदयमें हो है,तातै अयथार्थ जानै है। बहुरि जेवरी जेवरी जानी सो यथार्थ जाननेकी शक्तिका कारण क्षयोपशम है

तातें यथार्थ जानै है। तैसें ही जीवादि तत्वनिका यथार्थ जाननेकी शक्ति न होने वा होत विषै ज्ञानावरणहीका निमित्त है परन्तु जैसें काहू पुरुषकै क्षयोपशमतें दुःखकों वा सुखकों कारणभूत पदार्थनिको यथार्थ जाननेकी शक्तिहोय तहाँ जाकै असातावेदनीयका उदय होय सो दुःखकों कारणभूत जो होय तिसहीकों वेदै, सुखका कारणभूत पदार्थनिको न वेदै अर जो सुखका कारणभूत पदार्थको वेदै तो सुखी हो जाय। सो असाताका उदय होतें होय सकै नाहीं। तातें इहां दुःखको कारणभूत अर सुखको कारणभूत पदार्थ वेदनेविषै ज्ञानावरणका निमित्त नाही, असाता साता का उदय ही कारणभूत है। तैसें ही जीवकै प्रयोजनभूत जीवादितत्व, अप्रयोजनभूत अन्य तिनके यथार्थ जाननै की शक्ति होय। तह जाकै मिथ्यात्वका उदय होय सो जे अप्रयोजनभूत होय तिनहीको वेदै, जानै, अप्रयोजनभूतकों न जानै। जो प्रयोजनभूतकों जानै तो सम्यग्ज्ञान होय जाय सो मिथ्यात्वका उदय होतें होइ सकै नाहीं। तातै इहाँ प्रयोजनभूत अप्रयोजनभूत पदार्थ जाननेविषै ज्ञानावरणका निमित्त नाही, मिथ्यात्वका उदय अनुदय ही कारणभूत है। इहाँ ऐसा जानना—जहा एकेन्द्रियादिककै जीवादि तत्वनिका यथार्थ जाननेकी शक्ति ही न होय तहा तो ज्ञानावरणका उदय अर मिथ्यात्वका उदयतैं भया मिथ्याज्ञान अर मिथ्यादर्शन इन दोऊनिका निमित्त है। बहुरि जहाँ सञ्ज्ञी मनुष्यादिकै क्षयोपशमादि लब्धि होतें शक्ति होय अर न जानै तहां मिथ्यात्वके उदयहीका निमित्त जानना। याहीतें मिथ्याज्ञानका मुख्य कारण ज्ञानावरण न कह्या, मोहका उदयतें भया भाव सो ही कारण कह्या है।

बहुरि इहां प्रश्न – जो ज्ञान भए श्रद्धान हो है तातैं पहिलै मिथ्या-ज्ञान कह्यो, पीछैं मिथ्यादर्शन कह्यो ?

ताका समाधान – है तो ऐसे ही, जाने बिना श्रद्धान कैसे होय ? परन्तु मिथ्या अर सम्यक् ऐसी संज्ञा ज्ञानकै मिथ्यादर्शन सम्यग्दर्शनके निमित्ततै हो है। जैसे मिथ्यादृष्टि वा सम्यग्दृष्टी सुवर्णादि पदार्थनिको जानै तो समान है परन्तु सो ही जानना मिथ्यादृष्टिकै मिथ्याज्ञान नाम पावै, सम्यग्दृष्टिकै सम्यग्ज्ञान नाम पावै। ऐसेही सर्वमिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञानको कारण मिथ्यादर्शन सम्यग्दर्शन जानना। तातैं जहां सामान्यपने ज्ञान श्रद्धानका निरूपण होय तहाँ तो ज्ञान कारणभूत है ताकों पहिले कहना अर श्रद्धान कार्यभूत है ताकों पीछे। बहुरि जहाँ मिथ्या सम्यग्ज्ञान श्रद्धानका निरूपण होय तहां श्रद्धान कारणभूत है ताकों पहिले कहना, ज्ञान कार्यभूत है ताकों पीछे कहना।

बहुरि प्रश्न—जो ज्ञान श्रद्धान तो युगपत् हो है, इन विषै कारण कार्यपना कैसें कहो हो ?

ताका समाधान —वह होय तो वह होय इस अपेक्षा कारण कार्यपना हो है। जैसें दीपक अर प्रकाश युगपत् हो है तथापि दीपक होय तो प्रकाश होय, तातैं दीपक कारण है, प्रकाश कार्य है। तैसे ही ज्ञान श्रद्धानकै मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञानकै वा सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान कै कारणपना जानना।

बहुरि प्रश्न—जो मिथ्यादर्शन के संयोगतै ही मिथ्याज्ञान नाम पावै है तो एक मिथ्यादर्शन ही संसारका कारण कहना था, मिथ्या-ज्ञान जुदा काहेकों कह्या ?

ताका समाधान - ज्ञानहीकी अपेक्षा तो मिथ्यादृष्टि वा सम्यग्दृष्टि के क्षयोपशमसे भया यथार्थ ज्ञान तामें किछु विशेष नाहीं अर यहु ज्ञान केवलज्ञानविषै भी जाय मिलै है, जैसें नदी समुद्र मे मिलै। तातें ज्ञानविषें किछु दोष नाही परन्तु क्षयोपशम ज्ञान जहां लागै तहां एक ज्ञेयविषै लागै सो यहु मिथ्यादर्शनके निमित्ततै अन्य ज्ञेयनिविषै तो ज्ञान लागै अर प्रयोजनभूतजीवादि तत्वनिका यथार्थ निर्णय करनेविषें न लागै सो यहु ज्ञान विषे दोष भया। याकों मिथ्याज्ञान कह्या। बहुरि जीवादि तत्वनिका यथार्थ श्रद्धान न होय सो यहु श्रद्धानविषे दोष भया। याको मिथ्यादर्शन कह्या। ऐसैं लक्षणभेदतें मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान जुदा कह्या। ऐसैं मिथ्याज्ञान का स्वरूप कह्या। इसहीकों तत्वज्ञानके अभावतें अज्ञान कहिए है। अपना प्रयोजन न सधै तातै याहीकों कुज्ञान कहिए है।

मिथ्याचारित्रका स्वरूप

अब मिथ्याचारित्रका स्वरूप कहिए है—चारित्रमोहके उदयतै कषाय भाव होइ ताका नाम मिथ्याचारित्र है। इहा अपने स्वभाव-रूप प्रवृत्ति नाही, झूठी परस्वभावरूप प्रवृत्ति किया चाहै सो बनै नाही, तातै याका नाम मिथ्याचारित्र है। सोइ दिखाइए है—अपना स्वभाव तो दृष्टा ज्ञाता है सो आप केवल देखनहारा जाननहारा तो रहै नाहीं। जिन पदार्थनिको देखै जानै तिन विषै इष्ट अनिष्टपनो मानै, तातें रागी द्वेषी होय काहूका सद्भावको चाहै, काहूका अभावको चाहै सो उनका सद्भाव अभाव याका किया होता नाहीं। जातैं

कोई द्रव्य कोई द्रव्यका कर्ता हर्ता है नाहीं। सर्व द्रव्य अपने अपने स्वभावरूप परिणमै हैं। यहु वृथा ही कषाय भावकरि आकुलित हो है। बहुरि कदाचित् जैसे आप चाहै तैसे ही पदार्थ परिणमै तौ अपना परिणमाया तो परिणम्या नाहीं। जैसें गाडा चालै है अर वाकों बालक धकायकरि ऐसा मानै कि याकों मैं चलाऊँ हूँ। सो वह असत्य मानै है; जो वाका चलाया चालै है तो वह न चालै तब क्यों न चलावै ? तैसे पदार्थ परिणमें है अर उनको यहु जीव अनुसारी होय करि ऐसा मानै जो याको मैं ऐसे परिणमाऊँ हूँ। सो यहु असत्य मानै है। जो याका परिणमाया परिणमै तो वह तैसे न परिणमै तब क्यो न परिणमावै ? सो जैसे आप चाहै तैसे तो पदार्थ का परिणमन कदाचित् ऐसे ही बनाव बनै तब हो है, बहुत परिणमन तो आप न चाहै तैसें ही होता देखिए है। तातै यहु निश्चय है, अपना किया काहू का सद्भाव अभाव होइ ही नाहीं। कषायभाव करनेतै कहा होय ? केवल आप ही दुःखी होय। जैसे कोऊ विवाहादि कार्य विषे जाका किछु कह्या न होय अर वह आप कर्ता होय कषाय करै तो आप ही दुःखी होय तैसे जानना। तातै कषायभाव करना ऐसा है जैसा जल का बिलोवना किछु कार्यकारी नाही। तातै इन कषायनिकी प्रवृत्ति को मिथ्याचारित्र कहिए है। बहुरि कषायभाव हो है तो पदार्थनिकों इष्ट अनिष्ट मानै ही है। सो इष्ट अनिष्ट मानना भी मिथ्या है। जातै कोई पदार्थ इष्ट अनिष्ट है नाही। कैसें ? सो कहिए है।

इष्ट-अनिष्टको मिथ्याकल्पना

आपको सुखदायक उपकारी होय ताको इष्ट कहिए। आपको दुःख

दायक अनुपकारो होय ताको अनिष्ट कहिए। सो लोकमें सर्व पदार्थ अपने २ स्वभावहीके कर्त्ता हैं। कोऊ काहूकों सुख दुःखदायक उपकारी अनुपकारी है नाहीं। यह जीव अपने परिणामनिविषै तिनको सुखदायक उपकारी मानि इष्ट जानै है अथवा दुःखदायक अनुपकारी जानि अनिष्ट मानै है। जातै एक ही पदार्थ काहूको इष्ट लागै है, काहूको अनिष्ट लागैहै। जैसे जाको वस्त्र न मिलै ताकों मोटा वस्त्र इष्ट लागै अर जाको महीन वस्त्र मिलै ताको वह अनिष्ट लागै है। सूकरादिकको विष्टा इष्ट लागै है, देवादिकको अनिष्ट लागै है। काहूको मेघवर्षा इष्ट लागै है, काहूको अनिष्ट लागै है। ऐसै ही अन्य जानने। बहुरि याही प्रकार एक जीवको भी एक ही पदार्थ काहू कालविषै इष्ट लागै है, काहू कालविषै अनिष्ट लागै है। बहुरि यहु जीव जाको मुख्यपने इष्ट मानै सो भी अनिष्ट होता देखिए है, इत्यादि जानने। जैसे शरीर इष्ट है सो रोगादिसहित होय तब अनिष्ट होइ जाय। पुत्रादिक इष्ट है सो कारणपाय अनिष्ट होते देखिए हैं,इत्यादि जानने। बहुरि यहु जीव जाको मुख्यपने अनिष्ट मानै सो भी इष्ट होता देखिये है। जैसे गाली अनिष्ट लागै है सो सासरेमें इष्ट लागै है, इत्यादि जानने। ऐसै पदार्थनिविषै इष्ट अनिष्टपनो है नाही। जो पदार्थविषै इष्ट अनिष्टपनो होता तो जो पदार्थ इष्ट होता सो सर्वको इष्ट ही होता, जो अनिष्ट होता सो अनिष्ट ही होता, सो है नाही। यहु जीव आप ही कल्पनाकरि तिनको इष्ट अनिष्ट मानै है सो यहु कल्पना झूठी है। बहुरि पदार्थ है सो सुखदायक उपकारी वा दुःखदायक अनुपकारी हो है सो आपही नाहीं हो है, पुण्य पापके उदयके अनुसारि हो है।

जाकै पुण्यका उदय होहै ताकै पदार्थनिका संयोग सुखदायक उपकारी हो है, जाकै पापका उदय हो है ताकै पदार्थनिका संयोग दुःखदायक अनुपकारी होहै सो प्रत्यक्ष देखिये है। काहूकै स्त्रीपुत्रादिक सुखदायक हैं, काहूकै दुःखदायक है;व्यापार किए काहूकै नफ़ा हो है,काहूकै टोटा हो है; काहूकै शत्रु भी किंकर हो हैं,काहूकै पुत्र भी अहितकारी हो हैं। तातैं जानिए है, पदार्थ आप ही इष्ट अनिष्ट होते नाहीं, कर्म उदयके अनुसार प्रवर्त्तैं हैं। जैसें काहूकै किंकर अपने स्वामीके अनुसार किसी पुरुषको इष्ट अनिष्ट उपजावै तो किछू किंकरनिका कर्त्तव्य नाहीं,उनके स्वामीका कर्तव्य है। जो किंकरनिहीकों इष्ट अनिष्ट मानै सो झूठ है। तैसे कर्मके उदयते प्राप्तभए पदार्थ कर्मके अनुसार जीवको इष्टअनिष्ट उपजावैं तो किछु पदार्थनिका कर्तव्य नाही, कर्मका कर्त्तव्य है। जो पदार्थकों इष्ट अनिष्ट मानै सो झूठ है। तातै यहु बात सिद्ध भई कि पदार्थनिको इष्ट अनिष्ट मानि तिनविषै रागद्वेष करना मिथ्या है।

इहाँ कोऊ कहै कि बाह्य वस्तुनिका सयोग कर्म निमित्ततैं बनै है तो कर्मनिविषै तो राग द्वेष करना।

ताका समाधान—कर्म तो जड़ हैं, उनके किछू सुख दुःख देनेकी इच्छा नाही। बहुरि वे स्वयमेव तो कर्मरूप परिणमें नाही,याके भाव-निके निमित्ततैं कर्मरूप हो है। जैसें कोऊ अपने हाथकरि भाटा(पत्थर) लेई अपना सिर फोरै तो भाटाका कहा दोष है? तैसे ही जीव अपने रागादिक भावनिकरि पुद्गलकों कर्मरूप परिणमाय अपना बुरा करै तो कर्मके कहा दोष है। तातैं कर्मस्यों भी राग द्वेष करना मिथ्या है। या प्रकार परद्रव्यनिकों इष्ट अनिष्ट मानि रागद्वेष करना मिथ्या है।

जो परद्रव्य इष्ट अनिष्ट होता अर तहाँ राग द्वेष करता तो मिथ्या नाम न पाता। वे तो इष्ट अनिष्ट हैं नाहीं अर यहु इष्ट अनिष्ट मानि रागद्वेष करै, तातैं इन परिणामनिको मिथ्या कह्या है। मिथ्यारूप जो परिणमन ताका नाम मिथ्याचारित्र है।

अब इस जीवके रागद्वेष होय है, ताका विधान वा विस्तार दिखाइए है—

राग-द्वेषकी प्रवृत्ति

प्रथम तो इस जीवकै पर्यायविषै अहंबुद्धि है सो आपको वा शरीर को एक जानि प्रवर्तै है। बहुरि इस शरीरविषैं आपको सुहावै ऐसी इष्ट अवस्था हो है तिसविषै राग करै है। आपको न सुहावै ऐसी अनिष्ट अवस्था हो है तिसविषै द्वेष करै है। बहुरि शरीरको इष्ट अवस्थाके कारणभूत बाह्य पदार्थनिविषै तो राग करै है अर ताके घातकनिविषै द्वेष करै है। बहुरि शरीरको अनिष्ट अवस्थाके कारणभूत बाह्यपदार्थनिविषै तो द्वेष करै है अर ताके घातकनिविषै राग करै है। बहुरि इन विषैं जिन बाह्य पदार्थनिसों राग करै है तिनके कारणभूत अन्य पदार्थनिविषै राग करै है, तिनके घातकनिविषै द्वेष करै है। बहुरि जिन बाह्य पदार्थनिस्यो द्वेष करै है तिनके कारणभूत अन्य पदार्थ निविषै द्वेष करै है, तिनके घातकनिविषै राग करै है। बहुरि इन विषैं भी जिनस्यों राग करै है तिनके कारण वा अन्य पदार्थनिविषै राग वा द्वेष करै है अर जिनस्यों द्वेष करै है तिनके कारण वा घातक अन्य पदार्थनिविषै द्वेष वा राग करै है। ऐसैं ही रागद्वेषकी परम्परा प्रवर्तै है। बहुरि केई बाह्य पदार्थ शरीरको अवस्थाको कारण नाहीं

तिन विषैं भी रागद्वेष करै है। जैसें गऊ आदिके पुत्रादिकतैं किछु शरीरका इष्ट होय नाहीं तथापि तहां राग करै है। जैसें कूकरा आदिकै बिलाई आदिक आवतें किछू शरीर का अनिष्ट होय नाहीं तथापि तहाँ द्वेष करै है। बहुरि केई वर्ण गन्ध शब्दादिकके अवलोकनादिकतें शरीरका इष्ट होना नाही तथापि तिनविषै राग करै है। केई वर्णादिकके अवलोकनादिकतै शरीरका अनिष्ट होता नाही तथापि तिनविषै द्वेष करै है। ऐसे भिन्न बाह्य पदार्थनिविषै रागद्वेष हो है। बहुरि इनविषै भी जिनस्यों राग करै है तिनके कारण अर घातक अन्य पदार्थनिविषैं राग वा द्वेष करै है अर जिनस्यों द्वेष करै है तिन के कारण वा घातक अन्यपदार्थ तिन विषै द्वेष वा राग करै है। ऐसै ही यहाँ भी रागद्वेषकी परम्परा प्रवर्त्ते है।

इहाँ प्रश्न--जो अन्य पदार्थनिविषै तो रागद्वेष करनेका प्रयोजन जान्या परन्तु प्रथम ही तो मूलभूत शरीरकी अवस्थाविषै वा शरीरकी अवस्थाको कारण नाहीं, तिन पदार्थनिविषै इष्ट अनिष्ट माननेका प्रयोजन कहा है ?

ताका समाधान--जो प्रथम मूलभूत शरीरकी अवस्था आदिक हैं तिन विषै भी प्रयोजन विचार राग करै तो मिथ्याचारित्र काहेकों नाम पावै। तिनविषै बिना ही प्रयोजन रागद्वेष करै है अर तिनहीके अर्थि अन्यस्यो रागद्वेष करै है तातें सब रागद्वेष परिणतिका नाम मिथ्याचारित्र कह्या है।

इहां प्रश्न--जो शरीरकी अवस्था वा बाह्य पदार्थनिविषै इष्ट अनिष्ट माननेका प्रयोजन तो भासै नाही अर इष्ट अनिष्ट माने बिना रह्या जाता नाही सो कारण कहा है ?

ताका समाधान–इस जीवकै चारित्रमोहका उदयतैं रागद्वेषभाव होय सो ए भाव कोई पदार्थका आश्रय बिना होय सकै नाही । जैसे राग होय सो कोई पदार्थ विषै होय, द्वेष होय सो कोई पदार्थ विषै ही होय । ऐसैं तिन पदार्थनिकै अर रागद्वेषकै निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है । तहाँ विशेष इतना जो केई पदार्थ तो मुख्यपने रागकों कारण हैं, केई पदार्थ मुख्यपने द्वेषकों कारण है । केई पदार्थ काहूको काहू काल विषै रागके कारण हो है, काहूको काहूकाल विषै द्वेषके कारण हो हैं । इहाँ इतना जानना–एक कार्य होने विषै अनेक कारण चाहिए हैं सो रागादिक होने विषै अतरग कारण मोहका उदय है सो तो बलवान् है अर बाह्य कारण पदार्थ है सो बलवान् नाहीं है । महामुनिनिकै मोह मन्द होते बाह्य पदार्थनिका निमित्त होतें भी रागद्वेष उपजते नाहीं । पापी जीवनिकै मोह तीव्र होते बाह्यकारण न होतें भी तिनका संकल्प ही करि रागद्वेष हो है । तातै मोहका उदय होतें रागादिक हो हैं । तहाँ जिस बाह्यपदार्थका आश्रय करि रागभाव होना होय, तिस विषै बिना ही प्रयोजन वा कछू प्रयोजन लिए इष्टबुद्धि हो है । बहुरि जिस पदार्थका आश्रय करि द्वेषभाव होना होय, तिस विषै बिना ही प्रयोजन वा किछू प्रयोजन लिए अनिष्ट बुद्धि हो है । तातें मोहका उदयतै पदार्थनिको इष्ट अनिष्ट माने बिना रह्या जाता नाही । ऐसैं पदार्थनि विषै इष्ट अनिष्ट बुद्धि होते जो रागद्वेष रूप परिणमन होय ताका नाम मिथ्याचारित्र जानना । बहुरि इन रागद्वेषनि हीके विशेष क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुन्सकवेदरूप कषायभाव है ते सर्व इस

मिथ्याचारित्रहीके भेद जानने । इनका वर्णन पूर्वे कियाही है। बहुरि इस मिथ्याचारित्रविषें स्वरूपाचरणचारित्रका अभाव है तातें याका नाम अचारित्र भी कहिए। बहुरि यहाँ परिणाम मिटे नाहीं अथवा विरक्त नाहीं, तातें याहीका नाम असयम कहिए है वा अविरति कहिए है। जातें पाँच इन्द्रिय अर मनके विषयनिविषें बहुरि पंचस्थावर अर त्रसकी हिंसा विषै स्वछन्दपना होय अर इनके त्यागरूप भाव न होय सोई असंयम वा अविरति बारह प्रकार कह्या है सो कषायभाव भए ऐसे कार्य हो हैं ताते मिथ्याचारित्रका नाम असंयम वा अविरति जानना । बहुरि इसही का नाम अव्रत जानना। जातें हिंसा, अनृत, अस्तेय, अब्रह्म, परिग्रह इन पाप कार्यनिविषै प्रवृतिका नाम अव्रत है। सो इनका मूलकारण प्रमत्तयोग कह्या है। प्रमत्तयोग है सो कषायमय है तातें मिथ्याचारित्रका नाम अव्रत भी कहिए है। ऐसे मिथ्याचारित्र का स्वरूप कह्या। या प्रकार इस ससारी जीवकै मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान मिथ्याचारित्ररूप परिणमन अनादितै पाइए है। सो ऐसा परिणमन एकेन्द्रिय आदि असज्ञीपर्यंत तो सर्व जीवनिकै पाइए है। बहुरि संज्ञो पंचेन्द्रियनिविषै सम्यग्दृष्टी बिना अन्य सर्वजीवनिकै ऐसा ही परिणमन पाइए है । परिणमनविषें जसा जहाँ सम्भवै तैसा तहाँ जानना। जैसें एकेन्द्रियादिककै इन्द्रियादिकनिकी हीनता अधिकता पाइए है वा धन पुत्रादिकका सम्बन्ध मनुष्यादिककै ही पाइये है सो इनके निमित्ततै मिथ्यादर्शनादिका वर्णन किया है । तिसविषें जैसा विशेष सम्भवै तैसा जानना। बहुरि एकेन्द्रियादिक जीव इन्द्रिय शरीरादिक का नाम जानै नाहीं हैं परन्तु तिस नामका अर्थरूप जो भाव

है तिसविषै पूर्वोक्त प्रकार परिणमन पाइए है। जैसे मैं स्पर्शनकरि स्परशू हूं, शरीर मेरा है ऐसा नाम न जानै है तथापि इसका अर्थरूप जो भाव है तिस रूप परिणमै है। बहुरि मनुष्यादिक केई नाम भी जानै हैं अर ताके भावरूप परिणमैं हैं, इत्यादि विशेष सम्भवै सो जान लेना। ऐसें ए मिथ्यादर्शनादिकभाव जीवकै अनादितें पाइये हैं, नवीन ग्रहे नाहीं। देखो याकी महिमा कि जो पर्याय धरै है तहाँ बिना ही सिखाए मोहके उदयतें स्वयमेव ऐसा ही परिणमन हो है। बहुरि मनुष्यादिककै सत्यविचार होनेके कारण मिलें तो भी सम्यक् परिणमन होय नाहीं। श्रीगुरुके उपदेशका निमित्त बनै, वे बारबार समझावें, यहु कछु विचार करै नाहीं। बहुरि आपको भी प्रत्यक्ष भासै सो तो न मानै अर अन्यथा ही मानै। कैसें ? सो कहिए है–

मरण होते शरीर आत्मा प्रत्यक्ष जुदा हो हैं। एक शरीरको छोरि आत्मा अन्य शरीर धरै है सो व्यंतरादिक अपने पूर्व भवका सम्बन्ध प्रगट करते देखिए हैं परन्तु याकै शरीरतें भिन्नबुद्धि न होय सकै है। स्त्री पुत्रादिक अपने स्वार्थके सगे प्रत्यक्ष देखिए हैं। उनका प्रयोजन न सधै तब ही विपरीत होते देखिए हैं। यहु तिन विषै ममत्व करै है अर तिनके अर्थि नरकादिकविषै गमनको कारण नाना पाप उपजावै है। धनादिक सामग्री अन्यकी अन्यकै होती देखिए है,यहु तिनको अपनी मानै है; बहुरि शरीरकी अवस्था वा बाह्यसामग्री स्वयमेव होती विनशती दीसै है, यहु वृथा आप कर्ता हो है। तहाँ जो अपने मनोरथ अनुसार कार्य होय ताको तो कहै मैं किया अर अन्यथा होय ताकों कहै मैं कहा करूं ? ऐसें ही होना था वा ऐसें क्यों

भया ऐसा मानै। सो कै तो सर्वका कर्त्ता ही होना था, कै अकर्ता रहना था सो विचार नाहीं। बहुरि मरण अवश्य होगा ऐसा जानै परन्तु मरणका निश्चयकरि किछू कर्तव्य करै नाही, इस पर्याय सम्बन्धी ही यत्न करै है। बहुरि मरणका निश्चयकरि कबहू तो कहै मैं मरूँगा. शरीरको जलावेंगे। कबहू कहै मोको जलावेंगे। कबहू कहै जस रह्या तो हम जीवते ही है। कबहू कहै पुत्रादिक रहेंगे तो मै ही जीऊंगा। ऐसें बाउलाकीसी नाईं वाकै किछू सावधानी नाही। बहुरि आपको परलोकविषै प्रत्यक्ष जाता जानै,ताका तो इष्ट अनिष्ट का किछू उपाय नाही अर इहां पुत्र पोत्रा आदि मेरी संततिविषै घनेकाल ताईं इष्ट रह्या कर अर अनिष्ट न होइ,ऐसें अनेक उपाय करै है। काहूका परलोक भए पीछे इस लोककी सामग्रीकरि उपकार भया देख्या नाहीं परन्तु याकै परलोक होनेका निश्चय भए भी इस लोककी सामग्रीहीका यतन रहै है। बहुरि विषयकषायकी प्रवृत्तिकरि वा हिसादि कार्यकरि आप दुःखी होय. खेदखिन्न होय, औरनिका वैरी होय, इस लोकविषै निद्य होय, परलोकविषै बुरा होय सो प्रत्यक्ष आप जानै तथापि तिनही विषै प्रवर्त्तै। इत्यादि अनेक प्रकार प्रत्यक्ष भासै ताकों भी अन्यथा श्रद्धै जानै आचरै, सो यह मोहका माहात्म्य है ऐसै यहु मिथ्यादर्शन ज्ञानचारित्ररूप अनादितै जीव परिणमै है। इस ही परिणमनकरि ससारविषै अनेक प्रकार दुःख उपजावनहारे कर्मनिका सम्बन्ध पाइये है। एई भाव दुःखनिके बीज है, अन्य कोई नाही। तातै हे भव्य जो दुखतै मुक्त भया चाहै तो इन मिथ्यादर्शनादिक विभावनिका अभाव करना, यहु ही कार्य है, इस कार्यके किए तेरा परम कल्याण होगा।

इति श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रविषै मिथ्यादर्शनज्ञान-चारित्रका निरूपणरूप चौथा अधिकार सम्पूर्ण भया ।।४।।

पाँचवाँ अधिकार

विविध मत-समीक्षा

दोहा

बहुविधि मिथ्या गहनकरि, मलिन भयोनिज भाव।
ताको होत अभाव ह्वै, सहजरूप दरसाव॥ १॥

अथ यहु जीव पूर्वोक्त प्रकारकरि अनादितैं मिथ्यादर्शनज्ञान-चारित्ररूप परिणमै है ताकरि संसारविषै दुःख सहतो संतो कदाचित् मनुष्यादि पर्यायनि विषै विशेष श्रद्धानादि करनेकी शक्तिको पावै। तहाँ जो विशेष मिथ्याश्रद्धानादिकके कारणनिकरि तिन मिथ्याश्रद्धानादिकको पोषै तो तिस जीवका दुःखतैं मुक्त होना अति दुर्लभ हो है। जैसे कोई पुरुष रोगी है सो किछू सावधानीकों पाय कुपथ्य सेवन करै तो उस रोगी का सुलझना कठिन ही होय। तैसे यहु जीव मिथ्यात्वादि सहित है सो किछू ज्ञानादि शक्तिकों पाय विशेष विपरीत श्रद्धानादिकके कारणनिका सेवन करै तो इस जीवका मुक्त होना कठिन ही होय। तातैं जैसे वैद्य कुपथ्यनिका विशेष दिखाय तिनके सेवनकों निषेधै तैसे ही इहां विशेष मिथ्याश्रद्धानादिकके कारणनिका विशेष दिखाय तिनका निषेध करिए है। इहां अनादितै जे मिथ्यात्वादि भाव पाइए है ते तो अगृहीतमिथ्यात्वादि जानने, जातैं ते नवीन ग्रहण किए नाही। बहुरि तिनके पुष्ट करनेके कारणनिकरि विशेष मिथ्यात्वादिभाव होय ते गृहीतमिथ्यात्वादि जानने।

तहाँ अगृहीतमिथ्यात्वादिकका तो पूर्वे वर्णन किया है सो ही जानना अर गृहीतमिथ्यात्वादिकका अब निरूपण कीजिए है सो जानना।

गृहीत मिथ्यात्व

कुदेव कुगुरु कुधर्म अर कल्पिततत्त्व तिनका श्रद्धान सो तो मिथ्यादर्शन है। बहुरि जिनके विषै विपरीत निरूपणकरि रागादि पोषे होंय ऐसे कुशास्त्र तिनविषै श्रद्धानपूर्वक अभ्यास सो मिथ्याज्ञान है। बहुरि जिस आचरणविषै कषायनिका सेवन होय अर ताकों धर्मरूप अंगीकार करै सो मिथ्याचारित्र है। अब इनका विशेष दिखाइए हैं—इन्द्र लोकपाल इत्यादि; बहुरि अद्वैत ब्रह्म, राम, कृष्ण, महादेव बुद्ध, खुदा, पीर, पैगम्बर इत्यादि; बहुरि हनुमान, भैरू, क्षेत्रपाल, देवी, दिहाडी, सती इत्यादि; बहुरि शीतला, चौथि, साँझी, गणगोरि, होली इत्यादि; बहुरि सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, अऊत, पितर, व्यन्तर इत्यादि; बहुरि गऊ, सर्प इत्यादि; बहुरि अग्नि, जल, वृक्ष इत्यादि; बहुरि शस्त्र दवात, बासण इत्यादि अनेक तिनका अन्यथा श्रद्धानकरि तिनको पूजे। बहुरि तिनकरि अपना कार्य सिद्ध किया चाहैं सो वे कार्य सिद्धिके कारण नाही, तातै ऐसे श्रद्धानको गृहीतमिथ्यात्व कहिए है। तहाँ तिनका अन्यथा श्रद्धान कैसे हो है सो कहिए है—

सर्वव्यापी अद्वैत ब्रह्म

अद्वैतब्रह्मको ❀ सर्वव्यापी सर्वका कर्त्ता मानै सो कोई है नाही।

❀"सर्वं वैखल्विदं ब्रह्म" छान्दोग्योपनिषद् प्र० खं० १४ मं० १
"नेह नानास्ति किंचन" कण्ठोपनिषद् अ० २ व० ४१ मं०११
ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद ब्रह्मदक्षिणतपश्चोत्तरेण।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्॥ मुण्डको०खंड२,मं०११

प्रथम वाकों सर्वव्यापी मानें सो सर्व पदार्थ तो न्यारे न्यारे प्रत्यक्ष हैं वा तिनके स्वभाव न्यारे न्यारे देखिए हैं, इनकों एक कैसें मानिए है ? इनका मानना तो इन प्रकारनि करि है - एक प्रकार तो यहु है जो सर्व न्यारे न्यारे हैं तिनके समुदायकी कल्पनाकरि ताका किछू नाम धरिए । जैसें घोटक हस्ती इत्यादि भिन्न भिन्न हैं तिनके समुदायका नाम सैना है, तिनतें जुदा कोई सैना वस्तु नाही । सो इस प्रकारकरि सर्वपदार्थनिका जो नाम ब्रह्म है तो ब्रह्म कोई जुदा वस्तु तो न ठहरया, कल्पना मात्र ही ठहरया । बहुरि एक प्रकार यहु है जो व्यक्ति अपेक्षा तो न्यारे न्यारे हैं तिनको जाति अपेक्षा कल्पना करि एक कहिए है । जैसे सौ घोटक (घोडा) हैं ते व्यक्ति अपेक्षा तो जुदे जुदे सो ही हैं तिनके आकारादिककी समानता देखि एक जाति कहे, सो वह जाति तिनतें जुदो ही तो कोई है नाही । सो इस प्रकार करि जो सबनिकी कोई एक जाति अपेक्षा एक ब्रह्म मानिए है तो ब्रह्म जुदा तो कोई न ठहरया, इहाँ भी कल्पना मात्र ही ठहरया । बहुरि एक प्रकार यहु है जो पदार्थ न्यारे न्यारे हैं तिनके मिलापतें एक स्कध होय ताकों एक कहिए । जैसे जलके परमाणू न्यारे न्यारे हैं तिनका मिलाप भए समुद्रादि कहिए अथवा जैसे पृथवी के परमाणूनिका मिलाप भए घट आदि कहिए सो इहाँ समुद्रादि वा घटादिक हैं ते तिन परमाणूनितें भिन्न कोई जुदा तो वस्तु नाही । सो इस प्रकार करि जो सर्व पदार्थ न्यारे २ हैं परन्तु कदाचित् मिलि एक हो जाय हैं सो ब्रह्म है, ऐसें मानिए तो इनतें जुदा तो कोई ब्रह्म न ठहरया । बहुरि एक प्रकार यहु है जो अंग तो न्यारे न्यारे हैं अर

जाके अग हैं सो अंगी एक है। जैसें नेत्र, हस्त, पादादिक भिन्न भिन्न हैं अर जाके ए है सो मनुष्य एक है। सो इस प्रकार करि जो सर्व पदार्थ तो अग है अर जाके ए है सो अगी ब्रह्म है। यहु सर्व लोक विराट स्वरूप ब्रह्मका अंग है, ऐसें मानिए तो मनुष्यके हस्तपादादिक अगनिकै परस्पर अतराल भए तो एकत्वपना रहता नाही। जुड़े रहें ही एक शरीर नाम पावै। सो लोकविषै तो पदार्थनिकै अंतराल परस्पर भासै है। याका एकत्वपना कैसें मानिए? अंतराल भए भी एकत्व मानिए तो भिन्नपना कहाँ मानिएगा।

इहा कोऊ कहै कि समस्त पदार्थनिके मध्यविषै सूक्ष्मरूप ब्रह्मके अग है तिनकरि सर्व जुरि रहे है, ताकों कहिए है—

जो अग जिस अगतै जुरचा है, तिसहीतै जुरचा रहै है कि टूटि टूटि अन्य अन्य अगनिस्यो जुरचा करै है। जो प्रथम पक्ष ग्रहेगा तो सूर्यादि गमन करै है, तिनकी साथि जिन सूक्ष्म अगनितै वह जुरै हैं ते भी गमन करै। बहुरि उनकी गमन करते व सूक्ष्म अग अन्य स्थूल अगनितै जुरे रहै, ते भी गमन करै है सो ऐसै सर्व लोक अस्थिर होइ जाय। जसै शरीरका एक अग खीचे सर्व अग खीच जाय, तैसे एक पदार्थको गमनादि करते सर्व पदार्थनिका गमनादि होय सो भासै नाही। बहुरि जो द्वितीय पक्ष ग्रहेगा तो अग टूटनेतै भिन्नपना होय ही जाय तब एकत्वपना कैसे रह्या? तातै सर्वलोक के एकत्वको ब्रह्म मानना कैसे सम्भवै? बहुरि एक प्रकार यहु है जो पहलै एक था, पीछैं अनेक भया बहुरि एक होय जाय तातै एक है। जैसे जल एक था सो बासणनिमैं जुदा जुदा भया बहुरि मिलै तब एक होय

वा जैसे सोनाका गदा* एक था सो कंकण कुंडलादिरूप भया बहुरि मिलकरि सोनाका गदा होय जाय। तैसें ब्रह्म एक था पीछें अनेक-रूप भया बहुरि एक होयगा तातें एक ही है। इस प्रकार एकत्व मानै है तो जब अनेक रूप भया तब जरचा रह्या कि भिन्न भया। जो जुरचा कहेगा तो पूर्वोक्त दोष आवेगा। भिन्न भया कहेगा तो तिस काल तो एकत्व न रह्या। बहुरि जब सुवर्णादिकको भिन्न भए भी एक कहिए है सो तो एक जाति अपेक्षा कहिए है सो सर्व पदार्थनि की एक जाति भासै नाहीं। कोऊ चेतन है, कोऊ अचेतन है इत्यादि अनेकरूप है तिनकी एक जाति कैसें कहिए ? बहुरि पहिले एक था पीछें भिन्न भया मानै है तो जैसे एक पाषाणादि फूटि टुकड़े होय जाय है तैसे ब्रह्मके खड होय गए, बहुरि तिनका एकट्ठा होना मानै है तो तहां तिनका स्वरूप भिन्न रहै है कि एक होइ जाय है। जो भिन्न रहै है तो तहाँ अपने अपने स्वरूपकरि भिन्न ही है अर एक होइ जाय है तो जड भी चेतन होइ जाय वा चेतन जड होइ जाय। तहाँ अनेक वस्तुनिका एक वस्तु भया तब काहू कालविषैं अनेक वस्तु, काहू कालविषै एक वस्तु ऐसा कहना बनै। अनादि अनन्त एक ब्रह्म है ऐसा कहना बनै नाहीं। बहुरि जो कहेगा लोक रचना होतें वा न होतें ब्रह्म जैसाका तैसा ही रहै है, तातै ब्रह्म अनादि अनत है। सो हम पूछै है, लोकविषै पृथवी जलादिक देखिए है ते जुदे नवीन उत्पन्न भए है कि ब्रह्म ही इन स्वरूप भया है? जो जुदे नवीन उत्पन्न भए हैं तो ए न्यारे भए ब्रह्म न्यारा रहा, सर्वव्यापी अद्वैतब्रह्म न

* डला वा पासा

ठहरचा। बहुरि जो ब्रह्म ही इन स्वरूप भया तो कदाचित् लोक भया, कदाचित् ब्रह्म भया तो जैसाका तैसा कैसें रह्या ? बहुरि वह कहै है जो सबही ब्रह्म तो लोकस्वरूप न हो है,वाका कोई अंश हो है। ताकों कहिए है:- जसैं समुद्रका एक बिन्दु विषरूप भया तहा स्थूलदृष्टिकरि तो गम्य नाहीं परन्तु सूक्ष्मदृष्टि दिए तो एक बिन्दु अपेक्षा समुद्रकै अन्यथापना भया तैसें ब्रह्मका एक अंश भिन्न होय लोकरूप भया तहाँ स्थूल विचारकरि तो किछू गम्य नाहीं परन्तु सूक्ष्मविचार किए तो एक अंश अपेक्षा ब्रह्मकै अन्यथापना भया। यह अन्यथापना और तो काहूकै भया नाहीं। ऐसें सर्वरूप ब्रह्मको मानना भ्रम ही है।

बहुरि एक प्रकार यहु है - जैसें आकाश सर्वव्यापी एक है तैसें ब्रह्म सर्व व्यापी एक है। जो इस प्रकार मानै है तो आकाशवत् बड़ा ब्रह्मको मानि वा जहाँ घटपटादिक हैं तहाँ जैसे आकाश है तैसे तहाँ ब्रह्म भी है ऐसा भी मानि। परन्तु जैसें घटपटादिकको अर आकाशको एक ही कहिए तो कैसें बनै ? तैसे लोकको अर ब्रह्मको एक मानना कैसे सम्भवै ? बहुरि आकाशका तो लक्षण सर्वत्र भासै है तातै ताका तो सर्वत्र सद्भाव मानिए है। ब्रह्मका तो लक्षण सर्वत्र भासता नाही तातैं ताका सर्वत्र सद्भाव कैसें मानिए? ऐसें इस प्रकारकरि भी सर्वरूप ब्रह्म नाही है। ऐसे ही विचारकरतें किसी भी प्रकारकरि एक सम्भवै नाही। सर्व पदार्थ भिन्न भिन्न भासै हैं।

इहाँ प्रतिवादी कहै है—जो सर्व एक ही है परन्तु तुम्हारे भ्रम है तातै तुमको एक भासै नाहीं। बहुरि तुम युक्ति कही सो ब्रह्म का स्वरूप युक्तिगम्य नाही, वचन अगोचर है। एक भी है, अनेक भी है। जुदा

भी है, मिल्या भी है। वाको महिमा ऐसी ही है। ताको कहिए है—जो प्रत्यक्ष तुझको वा हमको वा सबनिको भासै, ताको तो तू भ्रम कहै अर युक्तिकरि अनुमान करिए सो तू कहै कि सांचा स्वरूप युक्तिगम्य है ही नाहीं। बहुरि वह कहै, सांचास्वरूप वचन अगोचर है तो वचन बिना कैसे निर्णय करै ? बहुरि कहै—एक भी है, अनेक भी है; जुदा भी है,मिल्या भी है सो तिनकी अपेक्षा बतावै नाही,बाउलेकीसी नाईं ऐसे भी है, ऐसे भी है ऐसा कहि याकी महिमा बतावै। सो जहां न्याय न होय है तहां झूठे ऐसैं ही वाचालपना करै है सो करो, न्याय तो जैसे सांच है तैसे हो होयगा।

ब्रह्म की इच्छासे जगत्‌की सृष्टि

बहुरि अब तिस ब्रह्मको लोकका कर्त्ता मानै है ताको मिथ्या दिखाइए हैं - प्रथम तो ऐसा मानै है जो ब्रह्मकै ऐसी इच्छा भई कि "एकोऽहं बहुस्यां" कहिए मैं एक हू सो बहुत होस्यूं। तहां पूछिए है—पूर्व अवस्थामें दुःखी होय तब अन्य अवस्थाको चाहै। सो ब्रह्म एकरूप अवस्थातै बहुत रूप होनेकी इच्छा करी सो तिस एक रूप अवस्थाविषै कहा दुःख था ? तब वह कहै है जो दुःख तो न था, ऐसा ही कौतूहल उपज्या। ताको कहिए है—जो पूर्वै थोरा सुखी होय अर कौतूहल किए घना सुखी होय सो कौतूहल करना विचारै। सो ब्रह्मकै एक अवस्थातैं बहुत अवस्थारूप भए घना सुख होना कैसे सम्भवै ? बहुरि जो पूर्वै ही सम्पूर्ण सुखी होय तो अवस्था काहेको पलटै। प्रयोजन बिना तो कोई किछू कर्त्तव्य करै नाहीं। बहुरि पूर्वै भी सुखी होगा, इच्छा अनुसारि कार्य भए भी सुखी होगा परन्तु इच्छा भई तिस काल तो दुःखी होय।

तब वह कहै है, ब्रह्मके जिस काल इच्छा हो है तिस काल ही कार्य हो है तातें दु खी न हो है। तहाँ कहिए है--स्थूलकालकी अपेक्षा तो ऐसे मानो परन्तु सूक्ष्मकालकी अपेक्षा तो इच्छाका अर कार्यका होना युगपत् सम्भवै नाहीं। इच्छा तो तब ही होय जब कार्य न होय। कार्य होय तब इच्छा न रहै, तातैं सूक्ष्मकाल मात्र इच्छा रही तब तो दु खी भया होगा। जातैं इच्छा है सो ही दु ख है,और कोई दुःखका स्वरूप है नाहीं। तातैं ब्रह्मके इच्छा कैसे बनै ?

ब्रह्म की माया

बहुरि वे कहै हैं, इच्छा होते ब्रह्मको माया प्रगट भई सो ब्रह्मके माया भई तब ब्रह्म भी मायावी भया, शुद्धस्वरूप कैसे रह्या ? बहुरि ब्रह्मके अर मायाकै दडी दडवत सयोग सम्बन्ध है कि अग्नि उष्णवत् समवायसम्बन्ध है। जो सयोगसम्बन्ध है तो ब्रह्म भिन्न है, माया भिन्न है, अद्वैत ब्रह्म कैसे रह्या ? बहुरि जैसे दड दडको उपकारी जानि ग्रहै है तैसे ब्रह्म मायाको उपकारी जानै है तो ग्रहै है नाही तो काहेको ग्रहै ? बहुरि जिस मायाकों ब्रह्म ग्रहै ताका निषेध करना कैसे सम्भवै,वह तो उपादेय भई। बहुरि जो समवायसम्बन्ध है तो जैसे अग्नि का उष्णत्व स्वभाव है तैसे ब्रह्मका मायास्वभाव ही भया। जो ब्रह्मका स्वभाव है ताका निषेध करना कैसे सम्भवै ? यहु तो उत्तम भई।

बहुरि वे कहै है कि ब्रह्म तो चैतन्य है, माया जड है सो समवाय सबधविषै ऐसे दोय स्वभाव सम्भवै नाही। जैसे प्रकाश अर अन्धकार एकत्र कैसे सम्भवै ? बहुरि वह कहै है—मायाकरि ब्रह्म आप तो भ्रम रूप होता नाही, ताकी माया करि जीव भ्रमरूप हो है। ताकों कहिए

है—जैसें कपटी अपने कपटको आपजानै सो आप भ्रमरूप न होय, वाके कपटकरि अन्य भ्रम रूप होय जाय। तहाँ कपटी तो वाही कों कहिए जानै कपट किया, ताके कपटकरि अन्य भ्रमरूप भए तिनकों तो कपटी न कहिए। तैसें ब्रह्म अपनी मायाकों आप जानै सो आप तो भ्रमरूप न होय, वाकी मायाकरि अन्य जीव भ्रमरूप होय हैं। तहाँ मायावी तो ब्रह्म ही कों कहिए, ताकी मायाकरि अन्य जीव भ्रमरूप भए तिनको मायावी काहेकों कहिए है।

बहुरि पूछिए है वे जीव ब्रह्म तें एक हैं कि न्यारे हैं। जो एक हैं तो जैसै कोऊ आपही अपने अंगनिको पीड़ा उपजावै तो ताकों बाउला कहिए है तैसे ब्रह्म आप ही आपतैं भिन्न नाही ऐसे अन्य जीव तिनको मायाकरि दुःखी करै है सो कैसें बनै ? बहुरि जो न्यारे हैं तो जैसे कोऊ भूत बिना ही प्रयोजन औरनिकों भ्रम उपजाय पीड़ा उपजावै तैसै ब्रह्म बिना ही प्रयोजन अन्य जीवनि कों माया उपजाय पीडा उपजावै सो भी बनै नाही। ऐसै माया ब्रह्म की कहिए है सो कैसे सम्भवै ?

जीवों की चेतना को ब्रह्म की चेतना मानने का निराकरण

बहुरि वे कहै हैं, माया होते लोक निपज्या तहाँ जीवनिकै जो चेतना है सो तो ब्रह्मस्वरूप है। शरीरादिक माया है, तहाँ जैसे जुदे जुदे बहुत पात्रनिविषै जल भरया है तिन सबनिविषै चन्द्रमाका प्रतिबिब जुदा जुदा पड़ै है, चन्द्रमा एक है। तैसे जुदे जुदे बहुत शरीरनिविषें ब्रह्म का चैतन्य प्रकाश जुदा जुदा पाइए है। ब्रह्म एक है, तातै जीवनिकै चेतना है सो ब्रह्म की है। सो ऐसा कहना भी भ्रमही

है जातें शरीर जड़ है, या विषें ब्रह्म का प्रतिबिंबतें चेतनाभई तो घट पटादि जड़ हैं तिनविषें ब्रह्मका प्रतिबिंब क्यों न पड्या अर चेतना क्यों न भई ? बहुरि वह कहै है शरीरको तो चेतन नाही करै है,जीवको करै है। तब वाको पूछिए है कि जीवका स्वरूप चेतन है कि अचेतन है। जो चेतन है तो चेतन का चेतन कहा करेगा। अचेतन है तो शरीर की वा घटादिक की वा जीव की एक जाति भई। बहुरि वाकों पूछिए है—ब्रह्म की अर जीवनि की चेतना एक है कि भिन्न है। जो एक है तो ज्ञानका अधिकहीनपना कैसे देखिए है। बहुरि ए जीव परस्पर वह वाकी जानी को न जानै, वह वाकी जानी को न जानै सो कारण कहा ? जो तू कहेगा, यहु घट उपाधि भेदहै तो घट उपाधि होते तो चेतना भिन्न भिन्न ठहरी। घटउपाधि मिटे याकी चेतना ब्रह्म में मिलेगी कै नाश हो जायगी ? जो नाश हो जायगी तो यहु जीव तो अचेतन रह जायेगा। अर तू कहेगा जीव ही ब्रह्म में मिल जाय है तो तहाँ ब्रह्मविषै मिले याका अस्तित्व रहै है कि नाही रहै है। जो अस्तित्व रहै है तो यहु रह्या, याकी चेतना याकै रही, ब्रह्मविषै कहा मिल्या ? अर जो अस्तित्व न रहै है तो ताका नाश ही भया, ब्रह्मविषै कौन मिल्या ? बहुरि जो तू कहेगा—ब्रह्मकी अर जीवनिकी चेतना भिन्न है तो ब्रह्म अर सर्वजीव आपही भिन्न-भिन्न ठहरे। ऐसै जीवनि कैं चेतना है सो ब्रह्म की है, ऐसें भी बनै नाहीं।

शरीरादिक का मायारूप माननेका निराकरण

शरीरादि मायाके कहो हो सो माया ही हाड मांसादिरूप हो है कि माया के निमित्ततैं और कोई तिनरूप हो है। जो माया ही होय तो

माया के वर्ण गधादिक पूर्वे ही थे कि नवीन भए। जो पूर्वे ही थे तो पूर्वे तो माया ब्रह्मकी थी, ब्रह्म अमूर्तीक है तहाँ वर्णादि कैसें सम्भवै ? बहुरि जो नवीन भए तो अमूर्त्तीक का मूर्तिक भया तब अमूर्त्तीक स्वभाव शाश्वता न ठहरया। बहुरि जो कहेगा, माया के निमित्त तें और कोई हो है तो और पदार्थ तो तू ठहरावता ही नाही, भया कौन ? जो तू कहेगा, नवीन पदार्थ निपजे। तो ते मायातै भिन्न निपजे कि अभिन्न निपजे। मायातें भिन्न निपजे तो मायामयी शरीरादिक काहेकों कहै, वे तो तिनपदार्थमय भए। अर अभिन्न निपजे तो माया ही तद्रूप भई, नवीन पदार्थ निपजे काहेको कहै। ऐसें शरीरादिक मायास्वरूप है ऐसा कहना भ्रम है।

बहुरि वे कहै हैं, माया तें तीन गुण निपजे—राजस १ तामस २ सात्विक ३। सो यहु भी कहना कैसें बने ? जातै मानादि कषायरूप भावकों राजस कहिए है, क्रोधादिकषायरूप भावकों तामस कहिए है, मदकषायरूप भावकों सात्विक कहिएहै। सो ए तो भाव चेतनामई प्रत्यक्ष देखिए है अर माया का स्वरूप जड़ कहो हो सो जड़तै ए भाव कैसें निपजै। जो जड़के भी होई तो पाषाणादिककै भी होता सो तो चेतनास्वरूप जीव तिनहीके ए भाव दीसै है। तातें ए भाव मायातै निपजे नाहीं। जो मायाको चेतन ठहरावै तो यहु मानैं। सो मायाको चेतन ठहराए शरीरादिक मायातै निपजे कहेगा तो न मानेंगे तातें निर्धारकर, भ्रमरूप माने नफ़ा कहा है ?

बहुरि वे कहै है तिन गुणनि तै ब्रह्मा विष्णु महेश ए तीन देव प्रगट भए सो कैसे सम्भवै ? जातें गुणीतें तो गुण होइ, गुणतें

गुणी कैसें निपजे। पुरुषतें तो क्रोध होय, क्रोधतें पुरुष कैसें निपजे। बहुरि इन गुणनिकी तो निन्दा करिए है। इनकरि निपजे ब्रह्मादिक तिनकों पूज्य कैसें मानिए है। बहुरि गुण तो मायामई अर इनकोंब्रह्म के अवतार १ कहिए है सो ए तो माया के अवतार भए,इनकों ब्रह्मके अवतार कैसें कहिए है ? बहुरि ए गुण जिनके थोरे भी पाइए तिनकों तो छुड़ावने का उपदेश दीजिए अर जे इनही की मूर्ति तिनकों पूज्य मानिए, यह कहा भ्रम है। बहुरि तिनका कर्तव्य भी इनमई भासै है। कौतूहलादिक वा स्त्री सेवनादिक वा युद्धादिक कार्य करै हैं सो तिन राजसादि गुणनिकरि ही ये क्रिया हो है सो इनके राजसादिक पाइये है ऐसा कहो। इनको पूज्य कहना, परमेश्वर कहना तो बनै नाही। जैसें अन्य संसारी है तैसें ए भी है। बहुरि कदाचित् तू कहेगा, संसारी तो माया के आधीन है सो बिना जाने तिन कार्यनिको करै है। ब्रह्मादिक कै माया आधीन है सो ए जानते ही इन कार्यनिको करें है सो यहु भी भ्रम ही है। जातै माया के आधीन भए तो काम क्रोधादिकही निपजै है,और कहा हो है। सो ए ब्रह्मादिकनिकै तो काम क्रोधादिककी तीव्रता पाइए है। कामकी तीव्रताकरि स्त्रीनिके

१ ब्रह्मा, विष्णु और शिव यह तीनो ब्रह्म की प्रधान शक्तियां है।
विष्णुपु० अ० २२-५८

कलिकाल के प्रारम्भमे परब्रह्म परमात्माने रजोगुणमें उत्पन्न होकर ब्रह्मा बनकर प्रजा की रचनाकी। प्रलयके समय तमोगुणमे उत्पन्न हो काल(शिव) बनकर उस सृष्टिको ग्रस लिया। उस परमात्मा ने सत्वगुण से उत्पन्न हो। नारायणबनकर समुद्रमे शयन किया। —वायुपु० अ० ७-६८,६९।

वशीभूत भए नृत्यगानादि करते भए, विह्वल होते भए, नाना प्रकार कुचेष्टा करते भए, बहुरि क्रोध के वशीभूत भए अनेक युद्धादि कार्य करते भए, मान के वशीभूत भए आपकी उच्चता प्रगट करने के अर्थि अनेक उपाय करते भए, माया के वशीभूत भए अनेक छल करते भए, लोभ के वशीभूत भए परिग्रहका संग्रह करते भए इत्यादि बहुत कहा कहिए। ऐसें वशीभूत भए, चीरहरणादि निर्लज्जनिकी क्रिया और दधि लुन्टनादि चौरनिकी क्रिया अर रुन्डमाला धारणादि बाउलेनिकी क्रिया,*बहुरूपधारणादि भूतनिकीक्रिया, गौचरावणादि नीच कुल वालो की क्रिया इत्यादि जे निद्य क्रिया तिनको तो करते भए, यातैं अधिक माया के वशीभूत भए कहा क्रिया हा है सो जानी न परी। जैसे कोऊ मेघपटलसहित अमावस्याकी रात्रिको अंधकार रहित मानै तैसें बाह्य कुचेष्टा सहित तीव्र काम क्रोधादिकनिके धारी ब्रह्मादिकनिको मायारहित मानना है।

बहुरि वह कहै है कि इनको काम क्रोधादि व्याप्त नाही होता, यहु भी परमेश्वर की लीला है। याकों कहिए है—ऐसे कार्य करै है ते इच्छाकरि करै है कि बिना इच्छा करै है। जो इच्छाकरि करै है तो स्त्रीसेवनकी इच्छाहीका नाम काम है,युद्ध करनेकी इच्छाही का नाम क्रोध है इत्यादि ऐसें हो जानना। बहुरि जो बिना इच्छा करै है तो आप जाकों न चाहै ऐसा कार्य तो परवश भए ही होय, सो परवशपना कैसे सम्भवै ? बहुरि तू लीला बतावै है सो परमेश्वर

* नानारूपाय मुण्डाय वरुथपृथुदण्डिने।
नम: कपालहस्ताय दिग्वासाय शिखण्डिने ॥ मत्स्य पु०अ०२५०, श्लोक २

अवतार धारि इन कार्यनिकरि लीला करै है तो अन्य जीवनिकों इन कार्यनितैं छुड़ाय मुक्त करनेका उपदेश काहेकों दीजिए है। क्षमा सन्तोष शील संयमादिका उपदेश सर्व झूठा भया।

बहुरि वह कहै है कि परमेश्वरको तो किछू प्रयोजन नाहीं। लोकरीतिकी प्रवृत्तिके अर्थि वा भक्तनिकी रक्षा, दुष्टनिका निग्रह ताके अर्थि अवातार धरै ❀ है तो याकों पूछिए है—प्रयोजन बिना चींटी हू कार्य न करै, परमेश्वर काहेकों करै। बहुरितै प्रयोजन भी कह्या, लोकरीतिकी प्रवृत्तिके अर्थि करै है। सो जैसें कोई पुरुष आप कुचेष्टाकरि अपने पुत्रनिकों सिखावै बहुरि वे तिस चेष्टारूप प्रवर्त्तै तब उनको मारै तो ऐसें पिताकों भला कैसें कहिए तैसे ब्रह्मादिक आप कामक्रोधरूप चेष्टाकरि अपने निपजाए लोकनिकों प्रवृत्ति करावै। बहुरि वे लोक तैसे प्रवर्त्तै तब उनको नरकादिकविषैं डारै। नरकादिक इनही भावनिका फल शास्त्रविषैं लिख्या है सो ऐसे प्रभुकों भला कैसे मानिए? बहुरि तैं यहु प्रयोजन कह्या कि भक्तनिकी रक्षा, दुष्टनिका निग्रह करना। सो भक्तनिकों दुखदायक जे दुष्ट भए ते परमेश्वर की इच्छाकरि भए कि बिना इच्छाकरि भए। जो इच्छाकरि भए तो जैसे कोऊ अपने सेवकको आप ही काहू को कहकरि मरावै बहुरि पीछे तिस मारने वालोकों आप मारै सो ऐसे स्वामीकों भला कैसे कहिए। तैसे ही जो अपने भक्तकों आप ही इच्छाकरि दुष्टनिकरि पीड़ित करावै बहुरि पीछे तिन दुष्टनिकों आप

❀ परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥८॥ – गीता ४—८

अवतार धारि मारै तो ऐसे ईश्वर को भला कैसें मानिए ? बहुरि जो तू कहेगा कि बिना इच्छा दुष्ट भए तो कै तो परमेश्वरकै ऐसा आगामी ज्ञान न होगा जो ए दुष्ट मेरे भक्तनिको दुःख देवेंगे,कै पहिलैं ऐसे शक्ति न होगी जो इनको ऐसे न होने दे। बहुरि वाकों पूछिए है जो ऐसे कार्य के अर्थि अवतार धारचा, सो कहा बिना अवतार धारे शक्ति थी कि नाहीं। जो थी तो अवतार काहेकों धारै अर न थी तो पीछे सामर्थ्य होनेका कारण कहा भया। तब वह कहै है-ऐसैं किए बिना परमेश्वरकी महिमा प्रगट कैसें होय। याकों पूछिए है कि अपनी महिमा के अर्थि अपने अनुचरनिका पालन करै, प्रतिपक्षीनिका निग्रह करै सो ही राग द्वेष है। सो रागद्वेष तो लक्षण संसारी जीवका है। जो परमेश्वरकै भी रागद्वेष पाइए है तो अन्य जीवनिका रागद्वेष छोरि समता भाव करने का उपदेश काहेको दीजिए। बहुरि रागद्वेषके अनुसारि कार्य करना विचारचा सो कार्य थोरे वा बहुत काल लागे बिना होय नाहीं, तावत् काल आकुलता भी परमेश्वर कै होती होसी। बहुरि जैसें जिस कार्यको छोटा आदमी ही कर सकै तिस कार्यको राजा आप आय करै तो किछू राजा की महिमा होती नाहीं, निन्दा ही होय। तैसें जिस कार्य को राजा वा व्यंतरदेवादिक करि सकै तिस कार्यको परमेश्वर आप अवतार धारि करै ऐसा मानिए तो किछू परमेश्वर की महिमा होती नाहीं, निंदा ही है। बहुरि महिमा तो कोई और होय ताकों दिखाइए है। तू तो अद्वैत ब्रह्म मानै है, कौनको महिमा दिखावै है। अर महिमा दिखावने का फल तो स्तुति करावना है सो कौनपै स्तुति कराया चाहै है। बहुरि

तू तो कहै है सर्व जीव परमेश्वरकी इच्छा अनुसारि प्रवर्तें हैं अर आपके स्तुति करावनेकी इच्छा है तो सबकों अपनी स्तुतिरूप प्रवर्तावो, काहेकों अन्य कार्य करना परै। तातैं महिमाके अर्थि भी कार्य करना न बनै।

बहुरि वह कहै है—परमेश्वर इन कार्यनिकों करता संता भी अकर्त्ता है, वाका निर्द्धार होता नाही। याकों कहिए है-तू कहेगा यह मेरी माता भी है अर बांझ भी है तो तेरा कह्या कैसे मानगे। जो कार्य करै ताकों अकर्त्ता कैसे मानिए। अर तू कहै निर्द्धार होता नाहीं सो निर्द्धार बिना मानि लेना ठहर्या तो आकाश के फूल, गधे के सीग भी मानो, सो ऐसा असम्भव कहना युक्त नाही। ऐसै ब्रह्मा, विष्णु महेशका होना कहै है सो मिथ्या जानना।

ब्रह्मा-विष्णु-महेशका सृष्टिका कर्त्ता, रक्षक और संहारक पने का निराकरण

बहुरि वे कहै है—ब्रह्मा तो सृष्टिको उपजावै है, विष्णु रक्षा करै है, महेश संहार करै है सो ऐसा कहना भी न सम्भवै है। जातैं इन कार्यनिको करते कोऊ किछू किया चाहै कोऊ किछू किया चाहै तब परस्पर विरोध होय। अर जो तू कहेगा, ए तो एक परमेश्वरका ही स्वरूप है, विरोध काहेको होय। तो आप ही उपजावै, आप ही क्षपावै ऐसे कार्यमें कौन फल है। जो सृष्टि आपकों अनिष्ट है तो काहेकों उपजाई अर इष्ट है तो काहे को क्षपाई। अर जो पहिले इष्ट लागी तब उपजाई,पीछे अनिष्ट लागी तब क्षपाई ऐसें है तो परमेश्वर का स्वभाव अन्यथा भया कि सृष्टिका स्वरूप अन्यथा भया। जो प्रथम पक्ष ग्रहेगा तो परमेश्वर का एक स्वभाव न ठहरया। सो एक स्वभाव न रहनेका कारण कौन है ? सो बताय, बिना कारण स्वभाव

की पलटनि काहेकों होय। अर द्वितीय पक्ष ग्रहेगा तो सृष्टि तो परमेश्वर के आधीन थी, ताकों ऐसी काहेकों होने दीनी जो आपकों अनिष्ट लागै।

बहुरि हम पूछे है—ब्रह्मा सृष्टि उपजावै है सो कैसे उपजावै है। एक तो प्रकार यहु है— जैसे मन्दिर चुननेवाला चूना पत्थर आदि सामग्री एकट्ठी करि आकारादि बनावै है तैसे हो ब्रह्मा सामग्री एकट्ठी करि सृष्टि रचना करै है तो ए सामग्री जहाँतें ल्याय एकट्ठी करी सो ठिकाना बताय। अर एक ब्रह्माही एता रचना बनाई सो पहिले पीछें बनाई होगी, कै अपने शरीरके हस्तादि बहुत किए होगे सो कैसे है सो बताय। जो बतावेगा तिसही म विचार किए विरुद्ध भासेगा।

बहुरि एक प्रकार यहु है— जैसै राजा आज्ञा करै ताके अनुसार कार्य होय, तैसे ब्रह्माकी आज्ञाकरि सृष्टि निपजै है तो आज्ञा कौनकों दई। अर जिनकों आज्ञा दई वे कहाँतै सामग्री ल्याय कैसे रचना करै हैं सो बताय।

बहुरि एक प्रकार यहु है--जैसै ऋद्धिधारी इच्छा करै ताके अनुसारि कार्य स्वयमेव बनै। तैसै ब्रह्मा इच्छा करै ताके अनुसारि सृष्टि निपजै है तो ब्रह्मा तो इच्छाहीका कर्त्ता भया, लोक तो स्वयमेव ही निपज्या। बहुरि इच्छा तो परमब्रह्म कीन्ही थी, ब्रह्माका कर्त्तव्य कहा भया जातै ब्रह्म को सृष्टिका निपजावनहारा कह्या। बहुरि तू कहेगा परमब्रह्म भी इच्छा करी अर ब्रह्मा भी इच्छा करी तब लोक निपज्या तो जानिए है केवल परमब्रह्मकी इच्छा कार्यकारी नाहीं। तहाँ शक्तिहीनपना आया।

बहुरि हम पूछें हैं—जो लोक केवल बनाया हुवा बनै है तो बनावनहारा तो सुखके अर्थि बनावै सो इष्ट ही रचना करै। इस लोकविषै तो इष्ट पदार्थ थोरे देखिए हैं, अनिष्ट घने देखिए हैं। जीवनिविषै देवादिक बनाए सो तो रमनेके अर्थि वा भक्ति करावनेके अर्थि इष्ट बनाए अर लट कीड़ी कूकर सूअर सिंहादिक बनाए सोकिस अर्थि बनाए। ए तो रमणीक नाहीं, भक्ति करते नाहीं। सर्व प्रकार अनिष्ट ही हैं। बहुरि दरिद्री दुःखी नारकिनिकों देखें आपको जुगुप्सा ग्लानि आदि दुःख उपजै ऐसे अनिष्ट काहेको बनाए। तहाँ वह कहै है—कि जीव अपने पापकरि लट कीडी दरिद्री नारकी आदि पर्याय भुगतै हैं। याकों पूछिए है कि पीछें तो पापहीका फलतें ए पर्याय भए कहो परन्तु पहिले लोकरचना करते ही इनको बनाए सो किस अर्थि बनाए। बहुरि पीछे जीव पापरूप परिणए सो कैसें परिणए। जो आपही परिणए कहोगे तो जानिए है ब्रह्मा पहलै तो निपजाए पीछे वे याके आधीन न रहे। इस कारणते ब्रह्माको दु:ख ही भया। बहुरि जो कहोगे—ब्रह्माके परिणमाए परिणमैं हैं तो तिनको पापरूप काहेकों परिणमाए। जीव तो आपके निपजाए थे उनका बुरा किस अर्थि किया। तातै ऐसै भी न बनै। बहुरि अजीवनिविषै सुवर्ण सुगन्धादि सहित वस्तु बनाए सो तो रमणेके अर्थि बनाए,कुवर्ण दुर्गन्धादिसहित वस्तु दुःखदायक बनाए सो किस अर्थि बनाए। इनका दर्शनादिकरि ब्रह्माकै किछू सुख तो नाहीं उपजता होगा। बहुरि तू कहेगा, पापी जीवनिकों दुःख देने के अर्थि बनाए। तो आपहीके निपजाए जीव तिनस्यों ऐसी दुष्टता काहे कों करी जो तिनकों दुःखदायक सामग्री

पहले ही बनाई । बहुरि धूलि पर्वतादिक वस्तु केतीक ऐसी हैं जे रमणीक भी नाहीं अर दुःखदायक भी नाहीं, तिनको किस अर्थि बनाए । स्वयमेव तो जैसें तैसें ही होय अर बनावनहारा तो जो बनावै सो प्रयोजन लिए ही बनावै । तातें ब्रह्मा सृष्टिका कर्त्ता कैसें कहिए है ?

बहुरि विष्णुको लोकका रक्षक कहै हैं । रक्षक होय सो तो दोय ही कार्य करै । एक तो दुःख उपजावने के कारण न होने दे अर एक विनशने के कारण न होने दे । सो तो लोकविषें दुःखही के उपजनेके कारण जहाँ तहाँ देखिए हैं अर तिनकरि जीवनिकों दुःख ही देखिए है । क्षुधा तृषादिक लगि रहे हैं । शीत उष्णादिक करि दुःख हो है । जीव परस्पर दुःख उपजावै हैं, शस्त्रादि दुःख के कारण बनि रहे हैं । बहुरि विनशनेके कारण अनेक बन रहे हैं । जीवनिकै रोगादिक वा अग्नि विष शस्त्रादिक पर्यायके नाशके कारण देखिए है अर अजीवनिकै भी परस्पर विनशनेके कारण देखिए हैं । सो ऐसें दोय प्रकारहीकी रक्षा तो कीन्हीं नाहीं तो विष्णु रक्षक होय कहा किया । वह कहै है— विष्णु रक्षक ही है । देखो क्षुधा तृषादिकके अर्थि अन्न जलादिक किए हैं । कीड़ीको कण कुञ्जरको मण पहुंचावै है । सकटमें सहाय करै है । मरणके कारण बने टीटोड़ी कोसी नाईं उबारै है । इत्यादि प्रकार करि विष्णु रक्षा करै है । याकों कहिए है–ऐसें है तो जहाँ जीवनिकै

❀ एक प्रकार का पक्षी जो एक समुद्र के किनारे रहता था । उसके अंडे समुद्र बहा ले जाता था सो उसने दुःखी होकर गरुड पक्षी की मार्फत विष्णु से अर्ज की,तो उन्होंने समुद्रसे अंडे दिलवा दिये। ऐसी पुराणों में कथा है ।

क्षुधातृषादिक बहुत पीड़ें अर अन्न जलादिक मिलें नाहीं, संकट
पड़े सहाय न होय, किंचित कारण पाइ मरण होय जाय, तहाँ
विष्णु की शक्ति हीन भई कि वाको ज्ञान ही न भया। लोक-
विषें बहुत तो ऐसें ही दुःखी हो हैं, मरण पावै हैं, विष्णु रक्षा काहे
को न करी। तब वह कहै है, यहु जीवनिके अपने कर्तव्यका फल है।
तब वाको कहिए है कि जैसें शक्तिहीन लोभी झूठा वैद्य काहूकै किछू
भला होइ ताको तो कहै, मेरा किया भया है अर जहाँ बुरा होय,
मरण होय तब कहै याका ऐसा ही होनहार था। तैसें ही तू कहै है
कि भला भया तहाँ तो विष्णुका किया भया अर बुरा भया सो याका
कर्तव्यका फल भया। ऐसें झूठी कल्पना काहेकों कीजिए। कै तो बुरा
वा भला दोऊ विष्णु का किया कहो, कै अपना कर्तव्यका फल कहो।
जो विष्णुका किया भया तो घनें जीव दुःखी अर शीघ्र मरते देखिए
हैं सो ऐसा कार्य करै ताको रक्षक कैसे कहिए? बहुरि अपने कर्तव्य
का फल है तो करेगा सो पावेगा, विष्णु कहा रक्षा करेगा? तब वह
कहै है, जे विष्णुके भक्त है तिनकी रक्षा करै है। याको कहिए है कि
जो ऐसा है तो कोडी कुन्जर आदि भक्त नाही उनकै अन्नादिक
पहुँचावने विषै वा सकट मे सहाय होने विषै वा मरण न
होने विषै विष्णु का कर्तव्य मानि सर्व का रक्षक काहे कों मानै,
भक्तनिही का रक्षक मानि। सो भक्तनिका भी रक्षक दीसता नाहीं
जातै अभक्त भी भक्त पुरुषनिको पीड़ा उपजावते देखिए है। तब वह
कहै है—घनी ही जायगा (जगह) प्रहलादादिककी सहाय करी है।
याको कहै हैं—जहां सहाय करी तहाँ तो तू तैसे ही मानि परन्तु हम

तो प्रत्यक्ष म्लेच्छ मुसलमान आदि अभक्त पुरुषनिकरि भक्त पुरुष पीड़ित होते देखि वा मन्दिरादिकों विघ्न करते देखि पूछें हैं कि इहाँ सहाय न करै है सो शक्ति ही नाहीं, कि खबर ही नाहीं। जो शक्ति नाहीं तो इनतैंभी हीनशक्तिका धारक भया। खबरही नाहीं तो जाकों एती भी खबर नाहीं सो अज्ञान भया। अर जो तू कहेगा, शक्ति भी है अर जानै भी है, इच्छा ऐसी ही भई, तो फिर भक्तवत्सल काहेकों कहै। ऐसै विष्णुको लोकका रक्षक मानना बनता नाहीं।

बहुरि वे कहै हैं—महेश संहार करै है सो वाकों पूछिए है। प्रथम तो महेश सहार सदा करै है कि महाप्रलय हो है तब ही करै है। जो सदा करै है तो जैसे विष्णुकी रक्षा करनेकरि स्तुति कीनी, तैसे याको सहार करवेकरि निदा करो। जातैं रक्षा अर सहार प्रतिपक्षी हैं। बहुरि यहु संहार कैसे करै है? जैसै पुरुष हस्तादिककरि काहूकों मारै वा कहकरि मरावै तैसै महेश अपने अंगनिकरि सहार करै है वा आज्ञाकरि मरावै है। तो क्षण क्षणमें संहार तो घने जीवनिका सर्व लोकमें हो है, यहु कैसे कैसे अंगनिकरि वा कौन कौनकों आज्ञा देय युगपत् कैसें संहार करै है। बहुरि महेश तो इच्छा ही करै, याकी इच्छातै स्वयमेव उनका संहार हो है। तो याकै सदा काल मारने रूप दुष्ट परिणामही रह्या करते होंगे अरअनेक जीवनिके युगपत्मारनें की इच्छा कैसे होती होगी। बहुरि जो महाप्रलय होते सहार करै है तो परमब्रह्मकी इच्छा भए करै है कि वाकी बिना इच्छा ही करै है। जो इच्छा भए करै है तो परमब्रह्म के ऐसा क्रोध कैसें भया जो सर्वका प्रलय करने की इच्छा भई। जातें कोई कारण बिना नाश करनेकी

इच्छा होय नाहीं । अर नाश करनेकी जो इच्छा ताहीका नाम क्रोध है सो कारन बताय । बहुरि तू कहेगा-परमब्रह्म यहु ख्याल (खेल) बनाया था बहुरि दूर किया,कारन किछू भी नाहीं । तो ख्याल बनावने वालोंकों भी ख्याल इष्ट लागै तब बनावै है, अनिष्ट लागै है तब दूर करै है । जो याकों यहुलोक इष्ट अनिष्ट लागै है तो याकै लोकस्यों रागद्वेष तो भया । साक्षीभूत ब्रह्मका स्वरूप काहेकों कहो हो,साक्षीभूत तो वाका नाम है जो स्वयमेव जैसं होय तैसै देख्या जान्या करै । जोइष्ट अनिष्ट मान उपजावै, नष्ट करै ताको साक्षीभूत कैसे कहिए, जातै साक्षीभूत रहना अर कर्त्ता हर्त्ता होना ए दोऊ परस्पर विरोधी है । एककै दोऊ सम्भवै नाहीं । बहुरि परमब्रह्मके पहिले तो इच्छा यहु भई थी कि 'मैं एक हूँ सो बहुत होस्यूं' तब बहुत भया । अब ऐसी इच्छा भई होसी जो "मै बहुत हूँ सो एक होस्यू" सो जैसे कोऊ भोलपतै कार्यकरि पीछे तिस कार्यकों दूर किया चाहै, तैसे परमब्रह्म भी बहुत होय एक होनेको इच्छाकरी सो जानिये है कि बहुत होने का कार्य किया होय सो भोलपतेहीतै किया, आगामी ज्ञानकरि किया होता तो काहेकों ताके दूरि करनेकी इच्छा होती ।

बहुरि जो परमब्रह्मकी इच्छा बिना ही महेश सहार करै है तो यहु परमब्रह्मका वा ब्रह्मका विरोधी भया । बहुरि पूछे हैं यहु महेश लोककों कैसे संहार करैहै । अपने अंगनिहीकरि संहार करैहै किइच्छा होतें स्वयमेवही संहार होय है ? जो अपने अंगनिकरि संहारकरै है तो सबका युगपत् संहार कैसे करै है ? बहुरि याकी इच्छा होतें स्वयमेव संहार हो है तो इच्छातो परमब्रह्म कीन्हीं थी,यानै संहार कहा किया?

बहुरि हम पूछें हैं कि संहार भए सर्व लोकविषै जीव अजीव थे ते कहां गए ? तब वह कहै है—जीवनिविषें भक्तती ब्रह्म विषै मिले, अन्य मायाविषै मिले । अब याको पूछिये है कि माया ब्रह्मतें जुदी रहै है कि पीछें एक होय जाय है। जो जुदी रहै है तो ब्रह्मवत् माया भी नित्य भई। तब अद्वैतब्रह्म न रह्या। अर मायाब्रह्म मे एक होय जाय है तो जे जीव मायामें मिले थे ते भी मायाकी साथि ब्रह्ममें मिल गए तो महाप्रलय होतें सर्वका परमब्रह्ममें मिलना ठहर्या ही तो मोक्षका उपाय काहेकों करिए। बहुरि जे जीव मायामें मिले ते बहुरि लोकरचना भए वे ही जीव लोकविषें आवेंगे कि वे तो ब्रह्म में मिल गए थे कि नए उपजेंगे। जो वे ही आवेंगे तो जानिए है जुदे जुदे रहै है, मिले काहेकों कहो। अर नए उपजेंगे तो जीवका अस्तित्व थोरा कालपर्यंत ही रहै, काहेको मुक्त होनेका उपाय कीजिए। बहुरि वह कहै है कि पृथिवी आदिक है ते मायाविषें मिले हैं सो माया अमूर्त्तीक सचेतन है कि मूर्त्तीक अचेतन है। जो अमूर्त्तीक सचेतन है तो अमूर्त्तीक में मूर्त्तीक अचेतन कैसे मिले ? अर मूर्त्तीक अचेतन है तो यहु ब्रह्ममें मिलै है कि नाही। जो मिलै है तो याके मिलनेतें ब्रह्म भी मूर्त्तीक अचेतनकरि मिश्रित भया। अर न मिलै है तो अद्वैतता न रही। अर तू कहेगा ए सर्व अमूर्त्तीक अचेतन होइ जाय हैं तो आत्मा अर शरीरादिककी एकता भई, सो यहु संसारी एकता मानै ही है, याकों अज्ञानी काहेकों कहिए। बहुरि पूछें हैं—लोकका प्रलय होतें महेशका प्रलय हो है कि न हो है। जो हो है तो युगपत् हो है कि आगें पीछें हो है। जो युगपत् हो है तो आप नष्ट

होता लोककों नष्ट कैसें करै। अर आगें पीछें हो हैं तो महेश लोककों नष्टकरि आप कहाँ रह्या,आप भी तो सृष्टिविषै ही था,ऐसें महेशकों सृष्टिका संहारकर्ता मानै हैं सो असम्भव है। या प्रकारकरि वा अन्य अनेक प्रकारनिकरि ब्रह्मा विष्णु महेशकों सृष्टिका उपजावनहारा, रक्षा करनहारा, सहार करनहारा मानना न बनै तातें लोक कों अनादिनिधन मानना।

इसलोकविषै जे जीवादि पदार्थ है ते न्यारे न्यारे अनादिनिधन हैं। बहुरि तिनकी अवस्थाकी पलटनि हुवा करै है। तिस अपेक्षा उपजते विनशते कहिये है। बहुरि जे स्वर्ग नरक द्वीपादिक हैं ते अनादितें ऐसें ही हैं अर सदाकाल ऐसें ही रहेंगे। कदाचित् तू कहेगा बिना बनाए ऐसे आकारादिक कैसे भए, सो भए होंय तो बनाए ही होंय। सो ऐसा नाही है जातै अनादितै ही जे पाइए तहाँ तर्क कहा। जैसे तू परमब्रह्मका स्वरूप अनादिनिधन मानै है तैसे ए जीवादिक वा स्वर्गादिक अनादिनिधन मानिए हैं। तू कहेगा जीवादिक वा स्वर्गादिक कैसें भए ? हम कहेगे परमब्रह्म कैसे भया। तू कहेगा इनकी रचना ऐसी कौनकरी ?हम कहेंगे परमब्रह्मकों ऐसाकौन बनाया?तू कहेगा परमब्रह्म स्वयसिद्ध है; हम कहैं है जीवादिक वा स्वर्गादिक स्वयंसिद्ध है;तू कहेगा इनकी अर परब्रह्मकी समानता कैसे सम्भवै ? तों सम्भवनेविषै दूषण बताय। लोककों नवा उपजावना ताका नाश करना तिसविषै तो हम अनेक दोष दिखाये। लोककों अनादि निधन माननेतै कहा दोष है ? सो तू बताय। जो तू परमब्रह्म मानै है सो जुदा ही कोई है नाहीं। ए संसारविषें जीव हैं ते ही यथार्थ ज्ञानकरि मोक्षमार्ग साधनतें सर्वज्ञ

वीतराग हो हैं।

इहां प्रश्न— जो तुम तो न्यारे न्यारे जीव अनादिनिधन कहो हो। मुक्त भए पीछें तो निराकार हो हैं, तहां न्यारे न्यारे कैसें सम्भवें ?

ताका समाधान—जो मुक्त भए पीछे सर्वज्ञकों दीसै हैं कि नाहीं दीसै हैं। जो दीसै हैं तो किछू आकार दीसता ही होगा। बिना आकार देखें कहा देख्या अर न दीसै है तो कै तो वस्तु ही नाहीं, कै सर्वज्ञ नाहीं। तातें इन्द्रियज्ञानगम्य आकार नाहीं तिस अपेक्षा निराकार है अर सर्वज्ञ ज्ञानगम्य है तातें आकारवान् है। जब आकारवान् ठहरचा तब जुदा जुदा होय तो कहा दोष लागै ? बहुरि जो तू जाति अपेक्षा एक कहै तो हम भी मानै हैं। जैसें गेहूँ भिन्न भिन्न हैं तिनकी जाति एक है ऐसें एक मानैं तो किछू दोष है नाही। या प्रकार यथार्थ श्रद्धानकरि लोकविषें सर्व पदार्थ अकृत्रिम जुदे जुदे अनादिनिधन माननें। बहुरि जो वृथा ही भ्रमकरि साँच झूंठ का निर्णय न करै तो तू जानै, तेरे श्रद्धान का फल तू पावेगा।

ब्रह्म से कुलप्रवृत्ति आदि का प्रतिषेध

बहुरि वे ही ब्रह्मतें पुत्रपौत्रादिकरि कुलप्रवृत्ति कहै हैं। बहुरि कुलनिविषे राक्षस मनुष्यदेव तिर्यंचनिके परस्पर प्रसूति भेद बतावै हैं। तहां देवतें मनुष्य वा मनुष्यतें देव वा तिर्यंचतें मनुष्य इत्यादि कोई माता कोई पितातें कोई पुत्रपुत्री का उपजना बतावें सो कैसें सम्भवै? बहुरि मनहीकरि वा पवनादिकरि वा वीर्य सूंघने आदिकरि प्रसूति

होनी बतावें हैं सो प्रत्यक्षविरुद्ध भासै है। ऐसैं होते पुत्रपौत्रादिकका नियम कैसें रह्या? बहुरि बड़े बड़े महन्तनिकों अन्य अन्य मातापितातैं भए कहैं है। सो महंत पुरुष कुशील माता पिताकै कैसे उपजै? यहु तो लोकविषैं गालि है। ऐसा कहि उनकी महतता काहेको कहिए है।

अवतार मीमांसा

बहुरि गणेशादिककी मेल आदि करि उत्पत्ति बतावै है वा काहूके अंग काहूकै जुरे बतावै है। इत्यादि अनेक प्रत्यक्ष विरुद्धकहै है। बहुरि चौईस अवतार ॐ भए कहै है, तहा केई अवतारनिकों पूर्णावतार कहै है। केईनिको अंशावतार कहै है। सो पूर्णावतार भए तब ब्रह्म अन्यत्र व्यापक रह्या कि न रह्या। जो रह्या तो इनअवतारनिको पूर्णावतार काहेको कहो। जो (व्यापक) न रह्या तो एतावन्मात्र ही ब्रह्म रह्या। बहुरि अंशावतार भए तहा ब्रह्म का अंश तो सर्वत्र कहो हो, इन विषै कहा अधिकता भई? बहुरि कार्य तो तुच्छ तिसके वास्ते आप ब्रह्म अवतार धारचा कहै सो जानिये है बिना अवतार धारे ब्रह्मकी शक्ति तिस कार्यके करनेकी न थी। जातै जो काय स्तोक उद्यमतै होइ तहां बहुत उद्यम काहेको करिए? बहुरि अवतारनिविषै मच्छ कच्छादि अवतार भए सो किंचित् कार्य करने के अर्थि हीन तिर्यंच पर्यायरूप

ॐ सनत्कुमार १ शूकरावतार २ देवर्षि नारद ३ नर नारायण ४ कपिल ५ दत्तात्रय ६ यज्ञपुरुष ७ ऋषभावतार ८ पृथु अवतार ९ मत्स्य १०कच्छप ११ धन्वन्तरि १२ मोहिनी १३ नृसिंहावतार १४ वामन १५ परशुराम १६ व्यास १७ हंस १८ रामावतार १९ कृष्णावतार २० हयग्रीव २१ हरि २२ बुद्ध २३ और कल्कि ये २४ अवतार माने जाते है।

भए, सो कैसे सम्भवै ? बहुरि प्रह्लादके अर्थि नरसिंह अवतार भए सो हरिणांकुशकों ऐसा काहेकों होने दिया अर किते्क काल अपने भक्तकों काहेकों दुःख द्याया। बहुरि ऐसा रूप काहेकों धरया। बहुरि नाभिराजाके वृषभावतार भया बतावै है सो नाभिकों पुत्रपनेका सुख उपजावनेको अवतारधारया। घोरतपश्चरण किस अर्थि किया। उनकों तो किछु साध्य था ही नाहीं। अर कहेगा जगत्के दिखावनेको किया तो कोई अवतार तो तपश्चरण दिखावै, कोई अवतार भोगादिक दिखावै, जगत किसको भला जानि लागै।

बहुरि(वह)कहै है- एक अरहत नामका राजा भया⁂ सो वृषभावतारका मत अंगीकारकरि जैनमत प्रगट किया सो जैनविषै कोई एक अरहंत भया नाही। जो सर्वज्ञपद पाय पूजन योग्य होय ताहीका नाम अर्हत् है। बहुरि रामकृष्ण इन दोउ अवतारनिको मुख्य कहै हैं सो रामावतार कहा किया। सीताके अर्थि विलापकरि रावणसों लरि वाकूं मारि राज किया। अर कृष्णावतार पहिलै गुवालिया होइ परस्त्री गोपिकानिके अर्थि नाना विपरीति निद्य चेष्टाकरी ×,पीछै जरासिधु आदिकों मारि राजकिया। सो ऐसे कार्य करनेमे कहा सिद्धिभई। बहुरि रामकृष्णादिकका एक स्वरूप कहैं। सो बीचमे इतने काल कहां रहे ? जो ब्रह्मविषै रहे तो जुदे रहे कि एक रहे। जुदे रहे तो जानिए है, ए ब्रह्मते जुदे रहै हैं। एक रहे तो राम ही कृष्ण भया,'सीता ही रुक्मणी

⁂ भागवत स्कंध ५ अ० ६, ७, ११

× विष्णु०पु०अ०१३ श्लोक ४५ से ६० तक

ब्रह्मपुराण अ०१८६ और भागवतस्कंध १०, अ० ३०, ४८

भई इत्यादि कैसें कहिए है। बहुरि रामावतारविषें तो सीताकों मुख्य करें अर कृष्णावतारविषें सीताकों रुक्मणी भई कहैं अर ताको तो प्रधान न कहैं, राधिका कुमारी ताकों मुख्य करें। बहुरि पूछें तब कहैं राधिका भक्त थी, सो निजस्त्रीकों छोरि दासीका मुख्य करना कैसें बनै? बहुरि कृष्णकै तो राधिकासहित परस्त्री सेवनके सर्व विधान भए सो यहु भक्ति कैसी करी, ऐसे कार्य तो महानिंद्य हैं। बहुरि रुक्मणी को छोरि राधा को मुख्य करी, सो परस्त्री सेवनकों भला जानि करी होसी। बहुरि एक राधा विषै ही आसक्त न भया, अन्य गोपिका कुब्जा* आदि अनेक परस्त्रीनिविषै भी आसक्त भया। सो यहु अवतार ऐसेही कार्यका अधिकारी भया। बहुरि कहैं–लक्ष्मी वाकी स्त्री है अर धनादिककों लक्ष्मी कहैं सो ए तो पृथ्वी आदि विषै जैसें पाषाण धूलि है तैसें ही रत्न सुवर्णादि धन देखिए है। जुदी ही लक्ष्मी कौन जाका भर्तार नारायण है। बहुरि सीतादिककों माया का स्वरूप कहैं सो इन विषें आसक्त भए तब मायाविषै आसक्त कैसें न भया। कहां ताईं कहिए जो निरूपण करें सो विरुद्ध करै। परन्तु जीवनिकों भोगादिककी वार्ता सुहावै, तातै तिनका कहना वल्लभ लागै है। ऐसे अवतार कहे हैं, इनको ब्रह्मस्वरूप कहैं है। बहुरि औरनिकों भी ब्रह्मस्वरूप कहे हैं। एक तो महादेवकों ब्रह्मस्वरूप मानैं हैं ताको योगी कहै हैं, सो योग किस अर्थि गह्या। बहुरि मृगछाला भस्मी धारै हैं सो किस अर्थीधारी है। बहुरि रुण्डमाला पहरै है सो हाडका छीवना भी निंद्य है ताकों गलेमें किस अर्थि धारै हैं। सर्पादि सहित है सो यामें कौन

* भागवतस्कंध १० अ० ४८ १-११

बड़ाई है। आक धतूरा खाय है सो यामें कौन भलाई है। त्रिशूलादि राखे है सो कौनका भय है। बहुरि पार्वती संग लिए है सो योगी होय स्त्रीराखै सो ऐसा विपरीतपना काहेकों किया। कामासक्त था तौ घरही मे रह्या होता। बहुरि वानै नाना प्रकार विपरीत चेष्टा कीन्हीं ताका प्रयोजन तो किछू भासै नाही। बाउलेकासा कर्त्तव्य भासै ताकों ब्रह्मस्वरूप कहै।

बहुरि कबहूँ कृष्णको याका सेवक कहैं, कबहूं याकों कृष्णका सेवक कहैं। कबहूँ दोऊनिकों एक ही कहै,किछू ठिकाना नाही। बहुरि सूर्य्यादिककों ब्रह्मका स्वरूप कहै। बहुरि ऐसा कहै जो विष्णु कह्या सो धातुनिविषै सुवर्ण, वृक्षनिविषै कल्पवृक्ष, जूवा विषै झूठ इत्यादि में मैं ही हूँ सो किछू पूर्वापर विचारै नाही। कोई एक अगकरि केई ससारी जाकों महंत मानै ताहीको ब्रह्मका स्वरूप कहै। सो ब्रह्म सर्वव्यापी है तौ ऐसा विशेष काहेकों किया। अर सूर्यादिविषै वा सुवर्णादिविषै ही ब्रह्म है तो सूर्य उजारा करै है, सुवर्ण धन है इत्यादि गुणनिकरि ब्रह्म मान्या सो सूर्यवत् दीपादिकभी उजाला करै है, सुवर्णवत् रूपा लोहा आदि भी धन है इत्यादि गुण अन्य पदार्थनिविषै भी हैं तिनकों भी ब्रह्म मानो। बडा छोटा मानो परन्तु जाति तो एक भई। सो झूठी महतता ठहरावनेके अर्थि अनेक प्रकार युक्ति बनावै हैं।

बहुरि अनेक ज्वालामालिनी आदि देवी तिनकों मायाका स्वरूप कहि हिसादिक पाप उपजाय पूजना ठहरावै हैं सो माया तो निंद्य है ताका पूजना कैसे सम्भवै ? अर हिसादिक करना कैसे भला होय ? बहुरि गऊ सर्प आदि पशु अभक्ष्य भक्षणादिसहित तिनको पूज्य कहैं।

अग्नि पवन जलादिककों देव ठहराय पूज्य कहैं। वृक्षादिककों युक्ति बनाय पूज्य कहैं। बहुत कहा कहिए, पुरुषलिंगी नाम सहित जे होंय तिनिविषै ब्रह्मकी कल्पना करै अर स्त्रीलिंगी नाम सहित होंय तिनि विषैं मायाकी कल्पनाकरि अनेक वस्तुनिका पूजन ठहरावै हैं। इनके पूजे कहा होगा सो किछू विचार नाहीं। झूंठे लौकिक प्रयोजनके कारण ठहराय जगतकों भ्रमावै है। बहुरि वे कहै है—विधाता शरीरकों घड़ै है, बहुरि यम मारै है, मरते समय यम के दूत लेने आवैं हैं, मूए पीछे मार्गविषै बहुत काल लागै है, बहुरि तहा पुण्य पाप का लेखा करैं हैं, बहुरि तहां दंडादिक दे है। सो ए कल्पित झूठी युक्ति है। जीव तो समय समय अनन्ते उपजै मरै तिनका युगपत ऐसे होना कैसे सम्भवै? अर ऐसे माननेका कोई कारण भी भासै नाही।

बहुरि मूए पीछैं श्राद्धादिककरि वाका भला होना कहै सो जीवतां तो काहूके पुण्य-पापकरि कोई सुखी दु:खी होता दीसै नाही, मूए पीछैं कैसे होइ। ए युक्ति मनुष्यनिकों भ्रमाय अपने लोभ साधनेके अर्थि बनाई है। कीडी पतंग सिंहादिक जीव भी तो उपजैं मरै है, उनको तो प्रलय के जीव ठहरावैं। सो जैसैं मनुष्यादिककै जन्म मरण होते देखिए है, तैसे ही उनके होते देखिए है। झूठी कल्पना किए कहा सिद्धि है? बहुरि वे शास्त्रनिविषै कथादिक निरूपै है तहाँ विचार किए विरुद्ध भासै।

यज्ञमें पशुहिंसा का प्रतिषेध

बहुरि यज्ञादिक करना धर्म ठहरावै है। सो तहाँ बड़े जीव तिनि का होम करैं हैं, अग्न्यादिकका महा आरम्भ करै हैं,तहाँ जीवघात हो

है सो उनहीके शास्त्रविषै वा लोकविषैं हिंसाका निषेध है सो ऐसे निर्दय हैं किछू गिनै नाहीं । अर कहैं—"यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः" ए यज्ञ ही के अर्थि पशु बनाए हैं। तहां घात करने का दोष नाहीं। बहुरि मेघादिकका होना, शत्रु आदिका विनशना इत्यादि फल दिखाय अपने लोभके अर्थि राजादिकनिकों भ्रमावै । सो कोई विषतैं जीवना कहै सो प्रत्यक्ष विरुद्ध है। तैसें हिंसा किए धर्म अर कार्यसिद्ध कहना प्रत्यक्ष विरुद्ध है। परन्तु जिनकी हिंसा करनी कही, तिनकी तो किछू शक्ति नाही, उनकी काहूकों पीर नाही । जो किसी शक्तिवान् वा इष्ट का होम करना ठहराया होता तो ठीक पडता। बहुरि पाप का भय नाहीं तातै पापी दुर्बलके घातक होय अपने लोभके अर्थि अपना वा अन्यका बुरा करनेविषै तत्पर भए हैं।

बहुरि ते मोक्षमार्ग भक्तियोग अर ज्ञानयोग करि दोय प्रकार प्ररूपै हैं । अब भक्तियोग करि मोक्षमार्ग कहैं ताका स्वरूप कहिये हैं :—

भक्तियोग मीमांसा

तहां भक्ति निर्गुण सगुण भेदकरि दोय प्रकार कहै हैं । तहाँ अद्वैत परब्रह्म की भक्ति करनी सो निर्गुणभक्ति है। सो ऐसें करे हैं—तुम निराकार हो, निरजन हो, मन वचन के अगोचर हो, अपार हो, सर्वव्यापी हो, एक हो, सर्वके प्रतिपालक हो, अधमउधारण हो, सर्व के कर्त्ता हर्त्ता हो इत्यादि विशेषणनिकरि गुण गावै है । सो इन विषैं केई तो निराकारादि विशेषण हैं सो अभावरूप हैं तिनकों सर्वथा माने अभाव ही भासै । जातै आकारादि बिना वस्तु कैसें होई । बहुरि

केई सर्वव्यापी आदि विशेषण असम्भवी हैं सो तिनिका असम्भवपना पूर्वें दिखाया ही है। बहुरि ऐसा कहैं जो जीव बुद्धिकरि मैं तिहारा दास हूँ, शास्त्रदृष्टिकरि तिहारा अंश हूँ, तत्त्वबुद्धिकरि 'तू ही मैं हूँ' सो ए तीनों ही भ्रम हैं। यहु भक्तिकरनहारा चेतन है कि जड़ है। जो चेतन है तो यहु चेतना ब्रह्मकी है कि इसहीको है। जो ब्रह्मकी है तो मैं दास हूँ ऐसा मानना तो चेतनाहीके हो है सो चेतना ब्रह्मका स्वभाव ठहरचा अर स्वभाव स्वभावीकै तादात्म्यसम्बन्ध है। तहा दास अर स्वामी का सम्बन्ध कैसे बनै ? दास स्वामी का सम्बन्ध तो भिन्न पदार्थ होय तब ही बनै। बहुरि जो यहु चेतना इसहीकी है तो यहु अपनो चेतनाका धनी जुदा पदार्थ ठहरचा तो मैं अंश हूँ वा 'जो तू है सो मैं हूँ' ऐसा कहना झूंठा भया। बहुरि जो भक्ति करणहारा जड़ है तो जड़कै बुद्धिका होना असम्भव है ऐसी बुद्धि कैसे भई। तातै 'मैं दास हू' ऐसा कहना तो तब ही बनै जब जुदे-जुदे पदार्थ होंय। अर 'तेरा मैं अंश हूँ' ऐसा कहना बनै ही नाही। जातै 'तू' अर 'मैं' ऐसा तो भिन्न होय तब ही बनै,सो अंश अंशी भिन्न कैसे होय ? अंशी तो कोई जुदा वस्तु है नाही, अंशनिका समुदाय सो ही अंशी है। अर तू है सो मैं हूँ, ऐसा बचन ही विरुद्ध है। एक पदार्थविषैं आपो भी मानै अर वाको पर भी मानै सो कैसे सम्भवै ? तातै भ्रम छोड़ि निर्णय करना। बहुरि केई नाम ही जपै हैं सो जाका नाम जपैं ताका स्वरूप पहिचाने बिना केवल नामही का जपना कैसें कार्यकारी होय। जो तू कहेगा, नामहीका अतिशय है ;तो जो नाम ईश्वरका है सो ही नाम किसी पापी पुरुषका धरचा, तहाँ दोऊनिका नाम उच्चारणविषै

फलकी समानता होय सो कैसें बनै। तातें स्वरूपका निर्णयकरि पीछें भक्ति करने योग्य होय ताकी भक्ति करनी। ऐसें निर्गुणभक्तिका स्वरूप दिखाया।

बहुरि जहाँ काम क्रोधादिकरि निपजे कार्यनिका वर्णनकरि स्तुत्यादि करिए ताकों सगुणभक्ति कहै हैं। तहां सगुणभक्तिविषें लौकिक शृङ्गार वर्णन जैसें नायक नायिकाका करिए तैसें ठाकुरठकुरानीका वर्णन करै हैं। स्वकीया परकीया स्त्रीसम्बन्धी संयोगवियोगरूप सर्व-व्यवहार तहाँ निरूपै हैं। बहुरि स्नान करती स्त्रीनिका वस्त्र चुरावना, दधि लूटना,स्त्रीनिके पगां पड़ना, स्त्रीनिके आगैं नाचना इत्यादि जिन कार्यनिकों संसारी जीव भी करते लज्जित होंय तिनि कार्यनिका करना ठहरावे है। सो ऐसा कार्य अतिकाम पीड़ित भएही बनै। बहुरि युद्धादिक किए कहैं तो ए क्रोध के कार्य है। अपनी महिमा दिखावने के अर्थि उपाय किए कहै सो ए मान के कार्य है। अनेक छल किए कहैं सो मायाके कार्य हैं। विषय सामग्री प्राप्तिके अर्थि यत्न किए कहैं सो ए लोभके कार्य है। कोतूहलादिक किए कहै सो हास्यादिकके कार्य हैं। ऐसे ए कार्य क्रोधादिकरि युक्त भए ही बनै। या प्रकार काम क्रोधादिकरि निपजे कार्यनिको प्रगटकरि कहै, हम स्तुति करै हैं। सो काम क्रोधादिके कार्य ही स्तुतियोग्य भए तो निंद्य कौन ठहरैंगे। जिनकी लोकविषै, शास्त्रविषै अत्यन्त निन्दा पाइए तिनि कार्यनिका वर्णनकरि स्तुति करना तो हस्तचुगलकासा कार्य भया। हम पूछे हैं— कोऊ किसीका नाम तो कहै नाही अर ऐसे कार्यनिहीका निरूपण करि कहैं कि किसीने ऐसे कार्य किए हैं,तब तुम वाकों भला जानो कि

बुरा जानो। जो भला जानो तो पापी भले भए, बुरा कौन रह्या। बुरे जानो तो ऐसे कार्य कोई करो सो ही बुरा भया। पक्षपात रहित न्याय करो। जो पक्षपातकरि कहोगे, ठाकुरका ऐसा वर्णन करना भी स्तुति है तो ठाकुर ऐसे कार्य किस अर्थि किए। ऐसे निंद्यकार्य करनेमें कहा सिद्धी भई? कहोगे, प्रवृत्ति चलावनेके अर्थि किए तो परस्त्री सेवन आदि निंद्यकार्यनिकी प्रवृत्ति चलावनेमें आपकै वा अन्यकै कहा नफा भया। तातै ठाकुरकै ऐसा कार्य करना सम्भव नाहीं। बहुरि जो ठाकुर कार्य न किए तुम ही कहो हो, तो जामें दोष न था ताको दोष लगाया, तातै ऐसा वर्णन करना तो निंदा है, स्तुति नाही। बहुरि स्तुति करतै जिन गुणनिका वर्णन करिए तिस रूप ही परिणाम होय वा तिनही विषै अनुराग आवै। सो काम क्रोधादि कार्यनिका वर्णन करता आप भी कामक्रोधादिरूप होय अथवा कामक्रोधादि विषै अनुरागी होय तो ऐसे भाव तो भले नाही। जो कहोगे, भक्त ऐसा भाव न करै है तो परिणाम भए बिना वर्णन कैसे किया। तिनका अनुराग भए बिना भक्ति कैसे करी। सो ए भाव ही भले होंय तो ब्रह्मचर्यको वा क्षमादिककों भले काहेकों कहिए। इनके तो परस्पर प्रतिपक्षीपना है। बहुरि सगुणभक्ति करने के अर्थि राम कृष्णादिककी मूर्ति भी शृंगारादि किए वक्रत्वादिसहित स्त्री आदि संग लिए बनावै है, जाको देखते ही कामक्रोधादि भाव प्रगट होय आवै अर महादेवके लिंगहीका आकार बनावै है। देखो विडम्बना, जाका नाम लिए लाज आवै, जगत् जिसको ढांक्या राखै ताके आकारका पूजन करावैं है। कहा अन्य अंग वाके न थे?

परन्तु घनी विडम्बना ऐसे ही किए प्रगट होय। बहुरि सगुणभक्तिके अर्थि नाना प्रकार विषयसामग्री भेली करैं। बहुरि नाम तो ठाकुरका करैं अर तिनिकों आप भोगवै। भोजनादि बनावै बहुरि ठाकुरकों भोग लगाया कहै, पीछे आप ही प्रसादकी कल्पनाकरि ताका भक्षणादि करैं। सो इहां पूछिये है, प्रथम तो ठाकुरकै क्षुधा तृषा पोड़ा होसी। न होइ तो ऐसी कल्पना कैसें सम्भवै। अर क्षुधादिकरि पीडित होय सो व्याकुल होइ तब ईश्वर दुःखी भया, औरका दु.ख कैसे दूरि करै। बहुरि भोजनादि सामग्री आप तो उनके अर्थि अर्पण करी, सो करी, पीछै प्रसाद तो ठाकुर देवै तब होय, आपही का तो किया न होय। जैसें कोऊ राजाको भेंट करि पोछै राजा बक्सै तो वाकों ग्रहण करना योग्य अर आप राजा को भेट करै अर राजा तो किछू कहै नाहीं, आप ही 'राजा मोकूं बकसी' ऐसे कहि वाको अगीकार करै तो यहु ख्याल (खेल) भया। तैसे इहाँ भी ऐसे किए भक्ति तो भई नाहीं, हास्य करना भया। बहुरि ठाकुर अर तू दोय हो कि एक हो। दोय हो तो तैंनै भेट करी, पीछै ठाकुर बकसै सो ग्रहण कीजे, आप ही तैं ग्रहण काहेकों करै है। अर तू कहेगा ठाकुरकी तो मूर्ति है तातै मैं ही कल्पना करू हू, तो ठाकुरका करने का कार्य तै ही किया तब तू ही ठाकुर भया। बहुरि जो एक हो तो भेट करनी, प्रसाद कहना झूठा भया। एक भए यहु व्यवहार सम्भवै नाही तातैं भोजनासक्त पुरुषनिकरि ऐसी कल्पना करिए है। बहुरि ठाकुरके अर्थि नृत्य गानादि करावना, शीत ग्रीष्म बसंत आदि ऋतुनिविषै संसारीनिकै सम्भवती ऐसी विषय सामग्री भेली करनी इत्यादि कार्य करै। तहां नाम

तो ठाकुर का लेना अर इन्द्रियनिके विषय अपने पोषने सो विषया-सक्त जीवनिकरि ऐसा उपाय किया है। बहुरि जन्म विवाहादिक की वा सोवना जागना इत्यादिकको कल्पना तहां करै है सो जैसें लड़की गुड्डागुड्डीनिका ख्याल बनाय करि कोतूहल करें, तैसें यहु भी कोतूहल करना है। किछू परमार्थरूप गुण है नाहीं। बहुरि लड़के ठाकुरका स्वांग बनाय चेष्टा दिखावें। ताकरि अपने विषय पोषें अर कहैं यहु भी भक्ति है, इत्यादि कहा कहिए। ऐसी अनेक विपरीतता सगुण भक्ति विषें पाईए है। ऐसें दोय प्रकार भक्तिकरि मोक्ष मार्ग कहै सो ताकौं मिथ्या दिखाया।

अब अन्य मत प्ररूपित ज्ञानयोगकरि मोक्षमार्गका स्वरूप बताइये है—

ज्ञानयोग मीमांसा

एक अद्वैत सर्वव्यापी परब्रह्म को जानना ताको ज्ञान कहै हैं सो ताका मिथ्यापना तो पूर्वे कह्या ही है। बहुरि आपकों सर्वथा शुद्ध ब्रह्मस्वरूप मानना, कामक्रोधादिक व शरीरादिकको भ्रम जानना ताकों ज्ञान कहै है सो यहु भ्रम है। आप शुद्ध है तो मोक्षका उपाय काहेकों करै है। आप शुद्धब्रह्म ठहरया तब कर्तव्य कहा रह्या ? बहुरि प्रत्यक्ष आपकै काम क्रोधादिक होते देखिए है अर शरीरादिकका सयोग देखिए है सो इनिका अभाव होगा तब होगा, वर्त्तमान विषै इनिका सद्भाव मानना भ्रम कैसे भया ? बहुरि कहै है,मोक्षका उपाय करना भी भ्रम है। जैसे जेवरी तो जेवरी ही है ताको सर्प जानै था सो भ्रम था—भ्रम मेटे जेवरी ही है। तैसे आप तो ब्रह्म ही है, आपको अशुद्ध जानै था सो भ्रम था, भ्रम मेटें आप ब्रह्म ही है। सो ऐसा कहना

मिथ्या है। जो आप शुद्ध होय अर ताको अशुद्ध जानै तो भ्रम अर आप कामक्रोधादिसहित अशुद्ध होय रह्या ताकों अशुद्ध जानै तो भ्रम कैसे होइ। शुद्ध जाने भ्रम होइ सो झूंठा भ्रम-करि आपको शुद्धब्रह्म माने कहा सिद्धि है। बहुरि तू कहेगा, ए काम क्रोधादिक तो मनके धर्म हैं, ब्रह्मन्यारा है तो तुझकूं पूछिए है—मन तेरा स्वरूप है कि नाहीं। जो है तो काम क्रोधादिक भी तेरे ही भए। अर नाहीं है तो तू ज्ञान स्वरूप है कि जड़ है। जो ज्ञानस्वरूप है तो तेरे तो ज्ञान मन वा इन्द्रिय द्वारा ही होता दीसै है। इनि बिना कोई ज्ञान बतावै तो ताकों जुदा तेरा स्वरूप मानें सो भासता नाहीं। बहुरि 'मन ज्ञाने' धातुतें मन शब्दनिपजै है सो मन तो ज्ञानस्वरूप है। सो यहु ज्ञान किसका है ताकों बताय सो जुदा कोऊ भासै नाहीं। बहुरि जो तू जड़ है तो ज्ञान बिना अपने स्वरूपका विचार कैसें करै है, यहु बनै नाही। बहुरि तू कहै है, ब्रह्मन्यारा है सो वह न्यारा ब्रह्म तू ही है कि और है। जो तू ही है तो तेरे 'मैं ब्रह्म हूं' ऐसा मानने वाला जो ज्ञान है सो तो मन स्वरूप ही है, मनतें जुदा नाही अर आपा मानना आप ही विषै होय। जाकों न्यारा जाने तिसविषैं आपा मान्यो जाय नाहीं। सो मनतें न्यारा ब्रह्म है तो मनरूप ज्ञान ब्रह्मविषै आपा काहेकों मानै है। बहुरि जो ब्रह्म और ही है तो तू ब्रह्मविषै आपा काहेकों मानै तातै भ्रम छोड़ि ऐसा जानि,जैसें स्पर्शनादि इन्द्रिय तो शरीर का स्वरूप है सो जड़ है, याके द्वारि जो जानपनो हो है सो आत्माका स्वरूप है; तैसे ही मन भी सूक्ष्म परमाणूनिका पुञ्ज है सो शरीर हीका अंग है, ताके द्वारि जानपना हो है वा कामक्रोधादि भाव हो हैं सो सर्व

आत्माका स्वरूप है। विशेष इतना–जानपनां तो निज स्वभाव है, काम क्रोधादिक उपाधिक भाव है तिसकरि आत्मा अशुद्ध है। जब कालपाय काम क्रोधादि मिटेंगे अर जानपनाके मन इन्द्रियका आधीन पना मिटेगा, तब केवल ज्ञानस्वरूप आत्मा शुद्ध होगा। ऐसे ही बुद्धि अहंकारादिक भी जानि लेने, जातैं मन अर बुद्धयादिक एकार्थ है अर अहंकारादिक है ते काम क्रोधादिकवत् उपाधिक भाव है। इनिकों आपतै भिन्न जानना भ्रम है। इनको अपने जानि उपाधिक भावनिके अभाव करनेका उद्यम करना योग्य है। बहुरि जिनितै इनिका अभाव न होय सकै अर अपनी महतता चाहै ते जीव इनिकों अपने न ठहराय स्वच्छन्द प्रवर्त्तै है। काम क्रोधादिक भावनिको बधाय विषय-सामग्रीनिविषै वा हिंसादिकार्यनिविषै तत्पर हो हैं। बहुरि अहंकारा-दिक का त्यागको भी अन्यथा मानै है। सर्वको परब्रह्म मानना, कहीं आपो न माननां ताको अहंकारका त्याग बतावै सो मिथ्या है जातैं कोई आप है कि नाहीं। जो है तो आपविषैं आपो कसैं न मानिए, जो आप नाहीं है तो सर्वको ब्रह्म कौन मानै है? तातैं शरीरादि पर विषै अहंबुद्धि न करनी, तहां करता न होना सो अहंकार का त्याग है। आप विषै अहंबुद्धि करनेका दोष नाहीं। बहुरि सर्वको समान जानना, कोई विषं भेद न करना ताकों रागद्वेषका त्याग बतावै है सो भी मिथ्या है। जातैं सर्व पदार्थ समान हैं नाहीं। कोई चेतन है कोई अचेतन है, कोई कसा है कोई कैसा है तिनिकों समान कैसें मानिए? तातै परद्रव्यनिको इष्ट अनिष्ट न मानना सो रागद्वेषका त्याग है। पदार्थनिका विशेष जानने में तो किछू दोष नाहीं। ऐसें

ही अन्य मोक्षमार्गरूप भावनिकै अन्यथा कल्पना करैं हैं। बहुरि ऐसी कल्पनाकरि कुशील सेवें हैं, अभक्ष्य भखें हैं, वर्णादि भेद नाहीं करैं हैं, हीन क्रिया आचरैं है इत्यादि विपरीतरूप प्रवर्त्तें हैं। जब कोऊ पूछे तब कहै हैं, ए तो शरीरका धर्म है अथवा जैसी प्रालब्धि है तैसें हो है अथवा जैसे ईश्वरकी इच्छा हो है तैसे हो है, हमको तो विकल्प न करना। सो देखो झूठ, आप जानि जानि प्रवर्त्ते ताकों तो शरीर का धर्म बतावै। आप उद्यमी होय कार्य करै ताकों प्रालब्धि कहै। आप इच्छाकरि सेवै ताको ईश्वरकी इच्छा बतावै। विकल्प करै अर कहै हमको तो विकल्प न करना। सो धर्मका आश्रय लेय विषयकषाय सेवने, तातैं ऐसी झूठी युक्ति बनावै है। जो अपने परिणाम किछू भी न मिलावै तो हम याका कर्त्तव्य न मानैं। जैसे आप ध्यान धरे तिष्ठे है, कोऊ अपने ऊपरि वस्त्र गेरि गया तहां आप किछू सुखी न भया, तहां तो ताका कर्त्तव्य नाही सो सांच अर आप वस्त्रकों अंगीकारकरि पहरै, अपनी शीतादिक वेदना मिटाय सुखी होय, तहाँ जो अपना कर्त्तव्य मानै नाही सो कैसे सभवै। बहुरि कुशील सेवना अभक्ष्य भखणा इत्यादि कार्य तो परिणाम मिले बिना होते ही नाही। तहाँ अपना कर्त्तव्य कैसे न मानिए। तातैं जो काम क्रोधादिका अभाव ही भया होय तो तहाँ किसी क्रियानिविषैं प्रवृत्ति सम्भवै ही नाही। अर जो कामक्रोधादि पाईए है तो जैसे ए भाव थोरे होंय तैसें प्रवृत्ति करनी। स्वछन्द होय इनिको बधावना युक्त नाहीं।

पवनादि साधन द्वारा ज्ञानी होने का प्रतिषेध

बहुरि कई जीव पवनादिका साधनकरि आपकों ज्ञानी मानै हैं तहाँ

इडा पिंगला सुषुम्णारूप नासिकाद्वारकरि पवन निकसै, तहां वर्णादिक भेदनितैं पवन हीकों पृथ्वी तत्त्वादिकरूप कल्पना करै हैं। ताका विज्ञानकरि किछू साधनतैं निमित्तका ज्ञान होय तातैं जगतकों इष्ट अनिष्ट बतावै, आप महंत कहावै सो यह तो लौकिक कार्य है, किछू मोक्षमार्ग नाहीं। जीवनिको इष्ट अनिष्ट बताय उनकै राग द्वेष बधावै अर अपने मान लोभादिक निपजावै, यामें कहा सिद्धि है? बहुरि प्राणायामादिका साधन करै, पवनकों चढ़ाय समाधि लगाई कहै, सो यहु तो जैसे नट साधनतैं हस्तादिक करि क्रिया करै तैसें यहां भी साधनतैं पवनकरि क्रिया करी। हस्तादिक अर पवन ए तो शरीर हो के अंग हैं। इनिके साधनतै आत्महित कैसे सधै ? बहुरि तू कहेगा-तहाँ मनका विकल्प मिटै है, सुख उपजै है, यमके वशीभूतपना न हो है सो यहु मिथ्या है। जैसे निद्राविषै चेतनाकी प्रवृत्ति मिट है तैसे पवन साधनतै यहां चेतनाकी प्रवृत्ति मिटै है। तहाँ मनको रोकि राख्या है, किछू वासना तो मिटी नाहीं। तातै मनका विकल्प मिटया न कहिए अर चेतना बिना सुख कौन भोगवै है तातै सुख उपज्या न कहिए। अर इस साधनवाले तो इस क्षेत्रविषै भए हैं तिन विषै कोई अमर दीसता नाही। अग्नि लगाए ताका भी मरण होता दीसै है तातै यमके वशीभूत नाही, यहु झूठी कल्पना है। बहुरि जहां साधन विषै किछू चेतना रहै अर तहा साधनतै शब्द सुनै, ताकों अनहद नाद बतावै। सो जैसें वीणादिकके शब्द सुननेतै सुख मानना तैस तिसके सुननेतैं सुख मानना है। इहां तो विषयपोषण भया, परमार्थतो किछू नाहीं। बहुरि पवन का निकसने पैठने विषैं "सोहं" ऐसे

शब्दकी कल्पनाकरि ताको '**अजपा जाप**' कहै हैं। सो जैसें तीतरके शब्दविषें 'तू ही' शब्दकी कल्पना करै है, किछू तीतर अर्थ अवधारि ऐसा शब्द कहता नाहीं। तैसें यहां '**सोहं**' शब्दकी कल्पना है, किछू पवन अर्थ अवधारि ऐसा शब्द कहता नाहीं। बहुरि शब्दके जपने सुनने ही तें तो किछू फलप्राप्ति नाहीं, अर्थ अवधारे फलप्राप्ति हो है। सो '**सोहं**' शब्दका तो अर्थ यहु है 'सो हूं छूं', यहां ऐसी अपेक्षा चाहिए है, 'सो' कौन ? तब ताका निर्णय किया चाहिए। जातैं तत् शब्दकै अर यत् शब्दकै नित्य सम्बन्ध है। तातैं वस्तुका निर्णयकरि ताविषैं अहंबुद्धि धारने विषैं '**सोहं**' शब्द बनै। तहां भी आपकों आप अनुभवै, तहां तो '**सोहं**' शब्द सम्भवै नाहीं। परकों अपने स्वरूप बतावनेविषैं '**सोहं**' शब्द सम्भवै है। जैसें पुरुष आपकों आप जानै, तहां 'सो हूं छूं' ऐसा काहेकों विचारै। कोई अन्य जीव आपकों न पहचानता होय अर कोई अपना लक्षण न पहचानता होय, तब वाकं कहिए '**जो ऐसा है सो मैं हूं**' तैसें ही यहा जानना। बहुरि केई ललाट भौंह अर नासिकाके अग्रके देखनेका साधनकरि त्रिकुटी आदिका ध्यान भया कहि परमार्थ मानै सो नेत्रकी पूतरी फिरे मूर्त्तीक वस्तु देखी, यामें कहा सिद्धि है। बहुरि ऐसे साधननितैं किंचित् अतीत अनागतादिकका ज्ञान होय वा वचनसिद्धि होय वा पृथ्वी आकाशादिविषैं गमनादिककी शक्ति होय वा शरीरविषैं आरोग्यतादिक होय तो ए तो सर्व लौकिक कार्य हैं। देवादिकके स्वयमेव ही ऐसी शक्ति पाइए है। इनितैं किछू अपना भला तो होता नाहीं, भला तो विषयकषायकी

वासना मिटैं होय। सो ए तौ विषयकषायपोषनेके उपाय हैं। तातैं ए सर्व साधन किछू हितकारी हैं नाहीं। इनिविषैं कष्ट बहुत मरणादि पर्यन्त होय अर हित सधै नाहीं। तातैं ज्ञानी वृथा ऐसा खेद करै नाहीं। कषायी जीव ही ऐसे साधनविषैं लागै हैं। बहुरि काहूकौं बहुत तपश्चरणादिककरि मोक्षका साधन कठिन बतावैं हैं। काहूकों सुगमपनें ही मोक्ष भया कहैं। उद्धवादिककों परमभक्त कहैं, तिनको तो तपका उपदेश दिया कहैं,वेश्यादिककै बिना परिणाम (केवल) नामादिकहीतैं तरना बतावैं,किछू थल है नाहीं। ऐसैं मोक्षमार्गकों अन्यथा प्ररूपै हैं।

अन्यमत कल्पित मोक्षमार्ग की मीमांसा

बहुरि मोक्षस्वरूपकों भी अन्यथा प्ररूपै हैं। तहाँ मोक्ष अनेक प्रकार बतावै हैं। एक तो मोक्ष ऐसा कहै हैं—जो वैकुण्ठधामविषैं ठाकुर ठकुराणीसहित नाना भोगविलास करै हैं तहां जाय प्राप्त होय अर तिनिकी टहल किया करै सो मोक्ष है। सो यहु तो विरुद्ध है। प्रथम तो ठाकुर भी संसारीवत् विषयाशक्त होय रह्या है। तो जैसा राजा-दिक है तैसा ही ठाकुर भया। बहुरि अन्य पासि टहल करावनी भई तब ठाकुरकै पराधीनपना भया। बहुरि जो यहु मोक्षकों पाय तहाँ टहल किया करै तो जैसें राजाकी चाकरी करनी तैसें यहु भी चाकरी भई, तहां पराधीन भए सुख कैसें होय? तातैं यहु भी बनें नाही।

बहुरि एक मोक्ष ऐसा कहैं हैं—ईश्वरके समान आप हो है सो भी मिथ्या है। जो उसके समान और भी जुदा होय है तो बहुत ईश्वर भए। लोकका कर्त्ता हर्त्ता कौन ठहरेगा? सबही ठपरैं तो भिन्न इच्छा भए परस्पर विरुद्ध होय। एक ही है तो समानता न भई। न्यून

है ताकै छोटापनेकरि उच्च होने की आकुलता रही, तब सुखी कैसें होय ? जैसें छोटा राजाके बड़ा राजा संसारविषें हो है तैसें छोटा बड़ा ईश्वर मुक्तिविषें भी भया सो बनें नाहीं।

बहुरि एक मोक्ष ऐसा कहै हैं—जो बैकुण्ठविषें दीपककीसी एक ज्योति है, तहाँ ज्योतिविषें ज्योति जाय मिलै है सो यहु भी मिथ्या है। दीपककी ज्योति तो मूर्त्तीक अचेतन है, ऐसी ज्योति तहाँ कैसें सम्भवे ? बहुरि ज्योतिमें ज्योति मिलें यहु ज्योति रहै है कि बिनशि जाय है। जो रहै है तौ ज्योति बधती जायसी, तब ज्योतिविषें हीनाधिकपनों होसी । अर विनशि जाय है तो आपकी सत्ता नाश होय ऐसा कार्य उपादेय कैसें मानिए। तातै ऐसैं भी बनें नाहीं।

बहुरि एक मोक्ष ऐसा कहैं हैं—जो आत्मा ब्रह्म ही है, मायाका आवरण मिटे मुक्ति ही है सो यहु भी मिथ्या है। यहु माया का आवरणसहित था तब ब्रह्मस्यों एक था कि जुदा था । जो एक था तो ब्रह्म ही मायारूप भया अर जुदा था तो माया दूरि भए ब्रह्मविषें मिलै है तब याका अस्तित्व रहै है कि नाहीं। जो रहै है तो सर्वज्ञकों तो याका अस्तित्व जुदा भासै, तब संयोग होनेतें मिल्या कहो परन्तु परमार्थतें तो मिल्या नाही। बहुरि अस्तित्व नाहीं रहै है तो आपका अभाव होना कौन चाहै, तातै यहु भी न बनै।

बहुरि एक प्रकार मोक्षकों ऐसा भी केई कहै हैं जो बुद्धिआदिकका नाश भए मोक्ष हो है। सो शरीर के अंगभूत मन इन्द्रिय तिनके आधीन ज्ञान न रह्या। काम क्रोधादिक दूरि भए ऐसें कहना तो बनै है अर तहाँ चेतनताका भी अभाव भया मानिए तो पाषाणादि समान

जड़ अवस्थाकों कैसें भली मानिए । बहुरि भला साधन करतें तो जानपना बधै है, बहुत भला साधन किए जानपनेका अभाव होना कैसें मानिए ? बहुरि लोकविषैं ज्ञानकी महंततातैं जड़पनाकी तो महंतता नाहीं तातैं यहु बनै नाहीं। ऐसें ही अनेक प्रकार कल्पनाकरि मोक्षकों बतावैं सो किछू यथार्थ तो जानैं नाहीं, संसार अवस्थाकी मुक्ति अवस्थाविषैं कल्पनाकरि अपनी इच्छा अनुसारि बकै हैं । या प्रकार वेदांतादि मतनिविषैं अन्यथा निरूपण करैं हैं।

मुस्लिममत सम्बन्धी विचार

बहुरि ऐसें ही मुसलमानोंके मतविषैं अन्यथा निरूपण करैं हैं। जैसें वे ब्रह्मकों सर्वव्यापी, एक, निरंजन, सर्वका कर्त्ता हर्त्ता मानै हैं तैसें ए खुदाकों मानै हैं । बहुरि जैसें वे अवतार भए मानै हैं तैसें ए पैगम्बर भए मानैं हैं। जैसें वे पुण्य पापका लेखा लेना, यथायोग्य दण्डादिक देना ठहरावैं हैं तैसें ए खुदाकै ठहरावैं हैं। बहुरि जैसे वे गऊ आदिकों पूज्य कहैं हैं तैसें ए सूअर आदिकों कहैं हैं, सब तिर्यंच आदिक हैं। बहुरि जैसे वे ईश्वरकी भक्तितैं मुक्ति कहै हैं तैसे ए खुदा की भक्तितैं कहै हैं। बहुरि जैसे वे कहीं दया पोषैं कही हिंसा पोषै, तैसें ए भी कही मेहर करनी पोषै कहीं कतल करना पोषैं। बहुरि जैसे वे कही तपश्चरण करना पोषै कही विषयसेवन पोषैं तैसें ही ए भी पोषै हैं। बहुरि जैसें वे कहीं मांस मदिरा शिकार आदिका निषेध करैं, कही उत्तम पुरुषोंकरि तिनिका अंगीकार करना बतावैं हैं तैसें ए भी तिनिका निषेध वा अंगीकार करना बतावैंहैं। ऐसें अनेक प्रकार करि समानता पाइए है । यद्यपि नामादिक और और हैं तथापि

प्रयोजनभूत अर्थकी एकता पाइए है। बहुरि ईश्वर खुदा आदि मूल-श्रद्धानकी तो एकता है अर उत्तर श्रद्धानविषें घनें ही विशेष हैं। तहाँ उनतें भी ए विपरीतरूप विषयकषायके पोषक, हिंसादिपापके पोषक, प्रत्यक्षादि प्रमाणतें विरुद्ध निरूपण करें हैं। तातें मुसलमानों का मत महाविपरीतरूप जानना। या प्रकार इस क्षेत्र कालविषें जिनिमतनिको प्रचुर प्रवृत्ति है ताका मिथ्यापना प्रगट किया।

इहाँ कोऊ कहै जो ए मत मिथ्या हैं तो बड़े राजादिक वा बड़े विद्यावान् इनि मतनिविषें कैसें प्रवर्तें हैं?

ताका समाधान—जीवनिकै मिथ्यावासना अनादितें है सो इनिविषें मिथ्यात्वहीका पोषण है। बहुरि जीवनिकै विषयकषायरूप कार्यनिकी चाह वर्तै है सो इनि विषै विषयकषायरूप कार्यनिहीका पोषण है। बहुरि राजादिकनिका वा विद्यावानोंका ऐसे धर्मविषें विषयकषायरूप प्रयोजनसिद्धि हो है। बहुरि जीव तो लोकनिंद्यपना कों भी उलंघि, पाप भी जानि जिन कार्यनिकों किया चाहै तिनि कार्यनिकों करते धर्म बतावें तो ऐसे धर्मविषें कौन न लागे। तातें इनि धर्मनिकी विशेष प्रवृत्ति है। बहुरि कदाचित् तू कहैगा—इनि धर्मनिविषें विरागता दया इत्यादि भी तो कहै हैं, सो जैसें झोल दिये बिना खोटा द्रव्य चालै नाहीं, तैसें साँच मिलाए बिना झूंठ चालै नाहीं परन्तु सर्वके हित प्रयोजन विषें विषयकषायका ही पोषण किया है। जैसें गीताविषें उपदेश देय राडि (युद्ध) करावनेका प्रयोजन प्रगट किया, वेदान्तविषै शुद्ध निरूपणकरि स्वच्छन्द होनेका प्रयोजन दिखाया। ऐसें ही अन्य

जाननै। बहुरि यहु काल तो निकृष्टहै सो इसविषैं तो निकृष्ट धर्महीकी प्रवृत्ति विशेष होय है। देखो इस कालविषैं मुसलमान बहुत प्रधान हो गए, हिन्दू घटि गए। हिन्दूनिविषैं और बधि गए, जैनी घटि गए। सो यहु कालका दोष है, ऐसैं इहाँ अबार मिथ्याधर्मकी प्रवृत्ति बहुत पाइए है। अब पंडितपनाके बलतैं कल्पितयुक्तिकरि नाना मत स्थापित भए हैं तिनिविषैं जे तत्त्वादिक मानिए हैं तिनका निरूपण कीजिए है :—

सांख्यमत निराकरण

तहाँ सांख्यमतविषैं पच्चीस तत्त्व मानै हैं ❀ सो कहिए हैं - सत्त्व रज: तम: ए तीन गुण कहैं हैं। तहाँ सत्त्वकरि प्रसाद हो है, रजोगुणकरि चित्तकी चंचलता हो है, तमोगुणकरि मूढ़ता हो है, इत्यादि लक्षण कहैं हैं। इनिरूप अवस्था ताका नाम प्रकृति है। बहुरि तिसतैं बुद्धि निपजै है, याहीका नाम महत्तत्त्व है। बहुरि तिसतैं अहंकार निपजै है। बहुरि तिसतैं सोलहमात्रा हो हैं। तहां पांच तो ज्ञानइन्द्रिय हो हैं—स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र। बहुरि एक मन हो है। बहुरि पाँच कर्मइन्द्रिय हो हैं—बचन, चरन, हस्त, लिंग, पायु। बहुरि पांच तन्मात्रा हो हैं—रूप, रस, गंध स्पर्श, शब्द। बहुरि रूपतै अग्नि, रसतै जल, गंधतैं पृथ्वी, स्पर्शतैं पवन, शब्दतैं आकाश, ऐसे भया कहै हैं। ऐसैं चौईस तत्त्व तो प्रकृतिस्वरूप हैं। इनितैं भिन्न निर्गुण कर्त्ता भोक्ता एक पुरुष है। ऐसैं पच्चीस तत्त्व

❀ प्रकृतेर्महास्ततोऽहंकारस्तस्माद्गणश्च षोडशक:।
तस्मादपि षोडशकात्पंचभ्य: पंचभूतानि ॥ —सांख्य का० १२

कहै हैं सो ए कल्पित हैं जातें राजसादिक गुण आश्रय बिना कैसें होंय। इनका आश्रय तो चेतनद्रव्य ही सम्भवै है। बहुरि इनितें बुद्धि भई कहैं सो बुद्धि नाम तो ज्ञान का है। सो ज्ञानगुणका धारी पदार्थ-विषैं ए होते देखिए हैं। इनितें ज्ञान भया कैसें मानिए। कोई कहै—बुद्धि जुदी है,ज्ञान जुदा है तो मन तो आगें षोड़शमात्राविषैं कह्या अर ज्ञान जुदा कहोगे तो बुद्धि किसका नाम ठहरेगा। बहुरि तिसतें अहंकार भया कह्या सो परवस्तु विषै 'मैं करूं हूं' ऐसा माननेका नाम अहंकार है। साक्षीभूत जानने करि तो अहंकार होता नाहीं तो ज्ञानकरि उपज्या कैसें कहिए है ? बहुरि अहंकारकरि षोड़श मात्रा कहीं, तिनि विषैं पाच ज्ञानइन्द्रिय कहीं सो शरीरविषैं नेत्रादि आकाररूप द्रव्येन्द्रिय हैं सो तो पृथ्वी आदिवत् जड़ देखिए है अर वर्णादिकके जाननेरूप भावइन्द्रिय हैं सो ज्ञानरूप हैं,अहंकारका कहा प्रयोजन है। अहंकार बुद्धिरहित कोऊ काहूकों देखै है। तहां अहंकारकरि निपजना कैसे सम्भवै? बहुरि मन कह्या सो इन्द्रियवत् ही मन है। जातें द्रव्य-मन शरीररूप है, भावमन ज्ञानरूप हैं। बहुरि पांच कर्मइन्द्रिय कहैं सो ए तो शरीर के अंग हैं, मूर्तीक हैं। अहंकार अमूर्तीक तें इनिका उपजना कैसें मानिए। बहुरि कर्मइन्द्रिय पांच ही तो नाहीं। शरीरके सर्व अंग कार्यकारी हैं। बहुरि वर्णन तो सर्व जीवाश्रित है, मनुष्याश्रित ही तो नाही, तातें सूंडि पूंछ इत्यादि अंग भी कर्मइन्द्रिय हैं। पांच हीकी संख्या काहेकों कहिए है। बहुरि स्पर्शादिक पांच तन्मात्रा कहीं सो रूपादि किछू जुदे वस्तु नाहीं, ए तो परमाणूनिस्यौं तन्मय गुण हैं। ए जुदे कैसें निपजे ? बहुरि अहंकार तो अमूर्तीक जीवका

परिणाम है। तातैं ए मूर्तीकगुण कैसें निपजे मानिए। बहुरि इनि पांचनितैं अग्नि आदि निपजे कहैं सो प्रत्यक्ष झूठ है। रूपादिक अग्न्यादिकके तो सहभूत गुण गुणी सम्बन्ध है। कहने मात्र भिन्न हैं, वस्तुविषैं भेद नाहीं। किसी प्रकार कोऊ भिन्न होता भासै नाहीं, कहने मात्रकरि भेद उपजाइए है। तातैं रूपादि करि अग्न्यादि निपजे कैसें कहिए। बहुरि कहनेविषैं भी गुणीविषै गुण हैं, गुणतैं गुणी निपज्या कैसें मानिए ?

बहुरि इनितैं भिन्न एक पुरुष कहै हैं सो वाका स्वरूप अवक्तव्य कहि प्रत्युत्तर न करै तो कहा बूझैं नाहीं। कैसा है, कहां है, कैसे कर्त्ता हर्त्ता है सो बताय। जो बतावेगा ताहीमें विचार किएं अन्यथापनौ भासेगा। ऐसें सांख्यमत करि कल्पित तत्त्व मिथ्या जानने।

बहुरि पुरुषकों प्रकृतितैं भिन्न जाननेका नाम मोक्षमार्ग कहैं हैं। सो प्रथम तो प्रकृति अर पुरुष कोई है ही नाही। बहुरि केवल जाननें ही तें तो सिद्धि होती नाहीं। जानिकरि रागादिक मिटाए सिद्धि होय। सो ऐसें जाने किछू रागादिक घटै नाही। प्रकृतिका कर्त्तव्य मानै, आप अकर्त्ता रहै, तब काहेकों आप रागादि घटावै। तातैं यहु मोक्षमार्ग नाहीं है।

बहुरि प्रकृति, पुरुषका जुदा होना मोक्ष कहैं हैं। सो पच्चीस तत्त्वनिविषैं चौईस तत्त्व तो प्रकृति सम्बन्धी कहे, एक पुरुष भिन्न कह्या। सो ए तो जुदे हैं ही अर जीव कोई पदार्थ पच्चीस तत्त्वनिविषैं कह्या ही नाहीं। अर पुरुष ही कों प्रकृति संयोग भए जीव संज्ञा हो है तो पुरुष न्यारे न्यारे प्रकृति सहित हैं, पीछें साधनकरि

कोई पुरुष प्रकृति रहित ही है, ऐसा सिद्ध भया-एक पुरुष न ठहरचा।

बहुरि प्रकृति पुरुषकी भूलि है कि कोई व्यंतरीवत् जुदी ही है जो जीवकों आनि लागै है। जो याको भूलि है तो प्रकृतितैं इन्द्रियादिक वा स्पर्शादिक तत्त्व उपजे कैसं मानिए ? अर जुदी है तो वह भी एक वस्तु है, सर्व कर्त्तव्य वाका ठहरचा। पुरुषका किछू कर्त्तव्य ही रह्या नाहीं,तब काहेकों उपदेश दीजिए है। ऐसें यहु मोक्ष मानना मिथ्या है। बहुरि तहां प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम ए तीन प्रमाण कहे हैं सो तिनिका सत्य असत्यका निर्णय जैनके न्याय ग्रन्थनितैं जानना।

बहुरि इस सांख्यमतविषैं कोई ईश्वरकों न मानै हैं। केई एक पुरुषकों ईश्वर मानै हैं। केई शिवकों, केई नारायणकों देव मानै हैं। अपनी इच्छा अनुसारि कल्पना करै हैं, किछू निश्चय है नाहीं। बहुरि इस मतविषैं केई जटा धारैं हैं, केई चोटी राखैं हैं, केई मुण्डित हो हैं, केई काथे वस्त्र पहरैं हैं, इत्यादि अनेक प्रकार भेष धारि तत्त्वज्ञानका आश्रयकरि महंत कुहावैं हैं। ऐसैं सांख्यमतका निरूपण किया।

नैयायिक मत निराकरण

बहुरि शिवमतविषैं दोय भेद हैं-- नैयायिक, वैशेषिक। तहां नैयायिकमत विषै सोलह तत्त्व कहै हैं। प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद जल्प, वितंडा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रहस्थान। तहां प्रमाण च्यारि प्रकार कहै हैं। प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमा। बहुरि आत्मा, देह, अर्थ, बुद्धि इत्यादि प्रमेय कहै हैं। बहुरि 'यहु कहा है' ताका नाम संशय है। जाके अर्थि प्रवृत्ति होय सो प्रयोजन है। जाकों वादी प्रतिवादी मानैं

सो दृष्टांत है। दृष्टांतकरि जाकौं ठहराइए सो सिद्धान्त है। बहुरि अनुमानके प्रतिज्ञा आदि पंच अंग ते अवयव हैं। संशय दूरि भए किसी विचारतें ठीक होय सो तर्क है। पीछें प्रतीतिरूप जानना सो निर्णय है। आचार्य शिष्यकै पक्ष प्रतिपक्षकरि अभ्यास सो वाद है। जाननेकी इच्छारूप कथाविषैं जो छल जाति आदि दूषण होय सो जल्प है। प्रतिपक्ष-रहित वाद सो बितंडा है। सांचे हेतु नाहीं, ते असिद्ध आदि भेद लिए हेत्वाभास है। छललिए वचन सो छल हैं। सांचे दूषण नाहीं ऐसे दूषणाभास सो जाति है। जाकरि परिवादीका निग्रह होय सो निग्रहस्थान है। या प्रकार संशयादि तत्त्व कहे सो ए तो कोई वस्तुस्वरूप तो तत्त्व हैं नाहीं। ज्ञानके निर्णय करने को वा वादकरि पांडित्य प्रगट करनेकों कारणभूत विचाररूप तत्त्व कहें सो इनितें परमार्थ कार्य कहा होई ? काम क्रोधादि भावकों मेटि निराकुल होना सो कार्य है। सो तो इहां प्रयोजन किछू दिखाया ही नाहीं। पंडिताई की नाना युक्ति बनाई सो यहु भी एक चातुर्य्य है,तातें ये तत्त्व तत्त्वभूत नाहीं। बहुरि कहोगे इनिकों जानें बिना प्रयोजनभूत तत्त्वनिका निर्णय न करि सकैं, तातैं ए तत्त्व कहे हैं। सो ऐसे परम्परा तो व्याकरणवाले भी कहै हैं। व्याकरण पढ़े अर्थ निर्णय होइ, वा भोजनादिकके अधिकारी भी कहै हैं कि भोजन किए शरीरकी स्थिरता भए तत्त्व-निर्णय करनेकों समर्थ होंय सो ऐसी युक्ति कार्यकारी नाहीं। बहुरि जो कहोगे,व्याकरण भोजनादिक तो अवश्य तत्त्वज्ञानकों कारण नाहीं, लौकिक कार्य साधनेकों भी कारण हैं, सो जैसें ये हैं, तैसें ही तुम तत्त्व कहे,सो भी लौकिक (कार्य) साधनेकों कारण होंहैं। जैसें इन्द्रियादिक

के जाननेकों प्रत्यक्षादि प्रमाण कहे वा स्थाणु पुरुषादिविषें संशया-दिकका निरूपण किया । तातें जिनिकों जानें अवश्यकाम क्रोधादि दूरि होंय, निराकुलता निपजै,वे ही तत्त्व कार्यकारी हैं। बहुरि कहोगे, जो प्रमेय तत्त्वविषें आत्मादिकका निर्णय हो है सो कार्यकारी है। सो प्रमेय तो सर्व ही वस्तु हैं। प्रमितिका विषय नाहीं, ऐसा कोई भी नाहीं, तातें प्रमेय तत्त्व काहेकों कह्या। आत्मा आदि तत्त्व कहने थे। बहुरि आत्मादिकका भी स्वरूप अन्यथा प्ररूपण किया सो पक्षपात-रहित विचार किए भासै है। जैसें आत्माके दोय भेद कहै हैं— परमात्मा,जीवात्मा। तहां परमात्मा कों सर्वका कर्त्ता बतावै हैं। तहाँ ऐसा अनुमान करें हैं जो यह जगत कर्त्ताकरि निपज्या है, जातें यह कार्य है। जो कार्य है सो कर्त्ताकरि निपज्या है, जैसें घटादिक। सो यह अनुमानाभास हैं। जातें ऐसा अनुमानान्तर सम्भवै है। यह जगत सर्व कर्त्ताकरि निपज्या नाहीं जातें याविषें कोई अकार्यरूप भी पदार्थ हैं। जो अकार्य हैं सो कर्त्ताकरि निपज्या नाहीं, जैसें सूर्यबिम्बादिक। जातें अनेक पदार्थनिका समुदायरूप जगत् तिसविषें कोई पदार्थ कृत्रिम हैं सो मनुष्यादिककरि किए होय हैं, कोई अकृत्रिम हैं सो ताका कर्त्ता नाहीं। यह प्रत्यक्षादि प्रमाणके अगोचर है तातें ईश्वरकों कर्त्ता मानना मिथ्या है। बहुरि जीवात्माकों प्रति शरीर भिन्न कहैं हैं सो यहु सत्य है परन्तु मुक्त भए पीछें भी भिन्न ही मानना योग्य है। विशेष पूर्वें कह्या ही है। ऐसें ही अन्य तत्त्वनिको मिथ्या प्ररूपै हैं। बहुरि प्रमाणादिकका भी स्वरूप अन्यथा कल्पै हैं सो जैनग्रन्थनिर्तें परीक्षा किए भासै है। ऐसें नैयायिकमतविषैं कहे कल्पित तत्त्व जानने।

वैशेषिकमत निराकरण

बहुरि वैशेषिकमतविषैं छह तत्त्व कहे हैं। द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य विशेष, समवाय। तहां द्रव्य नवप्रकार-पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश, काल, दिशा, आत्मा, मन। तहां पृथ्वी जल अग्नि पवनके परमाणु भिन्न भिन्न हैं। ते परमाणु नित्य हैं। तिनकरि कार्यरूप पृथ्वी आदि हो है सो अनित्य है । सो ऐसा कहना प्रत्यक्षादितैं विरुद्ध है । ईंधनरूप पृथ्वी आदिके परमाणु अग्निरूप होते देखिए है। अग्निके परमाणु राखरूप पृथ्वी होते देखिए है। जलके परमाणु मुक्ताफल (मोती) रूप पृथ्वी होते देखिए है। बहुरि जो तू कहैगा, वे परमाणु जाते रहै हैं, और ही परमाणु तिनिरूप हो हैं सो प्रत्यक्षकों असत्य ठहरावै है। ऐसी कोई प्रबलयुक्ति कहै तो ऐसें ही मानें, परन्तु केवल कहे ही तो ऐसें ठहरें नाहीं। तातें सब परमाणूनिकी एक पुद्गलरूप मूर्त्तीक जाति है सो पृथ्वी आदि अनेक अवस्थारूप परिणमैं है । बहुरि इन पृथ्वी आदिकका कहीं जुदा शरीर ठहरावै है, सो मिथ्या ही है । जातें वाका कोई प्रमाण नाहीं। अर पृथ्वी आदि तो परमाणुपिंड है। इनिका शरीर अन्यत्र, ए अन्यत्र ऐसा सम्भवै नाहीं तातें यहु मिथ्या है। बहुरि जहां पदार्थ अटकै नाहीं,ऐसी जो पोलि ताकों आकाश कहै हैं। क्षण पल आदिकों काल कहै हैं। सो ए दोन्यों ही अवस्तु हैं। सत्तारूप ए पदार्थ नाहीं। पदार्थनिका क्षेत्रपरिणमनादिकका पूर्वापरविचार करनेके अर्थि इनकी कल्पना कीजिए है। बहुरि दिशा किछू हैं ही नाहीं। आकाशविषैं खंड कल्पनाकरि दिशा मानिए है। बहुरि आत्मा दोय प्रकार कहे हैं

सो पूर्वे निरूपण किया ही है। बहुरि मन कोई जुदा पदार्थ नाहीं। भावमन तो ज्ञानरूप है सो आत्माका स्वरूप है। द्रव्यमन परमाणूनिका पिंड है सो शरीरका अंग है। ऐसें ए द्रव्य कल्पित जानने। बहुरि गुण चोईस कहे हैं—स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द, संख्या, विभाग संयोग, परिणाम, पृथक्त्व, परत्व, अपरत्व बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, धर्म अधर्म, प्रयत्न, संस्कार, द्वेष, स्नेह, गुरुत्व, द्रव्यत्व। सो इनिविषैं स्पर्शादिक गुण तो परमाणुनिविषैं पाइए है। परन्तु पृथ्वीको गन्धवती ही कहनी, जल को शीत स्पर्शवान ही कहना इत्यादि मिथ्या है, जातैं कोई पृथ्वी विषैं गंधकी मुख्यता न भासै है, कोई जल उष्ण देखिए है इत्यादि प्रत्यक्षादितैं विरुद्ध है। बहुरि शब्दकों आकाशका गुण कहैं सो मिथ्या है। शब्द तो भीति इत्यादिस्यों रुकै है, तातैं मूर्तीक है। आकाश अमूर्तीक सर्वव्यापी है। भींतिविषै आकाश रहे शब्दगुण न प्रवेशकरि सकै, यहु कैसे बनै? बहुरि संख्यादिक हैं सो वस्तुविषैं तो किछू हैं नाही, अन्य पदार्थ अपेक्षा अन्य पदार्थके हीनादिक जानने कों अपने ज्ञानविषैं संख्यादिककी कल्पनाकरि विचार कीजिए है। बहुरि बुद्धि आदि हैं, सो आत्माका परिणमन है। तहां बुद्धि नाम ज्ञानका है सो आत्माका गुण है ही अर मनका नाम है तो मन तो द्रव्यनिविषैं कह्याही था, यहां गुण काहेकों कह्या। बहुरि सुखादिक हैं सो आत्माविषैं कदाचित् पाइए हैं, आत्माके लक्षणभूत तो ए गुण हैं नाहीं, अव्याप्तपनेतैं लक्षणाभास हैं; बहुरि स्निग्धादि पुद्गलपरमाणुविषैं पाइए हैं सो स्निग्ध गुरुत्व इत्यादि तो स्पर्शन इन्द्रियकरि जानिए तातैं स्पर्शगुणविषैं गर्भित भए, जुदे काहेकों कहे। बहुरि द्रव्यत्वगुण जलविषैं कह्या, सो ऐसें तो

अग्निआदिविषैं ऊर्ध्वगमनत्व आदि पाइए है। कै तो सर्व कहने थे, कै सामान्यविषैं गर्भित करने थे। ऐसें ए गुण कहे ते भी कल्पित हैं। बहुरि कर्म पांच प्रकार कहै हैं—उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुंचन, प्रसारण, गमन। सो ए तो शरीरकी चेष्टा हैं। इनिकों जुदा कहनेंका अर्थ कहा। बहुरि एती ही चेष्टा तो होती नाहीं, चेष्टा तो घनी ही प्रकारकी हो हैं। बहुरि जुदी ही इनको तत्त्वसंज्ञा कही; सो कै तौ जुदा पदार्थ होय तो ताकों जुदा तत्त्व कहना था, कै काम क्रोधादि मेट-नैंकों विशेष प्रयोजनभूत होय तो तत्व कहना था; सो दोऊ ही नाहीं। अर ऐसें ही कहि देना तो पाषाणादिकको अनेक अवस्था हो हैं सो कह्या करो, किछू साध्य नाहीं। बहुरि सामान्य दोय प्रकार है—पर अपर। तहां पर तो सत्तारूप है, अपर द्रव्यत्वादिरूप है। बहुरि नित्य द्रव्यविषैं प्रवृत्ति जिनकी होय ते विशेष हैं। बहुरि अयुतसिद्ध सम्बन्ध का नाम समवाय है। सो सामान्यादिक तो बहुतनिकों एकप्रकारकरि वा एक वस्तुविषैं भेदकल्पना करि वा भेद कल्पना अपेक्षा सम्बन्ध माननेकरि अपने विचारहीविषै हो है, कोई जुदे पदार्थ तो नाहीं। बहुरि इनिके जानें कामक्रोधादि मेटनेरूप विशेष प्रयोजनकी भी सिद्धि नाहीं तातें इनको तत्त्व काहेकों कहे। अर ऐसे ही तत्त्व कहने थे तो प्रमेयत्वादि वस्तुके अनंतधर्म है वा सम्बन्ध आधारादिक कारकनिके अनेक प्रकार वस्तुविषैं सम्भवैं हैं। कै तो सर्व कहनें थे, कै प्रयोजन जानि कहने थे। तातें ए सामान्यादिक तत्त्व भी वृथा ही कहे। ऐसें वैशेषिकनिकरि कहे कल्पित तत्त्व जानने। बहुरि वैशेषिक दोय ही प्रमाण माने हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान। सो इनिका सत्य असत्यका

निर्णय जैनन्यायग्रंथनिवैंॐ जानना।

बहुरि नैयायिक तो कहै हैं—विषय, इन्द्रिय, बुद्धि, शरीर, सुख, दुःख इनिका अभावतें आत्माकी स्थिति सो मुक्ति है। अर वैशेषिक कहै हैं—चौईस गुणनिविषें बुद्धि आदि नवगुण तिनिका अभाव सो मुक्ति है। सो इहां बुद्धिका अभाव कह्या सो बुद्धि नाम ज्ञानका है तो ज्ञानका अधिकरणपना आत्माका लक्षण कह्या था, अब ज्ञानका अभाव भए लक्षणका अभाव होतें लक्ष्यका भी अभाव होय, तब आत्माकी स्थिति कैसें रही। अर जो बुद्धि नाम मनका है तो भावमन तो ज्ञानरूप है ही अर द्रव्यमन शरीररूप है सो मुक्त भए द्रव्यमनका सम्बन्ध छूटै ही है सो द्रव्य-मन जड़ ताका नाम बुद्धि कैसें होय ? बहुरि मनवत् ही इन्द्रिय जानने। बहुरि विषयका अभावहोय सो स्पर्शादि विषयनिका जानना मिटै है तो ज्ञान काहेका नाम ठहरेगा। अर तिनि विषयनिका ही अभाव होयगा तो लोकका अभाव होयगा। बहुरि सुखका अभाव कह्या सो सुखहीके अर्थ उपाय कीजिए है, ताका जहाँ अभाव होय सो उपादेय कैसें होय। बहुरि जो आकुलतामय इन्द्रियजनित सुखका तहाँ अभाव भया कहैं तो यहु सत्य है। अर निराकुलता लक्षण अतीन्द्रियसुख तो तहाँ सम्पूर्ण सम्भवै है तातैं सुखका अभाव नाहीं। बहुरि शरीर दुःख द्वेषादिकका तहाँ अभाव कहैं सो सत्य ही है।

बहुरि शिवमतविषें कर्त्ता निर्गुण ईश्वर शिव है ताकों देव मानै

ॐ देवागम, युक्त्यानुशासन, अष्टसहस्री, न्यायविनिश्चय, सिद्धिविनिश्चय, प्रमाणसंग्रह, तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक, राजवार्तिक, प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्याय कुमुदचन्द्रादि दार्शनिक ग्रन्थों से जानना चाहिये।

हैं। सो याके स्वरूपका अन्यथापना पूर्वोक्त प्रकार जानना। बहुरि यहाँ भस्मी, कोपीन, जटा, जनेऊ इत्यादि चिन्हसहित भेष हो हैं सो आचारादि भेदतें च्यारि प्रकार हैं—शैव, पाशुपत, महाव्रती, कालमुख। सो ए रागादि सहित हैं तातें सुलिंग नाहीं। ऐसें शिवमत का निरूपण किया।

मीमांसकमत निराकरण

अब मीमांसक मतका स्वरूप कहिए हैं। मीमांसक दोय प्रकार हैं—ब्रह्मवादी, कर्मवादी। तहां ब्रह्मवादी तो सर्व यहु ब्रह्म है, दूसरा कोई नाहीं ऐसा वेदान्तविषैं अद्वैत ब्रह्मकों निरूपै हैं। बहुरि आत्माविषैं लय होना सो मुक्ति कहै हैं। सो इनिका मिथ्यापना पूर्वे दिखाया है सो विचारना। बहुरि कर्मवादी क्रिया आचार यज्ञादिक कार्यनिका कर्तव्यपना प्ररूपै हैं सो इन क्रियानिविषैं रागादिकका सद्भाव पाइए है, तातें ए कार्य किछू कार्यकारी हैं नाहीं। बहुरि तहाँ 'भट्ट' अर 'प्रभाकर'करि करी हुई दोय पद्धति हैं। तहाँ भट्ट तो छह प्रमाण मानै हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, वेद, उपमा, अर्थापत्ति, अभाव। बहुरि प्रभाकर अभाव बिना पांच ही प्रमाण मानें हैं। सो इनिका सत्यासत्यपना जैनशास्त्रनितें जानना। बहुरि तहां षट्कर्मसहित ब्रह्मसूत्रके धारक शूद्रका अन्नादिके त्यागि ते ग्रहस्थाश्रम है नाम जिनिका ऐसे भट्ट हैं। बहुरि वेदान्तविषै यज्ञोपवीतरहित विप्र अन्नादिकके ग्राही, भगवत् है नाम जिनका ऐसे च्यारि प्रकार के हैं—कुटीचर, बहूदक, हंस, परमहंस। सो ए किछू त्यागकरि सन्तुष्ट भए हैं परन्तु ज्ञान श्रद्धानका मिथ्यापना अर रागादिकका सद्भाव इनकैं पाइए है। तातें ए भेष कार्यकारी नाहीं।

जैमिनीयमत निराकरण

बहुरि यहां ही जैमिनीयमत सम्भवै है, सो ऐसें कहैं हैं—

सर्वज्ञदेव कोई है नाहीं। नित्य वेद वचन हैं, तिनितें यथार्थ निर्णय हो है। तातैं पहले वेदपाठकरि क्रियाप्रवि प्रवर्त्तना सो तो नोदना (प्रेरणा) सोई है लक्षण जाका ऐसा धर्म ताका साधन करना। जैसें कहैं हैं **"स्वःकामोऽग्निं यजेत्"** स्वर्ग अभिलाषी अग्निकों पूजै, इत्यादि निरूपण करें हैं।

यहां पूछिए है—शैव, सांख्य, नैयायिकादिक सब ही वेदकों मानैं हैं, तुम भी मानो हो। तुम्हारै वा उन सबनिकै तत्त्वादि निरूपणविषै परस्पर विरुद्धता पाईए है सो है कहा? जो वेदही विषै कहीं किछू कहीं किछू निरूपण किया है, तो वाकी प्रमाणता कैसें रही? अर जो मतवाले ही कहीं किछू कहीं किछू निरूपण करैं हैं तो तुम परस्पर झगरिनिर्णय करि एककों वेदका अनुसारी अन्यकों वेदतैं पराङ्मुख ठहरावो। सो हमकों तो यहु भासै है, वेदहीविषैं पूर्वापर विरुद्धतालिए निरूपण है। तिसतैं ताका अपनी अपनी इच्छानुसारि अर्थ ग्रहण करि जुदे जुदे मतके अधिकारी भए हैं। सो ऐसे वेदकों प्रमाण कैसें कीजिए है। बहुरि अग्नि पूजें स्वर्ग होय, सो अग्नि मनुष्यतैं उत्तम कैसें मानिए? प्रत्यक्षविरुद्ध है। बहुरि वह स्वर्गदाता कैसें होय। ऐसेंही अन्य वेदवचन प्रमाण विरुद्ध हैं। बहुरि वेदविषैं ब्रह्मा कह्या है, सर्वज्ञ कैसे न मानैं हैं। इत्यादि प्रकारकरि जैमिनीयमत कल्पित जानना।

बौद्धमत निराकरण

अब बौद्ध मतका स्वरूप कहिए है—

बौद्धमतविषैं च्यारिआर्यसत्य+प्ररूपे हैं। दुःख, आयतन, समुदय, मार्ग। तहाँ संसारीकै स्कंधरूप सो दुःख है। सो पांच प्रकार× है–विज्ञान, वेदना, संज्ञा, संस्कार, रूप। तहां रूपादिकका जानना सो विज्ञान है, सुख दुःखका अनुभवना सो वेदना है, सूताका जागना सो संज्ञा है, पढ़्या था सो याद करना सो संस्कार है, रूपका धारन सो रूप है॥। सो यहां विज्ञानादिकों दुःख कह्या सो मिथ्या है। दुःख तो काम क्रोधादिक हैं,ज्ञान दुःख नाहीं। यह तो प्रत्यक्ष देखिए है। काहू कै ज्ञान थोरा है अर क्रोध लोभादिक बहुत है सो दुःखी है। काहूकै ज्ञान बहुत है,काम क्रोधादि स्तोक है वा नाहीं है सो सुखी है। तातैं विज्ञानादिक दुःख नाही हैं। बहुरि आयतन बारह कहे हैं। पाँच तो इन्द्रिय अर तिनिके शब्दादिक पांच विषय अर एक मन, एक धर्मायतन। सो ये आयतन किस अर्थि कहे। क्षणिक सबकों कहै, इनिका कहा प्रयो-

+ दुःखमायतनं चैव ततः समुदयो मतः।
मार्गश्चेत्यस्य च व्याख्या क्रमेण श्रूयतामतः॥ ३६॥

× दुःखं संसारिणः स्कन्धास्ते च पञ्चप्रकीर्तिताः।
विज्ञानं वेदना सञ्ज्ञा संस्कारोरूपमेव च॥ ३७॥ –वि० वि०

॥ रूपं पचेन्द्रियाण्यर्थाः पंचाविज्ञाप्तिरेव च।
तद्विज्ञानाश्रया रूपप्रसादाश्चक्षुरादयाः॥ ७॥
वेदनानुभवः संज्ञा निमित्तोद्ग्रहणात्मिका।
संस्कारस्कंधश्चतुर्थोन्ये सस्कारास्त इमे त्रयः॥१५॥
विज्ञान प्रति विज्ञप्ति...।

जन है ? बहुरि जातैं रागादिकका गण निपजै ऐसा आत्मा अर आत्मीय है नाम जाका सो समुदाय है । तहां अहंरूप आत्मा अर ममरूप आत्मीय जानना, सो क्षणिक माने इनिका भी कहनेका किछु प्रयोजन नाही । बहुरि सर्व संस्कार क्षणिक हैं, ऐसी वासना सो मार्ग है सो प्रत्यक्ष बहुत काल स्थायी केई वस्तु अवलोकिए हैं । तू कहैगा एक अवस्था न रहै है तो यहु हम भी मानें हैं । सूक्ष्मपर्याय क्षणस्थायी है । बहुरि तिस वस्तु ही का नाश मानै, यहु तो होता न दीसै है, हम कैसे मानें? बहुरि बाल वृद्धादि अवस्थाविषै एक आत्मा का अस्तित्व भासै है । जो एक नाही है तो पूर्व उत्तर कार्यका एक कर्त्ता कैसें मानै है । जो तू कहैगा सस्कारतें है तो संस्कार कौनके हैं। जाके हैं सो नित्य है कि क्षणिक है । नित्य है तो सर्व क्षणिक कैसे कहै है । क्षणिक है तो जाका आधार ही क्षणिक तिस सस्कारकी परम्परा कैसे कहै है । बहुरि सर्व क्षणिक भया तब आप भी क्षणिक भया । तू ऐसी वासनाकों मार्ग कहै है सो इस मार्गका फलकों आप तो पावै ही नाहीं, काहेकों इस मार्ग विषै प्रवर्त्तै । बहुरि तेरे मत विषै निरर्थक शास्त्र काहेकों किए । उपदेश तो किछू कर्त्तव्यकरि फल पावै तिसके अर्थ दीजिए है । ऐसै यहु मार्ग मिथ्या है । बहुरि रागादिक ज्ञानसन्तान वासनाका उच्छेद जो निरोध, ताकों मोक्ष कहै है । सो क्षणिक भया तब मोक्ष कौनकै कहै है । अर रागादिकका अभाव होना तो हम भी मानै हैं । अर ज्ञानादिक अपने स्वरूपका अभाव भए तो आपका अभाव होय ताका उपाय करना कैसे हितकारी होय । हिताहितका विचार करनेवाला तो ज्ञान ही है । सो आपका अभावकों ज्ञान हित

कैसे मानें। बहुरि बौद्ध मतविषें दोय प्रमाण मानैं हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान। सो इनिके सत्यासत्यका निरूपण जैनशास्त्रनितैं जानना। बहुरि जो ए दोय ही प्रमाण हैं, तो इनिके शास्त्र अप्रमाण भए, तिनिका निरूपण किस अर्थि किया। प्रत्यक्ष अनुमान तो जीव आप ही करि लेंगे, तुम शास्त्र काहेकों किए। बहुरि तहां सुगतकों देव मानै है, सो ताका स्वरूप नग्न वा विक्रियारूप स्थापैं है सो विडम्बनारूपहै। बहुरि कमंडल रक्तांबर के धारी पूर्वान्ह विषें भोजन करैं इत्यादि लिंगरूप बौद्धमतके भिक्षुक हैं सो क्षणिककों भेष धरनेका कहा प्रयोजन? परन्तु महंतताके अर्थि कल्पित निरूपण करना अर भेष धरना हो है। ऐसें बौद्ध हैं ते च्यारि प्रकार हैं– वैभाषिक, सौत्रांतिक, योगाचार, मध्यम। तहाँ वैभाषिक तो ज्ञानसहित पदार्थकों मानै हैं। सौत्रांतिक प्रत्यक्ष यहु देखिए है सोई है, परै किछू नाहीं ऐसा मानै हैं। योगाचारनिकै आचारसहित बुद्धि पाईए है। मध्यम हैं ते पदार्थका आश्रय बिना ज्ञानहीकों मानै हैं। सो अपनी अपनी कल्पना करै हैं। विचार किए किछू ठिकानाकी बात नाहीं। ऐसें बौद्धमतका निरूपण किया।

चार्वाकमत निराकरण

अब चार्वाकमतका स्वरूप कहिये हैं—

कोई सर्वज्ञदेव धर्म अधर्म मोक्ष है नाही वा पुण्य पाप का फल है नाहीं वा परलोक नाहीं, यह इन्द्रियगोचर जितना है सो ही लोक है; ऐसैं चार्वाक कहै है सो तहाँ वाकों पूछिए है—सर्वज्ञदेव इस कालक्षेत्र विषैं नाहीं कि सर्वदा सर्वत्र नाहीं। इस कालक्षेत्र-

विषें तो हम भी नाहीं मानै हैं। अर सर्वकालक्षेत्रविषें नाहीं ऐसा सर्वज्ञ बिना जानना किसकै भया। जो सर्व क्षेत्रकालकी जानै सो ही सर्वज्ञ अर न जानै है तो निषेध कैसें करै है। बहुरि धर्म अधर्म लोक विषें प्रसिद्ध हैं। जो ए कल्पित होय तो सर्वजन सुप्रसिद्ध कैसे होयँ। बहुरि धर्म अधर्मरूप परणति होती देखिए है, ताकरि वर्तमान ही में सुखी दुःखी हो हैं। इनिकों कैसें न मानिए। अर मोक्षका होना अनुमानविषें आवै है। क्रोधादिक दोष काहूकै हीन हैं, काहूकै अधिक हैं तो जानिए है काहूकै इनिकी नास्ति भी होती होसी। अर ज्ञानादि गुण काहूकै हीन काहूकै अधिक भासै हैं, तातैं जानिए है काहूक संपूर्ण भी होतै होसी। ऐसे जाकै समस्तदोषकी हानि गुणनिकी प्राप्ति होय सोई मोक्ष अवस्था है। बहुरि पुण्य पाप का फल भी देखिए हैं। कोऊ उद्यम करै तो भी दरिद्री रहै, कोऊकै स्वयमेव लक्ष्मी होय। कोऊ शरीरका यत्न करै तो भी रोगी रहै, काहूके बिना ही यत्न निरोगता रहै। इत्यादि प्रत्यक्ष देखिए है सो याका कारण कोई तो होगा। जो याका कारण सोई पुण्य पाप है। बहुरि परलोकभी प्रत्यक्ष अनुमानतें भासै है। व्यंतरादिक हैं ते अवलोकिए हैं। मैं अमुक था सो देव भया हूं। बहुरि तू कहैगा यहु तो पवन है सो हम तो 'मैं हूं' इत्यादि चेतनाभाव जाकै आश्रय पाईए ताहीकों आत्मा कहै हैं सो तू वाका नाम पवन कहि परन्तु पवन तो भींति आदिकरि अटकै है, आत्मा मूंद्या (बंद) हुआ भी अटकै नाहीं, तातैं पवन कैसैं मानिए है। बहुरि जितना इन्द्रियगोचर है तितना ही लोक कहै है। सो तेरी इन्द्रियगोचर तो थोरेसे भी योजन दूरिवर्ती क्षेत्र अर थोरासा अतीत अनागत कालि

ऐसा क्षेत्र कालवर्ती भी पदार्थ नाहीं होय सकै। अर दूरि देशकी वा बहुतकालको बातें परम्परातें सुनिए ही हैं, तातें सबका जानना तेरै नाहीं, तू इतना ही लोक कैसें कहै है?

बहुरि चार्वाकमतविषै कहै हैं कि पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश मिलें चेतना होय आवै है। सो मरते पृथ्वी आदि यहाँ रही। चेतनावान् पदार्थ गया सो व्यंतरादि भया, प्रत्यक्ष जुदे जुदे देखिए है। बहुरि एक शरीरविषैं पृथ्वी आदि तो भिन्न भिन्न भासै है, चेतना एक भासै है। जो पृथ्वी आदि के आधार चेतना होय तो हाड़ लोहूउश्वासादिककै जुदी जुदी चेतना होय। बहुरि हस्तादिक काटें जैसें वाकी साथि वर्णादिक रहैं तैसै चेतना भी रहै है। बहुरि अहंकार, बुद्धि तौ चेतनाके है सो पृथ्वी आदि रूप शरीर तो यहाँ हो रह्या, व्यंतरादि पर्यायविषै पूर्वपर्याय का अहपना मानना देखिए है सो कैसै हो है। बहुरि पूर्वपर्यायके गुह्य समाचार प्रगट करै सो यहु जानना किसकी साथि गया, जाकी साथि जानना गया सोई आत्मा है।

बहुरि चार्वाकमतविषै खाना पीना भोग विलास करना इत्यादि स्वच्छंद वृत्तिका उपदेश है सो ऐसैं तो जगत् स्वयमेव ही प्रवर्त्तै हैं। तहाँ शास्त्रादि बनाय कहा भला होनेका उपदेश दिया। बहुरि तू कहैगा, तपश्चरण शील संयमादि छुड़ावनेके अर्थि उपदेश दिया तो इनि कार्यनि विषैं तो कषाय घटनेतें आकुलता घटै है तातें यहां ही सुखी होना हो है, बहुरि यश आदि हो है, तू इनिको छुड़ाय कहा भला करै है। विषयासक्त जीवनिको सुहावती बातें कहि इतना

वा औरनिका बुरा करनेका भय नाहीं, स्वछन्द होय विषय सेवने के अर्थि ऐसी झूठी युक्ति बनावै है। ऐसें चार्वाकमतका निरूपण किया।

अन्य मत निराकरण उपसंहार

इस ही प्रकार अन्य अनेक मत हैं ते झूठी कल्पित युक्ति बनाय विषय-कषायासक्त पापी जीवनिकरि प्रगट किए हैं। तिनिका श्रद्धानादिकरि जीवनिका बुरा हो है। बहुरि एक जिनमत है सो ही सत्यार्थ का प्ररूपक है, सर्वज्ञ वीतरागदेवकरि भाषित है। तिसका श्रद्धानादिक करि ही जीवनिका भला हो है। सो जिनमतविषै जीवादि तत्त्व निरूपण किए हैं। प्रत्यक्ष परोक्ष दोय प्रमाण कहे हैं। सर्वज्ञ वीतराग अर्हंत देव हैं। बाह्य अभ्यतर परिग्रह रहित निर्ग्रंथ गुरु हैं। सो इनिका वर्णन इस ग्रन्थविषै आगे विशेष लिखेंगे सो जानना।

यहां कोऊ कहै—तुम्हारे राग-द्वेष है, तातैं तुम अन्यमतका निषेध करि अपने मतकों स्थापो हो, ताकों कहिए हैं—

यथार्थ वस्तु के प्ररूपण करनेविषै राग-द्वेष नाहीं। किछू अपना प्रयोजन विचारि अन्यथा प्ररूपण करै तो रागद्वेष नाम पावै।

बहुरि वह कहै है—जो रागद्वेष नाहीं है तो अन्यमत बुरे जैनमत भला ऐसा कैसे कहो हो। साम्यभाव होय तो सर्वकों समान जानों, मतपक्ष काहेकों करो हो।

याकों कहिए है—बुराकों बुरा कहैं हैं, भलाकों भला कहैं हैं, यामैं रागद्वेष कहा किया? बहुरि बुरा भलाकों समान जानना तो अज्ञानभाव है, साम्यभाव नाही।

बहुरि वह कहै है—जो सर्वमतनिका प्रयोजन तो एक ही है तातैं

सबकों समान जानना।

* ताकौं कहिए है—जो प्रयोजन एक होय तो नानामत काहेकौं कहिए? एक मतविषै तो एक प्रयोजन लिए अनेक प्रकार व्याख्यान हो है, ताको जुदा मत कौन कहै है। परन्तु प्रयोजन ही भिन्न भिन्न हैं सो दिखाईए है—

अन्य मतों से जैनमतकी तुलना

जैनमतविषै एक वीतरागभाव पोषने का प्रयोजन है सो कथानिविषै वा लोकादिका निरूपण विषें वा आचरणविषें वा तत्त्वनिविषें जहां तहां वीतरागताकी ही पुष्टता करी है। बहुरि अन्य मतनिविषें सरागभाव पोषने का प्रयोजन है। जातै कल्पित रचना कषायी जीव ही करैं सो अनेक युक्ति बनाय कषायभाव ही को पोषै। जैसे अद्वैत ब्रह्मवादी सर्वको ब्रह्म माननेंकरि अर सांख्यमति सर्व कार्य प्रकृतिका मानि आपकों शुद्ध अकर्त्ता माननेंकरि अर शिवमति तत्त्व जाननेहीतें सिद्धि होनी माननेंकरि, मीमांसक कषायजनित आचरणकों धर्म माननेंकरि, बौद्ध क्षणिक माननेंकरि, चार्वाक परलोकादि न माननेंकरि विषयभोगादिरूप कषायकार्यनिविषें स्वच्छन्द होना ही पोषै हैं। यद्यपि कोई ठिकानै कोई कषाय घटावनेका भी निरूपण करैं, तो उस छलकरि अन्य कोई कषायका पोषण करै है। जैसें गृह कार्य छोड़ि परमेश्वरका भजन करना ठहराया अर परमेश्वरका स्वरूप सरागी ठहराय उनके आश्रय अपने विषय कषाय पोषै। बहुरि जैनधर्मविषें देव गुरु धर्मादिकका स्वरूप वीतराग ही निरूपणकरि केवल वीतराग ताहीकों पोषें हैं सो यहु प्रगट है। हम कहा कहैं, अन्यमति भर्तृहरि

ताहूने वैराग्यप्रकरण विषै* ऐसा कह्या है—

एको* रागिषु राजते प्रियतमादेहार्द्धधारी हरो,
नीरागेषु जिनो विमुक्तललनासङ्गी न यस्मात्परः ।
दुर्वारस्मरबाणपन्नगविषव्यासक्तमुग्धो जनः,
शेषःकामविडंबितो हि विषयान् भोक्तुं न मोक्तुं क्षमः ॥१

या विषै सरागीनिविषै महादेवको प्रधान कह्या अर वीतरागी-निविषै जिनदेवकों प्रधान कह्या है। बहुरि सरागभाव वीतरागभाव-निविषै परस्पर प्रतिपक्षीपना है सो ये दोऊ भले नाहीं। इनिविषैं एक ही हितकारी है सो वीतराग भाव ही हितकारी है, जाके होतैं तत्काल आकुलता मिटै, स्तुतियोग्य होय। आगामी भला होना सब कहैं। सरागभाव होते तत्काल आकुलता होय निंदनीक होय,आगामी बुरा होना भासै तातैं जामें वीतरागभावका प्रयोजन ऐसा जैनमत सो ही इष्ट है। जिनमें सरागभावके प्रयोजन प्रगट किए है ऐसे अन्य-मत अनिष्ट हैं। इनिकों समान कैसे मानिए। बहुरि वह कहै है—जो यहु तो सांच परन्तु अन्यमतकी निन्दा किएं अन्यमती दुःख पावैं, विरोध उपजै, तातैं काहेकों निन्दा करिए। तहाँ कहिए है – जो हम

* रागी पुरुषों मे तो एक महादेव शोभित होता है,जिसने अपनी प्रियतमा पार्वतीको आधे शरीरमे धारण कर रक्खा है और वीतरागियोमे जिनदेव शोभित होते हैं, जिनके समान स्त्रियोंका संग छोड़नेवाला दूसरा कोई नही है। शेष लोग तो दुर्निवार कामदेवके बाणरूप सर्पोंके विषसे मूर्च्छितहुए हैं जो कामकी विडम्बनासे न तो विषयों को भली भाँति भोग ही सकते हैं और न छोड़ ही सकते हैं।

कषायकरि निन्दा करें वा औरनिकों दुःख उपजावें तो हम पापी ही हैं। अन्यमतके श्रद्धानादिककरि जीवनिकै अतत्त्वश्रद्धान दृढ़ होय, तातें संसारविषें जीव दुःखी होय, तातें करुणा भावकरि यथार्थ निरूपण किया है। कोई बिनादोष दुःख पावै, विरोध उपजावै तो हम कहा करें। जैसे मदिराकी निन्दाकरते कलाल दुःख पावै, कुशीलकी निन्दा करतें वेश्यादिक दुःख पावै, खोटा खरा पहचाननेकी परीक्षा बतावतें ठग दुःख पावै तो कहा करिए। ऐसें जो पापीनिके भयकरि धर्मोपदेश न दीजिए तो जीवनिका भला कैसें होय? ऐसा तो कोई उपदेश नाहीं, जाकरि सर्व ही चैन पावैं। बहुरि वह विरोध उपजावै सो विरोध तो परस्पर हो है। हम लरें नाहीं, वे आप ही उपशांत होय जांयगे। हमकों तो हमारे परिणामोंका फल होगा।

बहुरि कोऊ कहै—प्रयोजनभूत जीवादिक तत्त्वनिका अन्यथा श्रद्धान किएं मिथ्यादर्शनादिक हो हैं, अन्यमतनिका श्रद्धान किए कैसें मिथ्यादर्शनादिक होय ?

ताका समाधान—अन्यमतनिविषें विपरीत युक्ति बनाय जीवादिक तत्त्वनिका स्वरूप यथार्थ न भासै यहु ही उपाय किया है सो किस अर्थि किया है। जीवादि तत्त्वनिका यथार्थ स्वरूप भासै तो वीतराग-भाव भए ही महतपनो भासै। बहुरि जे जीव वीतरागी नाहीं अर अपनी महंतता चाहैं, तिनि सरागभाव होते महंतता मनावनेके अर्थि कल्पित युक्तिकर अन्यथा निरूपण किया है। सो अद्वैतब्रह्मादिकका निरूपणकरि जीव अजीवका अर स्वच्छन्दवृत्ति पोषनेकरि आस्रव संवरादिकका अर सकषायीवत् वा अचेतनवत् मोक्षकहनेकरि मोक्षका

अयथार्थ श्रद्धानकों पोषै हैं। तातैं अन्यमतनिका अन्यथापना प्रगट किया है। इनिका अन्यथापना भासै तो तत्त्वश्रद्धानविषै रुचिवंत होय, उनकी युक्तिकर भ्रम न उपजै। ऐसे अन्यमतनिका निरूपण किया।

अन्यमत के ग्रन्थोद्धरणोंसे जैनधर्मकी प्राचीनता और समीचीनता

अब अन्यमतनिके शास्त्रनिकीही साखिकरि जिनमतकी समीचीनता वा प्राचीनता प्रगट कीजिए है —

बड़ा योगवाशिष्ट छत्तीस हजार श्लोक प्रमाण ताका प्रथम वैराग्यप्रकरण तहाँ अहंकार निषेध अध्यायविषैं वशिष्ट अर रामका संवादविषै ऐसा कह्या है—

रामोवाच—

"नाहं रामो न मे वांछा भावेषु च न मे मनः।
शांतिमास्थातुमिच्छामि स्वात्मन्येव जिनो यथा* ॥१॥"

या विषै रामजी जिनसमान होनेकी इच्छा करी तातैं रामजीतैं जिनदेवका उत्तमपना प्रगट भया अर प्राचीनपना प्रगट भया। बहुरि 'दक्षिणामूर्ति—सहस्रनाम' विषै कह्या है—

शिवोवाच—

"जैनमार्गरतो जैनो जितक्रोधो जितामयः।"

---

* अर्थात् मैं राम नाही हूँ, मेरी कुछ इच्छा नही है और भावो वा पदार्थों में मेरा मन नही है। मैं तो जिनदेवके समान अपनी आत्मामें ही शान्ति स्थापना करना चाहता हूँ।

यहाँ भगवत का नाम जैनमार्गविषै रत अर जैन कह्या, सो यामैं जैनमार्गकी प्रधानता व प्राचीनता प्रगट भई। बहुरि 'वैशंपायनसहस्र नाम' विषै कह्या है—

"कालनेमिर्म्महा वीरः शूरः शौरिर्जिनेश्वरः।"

यहाँ भगवान्‌का नाम जिनेश्वर कह्या, तातैं जिनेश्वर भगवान हैं। बहुरि दुर्वासाऋषिकृत 'महिम्निस्तोत्र' विषै ऐसा कह्या है—

तत्तद्दर्शनमुख्यशक्तिरिति च त्वं ब्रह्मकर्मेश्वरी।
कर्त्तार्हन् पुरुषो हरिश्च सविता बुद्धःशिवस्त्वं गुरुः॥१॥

यहाँ 'अरहंत तुमहो' ऐसे भगवंत की स्तुति करी, तातैं अरहंतकै भगवंतपनो प्रगट भयो। बहुरि हनुमन्नाटकविषैं ऐसे कह्या है—

"यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनः
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्त्तेति नैयायिकाः।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरतः कर्मेति मीमांसकाः
सोऽयं वो विदधातु वांछितफलं त्रैलोक्यनाथःप्रभु* ॥१॥'

यहाँ छहौं मतनिविषैं एक ईश्वर कह्या तहाँ अरहंतदेव कै भी ईश्वरपना प्रगट किया।

---

* यह हनुमन्नाटकके मंगलाचरणका तीसरा श्लोक है। इसमें बताया है कि जिसको शैव लोग शिव कहकर, वेदान्ती ब्रह्म कहकर, बौद्ध बुद्धदेव कहकर, नैयायिक कर्त्ता कहकर, जैनी अर्हन् कहकर और मीमांसक कर्म कहकर उपासना करते हैं,वह त्रैलोक्यनाथ प्रभु तुम्हारे मनोरथोंको सफल करें।

यहां कोऊ कहै, जैसें यहां सर्वमतविषै एक ईश्वर कह्या तैसें तुम भी मानो।

ताकों कहिए है—तुमने यह कह्या है, हम तो न कह्या। तातैं तुम्हारे मतविषैं अरहंतके ईश्वरपना सिद्ध भया। हमारे मतविषै भी ऐसें ही कहैं तो हम भी शिवादिककों ईश्वर मानें। जैसें कोई व्यापारी सांचा रत्न दिखावे, कोई झूंठा रत्न दिखावे। तहां झूठा रत्नवाला तो रत्ननिको समान मोल लेने के अर्थि समान कहै। सांचा रत्नवाला कैसें समान मानै? तैसें जैनी सांचा देवादिकों निरूपै, अन्यमती झूठा निरूपै। तहां अन्यमती अपनी समान महिमाके अर्थि सर्वकों समान कहै—जैनी कैसे मानें? बहुरि 'रुद्रयामलतंत्र' विषैं भवानीसहस्रनामविषै ऐसें कह्या है—

"कुण्डासना जगद्धात्री बुद्धमाता जिनेश्वरी।
जिनमाता जिनेन्द्रा च शारदा हंसवाहिनी ॥१॥"

यहा भवानीके नाम जिनेश्वरी इत्यादि कहे, तातें जिनका उत्तमपना प्रगट किया। बहुरि 'गणेशपुराण' विषें ऐसें कह्या है—

"जैनं पशुपतं सांख्यं।"

बहुरि व्यासकृत सूत्रविषै ऐसा कह्या है—

"जैना एकस्मिन्नेव वस्तुनि उभयं प्ररूपयन्ति स्याद्वादिनः१।"

इत्यादि तिनिके शास्त्रनिविषैं जैन निरूपण है, तातें जैनमतका प्राचीनपना भासै है। बहुरि भागवतका पंचमस्कंधविषै ऋषभावतार

१—प्ररूपयन्ति 'स्याद्वादिनः' इति खरडा प्रतौ पाठः।

का वर्णन ॐ है। तहाँ यहु करुणामय, तृष्णादिरहित ध्यानमुद्राधारी सर्वाश्रम करि पूजित कह्या है, ताकै अनुसारि अरहत राजा प्रवृत्ति करी ऐसा कहै हैं। सो जैसे राम कृष्णादि अवतारनिके अनुसारि अन्यमत तैसें ऋषभावतारके अनुसारि जैनमत, ऐसें तुम्हारे मतहीकरि जैन प्रमाण भया। यहां इतना विचार और किया चाहिये—कृष्णादि अवतारनिके अनुसारि विषयकषायनिकी प्रवृत्तिहो है। ऋषभावतारके अनुसारि वीतराग साम्यभावकी प्रवृत्ति हो है। यहां दोऊ प्रवृत्ति समान माने धर्म अधर्मका विशेष न रहै अर विशेष माने भली होय सो अंगीकार करनी। बहुरि दशावतारचरित्र विषै— "**बद्ध्वा-पद्मासनं यो नयनयुगमिदं न्यस्य नासाग्रदेशे**" इत्यादि बुद्धावतारका स्वरूप अरहंत देव सारिखा लिख्या है, सो ऐसा स्वरूप पूज्य है तो अरहंतदेव पूज्य सहज ही भया।

बहुरि काशीखडविषै देवदास राजाने सम्बोधि राज्य छुडायो। तहाँ नारायण तो विनयकीर्त्ति यती भया, लक्ष्मीको विनयश्री आर्यिका करी, गरुड़कों श्रावक किया, ऐसा कथन है। सो जहां सम्बोधन करना भया तहां जैनी भेष बनाया। तातै जैन हितकारी प्राचीन प्रतिभासै है। बहुरि 'प्रभासपुराण' विषै ऐसा कह्या है—

भवस्य पश्चिमे भागे वामनेन तपःकृतम्।
तेनैव तपसाकृष्टः शिवः प्रत्यक्षतां गतः ॥१॥

ॐ भागवत स्कंध ५ अ० ५, २९

"पद्मासनसमासीनः श्याममूर्तिर्दिगम्बरः ।
नेमिनाथः शिवेत्येवं नाम चक्रेऽस्य वामनः ॥२॥
कलिकाले महाघोरे सर्व पापप्रणाशकः ।
दर्शनात्स्पर्शनादेव कोटियज्ञफलप्रदः ॥३॥"

यहाँ वामनकों पद्मासन दिगम्बर नेमिनाथका दर्शन भया कह्या । वाहीका नाम शिव कह्या । बहुरि ताके दर्शनादिकतें कोटीयज्ञका फल कह्या सो ऐसा नेमिनाथका स्वरूप तो जैनी प्रत्यक्ष मानै हैं, सो प्रमाण ठहरया । बहुरि प्रभासपुराणविषें कह्या है—

"रेवताद्रौ जिनो नेमिर्युगादिर्विमलाचले ।
ऋषीणामाश्रमादेव मुक्तिमार्गस्य कारणम् ॥१॥"

यहां नेमिनाथकों जिनसंज्ञा कही, ताके स्थानकों ऋषिका आश्रम मुक्तिका कारण कह्या अर युगादिके स्थानकों भी ऐसाही कह्या, तातें उत्तम पूज्य ठहरे । बहुरि 'नगरपुराण' विषें भवावताररहस्यविषें ऐसा कह्या है—

"अकारादिहकारन्तमूर्द्धाधोरेफसंयुतम् ।
नादविन्दुकलाक्रान्तं चन्द्रमण्डलसन्निभम् ॥१॥
एतद्देवि परं तत्त्वं यो विजानातितत्त्वतः ।
संसारबन्धनं छित्वा स गच्छेत्परमां गतिम् ॥२॥"

यहाँ 'अर्हं' ऐसे पदकों परमतत्त्व कह्या । याके जाने परमगतिकी प्राप्ति कही सो 'अर्हं' पद जैनमत उक्त है। बहुरि नगरपुराणविषें कह्या है—

"दशभिर्भोजितैर्विप्रैः यत्फलं जायते कृते ।
मुनेरर्हत्सुभक्तस्य तत्फलं जायते कलौ ॥१॥"

यहाँ कृतयुगविषैं दश ब्राह्मणों कों भोजन कराएका जेता फल कह्या, तेता फल कलियुगविषैं अर्हतभक्तमुनिके भोजन कराएका कह्या तातैं जैनीमुनि उत्तम ठहरे। बहुरि 'मनुस्मृति' विषैं ऐसा कह्या है—

"कुलादिबीजं सर्वेषां प्रथमो विमलवाहनः ।
चक्षुष्मान् यशस्वी वाभिचन्द्रोऽथ प्रसेनजित् ॥१॥
मरुदेवी च नाभिश्च भरते कुल सत्तमाः ।
अष्टमो मरुदेव्यां तु नाभेर्जात उरक्रमः ॥२॥
दर्शयन् वर्त्म वीराणां सुरासुरनमस्कृतः ।
नीतित्रितयकर्त्ता यो युगादौ प्रथमो जिनः ॥३॥"

यहाँ विमलवाहनादिक मनु कहे, सो जैनविषैं कुलकरनिके नाम कहे हैं अर यहां प्रथमजिन युगकी आदिविषैं मार्गका दर्शक अर सुरासुरकरि पूजित कह्या, सो ऐसें ही है तो जैनमत युगकी आदिहीतें है अर प्रमाणभूत कैसें न कहिए। बहुरि ऋगवेदविषैं ऐसा कह्या है—

"ॐ त्रैलोक्य प्रतिष्ठितान् चतुर्विंशतितीर्थकरान् ऋषभाद्यान् वर्द्धमानान्तान् सिद्धान् शरणं प्रपद्ये । ॐ पवित्रं नग्नमुपविस्पृसामहे एषां नग्नं येषां जातं येषां वीरं सुवीरं इत्यादि ।

बहुरि यजुर्वेदविषैं ऐसा कह्या है–

ॐ नमो अर्हंतो ऋषभाय । बहुरि ऐसा कह्या है–

ॐ ऋषभपवित्रं पुरुहूतमध्वरं यज्ञेषु नग्नं परमं माहसंस्तुतं वरं शत्रुं जयंतं पशुरिंद्रमाहुतिरिति स्वाहा। ॐ त्रातारमिंद्रं ऋषभं वदन्ति। अमृतारमिंद्रं हवे सुगतं सुपार्श्वमिंद्रं हवे शक्रमजितं तद्वर्द्धमानपुरुहूतमिंद्रमाहुरिति स्वाहा। ॐ नग्नं सुधीरं दिग्वाससं ब्रह्मगर्भं सनातनं उपैमि वीरं पुरुषमर्हंतमादित्यवर्णं तमसः परस्तात स्वाहा। ॐ स्वस्तिन इन्द्रो वृद्धश्रवा स्वस्तिनः पूषा विश्ववेदाः स्वस्तिनस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमि स्वस्तिनो वृहस्पतिर्दधातु। दीर्घायुस्त्वायुवलायुर्वा शुभजातायु। ॐ रक्ष रक्ष अरिष्टनेमिः स्वाहा। वामदेव शान्त्यर्थमनुविधीयते सोऽस्माकं अरिष्टनेमिः स्वाहा *।

सो यहां जैनतीर्थंकरनिके जे नाम हैं तिनका पूजनादि कह्या। बहुरि यहां यहु भास्या, जो इनके पीछे वेद रचना भई है। ऐसें अन्यमत के ग्रंथनिकी साक्षीतैं भी जिनमतकी उत्तमता अर प्राचीनता दृढ़ भई। अर जिनमतकों देखें वे मत कल्पित ही भासैं। तातैं जो अपना हित का इच्छुक होय सो पक्षपात छोरि सांचा जैनधर्मको अंगीकार करो। बहुरि अन्यमतनिविषै पूर्वापर विरोध भासै है। पहले अवतार वेदका उद्धार किया। तहां यज्ञादिकविषै हिंसादिक पोषे अर बुद्धावतार यज्ञ का निंदक होय हिंसादिक निषेधे। वृषभावतार वीतराग संयम का मार्ग दिखाया। कृष्णावतार परस्त्री रमणादि विषय कषायादिकनिका मार्ग दिखाया। सो अब यह संसारी कौनका कह्या करै, कौनके

* यजुर्वेद अ० २५ म० १९ अष्ठ १९ अ० ६ वर्ग १

अनुसारि प्रवर्त्ते अर इन सब अवतारनिकों एक बतावें सो एक ही कदाचित् कैसें कदाचित् कैसें कहै वा प्रवर्त्ते तो याके उनके कहने की वा प्रवर्त्तने की प्रतीति कैसे आवै ? बहुरि कहीं क्रोधादिकषायनिका वा विषयनिका निषेध करे, कहीं लरनेका वा विषयादिसेवनका उपदेश दें। तहाँ प्रारब्ध बतावें सो बिना क्रोधादि भए आपही तैं लरना आदि कार्य होंय तो यहु भी मानिए सो तो होय नाहीं। बहुरि लरना आदि कार्य करते क्रोधादि भए न मानिए तो जुदे ही क्रोधादि कौन हैं जिनका निषेध किया। तातैं बनै नाहीं, पूर्वापर विरोध है। गीतानिविषै वीतरागता दिखाय लरनेका उपदेश दिया सो यहु प्रत्यक्ष विरोध भासै है। बहुरि ऋषीश्वरादिकनिकरि श्राप दिया बतावें, सो ऐसा क्रोध किएं निद्यपना कैसें न भया ? इत्यादि जानना। बहुरि "अपुत्रस्य गतिनास्ति" ऐसा भी कहैं अर भारत विषै ऐसा भी कह्या है—

अनेकानि सहस्राणि कुमार ब्रह्मचारिणाम्।
दिवं गतानि राजेन्द्र अकृत्वा कुलसन्ततिम् ॥१॥

यहां कुमार ब्रह्मचारीनिकों स्वर्ग गए बताए, सो यहु परस्पर विरोध है। बहुरि ऋषीश्वर भारतविषै ऐसा कह्या है—

मद्यमांसाशनं रात्रौ भोजनं कंदभक्षणम्।
ये कुर्वन्तिवृथास्तेषां तीर्थयात्रा जपस्तपः ॥१॥
वृथा एकादशी-प्रोक्ता वृथा जागरणं हरेः।
वृथा च पौष्करी यात्रा कृत्स्नं चान्द्रायणं वृथा ॥२॥

चातुर्मास्ये तु सम्प्राप्ते रात्रिभोज्यं करोति यः ।
तस्य शुद्धिर्न विद्येत् चान्द्रायणशतैरपि ।।३।।

इन विषैं मद्य मांसादिकका वा रात्रिभोजन का वा चौमासे मैं विशेषपने रात्रिभोजनका वा कंदफलभक्षणका निषेध किया । बहुरि बड़े पुरुषनिकैं मद्यमांसादिकका सेवन करना कहैं, व्रतादि विषैं रात्रि-भोजन स्थापैं वा कंदादि भक्षण स्थापैं, ऐसें विरुद्ध निरूपै हैं। ऐसें ही अनेक पूर्वापर विरुद्धवचन अन्यमत के शास्त्र विषैं हैं। सो करैं कहा। कहीं तो पूर्वपरम्परा जानि विश्वास अनावनेके अर्थि यथार्थ कह्या अर कहीं विषयकषाय पोषनेके अर्थि अन्यथा कह्या। सो जहाँ पूर्वापर विरोध होय, तिनिका वचन प्रमाण कैसें करिए । इहां जो अन्यमत-निविषैं क्षमा शील सन्तोषादिककों पोषते वचन हैं सो तो जैनमत-विषैं पाइए हैं अर विपरीत वचन हैं सो उनका कल्पित है। जिनमत अनुसारि वचननिका विश्वासतैं उनका विपरीतवचनका श्रद्धानादिक होय जाय, तातैं अन्यमतका कोऊ अंग भला देखि भी तहां श्रद्धाना-दिक न करना। जैसें विषमिश्रित भोजन हितकारी नाहीं तैसें जानना। बहुरि जो कोई उत्तम धर्मका अंग जिनमतविषै न पाईए अर अन्यमत में पाईए, अथवा कोई निषिद्ध धर्मका अंग जैनमत विषै पाईए अर अन्यत्र न पाईए, तो अन्यमतकों आदरो सो सर्वथा होय नाहीं। जातैं सर्वज्ञका ज्ञानतैं किछू छिपा नाही है। तातैं अन्यमतनिका श्रद्धानादिक छोरि जिनमतका दृढ़ श्रद्धानादिक करना। बहुरि कालदोषतैं कषायी जीवनिकरि जिनमतविषै भी कल्पितरचना करी है, सो ही दिखाईए है—

श्वेताम्बर मत निराकरण

श्वेताम्बरमतवाले काहूने सूत्र बनाए, तिनिकौं गणधरके किए कहैं हैं। सो उनकों पूछिए है—गणधरने आचारांगादिक बनाए हैं सो तुम्हारै अबार पाईए है सो इतने प्रमाण लिए ही किए थे कि घना प्रमाण लिए किए थे। जो इतने प्रमाण लिए ही किए थे, तो तुम्हारे शास्त्रनिविषै आचारांगादिकनिके पदनिका प्रमाण अठारह हजार आदि कह्या है, सो तिनकी विधि मिलाय द्यो। पदका प्रमाण कहा? जो विभक्ति का अंतको पद कहोगे, तो कहे प्रमाणतै बहुत पद होय जांयगे अर जो प्रमाणपद कहोगे, तो तिस एकपद के साधिक इक्यावन कोड़ि श्लोक हैं। सो ए तो बहुत छोटे शास्त्र हैं, सो बनै नाहीं। बहुरि आचारांगादिकतैं दशवैकालिकादिकका प्रमाण घाटि कह्या है। तुम्हारै बधता है सो कैसें बनै? बहुरि कहोगे, आचारांगादिक बड़े थे, कालदोष जानि तिनहोमेंसों केतेक सूत्र काढि ए शास्त्र बनाए हैं। तो प्रथम तो टूटकग्रन्थ प्रमाण नाहीं। बहुरि यह प्रबन्ध है, जो बडा ग्रंथ बनावै तो वा विषै सर्व वर्णन विस्तार लिए करै अर छोटा ग्रन्थ बनावै तो तहाँ संक्षेप वर्णन करै परन्तु सम्बन्ध टूटै नाहीं। अर कोई बड़ा ग्रन्थ में थोरासा कथन काढ़ि लीजिए, तो तहाँ सम्बन्ध मिलै नाहीं—कथनका अनुक्रम टूटि जाय। सो तुम्हारे सूत्रनिविषै तो कथादिकका भी सम्बन्ध मिलता भासै है—टूटकपना भासै नाही। बहुरि अन्य कवीनितैं गणधरकी तो बुद्धि अधिक होसी, ताके किए ग्रन्थनिमें थोरे शब्द में बहुत अर्थ चाहिए सो तो अन्य कवीनिकीसी भी गम्भीरता नाहीं। बहुरि जो ग्रन्थ बनावै सो अपना नाम ऐसें धरें नाहीं 'जो

अमुक कहै है', 'मैं कहूं हूं' ऐसा कहैं । सो तुम्हारे सूत्रनिविषैं 'हे गौतम' वा 'गौतम कहै है' ऐसे वचन हैं। सो ऐसे वचन तो तब ही सम्भवें जब और कोई कर्त्ता होय। तातें यह सूत्र गणधरकृत नाहीं, और के किए हैं। गणधर का नामकरि कल्पितरचना को प्रमाण कराया चाहै हैं। सो विवेकी तो परीक्षाकरि मानें, कह्या ही तो न मानें।

बहुरि वह ऐसा भी कहै है—जो गणधरसूत्रनिके अनुसार कोई दशपूर्वधारी भया है। ताने ए सूत्र बनाए हैं । तहां पूछिए है—जो नए ग्रन्थ बनाए है तो नवा नाम धरना था, अगादिकके नाम काहेकों धरे। जैसें कोई बडा साहूकारकी कोठीका नामकरि अपना साहूकारा प्रगट करै, तैसे यह कार्य भया। सांचेको तो जैसे दिगम्बर-विषेंग्रन्थनिके और नाम धरे अर अनुसारी पूर्व ग्रन्थनिका कह्या, तैसें कहना योग्य था। अगादिकका नाम धरि गणधर कृत का भ्रम काहे कौं उपजाया। तातै गणधर के पूर्वाधारी के वचन नाही। बहुरि इन सूत्रनि विषै जो विश्वास अनावनेके अर्थि जिनमत अनुसार कथन है सो तो सांच है ही, दिगम्बर भी तैसें ही कहैं हैं । बहुरि जो कल्पित रचना करी है तामें पूर्वापर विरुद्धपनो वा प्रत्यक्षादि प्रमाणमें विरुद्ध-पनो भासै है, सो ही दिखाईए है—

अन्य लिंग से मुक्ति का निषेध

अन्य लिंगीकै वा गृहस्थकै वा स्त्रीकै वा चाडालादि शूद्रनिकै साक्षात् मुक्तिको प्राप्ति होनी मानै हैं सो बनै नाहीं । सम्यग्दर्शन

ज्ञान चारित्रकी एकता मोक्षमार्ग है। सो वे सम्यग्दर्शनका स्वरूप तो ऐसा कहे हैं—

अरहंतो महादेवो जावज्जीवं सुसाहणो गुरुणो।
जिणपण्णत्तं तत्तं ए सम्मत्तं मए गहियं ॥१॥

सो अन्य लिंगीके अरहंतदेव, साधु, गुरु, जिन प्रणीततत्त्व का मानना कैसें सम्भवै तब सम्यक्त्व भी न होय, तो मोक्ष कैसें होय। जो कहोगे अंतरंग विर्षे श्रद्धान होनेतें सम्यक्त्व तिनकै हो है, सो विपरीत लिंगधारककी प्रशंसादिक किए भी सम्यक्त्वकों अतीचार कह्या है सो साचा श्रद्धान भए पीछें आप विपरीत लिंगका धारक कैसें रहै। श्रद्धान भए पीछे महाव्रतादि अंगीकार किए सम्यक्चारित्र होय सो अन्यलिंगविषै कैसे बनै? जो अन्यलिंगविषै भी सम्यक्चारित्र हो है तो जैन लिंग अन्य लिंग समान भया तातैं अन्य लिंगीकों मोक्ष कहना मिथ्या है। बहुरि गृहस्थको मोक्ष कहैं सो हिंसादिक सर्व सावद्ययोगका त्याग किए सामायिकचारित्र होय सो सर्वसावद्ययोगका त्याग किए गृहस्थपनों कैसें सम्भवै? जो कहोगे—अंतरंग त्याग भया है तो यहाँ तो तीनों योगकरि त्याग करै है,कायकरि त्याग कैसें भया? बहुरि बाह्य परिग्रहादिक राखे भी महाव्रत हो है, सो महाव्रतनिविषैं तो बाह्य त्याग करनेकी ही प्रतिज्ञा करिए है, त्याग किए बिना महाव्रत न होय। महाव्रत बिना छठा आदि गुणस्थान न हो है, तो तब मोक्ष कैसें होय? तातें गृहस्थकों मोक्ष कहना मिथ्या वचन है।

स्त्री मुक्ति का निषेध

बहुरि स्त्रीकों मोक्ष कहैं,सो जाकरि सप्तम नरक गमन योग्य पाप

न होय सकै, ताकरि मोक्ष का कारण शुद्ध भाव कैसैं होय ? जातैं जाके भाव दृढ़ होंय,सोही उत्कृष्ट पाप वा धर्म उपजाय सकै है। बहुरि स्त्रीकै निशंक एकांतविषैं ध्यान धरना अर सर्व परिग्रहादिकका त्याग करना सम्भवै नाहीं। जो कहोगे,एक समयविषैं पुरुषवेदी वा स्त्रीवेदी वा नपुंसकवेदीकों सिद्धि होनी सिद्धान्तविषै कही है, तातैं स्त्रीकों मोक्ष मानिए है। सो यहां ए भाववेदी है कि द्रव्यवेदी है, जो भाव वेदी है तो हम मानै ही हैं। द्रव्यवेदी है तो पुरुषस्त्रीवेदी तो लोकविषैं प्रचुर दीसै हैं, नपुंसक तो कोई विरला दीसै है। एक समयविषैं मोक्ष जानेवाले इतने नपुंसक कैसे सम्भवें ? तातै द्रव्यवेद अपेक्षा कथन बनैं नाहीं। बहुरि जो कहोगे, नवम गुणस्थानतांई वेद कहे हैं, सो भी भाववेद अपेक्षा ही कथन है। द्रव्यवेद अपेक्षा होय तो चौदहवां गुणस्थान पर्यन्त वेदका सद्भाव कहना सम्भवै। तातैं स्त्रीकै मोक्षका कहना मिथ्या है।

शूद्र मुक्ति का निषेध

बहुरि शूद्रनिकों मोक्ष कहैं। सो चांडालादिककों गृहस्थ सन्मानादिककरि दानादिक कैसें दे, लोकविरुद्ध होय। बहुरि नीचकुलवालोंकै उत्तम परिणाम न होय सकै। बहुरि नीचगोत्रकर्मका उदय तो पंचम गुणस्थान पर्यन्त ही है। ऊपरिके गुणस्थान चढ़े बिना मोक्ष कैसैं होय। जो कहोगे-सयम धारे पीछै वाकै उच्चगोत्रही का उदय कहिए, तो संयम धारने न धारने की अपेक्षातैं नीच उच्च गोत्र का उदय ठहरया। ऐसे होते असंयमी मनुष्य तीर्थंकर क्षत्रियादिक तिनकै भी नीच गोत्रका उदय ठहरै। जो उनकै कुल अपेक्षा उच्चगोत्रका उदय

कहोगे तो चाण्डालादिकके भी कुल अपेक्षा ही नीच गोत्र का उदय कहो। ताका सद्भाव तुम्हारे सूत्रनिविषै भी पंचम गुणस्थान पर्यंत ही कह्या है। सो कल्पित कहनेमें पूर्वापर विरुद्ध होय ही होय। तातैं शूद्रनिकै मोक्षका कहना मिथ्या है।

ऐसैं तिनहूने सर्वकै मोक्षकी प्राप्ति कही,सो ताका प्रयोजन यहु है जो सर्वका भला मनावना, मोक्षका लालच देना अर अपना कल्पित-मतको प्रवृत्ति करनी। परन्तु विचार किए मिथ्या भासै है।

अछेरों का निराकरण

बहुरि तिनके शास्त्रनिविषै 'अछेरा' कहै है । सो कहैं हैं— हुण्डावसर्प्पिणीके निमित्ततै भए है, इनको छेड़ने नाही । सो काल-दोषतै केई बात होय परन्तु प्रमाणविरुद्ध तो न होय । जो प्रमाण विरुद्ध भी होय, तो आकाशके फूल, गधे के सीग इत्यादिका होना भी बनै सो सम्भवै नाही। वे अछेरा कहै हैं सो प्रमाण विरुद्ध है । काहेतै सो कहिए है—

वर्द्धमानजिन केतेककालि ब्राह्मणीके गर्भविषै रहे,पीछै क्षत्रियाणी के गर्भ विषै बधे,ऐसा कहै हैं। सो काहूका गर्भ काहूकै धरचा प्रत्यक्ष भासै नाही, उन्मानादिकमें आवै नाहीं । बहुरि तीर्थंकरके भया कहिए, तो गर्भकल्याणक काहू के घरि भया, जन्मकल्याणक काहूके घरि भया। केतेक दिन रत्नवृष्टचादिक काहूके घर भए, केतेक दिन काहूके घरि भए। सोलह स्वप्न किसीको आए, पुत्र काहूकै भया इत्यादि असम्भव भासै। बहुरि माता तो दोय भई अर पिता तो एक ब्राह्मण ही रह्या। जन्म कल्याणादिविषै वाका सन्मान न किया,अन्य

कल्पित पिताका सन्मान किया । सो तीर्थंकरकै द्वोय पिताका कहना महाविपरीत भासै है । सर्वोत्कृष्टपद के धारकके ऐसे बचन सुनने भी योग्य नाहीं । बहुरि तीर्थंकरकै भी ऐसी अवस्था भई तो सर्वत्र ही अन्य स्त्रीका गर्भ अन्यस्त्रीकै धरि देना ठहरै। तो वैष्णव जैसें अनेक प्रकार पुत्र पुत्रीका उपजना बतावै है, तैसे यहु कार्य भया। सो ऐसे निकृष्ट काल विषै तो ऐसैं होय हो नाहो, तहां होना कैसे सम्भवै ? तातैं यहु मिथ्या है।

बहुरि मल्लि तीर्थंकरकों कन्या कहै हैं । सो मुनि देवादिककी सभा विषै स्त्रीका स्थिति करना उपदेश देना न सम्भव, वा स्त्रीपर्याय हीन है सो उत्कृष्ट तीर्थंकरपदधारककै न बनै । बहुरि तीर्थंकरकै नग्न लिंग ही कहै हैं सो स्त्रीकै नग्नपनो न सम्भवै । इत्यादि विचार किएं असम्भव भासै है।

बहुरि हरिक्षेत्रका भोगभूमियांकों नरक गया कहैं। सो बंध वर्णन विषै तो भोगभूमियांकै देवगति देवायुहीका बंध कहैं, नरक कैसे गया। सिद्धान्त विषै तो अनन्तकाल विषै जो बात होय, सो भो कहै । जैसे तीसरे नरक पर्यन्त तीर्थंकर प्रकृतिका सत्व कह्या, भोगभूमियांकै नरक आयु गतिका बंध न कह्या, सो केवली भूले तो नाही। तातै यहु मिथ्या है। ऐसे सर्व अछेरे असम्भव जाननें । बहुरि वे कहै है इनकों छेड़ने नाही सो झूठ कहनेवाला ऐसै ही कहै ।

बहुरि जो कहोगे — दिगम्बरविषैं जैसै तीर्थंकरकै पुत्री, चक्रवर्तिका मान भंग इत्यादि कार्य कालदोषते भया कहै हैं, तैसे ए भी भए। सो ये कार्य तो प्रमाण विरुद्ध नाहीं । अन्यकै होते थे सो महंतनिकै भए

तातैं काल दोष कह्या है । गर्भहरणादि कार्य प्रत्यक्ष अनुमानादितैं विरुद्ध, तिनका होना कैसें सम्भवै ? बहुरि अन्य भी घने ही कथन प्रमाणविरुद्ध कहै हैं । जैसें कहै हैं, सर्वार्थसिद्धिके देव मन ही तें प्रश्न करें हैं, केवली मनहीतें उत्तर दे हैं । सो सामान्य जीव के मन की बात मनःपर्ययज्ञानी बिना जानि सकै नाहीं । केवलीके मन की सर्वार्थसिद्धिके देव कैसें जानै ? बहुरि केवलीकै भावमनका तो अभाव है, द्रव्यमन जड़ आकारमात्र है, उत्तर कौन दिया । तातैं मिथ्या है । ऐसैं अनेक प्रमाणविरुद्ध कथन किए हैं, तातै तिनके आगम कल्पित जानने ।

केवली के आहार नीहारका निराकरण

बहुरि ते श्वेताम्बर मतवाले देव गुरु धर्मका स्वरूप अन्यथा निरूपैं हैं । तहाँ केवलीकै क्षुधादिक दोष कहै । सो यहु देवका स्वरूप अन्यथा है । काहेतै, क्षुधादिक दोष होतें आकुलता होय, तब अनन्त सुख कैसै बनें ? बहुरि जो कहोगे, शरीरको क्षुधा लागै है, आत्मा तद्रूप न हो है, तो क्षुधादिकका उपाय आहारादिक काहेकों ग्रहण किया कहो हो । क्षुधादिकरि पीड़ित होय, तब ही आहार ग्रहण करै । बहुरि कहोगे, जैसै कर्मोदयतें विहार हो है, तैसें ही आहार ग्रहण हो है । सो विहार तो विहायोगति प्रकृतिका उदय तें हो है अर पीड़ाका उपाय नाही अर बिना इच्छा भी किसी जीवकै होता देखिए है । बहुरि आहार है सो प्रकृतिका उदयतें नाहीं, क्षुधाकरि पीड़ित भए ही ग्रहण करै है । बहुरि आत्मा पवनादिककों प्रेरै तब ही निगलना हो है, तातै विहारवत् आहार नाही । जो कहोगे—

सातावेदनीयके उदयतैं आहार ग्रहण हो है, सो बनै नाहीं। जो जीव क्षुधादिकरि पीड़ित होय, पीछें आहारादिक ग्रहणतैं सुख मानैं, ताकैं आहारादिक साताके उदयतें कहिए। आहारादिकका ग्रहण साता वेदनीयका उदयतें स्वयमेव होय,ऐसें तो है नाहीं। जो ऐसें होय तौ सातावेदनीयका मुख्यउदय देवनिकै है,ते निरन्तर आहार क्यों न करैं। बहुरि महामुनि उपवासादि करे, तिनकै साताका भी उदय अर निरन्तर भोजन करनेवालों कै असाताका भी उदय सम्भवै। तातें जैसें बिना इच्छा विहायोगतिके उदयतें विहार सम्भवै, तैसे बिना इच्छा केवल सातावेदनीय ही के उदयतें आहारका ग्रहण सम्भवै नाहीं।

बहुरि वे कहै हैं सिद्धान्त विषै केवलीकै क्षुधादिक ग्यारह परीषह कहै हैं, तातैं तिनकै क्षुधाका सद्भाव सम्भवै है। बहुरि आहारादिक बिना तिनकी उपशांतता कैसें होय,तातें तिनकै आहारादिक मानै हैं।

ताका समाधान—कर्मप्रकृतिनिका उदय मंद तीव्र भेद लिए हो है। तहां अतिमद उदय होते तिस उदयजनित कार्यको व्यक्तता भासै नाहीं। तातें मुख्यपनें अभाव कहिए, तारतम्यविषै सद्भाव कहिए। जैसें नवम गुणस्थान विषै वेदादिकका उदय मन्द है, तहां मैथुनादि क्रिया व्यक्त नाहीं, तातें तहां ब्रह्मचर्य्य हो कह्या। तारतम्य विषैं मैथुनादिकका सद्भाव कहिए है। तैसें केवलीकै असाताका उदय अति मंद है। जातें एक एक कांडकविषै अनन्तवें भाग अनुभाग रहै, ऐसे बहुत अनुभागकांडकनि करि वा गुणसंक्रमणादिककरि सत्ता विषै असातावेदनीयका अनुभाग अत्यन्त मंद भया, ताका उदय विषैं क्षुधा ऐसी व्यक्त होती नाहीं जो शरीरको क्षीण करै। अर मोहके अभावतैं

क्षुधादिक जनित दुःख भी नाहीं, तातैं क्षुधादिकका अभाव कहिए। तारतम्यविषैं तिनका सद्भाव कहिए है। बहुरि तैं कह्या—आहारादिक बिना तिनकी उपशांतता कैसें होय, सो आहारादिकरि उपशांत होने योग्य क्षुधा लागै तो मन्द उदय काहेका रह्या ? देव भोगभूमियां आदिकक किंचित् मंद उदय होतैं ही बहुत काल पीछें किंचित् आहार ग्रहण हो है तो इनकै तो अतिमंद उदय भया है, तातैं इनकै आहारका अभाव सम्भवै है।

बहुरि वह कहै है, देव भोगभूमियोका तो शरीर ही वैसा है जाकों भूख थोरी वा घनें काल पीछें लागै, इनिका तो शरीर कर्मभूमिका औदारिक है। तातैं इनिका शरीर आहार बिना देशोनकोड़ि पूर्व-पर्यन्त उत्कृष्टपने कैसे रहै ?

ताका समाधान—देवादिकका भी शरीर वैसा है, सो कर्मके ही निमित्ततैं है। यहाँ केवलज्ञान भए ऐसा ही कर्म उदय भया, जाकरि शरीर ऐसा भया, जाको भूख प्रगट होती ही नाही। जैसें केवलज्ञान भए पहलें केश नख बधैं थे, अब बधे (बढे) नाही। छाया होती थी सो होती नाही। शरीर विषै निगोद थी, ताका अभाव भया। बहुत प्रकारकरि जैसैं शरीरकी अवस्था अन्यथा भई, तैसै आहार बिना ही शरीर जैसाका तैसा रहै ऐसी भी अवस्था भई। प्रत्यक्ष देखो, औरनिकों जरा व्यापै तब शरीर शिथिल होय जाय, इनिका आयुका अन्तपर्यन्त शरीर शिथिल न होय। तातै अन्य मनुष्यनिका अर इनिका शरीर की समानता सम्भवै नाहीं। बहुरि जो तू कहैगा—देवादिकके आहार ही ऐसा है जाकरि बहुत कालकी भूख मिटै, इनिकै

भूख काहे तें मिटी अर शरीर पुष्ट कैसें रह्या ? सो सुनि, असाताका उदय मंद होनेतें मिटी अर समय समय परम औदारिक शरीर वर्गणा का ग्रहण हो है सो वह नो कर्म आहार है सो ऐसी ऐसी वर्गणाका ग्रहण हो है जाकरि क्षुधादिक व्यापै नाहीं वा शरीर शिथिल होय नाहीं। सिद्धान्तविषै याहीकी अपेक्षा केवलीको आहार कह्या है। अर अन्नादिकका आहार तो शरीरकी पुष्टताका मुख्य कारण नाहीं। प्रत्यक्ष देखो, कोऊ थोरा आहार ग्रहै, शरीर पुष्ट बहुत होय; कोऊ बहुत आहार ग्रहै, शरीर क्षीण रहै। बहुरि पवनादि साधनेवाले बहुत काल ताईं आहार न ले, शरीर पुष्ट रह्या करै वा ऋद्धिधारी मुनि उपवासादि करै, शरीर पुष्ट बन्या रहै। सो केवलीकै तो सर्वोत्कृष्टपना है, उनकै अन्नादिक बिना शरीर पुष्ट बन्या रहै तो कहा आश्चर्य भया। बहुरि केवली कैसें आहारकों जांय, कैसें याचें।

बहुरि वे आहारकों जांय, तब समवशरण खाली कैसे रहै। अथवा अन्यका ल्याय देना ठहरावोगे तो कौन ल्याय दें, उनके मन की कौन जानै। पूर्व उपवासादिकको प्रतिज्ञा करी थी, ताका कैसें निर्वाह होय। जीव अन्तराय सर्वप्रतिभासै, कैसें आहार ग्रहै ? इत्यादि विरुद्धता भासै है। बहुरि वे कहै हैं—आहार ग्रहै हैं, परन्तु काहूकों दीसै नाहीं। सो आहार ग्रहणकों निंद्य जान्या, तब ताका न देखना अतिशयविषैं लिख्या। सो उनकै निंद्यपना रह्या अर और न देखें हैं तो कहा भया। ऐसे अनेक प्रकार विरुद्धता उपजै है।

बहुरि अन्य अविवेकताकी बातें सुनो—केवलीकै नीहार कहै हैं, रोगादिक भया कहै हैं अर कहैं, काहूने तेजो लेश्या छोरो, ताकरि

वर्द्धमानस्वामीकै पेठूंगाका (पेचिसका) रोग भया, ताकरि बहुत बार निहार होने लागा। सो तीर्थंकर केवलीकै भी ऐसा कर्मका उदय रह्या अर अतिशय न भया, तो इन्द्रादिकरि पूज्यपना कैसें शोभै। बहुरि नीहार कैसें करें, कहां करें, कोऊ संभवती बातें नाहीं। बहुरि जैसें रागादि युक्त छद्मस्थकै क्रिया होय, तैसे केवलीकै क्रिया ठहरावें हैं। वर्द्धमान स्वामीका उपदेश विषै 'हे गौतम' ऐसा बारंबार कहना ठहरावे हैं, सो उनकै तो अपना कालविषें सहज दिव्यध्वनि हो है, तहां सर्वकों उपदेश हो है, गौतमकों सबोधन कैसें बनै? बहुरि केवलीकै नमस्कारादिक क्रिया ठहरावे हैं, सो अनुराग बिना वंदना संभवै नाहीं। बहुरि गुणाधिककों वदना सभवै, उन सेती कोई गुणाधिक रह्या नाही। सो कैसे बनै? बहुरि हाटिविषे समवसरण उतरया कहैं, सो इन्द्रकृत समवसरण हाटिविषे कैसे रहै? इतनी रचना तहां कैसें समावै। बहुरि हाटि विषे काहेको रहै? कहा इन्द्र हाटि सारिखी रचना करनेकों भी समर्थ नाही, जाते हाटिका आश्रय लीजिए। बहुरि कहैं—केवली उपदेश देनेकों गए। सो घरि जाय उपदेश देना अति रागतें होय, सो मुनिकै भी सभवै नाही। केवलीकै कैसे बनै? ऐसें ही अनेक विपरीतिता तहां प्ररूपै है। केवली शुद्ध केवलज्ञानदर्शनमय रागादि रहित भए हैं, तिनके अघातिनिके उदयतें संभवती क्रिया कोई हो है। केवलीकै मोहादिकका अभाव भया है तातें उपयोग मिलें जो क्रिया होय सकै, सो संभवै नाहीं। पाप प्रकृतिका अनुभाग अत्यंत मंद भया है। ऐसा मंद अनुभाग अन्य कोईकै नाहीं। तातें अन्यजीवनिकै पापउदयतें जो क्रिया होती देखिए है, सो केवलीकै

न होय। ऐसें केवली भगवानके सामान्य मनुष्यकीसी क्रिया का सद्भाव कहि देवका स्वरूपकों अन्यथा प्ररूपै हैं।

मुनि के वस्त्रादि उपकरणों का प्रतिषेध

बहुरि गुरूका स्वरूपकों अन्यथा प्ररूपै हैं। मुनिके वस्त्रादिक चौदह उपकरण * कहे हैं। सो हम पूछै हैं, मुनिकों निर्ग्रंथ कहैं अर मुनिपद लेते नवप्रकार सर्वपरिग्रहका त्यागकरि महाव्रत अंगीकार करैं, सो ए वस्त्रादिक परिग्रह हैं कि नाहीं। जो हैं तो त्याग किए पीछें काहेकों राखें अर नाहीं हैं तो वस्त्रादिक गृहस्थ राखे ताको भी परिग्रह मति कहो। सुवर्णादिकहीकों परिग्रह कहो। बहुरि जो कहोगे, जैसें क्षुधाके अर्थि आहार ग्रहण कीजिए है, तैसे शीत उष्णादिकके अर्थि वस्त्रादिक ग्रहण कीजिए है। सो मुनिपद अंगीकार करतें आहारका त्याग किया नाही, परिग्रह का त्याग किया है। बहुरि अन्नादिकका तो सग्रह करना परिग्रह है,भोजन करने जाइये सो परिग्रह नाहीं। अर वस्त्रादिकका सग्रह करना वा पहरना सर्व ही परिग्रह है, सो लोकविषै प्रसिद्ध है। बहुरि कहोगे, शरीरकी स्थितिके अर्थि वस्त्रादिक राखिए है—ममत्व नाही है,तातै इनिकों परिग्रह न कहिए है। सो श्रद्धानविषै तो जब सम्यग्दृष्टि भया तबही समस्त परद्रव्यविषैं ममत्वका अभाव भया। तिस अपेक्षाते चौथा गुणस्थान ही परिग्रह

* पात्र १ पात्रबन्ध २ पात्र केसरिकर ३ पटलिकाएँ ४–५ रजस्त्राण ६ गोच्छक ७ रजोहरण ८ मुखवस्त्रिका ९ दो सूती कपड़े १०–११ एक ऊनी कपड़ा १२ मात्रक १३ चोलपट्ट १४ देखो बृहत्क० सू० उ० ३ भा० गा० ३९६२ से ३९६५ तक।

रहित कहो। अर प्रवृत्तिविषैं ममत्व नाहीं तो कैसें ग्रहण करै है। तातैं वस्त्रादिक ग्रहण धारण छूटेगा, तब ही निःपरिग्रह होगा। बहुरि कहोगे – वस्त्रादिककौं कोई लेय जाय तो क्रोध न करैं वा क्षुधादिक लागै तो वे बेचैं नाहीं वा वस्त्रादिक पहरि प्रमाद करैं नाहीं, परिणामनिकी थिरताकरि धर्म ही साधै है तातै ममत्व नाही। सो बाह्य क्रोध मति करो परन्तु जाका ग्रहण विषै इष्ट बुद्धि होय तो ताका वियोगविषै अनिष्टबुद्धि होय ही होय। जो अनिष्टबुद्धि न भई तो ताके अर्थि याचना काहेकों करिए है ? बहुरि बेचते नाहीं, सो धातु राखनेते अपनी हीनता जानि नाही बेचिए है। जैसे धनादि राखने तैसें ही वस्त्रादि राखने। लोकविषै परिग्रहके चाहक जीवनिकै दोउनिकी इच्छा है। तातैं चोरादिकके भयादिकके कारन दोऊ समान हैं। बहुरि परिणामनिकी स्थिरताकरि धर्मसाधनही तै परिग्रहपना न होय। जो काहूकों बहुत शीत लागेगा सो सोडि राखि परिणामनिकी थिरता करेगा अर धर्मसाधेगा तो वाकों भी निःपरिग्रह कहो। ऐसें गृहस्थधर्म मुनिधर्म विषै विशेष कहा रहेगा। जाकै परीषह सहनेकी शक्ति न होय सो परिग्रह राखि धर्म साधै ताका नाम गृहस्थधर्म अर जाकै परिणाम निर्मल भए परीषहकरि व्याकुल न होय सो परिग्रह न राखै अर धर्म साधै ताका नाम मुनिधर्म, इतना ही विशेष है। बहुरि कहोगे, शीतादिकी परीषहकरि व्याकुल कैसे न होय। सो व्याकुलता तो मोहके उदयके निमित्ततैं है। सो मुनिकै षष्ठादि गुणस्थाननिविषैं तीन चौकड़ीका उदय नाहीं अर संज्वलनके सर्वघाती स्पर्द्धकनिका उदय नाहीं, देशघाती स्पर्द्धकनिका उदय है सो तिनका किछू बल नाहीं।

जैसे वेदक सम्यग्दृष्टिकै सम्यक्मोहनीय का उदय है सो सम्यक्त्वकों घात न करि सकै तैसे देशघाती संज्वलनका उदय परिणामनिकों व्याकुल करि सकै नाहीं । अहो मुनिनिकै अर औरनिकै परिणामनिकी समानता है नाहीं। और सबनिकै सर्वघातीका उदय है, इनिकै देशघाती का उदय है । तातैं औरनिकै जैसे परिणाम होंय तैसे उनकै कदाचित्‌न होंय। तातैं जिनकै सर्वघातीकषायनिका उदय होय ते गृहस्थ ही रहैं अर जिनकै देशघाती का उदय होय ते मुनिधर्म अंगीकार करैं। ताकै शीतादिककरि परिणाम व्याकुल न होय तातैं वस्त्रादिक राखै नाही। बहुरि कहोगे—जैन शास्त्रनिविषें चौदह उपकरणमुनि राखैं, ऐसा कह्या है। सो तुम्हारेही शास्त्रनिविषै कह्या है,दिगम्बर जैनशास्त्रनिविषे तो कहे नाहीं। तहाँ तो लंगोटमात्र परिग्रह रहें भी ग्यारहीं प्रतिमा का धारकको श्रावक ही कह्या। सो अब यहां विचारो, दोऊनिमें कल्पित वचन कौन है? प्रथम तो कल्पित रचना कषायी होय सो करै। बहुरि कषायी होय सोही नीचापदविषै उच्चपनो प्रगट करै। सो यहाँ दिगम्बरविषे वस्त्रादि राखें धर्म होय ही नाहीं, ऐसा तो न कह्या परन्तु तहाँ श्रावकधर्म कह्या। श्वेताम्बर विषैं मुनिधर्म कह्या। सो यहाँ जाने नीची क्रिया होतें उच्चत्व पद प्रगट किया सो ही कषायी है । इस कल्पित कहनेकरि आपकों वस्त्रादि राखतें भी लोक मुनि मानने लागें, तातैं मानकषाय पोष्या गया। अर औरनिको सुगमक्रियाविषै उच्चपद का होना दिखाया, तातैं घनें लोक लगि गए। जे कल्पित मत भए हैं, ते ऐसें ही भए हैं। तातैं कषायी होइ वस्त्रादि होतें मुनिपना कह्या है, सो पूर्वोक्त

युक्तिकरि विरुद्ध भासै है। तातैं ए कल्पितवचन हैं, ऐसा जानना।

बहुरि कहोगे—दिगम्बरविषैं भी शास्त्र पीछी आदि उपकरण मुनिके कहे हैं, तैसें हमारै चौदह उपकरण कहे हैं।

ताका समाधान—जाकरि उपकार होय ताका नाम उपकरण है। सो यहाँ शीतादिककी वेदना दूरि करनेतैं उपकरण ठहराईए, तो सर्व-परिग्रह सामग्री उपकरण नाम पावै। सो धर्मविषैं इनिका कहा प्रयोजन ? ए तो पापके कारण हैं। धर्मविषैं तो धर्मका उपकारी जे होंय तिनका नाम उपकरण है। सो शास्त्र ज्ञानकौं कारण, पीछी दयाकौं कारण, कमंडलु शौचकौं कारण,सो ए तो धर्मके उपकारी भए, वस्त्रादिक कैसैं धर्मके उपकारी होंय? वे तो शरीरका सुखहीके अर्थि धारिए है। बहुरि सुनो जो शास्त्र राखि महतता दिखावे, पीछीकरि बुहारी दें, कमंडलुकरि जलादिक पीवैं वा मैल उतारें,तो शास्त्रादिक भी परिग्रह ही हैं। सो मुनि ऐसे कार्य करै नाहीं। तातैं धर्मके साधनकौं परिग्रह संज्ञा नाहीं। भोगके साधनकौं परिग्रह संज्ञा हो है, ऐसा जानना। बहुरि कहोगे—कमंडलुतें तो शरीरहोका मल दूरि करिए है, सो मुनि मल दूरि करनेकी इच्छाकरि कमंडलु नाही राखे हैं। शास्त्र बांचना आदि कार्य करें अर मललिप्त होंय तो तिनका अविनय होय, लोकनिंद्य होय, तातें इस धर्मके अर्थि कमंडलु राखिए हैं। ऐसें पीछी आदि उपकरण सम्भवैं, वस्त्रादिकों उपकरण संज्ञा सम्भवै नाहीं। काम अरति आदि मोहका उदयतें विकार बाह्य प्रगट होय अर शीतादिक सहे न जांय तातैं विकार ढांकनेकौं वा शीतादि मिटावनेकौं वस्त्रादिक राखैं अर मानके उदयतें अपनी महंतता भी चाहैं तातैं

कल्पित युक्तिकरि उपकरण ठहराए हैं। बहुरि घरि घरि याचनाकरि आहार ल्यावना ठहरावैं हैं। सो प्रथम तो यह पूछिए है, याचना धर्म का अंग है कि पापका अंग है । जो धर्मका अंग है तो मांगने वाले सर्व धर्मात्मा भए। अर पापका अंग है तो मुनिकै कैसे सम्भवै ?

बहुरि जो तू कहेगा, लोभकरि किछू धनादिक याचैं तो पाप होय, यह तो धर्म साधनके अर्थि शरीरकी स्थिरता किया चाहै है तातैं आहारादिक याचै है ।

ताका समाधान–आहारादिककरि धर्म होता नाहीं, शरीरका सुख हो है। सो शरीरका सुखके अर्थि अति लोभ भए याचना करिए है। जो अति लोभ न होता, तो आप काहेको मांगता। वे ही देते तो देते, न देते तो न देते। बहुरि अतिलोभ भए इहाँ हो पाप भया, तब मुनि-धर्म नष्ट भया, और धर्म कहा साधेगा । अब वह कहै है—मनविषै तो आहारकी इच्छा होय अर याचै नाही तो मायाकषाय भया अर याचनेमें हीनता आवै है सो गर्वकरि याचै नाही तब मानकषाय भया। आहार लेना था सो मागि लिया। यामे अति लोभ कहा भया अर यातैं मुनिधर्म कैसे नष्ट भया सो कहो। याको कहिए है—

जैसें काहू व्यापारीकै कुमावनेको इच्छा मन्द है सो हाटि (दुकान) ऊपरि तो बैठे अर मनविषै व्यापारकरनेकी इच्छा भी है परन्तु काहू-कों वस्तु लेनेदेनेरूप व्यापारके अर्थि प्रार्थना नाही करै है। स्वयमेव कोई आवै तो अपनी विधि मिले व्यापार करै है तो ताकै लोभकी मंदता है, माया वा मान नाहीं है। माया मानकषाय तो तब होय, जब छलकरनेके अर्थि वा अपनी महंतताके अर्थि ऐसा स्वांग करै। सो

भले व्यापारीकै ऐसा प्रयोजन नाहीं तातें वाकै माया मान न कहिए। तैसें मुनिनकै आहारदिककी इच्छा मन्द है सो आहार लेनेको आवैं अर मनविषें आहार लेनेकी इच्छा भी है परन्तु आहारके अर्थि प्रार्थना नाहीं करैं हैं। स्वयमेव कोई दे तो अपनी विधि मिले आहार ले हैं तो उनकै लोभकी मंदता है, माया वा मान नाहीं है। माया मान तो तब होय जब छल करनेके अर्थि वा महंतताके अर्थि ऐसा स्वांग करें। सो मुनिनकै ऐसे प्रयोजन है नाही तातें इनिकै माया मान नाहीं है। जो ऐसें ही माया मान होय तो जे मनहीकरि पाप करें वचनकायकरि न करें, तिन सबनिकै माया ठहरै। अर जे उच्चपदवीके धारक नीचवृत्ति अंगीकार नाहीं करे हैं, तिन सबनिकै मान ठहरै। ऐसें अनर्थ होय! बहुरि तें कह्या—"आहार मांगनेमें अतिलोभ कहा भया? सो अतिकषाय होय तब लोकनिद्य कार्य अंगीकारकरिकै भी मनोरथ पूर्ण किया चाहै। सा मागना लोकनिद्य है, ताकों भी अंगीकारकरि आहारकी इच्छा पूर्ण करनेकी चाहि भई। तातै यहाँ अति लोभ भया। बहुरि ते कह्या–"मुनि धर्म कैसे नष्ट भया" सो मुनि धर्म विषें ऐसी तीव्र कषाय सम्भवै नाहीं। बहुरि काहूका आहार देनेका परिणाम न था, याने वाका घर में जाय याचना करी। तहाँ वाकै सकुचना भया वा न दिए लोकनिंद्य होनेका भय भया तातें वाकों आहार दिया। सो वाका अन्तरंग प्राण पीड़नेतें हिंसाका सद्भाव आया। जो आप वाका घरमें न जाते, उसही के देने का उपाय होता तो देता, वाकै हर्ष होता। यहु तो दबाय करि कार्य कराावना भया। बहुरि अपना कार्यके अर्थि याचनारूप वचन है सो

पापरूप है । सो यहाँ असत्य वचन भी भया । बहुरि वाकै देनेकी इच्छा न थी, यानै याच्या, तब वानै अपनी इच्छातैं दिया नाहीं—सकुचिकरि दिया । तातैं अदत्त-ग्रहण भी भया । बहुरि गृहस्थके घर मैं स्त्री जैसे तैसैं तिष्ठै थी,यहु चल्या गया । तहाँ ब्रह्मचर्यको बाड़िका भंग भया । बहुरि आहार ल्याय केतेक काल राख्या । आहारादि के राखनेकों पात्रादिक राखे सो परिग्रह भया । ऐसें पांच महाव्रतनिका भंग होनेतें मुनिधर्म नष्ट हो है तातैं याचनाकरि आहार लेना मुनिका युक्त नाहीं ।

बहुरि वह कहै है—मुनिकै बाईस परीषहनिविषै याचना परीषह कही है, सो मांगे बिना तिस परीषहका सहना कैसे होय ?

ताका समाधान—याचना करनेका नाम याचना परीषह नाहीं है । याचना न करनी, ताका नाम याचनापरीषह है । जातैं अरति करनेका नाम अरति परीषह नाहीं, अरति न करनेका नाम अरति परीषह है, तैसें जानना । जो याचना करना परीषह ठहरै, तो रंकादि घनी याचना करें हैं,तिनकै घना धर्म होय । अर कहोगे, मान घटावनेतें याकों परीषह कहैं है तो कोई कषायी कार्यके अर्थि कोई कषाय छोरे भी पापी ही होय । जैसें कोई लोभके अर्थि अपना अपमानकों भी न गिनै, तो वाकै लोभकी तीव्रता है । उस अपमान करावनेतें भी महा-पाप होय है । अर आपकै इच्छा किछू नाहीं, कोई स्वयमेव अपमान करै है तो वाकै महाधर्म है । सो यहाँ तो भोजनका लोभके अर्थि याचना करि अपमान कराया तातैं पाप ही है, धर्म नाहीं । बहुरि वस्त्रादिकके भी अर्थि याचना करै है सो वस्त्रादिक कोई धर्मका अंग

नाहीं है, शरीर सुखका कारण है । तातैं पूर्वोक्त प्रकार ताका निषेध जानना । देखो अपना धर्मरूप उच्चपदकों याचना करि नीचा करें हैं सो यामैं धर्मकी हीनता हो है । इत्यादि अनेक प्रकार करि मुनि धर्म विषैं याचना आदि नाहीं सम्भवै है । सो ऐसी असम्भवती क्रियाके धारक साधु गुरू कहै हैं। तातैं गुरूका स्वरूप अन्यथा कहै हैं।

धर्म का अन्यथा स्वरूप

बहुरि धर्मका स्वरूप अन्यथा कहै हैं । सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र इनकी एकता मोक्षमार्ग है, सो ही धर्म है, सो इनिका स्वरूप अन्यथा प्ररूपैं हैं । सो ही कहिए है—

तत्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन है, ताकी तो प्रधानता नाहीं । आप जैसे अरहंत देव साधु गुरू दया धर्मकों निरूपै है, तिनका श्रद्धानकों सम्यग्दर्शन कहै हैं । सो प्रथम तो अरहंतादिकका स्वरूप अन्यथा कहैं । बहुरि इतने ही श्रद्धानतैं तत्त्व श्रद्धान भए बिना सम्यक्त्व कैसें होय, तातैं मिथ्या कहै हैं । बहुरि तत्त्वनिका भी श्रद्धानकों सम्यक्त्व कहै हैं तो प्रयोजन लिए तत्त्वनिका श्रद्धान नाहीं कहै हैं । गुणस्थान मार्गणादिरूप जीव का, अणुस्कधादिरूप अजीवका, पाप पुण्यके स्थाननिका, अविरति आदि आश्रवनिका, व्रतादिरूप संवरका, तपश्चरणादिरूप निर्जराका, सिद्ध होने के लिंगादिके भेदनिकरि मोक्षका स्वरूप जैसें उनके शास्त्र विषैं कह्या है, तैसें सीखि लीजिए अर केवलीका वचन प्रमाण है, ऐसें तत्त्वार्थश्रद्धानकरि सम्यक्त्व भया मानै हैं । सो हम पूछें है, ग्रैवेयिक जानेवाला द्रव्यलिंगी मुनिकै ऐसा श्रद्धान हो है कि नाहीं । जो हो है, तो वाकों

मिथ्यादृष्टी काहेको कहिए। अर न हो है, तो वानैं तो जैनलिंग धर्म बुद्धि करि धरया है, ताकै देवादिकी प्रतीति कैसें नाहीं भई ? अर वाकै बहुत शास्त्राभ्यास है,सो वानै जीवादिके भेद कैसें न जाने। अर अन्यमतका लवलेश भी अभिप्रायमें नाहीं, ताकै अरहंत वचनकी कैसें प्रतीति नाहीं भई। तातै वाकै ऐसा श्रद्धान तो होय परन्तु सम्यक्त्व न भया। बहुरि नारकी भोगभूमियाँ तिर्यंच आदिकै ऐसा श्रद्धान होनेका निमित्त नाही अर तिनिकै बहुत कालपर्यंत सम्यक्त्व रहै है। तातैं वाकै ऐसा श्रद्धान नाहीं हो है, तौ भी सम्यक्त्व भया। तातैं सम्यक्श्रद्धानका स्वरूप यहु नाहीं। सांचा स्वरूप है, सो आगें वर्णन करेंगे, सो जानना।

बहुरि जो उनके शास्त्रनिका अभ्यास करना ताकों सम्यग्ज्ञान कहै हैं। सो द्रव्यलिगी मुनिकै शास्त्राभ्यास होतें भी मिथ्याज्ञान कह्या, असंयत सम्यग्दृष्टिकै विषयादिरूप जानना ताकों सम्यग्ज्ञान कह्या। तातैं यहु स्वरूप नाहीं, सांचा स्वरूप आगे कहेंगे सो जानना। बहुरि उनकरि निरूपित अणुव्रत महाव्रतादिरूप श्रावक यतीका धर्म धारने करि सम्यक्चारित्र भया मानै। सो प्रथम तो व्रतादिका स्वरूप अन्यथा कहैं, सो किछू पूर्वें गुरु वर्णन विषें कह्या है। बहुरि द्रव्यलिंगीकै महाव्रत होतें भी सम्यक्चारित्र न हो है। अर उनका मतके अनुसारि गृहस्थादिककै महाव्रत आदि बिना अंगीकार किए भी सम्यक्चारित्र हो है,तातैं यह स्वरूप नाहीं। सांचा स्वरूप अन्य है,सो आगे कहेंगे।

यहां वे कहै हैं—द्रव्यलिगीकै अंतरंग विषें पूर्वोक्त श्रद्धानादिक

न भए, बाह्य ही भए, तातें सम्यक्त्वादि न भए।

ताका उत्तर—जो अंतरंग नाहीं अर बाह्य धारै,सो तो कपटकरि धारै। सो वाकै कपट होय तो ग्रैवेयक कैसें जाय, नरकादि विषैं जाय। बंध तो अंतरंग परिणामनितें हो है। सो अंतरंग जिनधर्मरूप परिणाम भए बिना ग्रैवेयक जाना सम्भवै नाहीं। बहुरि व्रतादिरूप शुभोपयोगहीतैं देवका बंध माने अर याहीकों मोक्षमार्ग मानै,सो बंध-मार्ग मोक्षमार्गकों एक किया, सो यहु मिथ्या है। बहुरि व्यवहार धर्म विषैं अनेक विपरीति निरूपै हैं। निदकको मारनेमे पाप नाही, ऐसा कहै हैं। सो अन्यमती निंदक तीर्थंकरादिकके होतें भी भए, तिनकों इन्द्रादिक मारे नाहीं। सो पाप न होता, तो इन्द्रादिक क्यों न मारे। बहुरि प्रतिमाजीकै आभरणादि बनावै है, सो प्रतिबिम्ब तो वीतराग भाव बधावनेकों कारण स्थापन किया था। आभरणादि बनाए, अन्य मतकी मूर्तिवत् यहु भी भए। इत्यादि कहाँ ताँई कहिए, अनेक अन्यथा निरूपण करें हैं। या प्रकार श्वेताम्बर मत कल्पित जानना। यहाँ सम्यग्दर्शन आदिकका अन्यथा निरूपणतें मिथ्यादर्शनादिकहीकी पुष्टता हो है तातें याका श्रद्धानादि न करना।

ढूंढक मत निराकरण

बहुरि इन श्वेताम्बरनिविषैं ही ढूंढिए प्रगट भए हैं, ते आपकों सांचे धर्मात्मा मानै हैं, सो भ्रम है। काहेतै सो कहिए है—

केई तो भेष धारि साधु कहावै हैं, सो उनके ग्रन्थनिके अनुसार भी व्रत समिति गुप्ति आदिका साधन नाहीं भासै है। बहुरि देखो मन वचन काय कृत कारित अनुमोदनाकरि सर्व सावद्ययोग त्याग

करनेकी प्रतिज्ञा करें, पीछें पालें नाहीं । बालककों वा भोलाकों वा शूद्रादिककों ही दीक्षा दें । सो ऐसै त्याग करें अर त्याग करतें ही किछू विचार न करै, जो कहा त्याग करूं हूं । पीछें पालै भी नाहीं अर ताकों सर्व साधु मानै । बहुरि यह कहै—पीछें धर्म बुद्धि हो जाय, तब तो याका भला हो है । सो पहले ही दीक्षा देनेवालेने प्रतिज्ञा भंग होती जानि प्रतिज्ञा कराई, बहुरि यानै प्रतिज्ञा अंगीकार करि भंग करी, सो यहु पाप कौनकों लाग्या । पीछें धर्मात्मा होनेका निश्चय कहा । बहुरि जो साधुका धर्म अंगीकार करि यथार्थ न पालै, ताकों साधु मानिए कै न मानिए। जो मानिए,तो जे साधु मुनि नाम धरावैं हैं अर भ्रष्ट है,तिन सबनिकों साधु मानों । न मानिए,तो इनकै साधुपना न रह्या । तुम जैसे आचरणते साधु मानो हो, ताका भी पालना कोऊ बिरलाकै पाईए है । सबनिकों साधु काहेकों मानो हो ।

यहाँ कोऊ कहै—हम तो जाकै यथार्थ आचरण देखेंगे, ताकों साधु मानेंगे, औरकों न मानेंगे । ताकों पूछिए है—

एक संघ विषै बहुत भेषी हैं । तहाँ जाकै यथार्थ आचरण मानो हो सो वह औरनिको साधु मानै है कि न मानै है । जो मानै है, तो तुमतै भी अश्रद्धानी भया, ताकों पूज्य कैसे मानों हो । अर न मानै है, तो उन सेती साधुका व्यवहार काहेकों वर्त्तै है । बहुरि आप तो उनकों साधु न मानै अर अपने संघविषै राखि औरनि पासि साधु मनाय औरनिकों अश्रद्धानी करै, ऐसा कपट काहेकों करै । बहुरि तुम जाकों साधु न मानोगे तब अन्य जीवनिकों भी ऐसा ही उपदेश

करोगे, इनकों साधु मति मानों, ऐसें धर्म्मपद्धति विषें विरुद्ध होय। अर जाकों तुम साधु मानो हो तिसतें भी तुम्हारा विरुद्ध भया, जातें वह वाकों साधु मानै है। बहुरि तुम जाकै यथार्थ आचरण मानो हो, सो विचारकरि देखो, वह भी यथार्थ मुनि धर्म्म नाहीं पालै है।

कोऊ कहै—अन्य भेषधारीनितें तो घनें अच्छे हैं तातें हम मानें हैं। सो अन्यमतीनि विषें तो नाना प्रकार भेष सम्भवें, जातें तहां रागभावका निषेध नाही। इस जैनमतविषै तो जैसा कह्या, तैसा ही भए साधु संज्ञा होय।

यहाँ कोऊ कहै—शील संयमादि पालें है,तपश्चरणादि करै हैं, सो जेता करैं तितना ही भला है।

ताका समाधान—यहु सत्य है, धर्म थोरा भी पाल्या हुआ भला ही है। परन्तु प्रतिज्ञा तो बड़े धर्मकी करिए अर पालिए थोरा, तो तहाँ प्रतिज्ञाभंगतै महापाप हो है। जैसें कोऊ उपवासकी प्रतिज्ञाकरि एकबार भोजन करै तो वाकै बहुत बार भोजनका सयम होते भी प्रतिज्ञाभंगतें पापी कहिए। तैसे मुनिधर्मकी प्रतिज्ञाकरि कोई किंचित् धर्म्म न पालै,तो वाकों शीलसयमादि होतें भी पापी ही कहिए। अर जैसें एकंतकी (एकासनकी) प्रतिज्ञाकरि एक बार भोजन करै, तो धर्मात्मा ही है तैसें अपना श्रावकपद धारि थोरा भी धर्म साधन करै तो धर्मात्मा ही है। यहाँ तो ऊँचा नाम धराय नीची क्रिया करनेतें पापीपना सम्भवै है। यथायोग्य नाम धराय धर्मक्रिया करतें तो पापीपना होता नाहीं। जेता धर्म्म साधै, तितना ही भला है।

यहां कोऊ कहै—पंचमकालका अन्तँ पर्यन्त चतुर्विधि संघका सद्भाव

कह्या है। इनिकों साधु न मानिए, तो किसको मानिए ?

ताका उत्तर—जैसें इस कालविषें हंसका सद्भाव कह्या है अर गम्यक्षेत्रविषें हंस नाही दीसै हैं, तो औरनिकों तो हंस माने जाते नाहीं, हंसका लक्षण मिलें ही हंस माने जांय। तैसें इस कालविषें साधुका सद्भाव है अर गम्यक्षेत्रविषै साधु न दीसै हैं, तो औरनिकों तो साधु माने जाते नाही, साधु लक्षण मिले ही साधु माने जांय। बहुरि इनका भी प्रचार थोरे ही क्षेत्रविषै दीसै है, तहांतें परे क्षेत्रविषैं साधुका सद्भाव कैसें मानें ? जो लक्षण मिलें मानै, तो यहां भी ऐसें ही मानों। अर बिना लक्षण मिले ही मानै, तो तहां अन्य कुलिंगी हैं तिनहीकों साधु मानों। ऐसे विपरीति होय, तातें बने नाहीं। कोऊ कहै—इस पंचमकालमें ऐसें भी साधुपद हो है; तो ऐसा सिद्धांतका वचन बताओ। बिना ही सिद्धांत तुम मानो हो, तो पापी होगा। ऐसें अनेक युक्तिकरि इनिकै साधुपना बनै नाहीं है। अर साधुपना बिना साधु मानि गुरु मानें मिथ्यादर्शन हो है, जातें भले साधुकों गुरू मानें ही सम्यग्दर्शन हो है।

प्रतिमाधारी श्रावक न होनेकी मान्यता का निषेध

बहुरि श्रावक धर्मकी अन्यथा प्रवृत्ति करावैं हैं। त्रसकी हिंसा स्थूल मृषादिक होतें भी जाका किछू प्रयोजन नाहीं, ऐसा किंचित् त्याग कराय वाकों देशव्रती भया कहै। सो वह त्रसघातादिक जामें होय ऐसा कार्य करें। सो देशव्रत गुणस्थानविषें तो ग्यारह अविरति कहे हैं,तहां त्रसघात कैसें सम्भवै ? बहुरि ग्यारह प्रतिमा भेद श्रावकके हैं, तिन विषैं दशमी ग्यारमी प्रतिमाधारक श्रावक तो कोई होता ही

नाहीं अर साधु होय। पूछें, तब कहैं—पडिमाधारी श्रावक अबार होय सकता नाहीं। सो देखो, श्रावकधर्म्म तो कठिन अर मुनिधर्म्म सुगम—ऐसा विरुद्ध भाषैं हैं। बहुरि ग्यारमी प्रतिमा धारकके थोरा परिग्रह, मुनिकै बहुतपरिग्रह बतावें, सो सम्भवता वचन नाहीं। बहुरि कहैं, ए प्रतिमा तो थोरे ही काल पालि छोड़ि दीजिए हैं। सो ए कार्य उत्तम हैं तो धर्म्म बुद्धि ऊँची क्रियाकों काहेकों छोरै अर नीचे कार्य हैं तो काहेकों अंगीकार करै। यह सम्भवै ही नाही। बहुरि कुदेव कुगुरुकों नमस्कारादिक करतें भी श्रावकपना बतावै। कहैं, धर्म्मबुद्धिकरि तो नाहीं बंदे हैं,लौकिक व्यवहार है। सो सिद्धांतविषै तो तिनिकी प्रशंसा स्तवनकों भी सम्यक्त्वका अतिचार कहैं अर गृहस्थनिका भला मनावनेके अर्थि बंदना करते भी किछू न कहैं। बहुरि कहोगे—भय लज्जा कुतूहलादिकरि बंदे है; तो इनिही कारणनिकरि कुशीलादि सेवन करतें भी पाप मति कहो, अंतरंग विषै पापजान्या चाहिए। ऐसे सर्व आचारनविषैविरुद्ध होगा। देखो मिथ्यात्वसारिखे महापाप की प्रवृत्ति छुड़ावनेकी तो मुख्यता नाही अर पवनकायकी हिंसा ठहराय उघारे मुख बोलना छुड़ावनेकी मुख्यता पाईए। सो क्रमभग उपदेश है। बहुरि धर्म्मके अंग अनेक हैं, तिनविषैं एक परजीवकी दया ताकों मुख्य कहै हैं, ताका भी विवेक नाही। जलका छानना, अन्नका शोधना, सदोष वस्तुका भक्षण न करना, हिंसादिकरूप व्यापार न करना इत्यादि याके अंगनिकी तो मुख्यता नाहीं।

मुँहपत्तिका निषेध

बहुरि पाटीका बांधना, शौचादिक थोरा करना, इत्यादि कार्यनि

की मुख्यता करें हैं। सो मैलयुक्त पाटीकैथूकका सम्बन्धतें जीव उपजें तिनका तो यत्न नाहीं अर पवनकी हिंसाका यत्न बतावें। सो नासिकाकरि बहुत पवन निकसै, ताका तो यत्न करते ही नाहीं। बहुरि जो उनका शास्त्रके अनुसारि बोलनेहीका यत्न किया, तो सर्वदा काहेको राखिए। बोलिए, तब यत्न कर लीजिए। बहुरि जो कहैं— भूलि जाइए। तो इतनी भी याद न रहै, तो अन्य धर्मसाधन कैसें होगा ? बहुरि शौचादिक थोरे करिए, सो सम्भवता शौच तो मुनि भी करे हैं। तातै गृहस्थकों अपने योग्य शौच करना। स्त्रीसंगमादिकरि शौच किए बिना सामायिकादि क्रिया करनेतैं अविनय, विक्षिप्तता-आदि करि पाप उपजै। ऐसें जिनकी मुख्यता करैं, तिनका भी ठिकाना नाहीं अर केई दयाके अग योग्य पाले हैं, हरितकायका त्याग आदि करै, जल थोरा नाखै, इनका हम निषेध करते नाहीं।

मूर्तिपूजा निषेध का निराकरण

बहुरि इस अहिंसाका एकांत पकड़ि प्रतिमा चैत्यालयपूजनादि क्रियाका उत्थापन करै है। सो उनहीके शास्त्रनिविषै प्रतिमाआदिका निरूपण है, ताकों आग्रहकरि लोपै हैं। भगवतीसूत्रविषै ऋद्धिधारी मुनिका निरूपण है तहाँ मेरुगिरि आदिविषैं जाय "तत्थ चेययाइं वंदई" ऐसा पाठ है। याका अर्थ यहु—तहाँ चैत्यनिकों वंदे हैं। सो चैत्य नाम प्रतिमाका प्रसिद्ध है। बहुरि वे हठकरि कहै हैं—चैत्य शब्दके ज्ञानादिक अनेक अर्थ निपजै हैं, सो अन्य अर्थ हैं, प्रतिमाका अर्थ नाहीं। याकों पूछिए है—मेरुगिरि नन्दीश्वरद्वीपविषैं जाय जाय तहाँ चैत्यवंदना करी, सो वहाँ ज्ञानादिककी वंदना करने का अर्थ कैसे

सम्भवै ? ज्ञानादिक की वंदना तो सर्वत्र सम्भवै। जो वंदने योग्य चैत्य कहीं सम्भवै अर सर्वत्र न सम्भवै, ताकों तहां वंदनाकरनेका विशेष सम्भवै, सो ऐसा सम्भवता अर्थ प्रतिमा ही है अर चैत्यशब्दका मुख्य अर्थप्रतिमा ही है, सो प्रसिद्ध है। इस ही अर्थकरि चैत्यालय नाम सम्भवै है। याकों हठकरि काहेकों लोपिए।

बहुरि नन्दीश्वर द्वीपादिकविषें जाय, देवादिक पूजनादि क्रिया करें हैं, ताका व्याख्यान उनकै जहां तहां पाइए है। बहुरि लोकविषै जहां तहां अकृत्रिम प्रतिमाका निरूपण है। सो या रचना अनादि है सो यह रचना भोग कुतूहलादिकके अर्थ तो है नाहीं। अर इन्द्रादिकनिके स्थाननिविषै निःप्रयोजन रचना सम्भवै नाही। सो इन्द्रादिक तिनकों देखि कहा करै है। कै तो अपने मंदिरनिविषैं निःप्रयोजन रचना देखि उसतै उदासीन होते होगे, तहां दुखी होते होंगे, सो सम्भवै नाही। कै आछी रचना देखि विषय पोषते होगे, सो अर्हंत मूर्त्तिकरि सम्यग्दृष्टी अपना विषय पोषै, यह भी सम्भवै नाही। तातैं तहां तिनकी भक्तिआदिक ही करै हैं, यह ही सम्भवै है। सो उनकै सूर्याभदेवका व्याख्यान है। तहां प्रतिमाजीके पूजनेका विशेष वर्णन किया है। याको गोपनेके अर्थि कहै है, देवनिका ऐसा ही कर्त्तव्य है। सो सांच, परन्तु कर्तव्यका तो फल होय ही होय। सो तहां धर्म हो है कि पाप हो है। जो धर्म हो है, तो अन्यत्र पाप होता था, यहां धर्म भया। याकों औरनिके सदृश कैसें कहिए? यह तो योग्य कार्य भया। अर पाप हो है तो तहां 'णमोत्थुणं'का पाठ पढ़्या, सो पापके ठिकानें ऐसा पाठ काहेकों पढ़्या। बहुरि एक विचार यहां यह आया, जो

'णमोत्थुणं' के पाठ विषें तो अरहंतकी भक्ति है । सो प्रतिमाजीके आगें जाय यहु पाठ पढ़्या,तातै प्रतिमाजीके आगे जो अरहंतभक्तिकी क्रिया है सो करनी युक्त भई । बहुरि जो वे ऐसा कहैं—देवनिकै ऐसा कार्य है, मनुष्यनिकै नाहीं, जातै मनुष्यनिकै प्रतिमा आदि बनावनै विषें हिंसा हो है । तो उनहीके शास्त्रनिविषै ऐसा कथन है, द्रोपदी राणी प्रतिमाजीका पूजनादिक जैसे सूर्याभदेव किया,तैसे करती भई। तातैं मनुष्यनिकै भी ऐसा कार्य कर्त्तव्य है । यहां एक यहु विचार आया—चैत्यालय प्रतिमा बनावनेकी प्रवृत्ति न थी, तो द्रोपदी कैसें प्रतिमाका पूजन किया। बहुरि प्रवृत्ति था,तो बनावनेवाले धर्मात्मा थे कि पापी थे । जो धर्मात्मा थे तो गृहस्थनिको ऐसा कार्य करना योग्य भया अर पापी थे तो तहां भोगादिकका प्रयोजन तो था नाहीं, काहेको बनाया । बहुरि द्रोपदी तहां 'णमोत्थुणं' का पाठ किया वा पूजनादि किया, सो कुतूहल किया कि धर्म किया । जो कुतूहल किया तो महापापिणी भई । धर्मविषै कुतूहल कहा । अर धर्म किया तो औरनिको भी प्रतिमाजीकी स्तुति पूजा करनी युक्त है । बहुरि वे ऐसी मिथ्यायुक्ति बनावै हैं—जैसे इन्द्रकी स्थापनातै इन्द्रका कार्य सिद्ध नाहीं, तैसें अरहंत प्रतिमा करि कार्य सिद्ध नाहीं। सो अरहंत आप काहूकों भक्त मानि भला करते होय तौ तो ऐसें भी मानैं । सो तो वे वीतराग है । यहु जीव भक्ति रूप अपने भावनितैं शुभफल पावै है । जैसे स्त्री का आकार रूप काष्ठ पाषाणकी मूर्ति देखि, तहां विकाररूप होय अनुराग करै, तो ताकै पाप बंध होय । तैसें अरहंत का आकाररूप धातु पाषाणादिक की मूर्ति देखि धर्म बुद्धितैं तहां

अनुराग करें, तो शुभकी प्राप्ति कैसें न होइ। तहां वे कहैं हैं, बिना प्रतिमा ही हम अरहंत विषें अनुरागकरि शुभ उपजावेंगे। तो इनिकों कहिए है—आकार देखें जैसा भाव होय, तैसा परोक्ष स्मरण किए होय नाहीं। याहीतें लोकविषें भी स्त्रीका अनुरागी स्त्रीका चित्र बनावै हैं। तातें प्रतिमाका आलंबनिकरि भक्ति विशेष होनेतें विशेष शुभकी प्राप्ति हो है।

बहुरि कोऊ कहै—प्रतिमाकों देखो, परन्तु पूजनादिक करने का कहा प्रयोजन है?

ताका उत्तर—जैसें कोऊ किसी जीव का आकार बनाय घात करै तो वाकै उस जीवकी हिंसा किए कासा पाप निपजै वा कोऊ काहूका आकार बनाय द्वेष बुद्धितै वाकी बुरी अवस्था करै तो जाका आकार बनाया वाकी बुरी अवस्था किए का सा फल निपजै। तैसे अरहंतका आकार बनाय राग बुद्धितै पूजनादि करै तो अरहंतके पूजनादि किए का सा शुभ (भाव) निपजै वा तैसा ही फल होय। अति अनुराग भए प्रत्यक्ष दर्शन न होतें आकार बनाय पूजनादि करिए है। इस धर्मानुरागतें महापुण्य उपजै है।

बहुरि ऐसी कुतर्क करै हैं—जो जाकै जिस वस्तुका त्याग होय ताके आगें तिस वस्तुका धरना हास्य करना है। तातें वंदनादिकरि अरहतका पूजन युक्त नाहीं।

ताका समाधान—मुनिपद लेतें ही सर्व परिग्रहका त्याग किया था, केवलज्ञान भए पीछें तीर्थंकरदेवके समवशरणादि बनाए, छत्र चामरादि किए, सो हास्य करी कि भक्ति करी। हास्य करी तो इन्द्र

महापापी भया, सो बने नाहीं । भक्ति करी तो पूजनादिकविषै भी भक्ति ही करिए है। छद्मस्थके आगें त्याग करी वस्तुका धरना हास्य करना है, जातैं वाकै विक्षिप्तता होय आवै है। केवलीकै वा प्रतिमाके आगें अनुरागकरि उत्तम वस्तु धरने का दोष नाहीं। उनकै विक्षिप्तता होय नाहीं। धर्मानुरागतैं जीवका भला होय।

बहुरि वे कहै हैं—प्रतिमा बनावने विषैं, चैत्यालयादि करावने विषैं, पूजनादि करावने विषैं हिंसा होय अर धर्म अहिंसा है । तातैं हिंसाकरि धर्म माननेतैं महापाप हो है, तातैं हम इन कार्यनिकौं निषेधैं हैं।

ताका उत्तर—उनही के शास्त्रविषैं ऐसा वचन है—

सुच्चा जाणइ कल्लाणं सुच्चा जाणइ पावगं ।
उभयं पि जाणए सुच्चा जं सेय तं समायर ॥१॥

यहाँ कल्याण पाप उभय ए तीन शास्त्र सुनिकरि जाणै, ऐसा कह्या। सो उभय तो पाप अर कल्याण मिलें होय सो ऐसा कार्यका भी होना ठहरया। तहाँ पूछिए है—केवल धर्म्मतैं तो उभय घाटि है ही अर केवल पापतैं उभय बुरा है कि भला है। जो बुरा है तो यामें तो किछू कल्याणका अंश मिल्या, पापतैं बुरा कैसे कहिए। भला है तो केवल पाप छोड़ ऐसा कार्य करना ठहरया । बहुरि युक्तिकरि भी ऐसैं ही सम्भवै है । कोऊ त्यागी होय, मन्दिरादिक नाहीं करावै है वा सामायिकादिक निरवद्य कार्यनिविषै प्रवर्त्तै है । ताकौं तो छोरि प्रतिमादि करावना वा पूजनादि करना उचित नाहीं। परन्तु कोई अपने रहनेके वास्ते मन्दिर बनावै, तिसतैं तो चैत्यालयादि

करावनेवाला हीन नाहीं। हिंसा तो भई परन्तु वाकै तो लोभ पापानुरागकी वृद्धि भई; याकै लोभ छूटया, धर्म्मानुराग भया। बहुरि कोई व्यापारादि कार्य करै, तिसतैं तो पूजनादि कार्य करना हीन नाहीं। वहां तो हिंसादि बहुत हो है, लोभादि बधै है, पापहीकी प्रवृत्ति है। यहाँ हिंसादिक भी किंचित् हो है, लोभादिक घटै है, धर्म्मानुराग बधै है। ऐसें जे त्यागी न होंय, अपने धनकों पापविषैं खरचते होंय तिनकों चैत्यालयादि करावना। अर जे निरवद्य सामायिकादि कार्यनिविषैं उपयोगकों नाही लगाय सकें, तिनकों पूजनादि करना निषेध नाही।

बहुरि तुम कहोगे, निरवद्य सामायिक आदि कार्य ही क्यों न करै, धर्म विषैं काल गमाबना तहाँ ऐसे कार्य काहेकों करै ?

ताका उत्तर—जो शरीरकरि पाप छोरें ही निरवद्यपना होय, तो ऐसैं ही करैं परन्तु परिणामनिविषै पाप छूटें निरवद्यपना हो है। सो बिना अवलम्बन सामायिकादिविषैं जाका परिणाम लागै नाहीं सो पूजनादिकरि तहाँ अपना उपयोग लगावै है। तहाँ नानाप्रकार आलम्बनकरि उपयोग लगि जाय है। जो तहां उपयोग को न लगावै, तो पापकार्यनिविषैं उपयोग भटकै तब बुरा होय। तातैं तहां प्रवृत्ति करनी युक्त है। बहुरि तुम कहो हो–धर्म्मके अर्थ हिंसा किए तो महा पाप हो है, अन्यत्र हिंसा किए थोरा पाप हो है। सो यह प्रथम तो सिद्धान्तका वचन नाहीं अर युक्तितें भी मिलै नाहीं। जातैं ऐसैं मानैं इन्द्र जन्मकल्याणकविषैं बहुत जलकरि अभिषेक करै है, समवसरण-विषैं देव पुष्पवृष्टि चमर ढालना इत्यादि कार्य करै हैं,सो ये महापापी

होंय। जो तुम कहोगे, उनका ऐसा ही व्यवहार है, तो क्रियाका फल तो भए बिना रहता नाहीं। जो पाप है तो इन्द्रादिक तो सम्यग्दृष्टी हैं, ऐसा कार्य काहेकों करें अर धर्म्म है तो काहेकों निषेध करो हो। बहुरि भला तुमहीकों पूछें हैं—तीर्थंकर की वंदनाकों राजादिक गए, साधुकी वंदनाकों दूरि भी जाईए है, सिद्धान्त सुनने आदि कार्य करने कों गमनादि करिये है, तहां मार्गविषें हिंसा भई। बहुरि साधर्म्मी जिमाइए है, साधुका मरण भये ताका संस्कार करिये है, साधु होतें उत्सव करिये है, इत्यादि प्रवृत्ति अब भी दीसै है। सो यहां भी हिंसा हो है। सो ये कार्य्य तो धर्म्महीके अर्थ हैं, अन्य कोई प्रयोजन नाहीं। जो यहां महापाप उपजै है, तो पूर्वे ऐसे कार्य किये तिनका निषेध करो। अर अब भी गृहस्थ ऐसा कार्य करें हैं, तिनका त्याग करो। बहुरि जो धर्म्म उपजै है तो धर्मके अर्थि हिंसाविषें महापाप बताय काहेकों भ्रमावो हो। तातें ऐसें मानना युक्त है—जैसे थोरा धन ठिगाएं बहुत धनका लाभ होय तो वह कार्य करना, तैसे थोरा हिंसादिक पाप भये बहुत धर्म्म निपजै तो वह कार्य्य करना। जो थोरा धनका लोभकरि कार्य बिगारे तो मूर्ख है। तैसे थोरी हिंसाका भयतें बड़ा धर्म्म छोरै तो पापी ही होय। बहुरि कोऊ बहुत धन ठिगावै अर स्तोक धन उपजावै वा न उपजावै तो वह मूर्ख ही है। तैसें बहुत हिंसादिकरि बहुतपाप उपजावै अर भक्ति आदि धर्मविषें थोरा प्रवर्त्तै वा न प्रवर्त्तै तो वह पापी ही है। बहुरि जैसें बिना ठिगाए ही धनका लाभ होतें ठिगावै तो मूर्ख है। तैसे निरवद्य धर्म्मरूप उपयोग होतें सावद्य धर्मविषें उपयोग लगावना युक्त नाहीं। ऐसें अपने परिणाम-

निकी अवस्था देखि भला होय सो करना । एकांतपक्ष कार्यकारी नाहीं । बहुरि अहिंसा ही केवल धर्मका अंग नाहीं है। रागादिकनिका घटना धर्मका अंग मुख्य है । तातें जैसें परिणामनिविषैं रागादिक घटैं सो कार्य करना।

बहुरि गृहस्थनिकों अणुव्रतादिकका साधन भए बिना ही सामायिक, पडिकमणो, पोसह आदि क्रियानिका मुख्य आचरन करावें हैं। सो सामायिक तो रागद्वेषरहित साम्यभाव भए होय, पाठ मात्र पढ़े वा उठना बैठना किए ही तो होइ नाहीं । बहुरि कहोगे—अन्य कार्य करता तातें तो भला है । सो सत्य, परन्तु सामायिकपाठ विषें प्रतिज्ञा तो ऐसी करै, जो मनवचनकायकरि सावद्यकों न करूंगा, न कराऊँगा अर मनविषें तो विकल्प हुआ ही करै। अर वचनकायविषें भी कदाचित् अन्यथा प्रवृत्ति होय तहां प्रतिज्ञाभंग होय । सो प्रतिज्ञाभंग करनेतें न करनी भलो । जातै प्रतिज्ञाभंगका महापाप है ।

बहुरि हम पूछे हैं—कोऊ प्रतिज्ञा भी न करै है अर भाषापाठ पढै है, ताका अर्थ जानि तिसविषै उपयोग राखै है। कोऊ प्रतिज्ञा करै, ताकों तो नीके पालै नाही अर प्राकृतादिकका पाठ पढै, ताके अर्थका आपकों ज्ञान नाहीं, बिना अर्थ जाने तहां उपयोग रहै नाहीं, तब उपयोग अन्यत्र भटकै । ऐसें इन दोऊनिविषें विशेष धर्मात्मा कौन ? जो पहलेकों कहोगे, तो ऐसा ही उपदेश क्यों न दीजिए। दूसरेकों कहोगे, तो प्रतिज्ञा भंगका पाप भया वा परिणामनिके अनुसार धर्मात्मापना न ठहरचा । पाठादि करनेके अनुसारि ठहरचा । तातैं अपना उपयोग जैसें निर्मल होय सो कार्य करना । सधै सो प्रतिज्ञा

करनी। जाका अर्थ जानिए सो पाठ पढ़ना। पद्धति करि नाम धरावनेमें नफ़ा नाहीं। बहुरि पडिकमणो नाम पूर्वदोष निराकरण करनेका है। सो 'मिच्छामि दुक्कडं' इतना कहे ही तो दुष्कृत मिथ्या न होय, किया दुःकृत मिथ्या होने योग्य परिणाम भए दुःकृत मिथ्या होय। तातें पाठ ही कार्यकारो नाहीं। बहुरि पडिकमणांका पाठ विषैं ऐसा अर्थ है, जो बारह व्रतादिकविषें जो दुष्कृत लाग्या होय सो मिथ्या होय। सो व्रत धारें बिना हो तिनका पडिकमणा करना कैसें सम्भवै? जाकै उपवास न होय, सो उपवासविषें लाग्या दोषका निराकरण करै तो असम्भवपना होय। तातैं यह पाठ पढ़ना कौन प्रकार बनै? बहुरि पोसहविषें भी सामायिकवत् प्रतिज्ञाकरि नाहीं पाले हैं। तातें पूर्वोक्त ही दोष है। बहुरि पोसह नाम तो पर्वका है। सो पर्वके दिन भी केतायक कालपर्यंत पापक्रिया करै, पीछें पोसहधारी होय। सो जेतें काल बनै तेते काल साधन करनेका तो दोष नाही। परन्तु पोसहका नाम करिए सो युक्त नाहीं। सम्पूर्ण पर्वविषै निरवद्य रहें हो पोसह होय। जो थोरा भो कालतें पोसह नाम होय तो सामायिककों भी पोसह कहो, नाहीं शास्त्र विषै प्रमाण बतावो, जघन्य पोसहका इतना काल है। सो बड़ा नाम धराय लोगनिकों भ्रमावना, यह प्रयोजन भासै है। बहुरि आखड़ी लेनेका पाठ तो और पढै, अंगीकार और करै। सो पाठविषें तो "मेरे त्याग है" ऐसा वचन है, तातें जो त्याग करै सो ही पाठ पढै, यह चाहिए। जो पाठ न आवै तो भाषा हीतें कहै। परन्तु पद्धतिके अर्थ यह रीति है। बहुरि प्रतिज्ञा ग्रहण करनें करावनेकी तो मुख्यता अर वथाविधि पालनेकी शिथिलता वा

भाव निर्मल होने का विवेक नाहीं। आर्त्तपरिणामनिकरि वा लोभादिककरि भी उपवासादि करै, तहाँ धर्म्म मानै । सो फल तो परिणामनितें हो है । इत्यादि अनेक कल्पित बातें करै हैं, सो जैनधर्म्म विषैं सम्भवै नाहीं। ऐसें यहु जैनविषै श्वेताम्बरमत है, सो भी देवादिकका वा तत्त्वनिका वा मोक्षमार्गादिकका अन्यथा निरूपण करै है। तातें मिथ्यादर्शनादिकका पोषक है, सो त्याज्य है । सांचा जिनधर्म्म का स्वरूप आगें कहैं हैं । ताकरि मोक्षमार्गविषै प्रवर्त्तना योग्य है। तहाँ प्रवर्त्ते तुम्हारा कल्याण होगा।

इति श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक शास्त्रविषै अन्यमत निरूपण पांचवाँ अधिकार समाप्त भया ।। ५ ।।

ॐ नमः

छठा अधिकार

कुदेव, कुगुरु और कुधर्म का प्रतिषेध

दोहा

मिथ्या देवादिक भजें, हो है मिथ्याभाव।
तज तिनकों सांचे भजौ, यह हितहेतु उपाव ॥१॥

अर्थ—अनादितैं जीवनिकै मिथ्यादर्शनादिक भाव पाईए है, तिनिकी पुष्टताकों कारण कुदेव कुगुरु कुधर्म्म सेवन है। ताका त्याग भए मोक्षमार्गविषें प्रवृत्ति होय। तातैं इनका निरूपण कीजिए है।

कुदेव का निरूपण और उसके श्रद्धानादिक का निषेध

तहां जे हितका कर्त्ता नाहीं अर तिनकों भ्रमतें हितका कर्त्ता जानि सेइए सो कुदेव हैं। तिनका सेवन तीन प्रकार प्रयोजन लिए करिए है। कही तो मोक्षका प्रयोजन है। कहीं परलोकका प्रयोजन है। कहीं इस लोकका प्रयोजन है। सो ये प्रयोजन तो सिद्ध होंय नाहीं। किछू विशेष हानि होय। तातैं तिनका सेवन मिथ्याभाव है। सोई दिखाईए है--

अन्यमतनिविषें जिनके सेवनतें मुक्ति होनी कही है, तिनकों केई जीव मोक्षके अर्थ सेवन करें हैं, सो मोक्ष होय नाहीं। तिनका वर्णन पूर्वे अन्यमत अधिकारविषें कह्या ही है, बहुरि अन्यमत विषें कहे देव, तिनकों केई परलोकविषें सुख होय, दुःख न होय ऐसे प्रयोजन लिए

सेवें हैं। सो ऐसी सिद्धि तो पुण्य उपजाए अर पाप न उपजाए ही है। सो आप तो पाप उपजावे है अर कहै ईश्वर हमारा भला करेगा, तो तहां अन्याय ठहरया। काहूकों पापका फल दे, काहूकों न दे, सो ऐसें तो है नाहीं। जैसा अपना परिणाम करेगा,तैसा ही फल पावेगा। काहूका बुरा भला करने वाला ईश्वर है नाहीं। बहुरि तिन देवनिका सेवन करतें तिन देवनिका तो नाम करै अर अन्य जीवनिकी हिंसा करें वा भोजन नृत्यादिकरि अपनी इन्द्रियनिका विषय पोषें, सो पाप परिणामनिका फल तो लागे बिना रहने का नाहीं। हिंसा विषय कषायनिकों सर्व पाप कहैं हैं। अर पाप का फल भी खोटा ही सर्व मानै हैं। बहुरि कुदेवनिका सेवन विषें हिंसा विषयादिकही का अधिकार है। तातै कुदेवनिका सेवनतें परलोकविषै भला न हो है।

बहुरि घने जीव इस पर्याय सम्बन्धी शत्रुनाशादिक वा रोगादिक मिटवाना वा धनादिककी प्राप्ति वा पुत्रादिककी प्राप्ति इत्यादि दुःख मेटने का वा सुख पावनेका अनेक प्रयोजन लिएं कुदेवनिका सेवन करें हैं। बहुरि हनुमानादिकों पूजें हैं। बहुरि देवीनिकों पूजें हैं। बहुरि गणगौर सांझी आदि बनाय पूजें हैं। चौथि शीतला दिहाड़ी आदिकों पूजें हैं। बहुरि अऊत पितर व्यंतरादिककों पूजे है। बहुरि सूर्य चन्द्रमा शनिश्चरादि ज्योतिषीनिकों पूजे है। बहुरि पीर पैगम्बरादिकनिकों पूजे हैं। बहुरि गऊ घोटकादि तिर्यंचनिकों पूजे हैं। अग्नि जलादिककों पूजें हैं। शस्त्रादिककों पूजे हैं। बहुत कहा कहिए, रोड़ी इत्यादिककों भी पूजें हैं। सो ऐसें कुदेवनिका सेवन मिथ्यादृष्टितें हो है। काहेतें, प्रथम तो जिनका सेवन करै सो केइ तो कल्पना

मात्र ही देव हैं। सो तिनका सेवन कार्यकारी कैसें होय। बहुरि केई व्यंतरादिक हैं, सो ए काहूका भला बुरा करनेकों समर्थ नाहीं । जो वे ही समर्थ होंय, तो वे ही कर्त्ता ठहरें । सो तो उनका किया किछ होता दीसता नाहीं। प्रसन्न होय धनादिक देय सकें नाहीं। द्वेषी होय बुरा कर सकते नाहीं।

इहां कोऊ कहै—दुःख तो देते देखिए है, मानेतें दुःख देते रहि जाय हैं।

ताका उत्तर—याकें पापका उदय होय, तब ऐसी ही उनकै कुतूहल बुद्धि होय, ताकरि वे चेस्टा करे, चेष्टा करतें यहु दुःखी होय। बहुरि वे कुतूहलतें किछू कहैं, यहु कह्या करै तब वे चेष्टा करनेत रहि जांय । बहुरि याकों शिथिल जानि कुतूहल किया करें। बहुरि जो याकै पुण्यका उदय होय तो किछू कर सकते नाही। सो भी देखिए हैं—कोऊ जीव उनकों पूजै नाहीं वा उनकी निन्दा करें वा वे भी उसतें द्वेष करै परन्तु ताकों दुःख देई सकै नाहीं । वा ऐसे भी कहते देखिए है, जो फलाना हमकों मानैं नाहीं परन्तु उसतैं किछू हमारा वश नाहीं । तातै व्यन्तरादिक किछू करनेकों समर्थ नाहीं । याका पुण्य पापहीतैं सुख दुःख हो है। उनके माने पूजे उलटा रोग लागै है, किछू कार्य सिद्धि नाहीं । बहुरि ऐसा जानना—जे कल्पित देव हैं, तिनका भी कही अतिशय चमत्कार होता देखिए है सो व्यंतरादिक करि किया हो है। कोई पूर्व पर्यायविषै उनका सेवक था, पीछे मरि व्यन्तरादि भया, तहाँ ही कोई निमित्ततैं ऐसी बुद्धि भई, तब वह लोकविषैं तिनिके सेवनें की प्रवृत्ति करावनेके अर्थि कोई चमत्कार

दिखावै है । जगत् भोला, किंचित् चमत्कार देखि तिस कार्य विषैं लग जाय है। जैसें जिन प्रतिमादिकका भी प्रतिशय होता सुनिए वा देखिए है सो जिनकृत नाहीं, जैनी व्यंतरादिकृत हो है। तैसें ही कुदेव-निका कोई चमत्कार होय, सो उनके अनुचरी व्यंतरादिकनिकरि किया हो है, ऐसा जानना । बहुरि अन्यमतविषें भक्तनिकी सहाय परमेश्वर करी वा प्रत्यक्ष दर्शन दिए इत्यादि कहैं हैं । तहां केई तो कल्पित बातें कही हैं । केई उनके अनुचरी व्यन्तरादिककरि किए कार्यनिकों परमेश्वरके किए कहै हैं । जो परमेश्वरके किए होंय तो परमेश्वर तो त्रिकालज्ञ छै । सर्व प्रकार समर्थ छै । भक्तकों दुःख काहेकों होनें दे । बहुरि अबहू देखिए है । म्लेच्छ प्राय भक्तनिकों उपद्रव करें हैं, धर्म विध्वंस करें हैं, मूर्तिको विघ्न करें हैं, सो परमे-श्वरकों ऐसे कार्यका ज्ञान न होय तो सर्वज्ञपनों रहै नाहीं। जाने पीछें सहाय न करै तो भक्त वत्सलता गई वा सामर्थ्यहीन भया । बहुरि साक्षीभूत रहै है तो आगें भक्तनिकी सहाय करी कहिए है सो झूंठ है। उनकी तो एकसी वृत्ति है। बहुरि जो कहोगे– वैसी भक्ति नाहीं है । तो म्लेच्छनितें तो भले हैं वा मूर्ति आदि तो उनही की स्थापना थी, तिनिका विघ्न तो न होने देना था । बहुरि म्लेच्छ-पापीनिका उदय हो है, सो परमेश्वर का किया है कि नाहीं । जो परमेश्वरका किया है, तो निंदकनिकों सुखी करै, भक्तनिकों दुख-दायक करै, तहाँ भक्तवत्सलपना कैसे रह्या ? अर परमेश्वरका किया न हो है, तो परमेश्वर सामर्थ्यहीन भया । तातैं परमेश्वरकृत कार्य नाहीं। कोई अनुचरी व्यंतरादिक ही चमत्कार दिखावै है। ऐसा ही

निश्चय करना।

बहुरि इहाँ कोऊ पूछै कि कोई व्यंतर अपना प्रभुत्व कहै वा अप्रत्यक्षकों बताय दे, कोऊ कुस्थानवासादिक बताय अपनी हीनता कहै, पूछिए सो न बतावै, भ्रमरूप वचन कहै वा औरनिकों अन्यथा परिणमावै, औरनिकों दुःखदे, इत्यादि विचित्रता कैसे है ?

ताका उत्तर—व्यंतरनिविषै प्रभुत्व की अधिक हीनता तो है परन्तु जो कुस्थान विषें वासादिक बताय हीनता दिखावैं हैं सो तो कुतूहलतें वचन कहै हैं। व्यंतर बालकवत् कुतूहल किया करै। सो जैसें बालक कुतूहलकरि आपकों हीन दिखाव, चिड़ावै, गाली सुनै, बार पाडै (ऊंचे स्वरसे रोवै) पीछे हँसने लगि जाय, तैसे ही व्यंतर चेष्टा करै हैं। जो कुस्थानहीके वासी होंय, तो उत्तम स्थानविषै आवैं हैं तहाँ कौनके ल्याए आवे हैं । आपहीतें आवे हैं, तो अपनी शक्ति होतें कुस्थानविषें काहेकों रहैं ? तातें इनिका ठिकाना तो जहाँ उपजै हैं, तहां इस पृथ्वीके नीचे वा ऊपरि है सो मनोज्ञ है। कुतूहलके लिये चाहै सो कहै हैं। बहुरि जो इनकों पीड़ा होती होय तो रोवते-रोवते हंसने कैसें लगि जाँय हैं। इतना है, मन्त्रादिककी अचिंत्यशक्ति है सो कोई सांचा मन्त्रके निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध होय तो वाकैं किंचित् गमनादि न होय सकै वा किंचित् दुःख उपजै वा कोई प्रबल वाकों मनै करै तब रहि जाय वा आप ही रहि जाय। इत्यादि मन्त्रकी शक्ति है परन्तु जलावना आदि नहो है । मन्त्र वाला जलाया कहै; बहुरि वह प्रगट होय जाय, जातै वैक्रियिक शरीरका जलावना आदि सम्भवै नाहीं। बहुरि व्यंतरनिकै अवधिज्ञान काहूकै स्तोक क्षेत्र

काल जाननेंका है, काहूके बहुत है। तहाँ वाकै इच्छा होय अर आपकै बहुत ज्ञान होय तो अप्रत्यक्षकों पूछै ताका उत्तर दें तथा आपकै स्तोक ज्ञान होय तो अन्य महत्ज्ञानीकों पूछि आय करि जवाब दें। बहुरि आपकै स्तोक ज्ञान होय वा इच्छा न होय, तो पूछै ताका उत्तर न दें, ऐसा जानना। बहुरि स्तोकज्ञानवाला व्यंतरादिकके उपजता केतेक काल ही पूर्व जन्मका ज्ञान होय सकै, पीछैं ताका स्मरण मात्र रहै है तातैं तहाँ कोई इच्छाकरि आप किछू चेष्टा करै तो करै। बहुरि पूर्व-जन्मकी बातें कहै। कोऊ अन्य वार्ता पूछै तो अवधि तो थोरा, बिना जाने कैसें कहै। बहुरि जाका उत्तर आप न देय सकैं वा इच्छा न होय, तहाँ मान कुतूहलादिकतैं उत्तर न दे वा झूँठ बोलै, ऐसा जानना। बहुरि देवनिमे ऐसी शक्ति है, जो अपने वा अन्यके शरीरकों वा पुद्गल स्कंधकों जैसी इच्छा होय तैसे परिणमावै। तातै नाना आकारादिरूप आप होय वा अन्य नाना चरित्र दिखावै। बहुरि अन्य जीवके शरीर कों रोगादियुक्त करै। यहां इतना है— अपने शरीरकों वा अन्य पुद्गल स्कंधनिकों तो जेती शक्ति होय तितनें ही परिणमाय सकै; तातैं सर्व कार्य करने की शक्ति नाहीं। बहुरि अन्य जीवके शरीरादिकको वाका पुण्य पापके अनुसारि परिणमाय सकै। वाकै पुण्य उदय होय तो आप रोगादिरूप न परिणमाय सकै अर पाप उदय होय तो वाका इष्टकार्य न करि सकै। ऐसें व्यंतरादिकनिकी शक्ति जाननी।

यहाँ कोऊ कहै—इतनी जिनकी शक्ति पाईए, तिनके माननें पूजनै में दोष कहा ?

ताका उत्तर—आपकै पाप उदय होतें सुख न देय सकै, पुण्य उदय होतें दुःख न देय सकै; बहुरि तिनके पूजनेतें कोई पुण्यबंध होय नाहीं, रागादिककी वृद्धि होतें पाप ही हो है। तातें तिनका मानना पूजना कार्यकारी नाहीं—बुरा करने वाला है। बहुरि व्यंतरादिक मनावें हैं, पुजावे हैं, सो कुतूहल करें हैं, किछू विशेष प्रयोजन नाहीं राखें हैं। जो उनकों मानै पूजै, तिस सेती कोतूहल किया करें। जो न मानै पूजें, तासों किछू न कहैं। जो उनकै प्रयोजन ही होय, तो न माननें पूजनेवालेकों घना दुःखी करै। सो तो जिनकै न मानने पूजनेका अवगाढ है, तासों किछू भी कहते दीसते नाहीं। बहुरि प्रयोजन तो क्षुधादिककी पीड़ा होय तो होय, सो उनकै व्यक्त होय नाहीं। जो होय, तो उनके अर्थि नैवेद्यादिक दीजिए ताकों भी ग्रहण क्यों न करें वा औरनिके जिमावने आदि करनेहीकों काहेकों कहैं। तातें उनकै कुतूहल मात्र क्रिया है। सो आपकों उनके कुतूहलका ठिकाना भए दुःख होय, हीनता होय तातें उनको मानना पूजना योग्य नाहीं।

बहुरि कोऊ पूछै कि व्यंतर ऐसें कहैं हैं—गया आदि विषै पिंड-प्रदान करो तो हमारी गति होय, हम बहुरि न आवें, सो कहा है।

ताका उत्तर—जीवनिकै पूर्वभवका संस्कार तो रहै ही है। व्यंतरनिकै पूर्व-भवका स्मरणादिकतें विशेष संस्कार है। तातें पूर्व-भवके विषें ऐसी ही वासना थी, गयादिकविषै पिंडप्रदानादि किए गति हो है तातें ऐसे कार्य करनेको कहैं हैं। जो मुसलमान आदि मरि व्यंतर हो हैं, ते तो ऐसें कहैं नाहीं, वे तो अपने संस्कार रूप ही वचन

कहैं। तातैं सर्व व्यंतरनिकी गति तैसैं ही होती होय तो सर्व ही समान प्रार्थना करें सो है नाही, ऐसें जानना। ऐसें व्यंतरादिकनिका स्वरूप जानना।

सूर्य चन्द्रमादि ग्रह पूजा प्रतिषेध

बहुरि सूर्य चन्द्रमा ग्रहादिक ज्योतिषी हैं, तिनकों पूजे हैं सो भी भ्रम है। सूर्यादिककों परमेश्वरका अंश मानि पूजें हैं। सो वाकै तो एक प्रकाशका ही आधिक्य भासं है। सो प्रकाशवान् अन्यरत्नादिकभी हो हैं। अन्य कोई ऐसा लक्षण नाही, जातै वाकों परमेश्वरका अंश मानिए। बहुरि चन्द्रमादिककों धनादिककी प्राप्तिके अर्थ पूजें हैं। सो उसके पूजनेतें ही धन होता होय, तो सर्व दरिद्री इस कार्यको करें। तातै ए मिथ्याभाव हैं। बहुरि ज्योतिषके विचारते खोटा ग्रहादिक आए तिनिका पूजनादि करे है, वाके अर्थ दानादिक दे हैं। सो जैसे हिरणादिक स्वयमेव गमनादि करे है, पुरुषके दाहिणें बावें आए सुख दुःख होनेका आगामी ज्ञानकों कारण हो है, किछू सुख दुःख देनेकों समर्थ नाही। तैसें ग्रहादिक स्वयमेव गमनादि करे हैं, प्राणीकै यथासम्भव योगकों प्राप्त होतें सुख दुःख होने का आगामी ज्ञानकों कारण हो है, किछू सुख दुख देनेको समर्थ नाही। कोई तो उनका पूजनादि करै, ताकै भी इष्ट न होय, कोई न करै ताकै भी इष्ट होय, तातैं तिनिका पूजनादि करना मिथ्याभाव है।

यहां कोऊ कहै—देना तो पुण्य है, सो भला हो है।

ताका उत्तर—धर्मके अर्थिदेना पुण्य है। यहु तो दुःखका भयकरि वा सुखका लोभकरि दे हैं, तातै पाप ही है। इत्यादि अनेक प्रकार

ज्योतिषी देवनिकों पूजैं हैं, सो मिथ्या है।

बहुरि देवी दिहाड़ी आदि हैं, ते केई तो व्यंतरी वा ज्योतिषिणी हैं, तिनका अन्यथा स्वरूप मानि पूजनादि करैं हैं। केई कल्पित हैं, सो तिनकी कल्पनाकरि पूजनादि करैं हैं। ऐसैं व्यंतरादिकके पूजनेका निषेध किया।

यहाँ कोऊ कहै—क्षेत्रपाल दिहाड़ी पद्मावती आदि देवी यक्ष यक्षिणी आदि जे जिनमतकों अनुसरैं हैं, तिनके पूजनादि करने में तो दोष नाहीं।

ताका उत्तर—जिनमतविषै संयम धारे पूज्यपनों हो है। सो देवनिकै संयम होता ही नाहीं। बहुरि इनको सम्यक्त्वी मानि पूजिए है, सो भवनत्रिकमें सम्यक्त्वकी भी मुख्यता नाहीं। जो सम्यक्त्वकरिही पूजिए तो सर्वार्थसिद्धिके देव, लौकांतिकदेव तिनकोंही क्यों न पूजिए। बहुरि कहोगे—इनकै जिनभक्ति विशेष है। सो भक्ति की विशेषता भी सौधर्म्म इन्द्रके है, वह सम्यग्दृष्टी भी है। वाकों छोरि इनको काहेकों पूजिए। बहुरि जो कहोगे, जैसें राजाकै प्रतीहारादिक हैं, तैसें तीर्थंकरकै क्षेत्रपालादिक हैं। सो समवसरणादि-विषें इनिका अधिकार नाही। यह झूंठी मानि है। बहुरि जैसें प्रतीहारादिकका मिलाया राजास्यों मिलिए,तैसें ये तीर्थंकरकों मिलावते नाहीं। वहाँ तो जाकै भक्ति होय सोई तीर्थंकरका दर्शनादिक करो, किछू किसीके आधीन नाहीं। बहुरि देखो अज्ञानता, आयुधादिक लिएं रौद्रस्वरूप जिनका, तिनकी गाय गाय भक्ति करैं। सो जिनमतविषैं भी रौद्ररूप पूज्य भया, तो यहु भी अन्यमत ही के समान भया। तीव्र

मिथ्यात्वभावकरि जिनमतविषैं ऐसी ही विपरीत प्रवृत्तिका मानना हो है। ऐसैं क्षेत्रपालादिककों भी पूजना योग्य नाहीं।

गौ सर्पादिककी पूजा का निराकरण

बहुरि गऊ सर्पादि तिर्यंच हैं, ते प्रत्यक्ष ही आपतैं हीन भासैं हैं। इनिका तिरस्कारादिक करि सकिए हैं। इनकी निंद्यदशा प्रत्यक्ष देखिए है। बहुरि वृक्ष अग्नि जलादिक स्थावर हैं, ते तिर्यंचनिहूतैं अत्यन्त हीन अवस्थाको प्राप्त देखिये हैं। बहुरि शस्त्र दवात आदि अचेतन हैं, सो सर्वशक्तिकरि हीन प्रत्यक्ष भासै हैं; पूज्यपनेका उपचार भी सम्भवै नाहीं। तातै इनका पूजना महा मिथ्याभाव है। इनकों पूजें प्रत्यक्ष वा अनुमानकरि किछू भी फल प्राप्ति नाहीं भासै है तातैं इनकों पूजना योग्य नाही। या प्रकार सर्व ही कुदेवनिका पूजना मानना निषेध है। देखो मिथ्यात्व की महिमा, लोक विषै तो आपतैं नीचेको नमते आपकों निद्य मानैं अर मोहित होय रोड़ी पर्यंतकों पूजता भी निंद्यपनों न मानै। बहुरि लोकविषै तो जातै प्रयोजन सिद्ध होता जानै, ताहीको सेवा करैं अर मोहित होय कुदेवनितै मेरा प्रयोजन कैसें सिद्ध होगा; ऐसा बिना विचारे ही कुदेवनिका सेवन करैं। बहुरि कुदेवनिका सेवन करते हजारों विघ्न होंय ताकों तो गिनैं नाहीं अर कोई पुण्यके उदयतै इष्ट कार्य होय जाय ताकों कहैं,इसके सेवनतैं यहु कार्य भया। बहुरि कुदेवादिकका सेवन किए बिना जे इष्ट कार्य होंय, तिनकों तो गिनैं नाहीं अर कोई अनिष्ट होय तो कहैं, याका सेवन न किया तातै अनिष्ट भया। इतना नाहीं विचारै है,जो इनिही के आधीन इष्ट अनिष्ट करना होय, तो जे पूजें तिनकें इष्ट होइ, न

पूजें तिनकै अनिष्ट होय। सो तो दीसता नाहीं। जैसें काहूकै शीतलाकों बहुत मानें भी पुत्रादि मरते देखिए है। काहूकै बिना मानें भी जीवते देखिए है। तातें शीतला का मानना किछू कार्यकारी नाहीं। ऐसें ही सर्व कुदेवकिा मानना किछू कार्यकारी नाहीं।

इहां कोऊ कहै—कार्यकारी नाहीं तो मति होहु, किछू तिनके माननेतें बिगार भी तो होता नाही।

ताका उत्तर—जो बिगार न होय, तो हम काहेको निषेध करें। परन्तु एक तो मिथ्यात्वादि दृढ होनेतें मोक्षमार्ग दुर्लभ होय जाय है, सो यहु बड़ा बिगार है। एक पापबंध होनेतें आगामो दुःख पाईए है, यहु बिगार है।

यहां पूछे कि मिथ्यात्वादिभाव तो अतत्त्व श्रद्धानादि भए होय है अर पापबंध खोटे कार्य किए होय है, सो तिनके माननेतें मिथ्यात्वादिक वा पापबंध कैसें होय?

ताका उत्तर— प्रथम तो परद्रव्यनिकों इष्ट अनिष्ट मानना ही मिथ्या है, जातें कोऊ द्रव्य काहूका मित्र शत्रु है नाहीं। बहुरि जो इष्ट अनिष्ट बुद्धि पाईए है, तो ताका कारण पुण्य पाप है। तातें जैसें पुण्यबंध होय, पापबध न होय सो करै। बहुरि जो कर्मउदयका भी निश्चय न होय, इष्ट अनिष्टके बाह्य कारण तिनके संयोग वियोगका उपाय करै; सो कुदेवके माननेतें इष्ट अनिष्ट बुद्धि दूरि होती नाहीं, केवल वृद्धिकों प्राप्त हो है। बहुरि पुण्यबंध भी होता नाहीं, पाप बंध हो है। बहुरि कुदेवकाहूकों धनादिक देते खोसते देखे नाहीं। तातें ए बाह्य कारण भी नाहीं। इनका मानना किसै अर्थि कोजिए है। जब

अत्यन्त भ्रमबुद्धि होय, जीवादि तत्त्वनिका श्रद्धान ज्ञानका अंश भी न होय अर रागद्वेषकी अति तीव्रता होय तब जे कारण नाहीं तिनकों भी इष्ट अनिष्टका कारण मानै। तब कुदेवनिका मानना हो है। ऐसा तीव्र मिथ्यात्वादि भाव भए मोक्षमार्ग अति दुर्लभ हो है।

कुगुरु का निरूपण और उसके श्रद्धानादिक का निषेध

आगे कुगुरुके श्रद्धानादिककों निषेधिए है—

जे जीव विषयकषायादि अधर्म्मरूप तो परिणमैं अर मानादिकतैं आपकों धर्म्मात्मा मनावैं, धर्म्मात्मा योग्य नमस्कारादि क्रिया करावैं अथवा किंचित् धर्म्मका कोई अंग धारि बड़े धर्म्मात्मा कहावैं, बड़े धर्म्मात्मा योग्य क्रिया करावै, ऐसै धर्म्म का आश्रयकरि आपकों बड़ा मनावें, ते सर्व कुगुरु जानने। जातै धर्म्मपद्धतिविषै तो विषयकषायादि छूटें जैसा धर्म्मकों धारै तैसा ही अपना पद मानना योग्य है।

कुल अपेक्षा गुरुपनेका निषेध

तहाँ केई तो कुलकरि आपको गुरु मानै हैं। तिनविषै केई ब्राह्मणादिक तो कहै है, हमारा कुल ही ऊँचा है तातै हम सर्वके गुरु हैं। सो उस कुलकी उच्चता तो धर्म्म साधनतै है। जो उच्च कुलविषै उपजि हीन आचरन करै, तो वाकों उच्च कैसे मानिए। जो कुलविषैं उपजनेहीतैं उच्चपना रहै, तो मांसभक्षणादि किए भी वाकों उच्च ही मानों सो बनें नाहीं। भारतविषै भी अनेक प्रकार ब्राह्मण कहे है। तहाँ "जो ब्राह्मण होय चांडाल कार्य करै, ताकों चांडाल ब्राह्मण कहिए" ऐसा कह्या है। सो कुलहीतें उच्चपना होय तो ऐसी हीनसंज्ञा काहेकों दई है।

बहुरि वैष्णवशास्त्रनिविषैं ऐसा भी कहैं—वेदव्यासादिक मछली आदिकतैं उपजे। तहां कुलका अनुक्रम कैसें रह्या? बहुरि मूलउत्पत्ति तो ब्रह्मातैं कहै हैं। तातैं सर्वका एक कुल है, भिन्न कुल कैसें रह्या? बहुरि उच्चकुलकी स्त्रीकै नीचकुलके पुरुषतै वा नीचकुलकी स्त्रीकै उच्चकुलके पुरुषतैं सगम होतैं संतति होती देखिए है। तहाँ कुलका प्रमाण कैसें रह्या? जो कदाचित् कहोगे, ऐसे है,तो उच्च नीच कुलका विभाग काहेकों मानो हो। सो लौकिक कार्यनिविषै असत्य भी प्रवृत्तिसंभवै, धर्म्मकार्य्यविषै तो असत्यता संभवै नाही। तातै धर्म्मपद्धतिविषैं कुलअपेक्षा महतपना नाही संभवै है। धर्म्मसाधनहीतै महंतपना होय। ब्राह्मणादि कुलनिविषै महतता है, सो धर्म्मप्रवृत्तिते है। सो धर्म्मकी प्रवृत्ति कों छोड़ि हिंसादिक पापविषै प्रवर्त्तें महतपना कैसे रहै? बहुरि केई कहै – जो हमारे बड़े भक्त भए है, सिद्ध भए हैं,धर्म्मात्मा भए हैं। हम उनकी संततिविषै है, तातै हम गुरु हैं। सो उन बड़ेनिके बड़े तो ऐसे उत्तम थे नाही। तिनकी सततिविषै उत्तमकार्य किये उत्तम मानो हो तो उत्तमपुरुषकी सततिविषै जो उत्तमकार्य न करै, ताकों उत्तम काहेकों मानो हो। बहुरि शास्त्रनिविषैं वा लोकविषै यहु प्रसिद्ध है कि पिता शुभ कार्यकरि उच्चपदकों पावै, पुत्र अशुभकार्यकरि नीच पदकों पावै वा पिता अशुभ कार्यकरि नीच पदको पावै ,पुत्र शुभ कार्यकरि उच्चपदकों पावै। तातै बड़ेनिकी अपेक्षा महंत मानना योग्य नाहीं। ऐसे कुलकरि गुरुपना मानना मिथ्याभाव जानना। बहुरि केई पट्टकरि गुरुपनों मानैं हैं। कोई पूर्वै महंत पुरुष भया होय, ताके पाटि जे शिष्य प्रतिशिष्य होते आए, तहां तिन विषैं

तिस महतपुरुष कैसें गुण न होते भी गुरुपनौं मानिए, सो जो ऐसें ही होय तो उस पाटविषै कोई परस्त्रीगमनादि महापापकार्य करैगा, सो भी धर्मात्मा होगा, सुगतिकौं प्राप्त होगा, सो संभवै नाहीं। अर वह पापी है, तो पाटका अधिकार कहाँ रह्या ? जो गुरुपद योग्य कार्य करै सो ही गुरु है। बहुरि केई पहलें तो स्त्री आदिके त्यागी थे,पीछें भ्रष्ट होय विवाहादिक कार्यकरि गृहस्थ भए, तिनकी संतति आपकौं गुरु मानै है। सो भ्रष्ट भए पीछे गुरुपना कैसें रह्या ? और गृहस्थवत् ए भी भए। इतना विशेष भया, जो ए भ्रष्ट होय गृहस्थ भए। इनकौं मूल गृहस्थधर्मी गुरु कैसें मानैं ? बहुरि केई अन्य तो सर्व पाप कार्य करैं, एक स्त्री परणै नाहीं, इसही अंगकरि गुरुपनों मानै हैं। सो एक अब्रह्म ही तो पाप नाहीं, हिंसा परिग्रहादिक भी पाप है, तिनिकौं करतें धर्मात्मा गुरु कैसें मानिए। बहुरि वह धर्मबुद्धितें विवाहादिकका त्यागी नाहीं भयाहै। कोई आजीविका वा लज्जा आदि प्रयोजनकौं लिए विवाह न करै है। जो धर्म्म बुद्धि होती, तो हिंसादिककौं काहे कौं बधावता। बहुरि जाकै धर्म्मबुद्धि नाहीं, ताकै शीलकी भी दृढ़ता रहै नाहीं। अर विवाह करै नाहीं, तब परस्त्रीगमनादि महापापकौं उपजावै। ऐसी क्रिया हातें गुरुपना मानना महा भ्रष्टबुद्धि है। बहुरि केई काहूप्रकार का भेषधारनेतें गुरुपनो माने हैं। सो भेष धारें कौन धर्म्म भया, जातें धर्म्मात्मा गुरु मानैं। तहां केई टोपी दे हैं,केई गूदरी राखै हैं, केई चोला पहरै हैं, केई चादर ओढ़ै हैं, केई लाल वस्त्र राखै हैं, केई श्वेतवस्त्र राखै हैं, केई भगवां राखै हैं, केई टाट पहरै हैं, केई मृगछाला राखै हैं, केई राख लगावै हैं, इत्यादि अनेक स्वांग बनावै हैं।

सो जो शीत उष्णादिक सहे न जाते थे, लज्जा न छूटै थी, तो पाग-जामा इत्यादि प्रवृत्तिरूप वस्त्रादिक त्याग काहेकों किया ? उनको छोरि ऐसे स्वांग बनावने में कौन धर्मका अंग भया । गृहस्थनिकों ठिगनेके अर्थि ऐसें भेष जानने । जो गृहस्थ सारिखा अपना स्वांग राखे, तो गृहस्थ कैसे ठिगावें । अर याकों उनकरि आजीविका वा धनादिक वा मानादिकका प्रयोजन साधना,तातें ऐसे स्वांग बनावै हैं। जगत भोला, तिस स्वांगकों देखि ठिगावे अर धर्म्म भया मानें, सो यहु भ्रम है । सोई कह्या है—

जह कुवि वेस्सारत्तो मुसिज्जमाणो बिमण्णए हरिसं ।
तह मिच्छवेसमुसिया गयं पि ण मुणंति धम्म-णिहिं ।।१।।

(उपदेश सि० र० ५)

याका अर्थ—जैसें कोई वेश्यासक्त पुरुष धनादिककों मुसावता हुवा भी हर्ष मानै है, तैसे मिथ्याभेषकरि ठिगे गए जीव ते नष्ट होता धर्म धन कों नाही जानें हैं । भावार्थ–यहु मिथ्या भेष वाले जीवनिकी शुश्रुषा आदितें अपना धर्म धन नष्ट हो ताका विषाद नाहीं, मिथ्या-बुद्धि ते हर्ष करें हैं । तहाँ केई तो मिथ्याशास्त्रनिविषें भेष निरूपण किये हैं, तिनकों धारे है । सो उन शास्त्रनिका करणहारा पापी सुगम क्रिया कियेतें उच्चपद प्ररूपणतें मेरी मानि होइ वा अन्य जीव इस मार्ग विषै बहुत लागै, इस अभिप्रायतें मिथ्या उपदेश दिया । ताकी परंपराकरि बिचार रहित जीव इतना तो विचारै नाहीं, जो सुगम क्रियातें उच्चपद होना बतावैं हैं, सो इहां किछू दगा है, भ्रमकरि तिनिका कह्या मार्गविषें प्रवर्त्तें हैं । बहुरि केई शास्त्रनिविषें तो मार्ग

कठिन निरूपण किया सो तो सधै नाहीं अर अपना ऊँचा नाम धराए बिना लोक मानें नाहीं, इस अभिप्रायतें यति मुनि आचार्य उपाध्याय साधु भट्टारक सन्यासी योगी तपस्वी नग्न इत्यादि नाम तो ऊँचा धरावें हैं अर इनिका आचारनिकों नाहीं साधि सकें हैं तातें इच्छानुसारि नाना भेष बनावें हैं । बहुरि केई अपनी इच्छा अनुसारि ही तो नवीन नाम धरावें हैं अर इच्छानुसारि ही भेष बनावें हैं । ऐसें अनेक भेष धारनेतें गुरुपनों मानें हैं, सो यहु मिथ्या है।

इहां कोऊ पूछे कि भेष तो बहुत प्रकारके दीसे, तिन विषें सांचे झूठे भेषकी पहचानि कैसे होय ?

ताका समाधान—जिन भेषनिविषें विषयकषायका किछू लगाव नाहीं, ते भेष साचे है। सो सांचे भेष तीन प्रकार हैं, अन्य सर्व भेष मिथ्या हैं। सो ही षट्पाहुड़विषै कुन्दकुन्दाचार्य करि कह्या है—

एगं जिणस्स रूवं विदियं उक्किट्ठ सावयाणं तु ।
अवरट्ठियाण तइयं चउत्थं पुण लिंग दंसणं णत्थि ।।
(द० पा० १८)

याका अर्थ—एक तो जिनका स्वरूप निर्ग्रंथ दिगंबर मुनिलिंग अर दूसरा उत्कृष्ट श्रावकनिका रूप दसईं ग्यारहीं प्रतिमाका धारक श्रावकका लिंग अर तीसरा आर्यकानिका रूप यहु स्त्रीनिकालिंग, ऐसें ए तीन लिंग तो श्रद्धानपूर्वक हैं । बहुरि चौथा लिंग सम्यग्दर्शन स्वरूप नाही है । भावार्थ—यहु इन तीनलिंग बिना अन्यलिंगकों मानें सो श्रद्धानी नाहीं, मिथ्यादृष्टी है । बहुरि इन भेषीनिविषें केई भेषी अपनें भेष की प्रतीति करावनेके अर्थि किंचित् धर्मका अंगकों भी

पालें हैं। जैसें खोटा रुपैया चलावनेंवाला तिस विषै किछू रूपा का भी अंश राखे है, तैसें धर्मका कोऊ अंग दिखाय अपना उच्चपद मनावे हैं।

इहाँ कोऊ कहै कि जो धर्म साधन किया, ताका तो फल होगा।

ताका उत्तर—जैसें उपवासका नाम धराय कणमात्र भी भक्षण करै तो पापी है अर एकंत का (एकासनका) नाम धराय किंचित् ऊन भोजन करै तो भी धर्मात्मा है। तैसें उच्चपदवीका नाम धराय तामें किंचित् भी अन्यथा प्रवर्त्तै, तो महापापी है। अर नीचोपदवीका नाम धराय किछू भी धर्म साधन करै, तो धर्मात्मा है। तातैं धर्मसाधन तो जेता बनै तेता ही कीजिए, किछू दोष नाहीं। परन्तु ऊंचा धर्मात्मा नाम धराय नीची क्रिया किएं महापाप ही हो है। सोई षट्पाहुडविषै कुन्दकुन्दाचार्यकरि कह्या है—

जह जायरूवसरिसो तिलतुसमित्तं ण गहदि अत्थेसु।
जइ लेइ अप्प-बहुयं तत्तो पुण जाइ णिग्गोयं ॥१॥
—(सूत्र पा० १८)

याका अर्थ—मुनि पद है, सो यथाजातरूप सदृश है। जैसा जन्म होतें था, तैसा नग्न है। सो वह मुनि अर्थ जे धन वस्त्रादिक वस्तु तिनविषै तिलका तुषमात्र भी ग्रहण न करै। बहुरि जो कदाचित् अल्प वा बहुत वस्तु ग्रहै, तो तिसतैं निगोद जाय। सो इहां देखो, गृहस्थपनेमें बहुत परिग्रह राखि किछू प्रमाण करै तो भी स्वर्ग मोक्षका अधिकारी हो है अर मुनिपनेमें किंचित् परिग्रह अंगीकार किएं भी निगोद जाने वाला हो है। तातैं ऊंचा नाम धराय नीची प्रवृत्ति युक्त नाहीं।

देखो, हुंडावसर्पिणी कालविषें यहु कलिकाल प्रवर्त्तै है। ताका दोष-करि जिनमतविषें मुनिका स्वरूप तो ऐसा जहां बाह्य अभ्यन्तर परिग्रहका लगाव नाही, केवल अपने आत्माकों आपो अनुभवते शुभा-शुभभावनितें उदासीन रहै है अर अब विषय कषायासक्त जीव मुनिपद धारैं, तहां सर्वसावद्यका त्यागी होय पचमहाव्रतादि अंगी-कार करे। बहुरि श्वेत रक्तादि वस्त्रनिकों ग्रहै वा भोजनादिविषें लोलुपी होय वा अपनी पद्धति बधावनेके उद्यमी होय वा केई धनादिक भी राखे वा हिंसादिक करें वा नाना आरम्भ करें। सो स्तोक परिग्रह ग्रहणेका फल निगोद कह्या है, तो ऐसे पापनिका फल तो अनंत संसार होय ही होय। बहुरि लोकनिकी अज्ञानता देखो, कोई एक छोटी भी प्रतिज्ञा भंग करै, ताकों तो पापी कहैं अर ऐसी बड़ी प्रतिज्ञाभग करते देखें बहुरि तिनको गुरु मानें, मुनिवत् तिनका सन्मानादि करैं। सो शास्त्रविषे कृतकारित अनुमोदनाका फल कह्या है तातें इनकों भी वैसा ही फल लागै है। मुनिपद लेनेका तो क्रम यह है—पहलें तत्वज्ञान होय, पीछे उदासीन परिणाम होय, परिष-हादि सहने की शक्ति होय, तब वह स्वयमेव मुनि भया चाहै। तब श्रीगुरु मुनिधर्म्म अंगीकार करावें। यहु कौन विपरीत जे तत्वज्ञान-रहित विषयकषायासक्त जीव तिनकों मायाकरि वा लोभ दिखाय मुनिपद देना, पीछें अन्यथा प्रवृत्ति करावनी, सो यहु बड़ा अन्याय है। ऐसें कुगुरुका वा तिनके सेवनका निषेध किया। अब इस कथन के दृढ़ करनेकों शास्त्रनिकी साखि दीजिए है। तहां उपदेशसिद्धान्त रत्नमाला विषें ऐसा कह्या है—

गुरुणो भट्टा जाया सद्दे थुणिऊण लिंति दाणाइं ।
दोण्णवि अमुणियसारा दूसमिसमयम्मि बुड्डंति ।।३५।।

कालदोषतैं गुरु जे हैं, ते भाट भए। भाटवत् शब्दकरि दातारकी स्तुति करिकैं दानादि ग्रहै हैं। सो इस दुखमा कालविषैं दोऊ ही दातार वा पात्र संसारविषैं डूबै हैं। बहुरि तहां कह्या है—

सप्पे दिट्ठे णासइ लोओ णहि कोवि किंपि अक्खेइ ।
जो चयइ कुगुरु सप्पं हा मूढा भणइ तं दुट्ठं ।।३६।।

याका अर्थ—सर्पकों देखि कोऊ भागै, ताकों तो लोक किछू भी कहै नाहीं। हाय हाय देखो, जो कुगुरु सपकों छोरै है, ताहि मूढ दुष्ट कहैं, बुरा बोलै।

सप्पो इक्कं मरणं कुगुरु अणंताइ देइ मरणाइं ।
तो वर सप्पं गहियं मा कुगुरुसेवणं भद्दं ।।३७।।

अहो सर्पकरि तो एक ही बार मरण होय अर कुगुरु अनतमरण दे है—अनतबार जन्ममरण करावै है। तातैं हे भद्र, सांपका ग्रहण तो भला अर कुगुरुका सेवन भला नाही। और भी गाथा तहां इस श्रद्धान दृढ करनेकों कारण बहुत कही हैं सो तिस ग्रन्थतैं जानि लेनी। बहुरि संघपट्टविषै ऐसा कह्या है—

क्षुत्क्षामः किल कोपि रंकशिशुकः प्रव्रज्य चैत्ये क्वचित्
कृत्वा किंचनपक्षमक्षतकलिः प्राप्तस्तदाचार्यकम् ।
चित्रं चैत्यगृहे गृहीयति निजे गच्छे कुटुम्बीयति
स्वं शक्रीयति बालिशीयति बुधान् विश्वं वराकीयति ।।

याका अर्थ – देखो, क्षुधाकरि कृश कोई रंकका बालक सो कहीं चैत्यालयादिविषैं दीक्षा धारि कोई पक्षकरि पापरहित न होता संता आचार्य पदकों प्राप्त भया। बहुरि वह चैत्यालयविषैं अपने गृहवत् प्रवर्त्ते है, निजगच्छविषै कुटुम्बवत् प्रवर्त्ते है, आपकों इन्द्रवत् महान् माने है, ज्ञानीनिको बालकवत् अज्ञानी मानै है, सर्वगृहस्थनिकों रंकवत् मानै है सो यहु बडा आश्चर्य भया है। बहुरि **'यैर्जातो न च वर्द्धितो न च न च क्रीतो'** इत्यादि काव्य है। ताका अर्थ ऐसा है – जिनकरि जन्म न भया, वध्या नाही, मोल लिया नाही, देणदार भया नाहीं, इत्यादि कोई प्रकार सम्बन्ध नाही अर गृहस्थनिकों वृषभवत् बहावैं, जोरावरी दानादिक लें; सो हाय हाय यहु जगत् राजाकरि रहित है, कोई न्याय पूछनेवाला नाही। ऐसे ही इस श्रद्धान के पोषक तहां काव्य हैं सो तिस ग्रंथ तैं जानना।

यहां कोऊ कहै, ए तो श्वेतांबरविरचित उपदेश है तिनकी साक्षी काहेकों दई ?

ताका उत्तर—जैसे नीचा पुरुष जाका निषेध करै, ताका उत्तमपुरुषकै तो सहज ही निषेध भया। तैसे जिनकै वस्त्रादि उपकरण कहे, वे हू जाका निषेध करें, तो दिगम्बरधर्म विषै तो ऐसी विपरीतिका सहज ही निषेध भया। बहुरि दिगम्बर ग्रन्थनिविषै भी इस श्रद्धान के पोषक वचन है। तहां श्रीकुन्दकुन्दाचार्यकृत षट्पाहुड़विषैं (दर्शनपाहुडमें) ऐसा कह्या है—

दंसणमूलो धम्मो उवइट्ठं जिणवरेंहि सिस्साणं।
तं सोऊण सकण्णे दंसणहीणो ण वंदिव्वो ॥२॥

याका अर्थ—जिनवरकरि सम्यग्दर्शन है मूल जाका ऐसा धर्म्म उपदेश्या है। ताकों सुनकरि हे कर्णसहित हो, यहु मानों—सम्यक्त्व-रहित जीव वंदनेयोग्य नाहीं। जे आप कुगुरु ते कुगुरुका श्रद्धानसहित सम्यक्ती कैसें होंय? बिना सम्यक्त अन्य धर्म्म भी न होय। धर्म्म विना वंदने योग्य कैसें होंय। बहुरि कहै हैं—

जे दंसणेसु भट्टा णाणे भट्टा चरित्तभट्टाय।
एदे भट्टविभट्टा सेसंपि जणं विणासंति ॥ ८ ॥

जे दर्शनविषै भ्रष्ट हैं, ज्ञानविषै भ्रष्ट हैं, चारित्रभ्रष्ट हैं, ते जीव भ्रष्टतें भ्रष्ट हैं; और भी जीव जो उनका उपदेश माने हैं, तिस जीव का नाश करे हैं, बुरा करे हैं। बहुरि कहै हैं—

जे दंसणेसु भट्टा पाए पाडंति दंसणधराणं।
ते हुंति लुल्लमूया बोही पुण दुल्लहा तेसिं ॥१२॥

जे आप तो सम्यक्ततै भ्रष्ट हैं अर सम्यक्त्वधारकनिकों अपने पगों पड़ाया चाहै हैं, ते लूले गूंगे हो हैं; भाव यहु—स्थावर हो हैं। बहुरि तिनकै बोधि की प्राप्ति महादुर्लभ हो है।

जेवि पडंति च तेसिं जाणंता लज्जगारवभएण।
तेसिं पि णत्थि बोही पावं अणुमोयमाणाणं ॥१३॥
—(द० पा०)

जो जानता हुवा भी लज्जागारव भयकरि तिनके पगां पड़ै हैं, तिनकै भी बोधी जो सम्यक्त सो नाहीं है। कैसे हैं ए जीव, पापकी अनुमोदना करते हैं। पापीनिका सन्मानादि किएं तिस पापकी अनुमोदनाका फल लागै है। बहुरि (सूत्र पाहुड में) कहैं हैं—

जस्स परिग्गहगहणं अप्पं बहुयं च हवइ लिंगस्स ।
सो गरहिउ जिणवयणे परिगहरहिग्रो णिरायारो ॥१९॥
—(सूत्र पा०)

जिस लिंगकै थोरा वा बहुत परिग्रहका अंगीकार होय सो जिन वचनविषें निंदा योग्य है। परिग्रहरहित ही अनगार हो है । बहुरि (भावपाहुड़में) कहै हैं—

धम्मम्मि णिप्पिवासो दोसावासो य उच्छुफुल्लसमो ।
णिप्फलणिग्गुणयारो णडसवणो णग्गरूवेण ॥७१॥
(भाव पा०)

याका अर्थ—जो धर्म्मविषे निरुद्यमी है, दोषनिका घर है, इक्षुफूल समान निष्फल है, गुणका आचरणकरि रहित है, सो नग्नरूपकरि नट श्रमण है, भांडवत् भेषधारी है । सो नग्न भए भांडका दृष्टांत संभवै है । परिग्रह राखै तो यह भी दृष्टांत बनै नाहीं ।

जे पावमोहियमई लिंगं घत्तूण जिणवरिंदाणं ।
पावं कुणंति पावा ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि ॥७८॥
– (मो० पा०)

याका अर्थ—पापकरि मोहित भई है बुद्धि जिनकी ऐसे जे जीव जिनवरनिका लिंग धारि पाप करै हैं, ते पापमूर्ति मोक्षमार्गविषे भ्रष्ट जानने । बहुरि ऐसा कह्या है—

जे पंचचेलसत्ता गंथग्गाहीय जायणासीला ।
आधाकम्मम्मिरया ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि ॥७९॥
—(मो० पा०)

याका अर्थ—जे पंचप्रकार वस्त्रविषें आसक्त हैं, परिग्रहके ग्रहणहारे हैं, याचनासहित हैं, अधःकर्म्म दोषनिविषें रत हैं, ते मोक्षमार्गविषें भ्रष्ट जाननें। और भी गाथा सूत्र तहां तिस श्रद्धानके दृढ़ करनेकों कारण कहे हैं ते तहांतें जाननें। बहुरि कुन्दकुन्दाचार्यकृत लिंगपाहुड़ है, तिसविषै मुनिलिंगधारि जो हिंसा आरंभ यंत्रमंत्रादि करै हैं, ताका निषेध बहुत किया है। बहुरि गुणभद्राचार्यकृत आत्मानुशासन विषै ऐसा कह्या है—

इतस्ततश्च त्रस्यन्तो विभावर्य्यां यथा मृगाः।
वनाद्वसन्त्युग्रामं कलौ कष्टं तपस्विनः ॥१९७॥

याका अर्थ—कलिकालविषें तपस्वी मृगवत् इधर उधरतें भयवान् होय बनतें नगरके समीप बसै है, यहु महाखेदकारी कार्य भया है। यहां नगर-समीप ही रहना निषेध्या, तो नगरविषें रहना तो निषिद्ध भया ही।

वरं गार्हस्थ्यमेवाद्य तपसो भाविजन्मनः।
सुस्त्रीकटाक्षलुण्टाकलुप्तवैराग्यसम्पदः ॥ २०० ॥

याका अर्थ—अबार होनहार है अनंतसंसार जातें ऐसे तपतें गृहस्थपना ही भला है। कैसा है वह तप,प्रभात ही स्त्रीनिके कटाक्षरूपी लुटेरेनिकरि लूटी है वैराग्य संपदा जाकी,ऐसा है। बहुरि योगीन्द्रदेवकृत परमात्मप्रकाशविषें ऐसा कह्या है—

दोहा—

चिल्ला चिल्ली पुत्थयहिं, तूसइ मूढ णिभंतु।
एयहिं लज्जइ णाणियउ, बंधहहेउ मुणंतु ॥२१४॥

चेला चेली पुस्तकनिकरि मूढ संतुष्ट हो है। भ्रान्ति रहित ऐसा ज्ञानी उसे बंधका कारण जानता संता इनिकरि लज्जायमान हो है।

केणवि अप्पउ वंचियउ, सिर लुंचि वि छारेण।
सयलु वि संग ण परहरिय, जिणवरलिंगधरेण ।।२१६।।

किसी जीवकरि अपना आत्मा ठिग्या। सो कौन ? जिहिं जीव जिनवरका लिंग धारचा अर राखकरि माथाका लोंचकरि समस्तपरिग्रह छांड्या नाही।

जे जिणलिंग धरेवि मुणि इट्ठपरिग्गह लिंति।
छद्दिकरेविणु ते वि जिय,सो पुण छद्दि गिलंति ।।२१७।।

याका अर्थ—हे जीव! जे मुनि जिनलिग धारि इष्ट परिग्रहकों ग्रहै है, ते छर्दि करि तिस ही छर्दिकू बहुरि भखै है। भाव यहु—निंदनीय हैं इत्यादि तहाँ कहै है। ऐसे शास्त्रनिविषे कुगुरुका वा तिनके आचरनका वा तिनकी सुश्रूषाका निषेध किया है, सो जानना। बहुरि जहाँ मुनिकै धात्रीदूतआदि छयालीस दोष आहारादिविषै कहे हैं, तहां गृहस्थनिके बालकनिकों प्रसन्न करना, समाचार कहना, मंत्र औषधि ज्योतिषादि कार्य बतावना इत्यादि, बहुरि किया कराया अनुमोद्या भोजन लेना इत्यादि क्रिया का निषेध किया है। सो अब काल दोषते इनही दोषनिकों लगाय आहारादि ग्रहै हैं। बहुरि पार्श्वस्थ कुशीलादि भ्रष्टाचारी मुनिनका निषेध किया है, तिनहीका लक्षणनिकों धरै हैं। इतना विशेष—वे द्रव्यां तो नग्न रहै हैं, ए नाना परिग्रह राखै है। बहुरि तहां मुनिनकै भ्रमरी आदि आहार

लेनेकी विधि कही है। ए आसक्त होय दातारके प्राण पीड़ि आहारादि ग्रहैं हैं। बहुरि ग्रहस्थधर्म्मविषै भी उचित नाही वा अन्याय लोकनिंद्य पापरूप कार्य तिनको करते प्रत्यक्ष देखिए है। बहुरि जिनबिम्ब शास्त्रादिक सर्वोत्कृष्ट पूज्य तिनका तो अविनय करै हैं। बहुरि आप तिनतैं भी महंतता राखि ऊंचा बैठना आदि प्रवृत्तिकों धारै हैं। इत्यादि अनेक विपरीतता प्रत्यक्ष भासै अर आपकों मुनि मानै, मूल-गुणादिकके धारक कहावैं। ऐसे ही अपनी महिमा करावै। बहुरि गृहस्थ भोले उनकरि प्रशंसादिककरि ठिगे हुए धर्म्मका विचार करैं नाहीं। उनको भक्ति विषै तत्पर हो है। सो बड़े पापकों बड़ा धर्म्म मानना,इस मिथ्यात्वका फल कैसे अनंतसंसार न होय। एक जिनवचन कों अन्यथा मानें महापापी होना शास्त्रविषै कह्या है। यहां तो जिन-वचनकी किछू बात ही राखी नाहीं। इस समान और पाप कोन है?

अब यहां कुयुक्तिकरि जे तिनि कुगुरुनिका स्थापन करै है, तिनका निराकरण कीजिए है। तहां वह कहै है,-गुरू विना तो निगुरा होय अर वैसे गुरु अबार दीसै नाही। तातै इनहीको गुरु मानना।

ताका उत्तर--निगुरा तो वाका नाम है, जो गुरु मानै ही नाही। बहुरि जो गुरु को तो मानै अर इस क्षत्रविषै गुरुका लक्षण न देखि काहूकों गुरु न मानै, तो इस श्रद्धानतै तो निगुरा होता नाही। जैसै नास्तिक्य तो वाका नाम है, जो परमेश्वरको मानै ही नाही। बहुरि जो परमेश्वरकों तो मानै अर इस क्षेत्रविषै परमेश्वरका लक्षण न देखि काहू कों परमेश्वर न मानै, तो नास्तिक्य तो होता नाही। तैसैं ही यहु जानना।

बहुरि वह कहै है, जैनशास्त्रनिविषैं अबार केवलीका तौ अभाव कह्या है, मुनिका तो अभाव कह्या नाहीं।

ताका उत्तर—ऐसा तो कह्या नाहीं, इनि देशनिविषैं सद्भाव रहेगा। भरत क्षेत्रविषैं कहै हैं, सो भरतक्षेत्र तो बहुत बड़ा है। कहीं सद्भाव होगा, तातैं अभाव न कह्या है। जो तुम रहो हो तिस ही क्षेत्र विषैं सद्भाव मानोगे, तो जहां ऐसे भी गुरु न पावोगे, तहां जावोगे तब किसकों गुरु मानोगे। जैसें हंसनिका सदभाव अबार कह्या है अब हंस दीसते नाहीं, तो और पक्षीनिकों तो हंस मान्या जाता नाहीं। तैसें मुनिनिका सद्भाव अबार कह्या है अर मुनि दीसते नाहीं, तो औरनिकों तो मुनि मान्या जाय नाही।

बहुरि वह कहै है, एकअक्षर के दाता कों गुरु मानें हैं। जे शास्त्र सिखावैं वा सुनावैं, तिनकों गुरु कैसें न मानिए ?

ताका उत्तर—गुरु नाम बड़ेका है। सो जिस प्रकार की महतता जाकै संभवै, तिस प्रकार ताको गुरुसंज्ञा संभवै। जैसे कुल अपेक्षा मातापिताकों गुरु सज्ञा है, तैसै ही विद्या पढावनेवालेकों विद्या अपेक्षा गुरु संज्ञा है। यहाँ तो धर्म्मका अधिकार है। तातैं जाकै धर्म्म अपेक्षा महतता संभवै, सो गुरु जानना। सो धर्म्म नाम चारित्रका है। 'चारित्तं खलु धम्मो' ऐसा शास्त्रविषै कह्या है। तातैं चारित्रका धारकहीकों गुरु सज्ञा है। बहुरि जैसें भूतादिका भी नाम देव है, तथापि यहाँ देवका श्रद्धानविषैं अरहंतदेवहीका ग्रहण है तैसें औरनिका भी नाम गुरु है, तथापि इहाँ श्रद्धानविषैं निर्ग्रंथही का ग्रहण

✽ प्रवचनसार १—७

है। जो जिनधर्म्म विषै अरहंत देव निर्ग्रंथ गुरु ऐसा प्रसिद्ध वचन है।

यहाँ प्रश्न—जो निर्ग्रंथ बिना और गुरु न मानिए सो कारण कहा ?

ताका उत्तर – निर्ग्रंथबिना अन्य जीव सर्वप्रकारकरि महंतता नाहीं धरै हैं। जैसें लोभी शास्त्रव्याख्यान करै, तहाँ वह वाकों शास्त्र सुनावनेतें महंत भया। वह वाकों धनवस्त्रादि देनेतें महंत भया। यद्यपि बाह्य शास्त्र सुनावनेवाला महंत रहै तथापि अन्तरंग लोभी होय सो सर्वथा महंतता न भई।

यहाँ कोऊ कहै, निर्ग्रंथ भी तो आहार ले हैं।

ताका उत्तर – लोभी होय दातारकी सुश्रूषाकरि दीनतातैं आहार न ले हैं। तातैं महंतता घटै नाहीं। जो लोभी होय सो ही हीनता पावै है। ऐसें ही अन्य जीव जाननें। तातैं निर्ग्रंथ ही सर्वप्रकार महंततायुक्त हैं। बहुरि निर्ग्रंथ बिना अन्य जीव सर्वप्रकार गुणवान नाहीं। तातैं गुणनिकी अपेक्षा महतता अर दोषनिकी अपेक्षा हीनता भासै, तब निःशंक स्तुति करी जाय नाहीं। बहुरि निर्ग्रंथ बिना अन्य जीव जैसा धर्म्म साधन करै, तैसा वा तिसतै अधिक गृहस्थ भी धर्म्म साधन करि सकै। तहाँ गुरु संज्ञा किसकों होय ? तातै बाह्य अभ्यंतर परिग्रह रहित निर्ग्रन्थ मुनि हैं, सोई गुरु जानना।

यहाँ कोऊ कहै, ऐसे गुरु तो अबार यहाँ नाहीं, तातैं जैसे अरहंत की स्थापना प्रतिमा है, तैसे गुरुनिकी स्थापना ए भेषधारी हैं—

ताका उत्तर—जैसें राजाकी स्थापना चित्रामादिककरि करै तो राजा का प्रतिपक्षी नाहीं अर कोई सामान्य मनुष्य आपकों राजा मनावै तो राजाका प्रतिपक्षी हो है। तैसे अरहंतादिकको पाषाणादि विषैं स्थापना बनावै तो तिनका प्रतिपक्षी नाहीं अर कोई सामान्य

मनुष्य आपकों मुनि मनावै तो वह मुनिनका प्रतिपक्षी भया। ऐसैं भी स्थापना होती होय तो आपको अरहंत भी मनावो। बहुरि जो उनकी स्थापना भए है तो बाह्य तो वैसें ही भए चाहिए। वे निर्ग्रंथ, ए बहुत परिग्रहके धारी, यह कसें बने ?

बहुरि कोई कहै—अब श्रावक भी तो जैसे सम्भवै तैसे नाहीं। तातैं जसे श्रावक तसे मुनि।

ताका उत्तर—श्रावकसंज्ञा तो शास्त्रविषै सर्व गृहस्थ जैनीकों है। श्रेणिक भी असंयमी था, ताकों उत्तरपुराणविषै श्रावकोत्तम कह्या। बारहसभाविषै श्रावक कहे, तहां सर्व व्रतधारी न थे। जो सर्वव्रतधार होते, तो असंयत मनुष्यनिकी जुदी सख्या कहते, सो कही नाहीं। तातैं गृहस्थ जैनी श्रावक नाम पावै है। अर मुनिसंज्ञा तो निर्ग्रन्थ बिना कहीं कही नाहीं। बहुरि श्रावकके तो आठ मूलगुण कहे हैं। सो मद्य मांस मधु पंचउदंबरादि फलनिका भक्षण श्रावकनिकै है नाहीं, तातैं काहू प्रकारकरि श्रावकपना तो सम्भवै भी है। अर मुनिकै अट्ठाईस मूलगुण हैं, सो भेषीनिकै दीसते ही नाही। तातै मुनिपनों काहू प्रकार सम्भवै नाहीं। बहुरि गृहस्थ अवस्थाविषै तो पूर्वै जम्बूकुमारादिक बहुत हिंसादि कार्य किए सुनिए हैं। मुनि होयकरि तो काहूने हिंसादिक कार्य किए नाहीं, परिग्रह राखे नाही, तातै ऐसी युक्ति कारजकारी नाहीं। बहुरि देखो, आदिनाथजीके साथ च्यारि हजार राजा दीक्षा लेय बहुरि भ्रष्ट भए, तब देव उनकों कहते भए, जिनलिंगी होय अन्यथा प्रवर्त्तोगे तो हम दंड देंगे। जिनलिंग छोरि तुम्हारी इच्छा होय, सो तुम जानो। तातै जिनलिंगी कहाय अन्यथा प्रवर्तै, ते तो दंड योग्य हैं। वंदनादि योग्य कैसें होय ? अब बहुत कहा कहिए, जिन-

मत विषैं कुभेष धारैं हैं ते महापाप उपजावैं हैं। अन्य जीव उनकी सुश्रूषा आदि करैं हैं, ते भी पापी हो हैं। पद्मपुराणविषैं यह कथा है—जो श्रेष्ठी धर्मात्मा चारण मुनिनिकों भ्रमतैं भ्रष्ट जानि आहार न दिया, तो प्रत्यक्ष भ्रष्ट तिनकों दानादिक देना कैसे सम्भवै ?

यहां कोऊ कहै, हमारै अंतरंग विषैं श्रद्धान तो सत्य है परन्तु बाह्य लज्जादिकरि शिष्टाचार करैं हैं, सो फल तो अंतरंग का होगा ?

ताका उत्तर—षट्पाहुडविषै लज्जादिकरि वन्दनादिकका निषेध दिखाया था, सो पूर्वैं ही कह्या था। बहुरि कोऊ जोरावरी मस्तक नमाय हाथ जुड़ावै, तब तो यह सम्भवै जो हमारा अन्तरंग न था। अर आप ही मानादिकतै नमस्कारादि करै, तहाँ अन्तरंग कैसें न कहिए। जैसें कोई अंतरग विषै तो माँसकों बुरा जानै अर राजादिकके भला मनावनेकों मांस भक्षण करै, तो वाकों व्रती कैसें मानिए ? तैसें अंतरंगविषै तो कुगुरुसेवनकों बुरा जानै अर तिनका वा लोकनिका भला मनावनेको सेवन करै, तो श्रद्धानी कैसें कहिए। तातैं बाह्यत्याग किए ही अतरंग त्याग सम्भवै है। तातैं जे श्रद्धानी जीव हैं, तिनकों काहू प्रकारकरि भी कुगुरुनिकी सुश्रूषाआदि करनी योग्य नाही। या प्रकार कुगुरुसेवनका निषेध किया।

यहा कोऊ कहै—काहू तत्त्वश्रद्धानीकों कुगुरु सेवनतैं मिथ्यात्व कसें भया ?

ताका उत्तर—जैसे शीलवती स्त्री परपुरुषसहित भर्तारवत रमण क्रिया सर्वथा करै नाही, तैसे तत्त्व श्रद्धानी पुरुष कुगुरु सहित सुगुरुवत् नमस्कारादिक्रिया सर्वथा करै नाही। काहेतैं, यह तो जीवादि तत्त्वनिका श्रद्धानी भया है। तहां रागादिककों निषिद्ध श्रद्है है, वीतराग

धर्म को श्रेष्ठ मानै है। तातैं जिनकै वीतरागता पाईए, वैसेही गुरुको उत्तम जानि नमस्कारादि करै है। जिनकै रागादिक पाईए, तिनकों निषिद्ध जानि नमस्कारादि कदाचित् करै नाहीं।

कोऊ कहै—जैसें राजादिककों करै, तैसें इनकों भी करै है।

ताका उत्तर—राजादिक धर्म्मपद्धति विषैं नाहीं। गुरुका सेवन धर्म्म पद्धतिविषैं है। सो राजादिकका सेवन तो लोभादिकतैं हो है। तहाँ चारित्रमोह ही का उदय सम्भवै है। अर गुरुनिकी जायगा कुगुरुनिकों सेए, वहाँ तत्त्वश्रद्धान के कारण गुरु थे, तिनतें प्रतिकूली भया। सो लज्जादिकतैं जानै कारणविषैं विपरीतता निपजाई, ताकै कार्यभूत तत्त्व श्रद्धानविषैं दृढ़ता कैसें सम्भवै ? तातैं तहाँ दर्शनमोहका उदय सम्भवै है। ऐसें कुगुरुनिका निरूपण किया।

कुधर्म का निरूपण और उसके श्रद्धानादिकका निषेध

अब कुधर्म्मका निरूपण कीजिए है—

जहाँ हिंसादि पाप उपजै वा विषयकषायनिकी वृद्धि होय, तहाँ धर्म मानिए, सो कुधर्म जानना। तहाँ यज्ञादिक क्रियानिविषैं महा हिंसादिक उपजावै, बड़े जीवनिका घात करै अर तहाँ इन्द्रियनिके विषय पोषै। तिन जीवनिविषैं दुष्ट बुद्धिकरि रौद्रध्यानी होय तीव्रलोभतैं औरनिका बुरा करि अपना कोई प्रयोजन साध्या चाहै. ऐसा कार्य करि तहाँ धर्म मानै सो कुधर्म है। बहुरि तीर्थनिविषैं वा अन्यत्र स्नानादि कार्य करै, तहां बड़े छोटे घनें जीवनिकी हिंसा होय,शरीरकों चैन उपजै, तातैं विषयपोषण होय, तातैं कामादिक बधैं, कुतूहलादिक करि तहाँ कषाय भाव बधावै, बहुरि तहां धर्म मानै सो यह कुधर्म है।

बहुरि संक्रांति, ग्रहण, व्यतीपातादिक विषैं दान दे वा खोटा ग्रहादिक के अर्थि दान दे, बहुरि पात्र जानि लोभी पुरुषनिकौं दान दे, बहुरि दान देनेविषैं सुवर्ण हस्ती घोड़ा तिल आदि वस्तुनिकौं दे, सो संक्रांति आदि पर्व धर्मरूप नाहीं। ज्योतिषी संचारादिककरि संक्रांतिआदि हो है। बहुरि दुष्टग्रहादिकके अर्थि दिया, तहाँ भय लोभादिकका आधिक्य भया। तातैं तहाँ दान देनेमें धर्म नाहीं। बहुरि लोभी पुरुष देने योग्य पात्र नाहीं। जातैं लोभी नाना असत्ययुक्ति करि ठिगै हैं। किछू भला करते नाहीं। भला तो तब होय, जब याका दान का सहाय करि वह धर्म साधै। सो वह तो उलटा पापरूप प्रवर्त्तै। पापका सहाईका भला कैसें होय? सो ही रयणसार शास्त्रविषैं कह्या है—

सप्पुरिसाणं दाणं कप्पतरूणं फलाणं सोहं वा।
लोहीणं दाणं जइ विमाणसोहा सवस्स जाणेह ॥२६॥

याका अर्थ—सत्पुरुषनिकौं दान देना कल्पवृक्षनिके फलनिकी शोभा समान है, शोभा भी है अर सुखदायक भी है बहुरि लोभी पुरुषनिकौं दान देना जो होय, सो शव जो मरद्या ताका विमान जो चकडोल ताकी शोभा समान जानहु। शोभा तो होय परन्तु धनीकौं परम दुःखदायक हो है। तातैं लोभी पुरुषनिकौं दान देनेमें धर्म नाहीं बहुरि द्रव्य तो ऐसा दीजिए, जाकरि वाकै धर्म बधै। सुवर्ण हस्तीआदि दीजिए, तिनिकरि हिंसादिक उपजै वा मान लोभादि बधै। ताकरि महापाप होय। ऐसी वस्तुनिका देने वाला कौं पुन्य कैसें होय। बहुरि विषयासक्त जीव रतिदानादिकविषैं पुन्य ठहरावैं हैं। सो प्रत्यक्ष कुशी-लादिक पाप जहाँ होय, तहाँ पुण्य कैसें होय। अर युक्ति मिलावनेकौं कहै

सो वह स्त्री सन्तोष पावै है। तो स्त्री तो विषय सेवन किए सुख पावै ही पावै, शीलका उपदेश काहेकों दिया। रतिसमय बिना भी वाका मनोरथ अनुसार न प्रवर्त्तै दुःख पावै। सो ऐसी असत्य युक्ति बनाय विषयपोषनेका उपदेश दे हैं। ऐसे ही दयादान वा पात्रदान विना अन्य दान देय धर्म मानना सर्व कुधर्म है।

बहुरि व्रतादिककरिकैं तहाँ हिंसादिक वा विषयादिक बधावै है। सो व्रतादिक तो तिनकों घटावनेके अर्थि कीजिए है। बहुरि जहाँ अन्नका तो त्याग करै अर कंदमूलादिकनिका भक्षण करै, तहां हिंसा विशेष भई--स्वादादिकविषय विशेष भए। बहुरि दिवस विषैं तो भोजन करै नाहीं अर रात्रिविषैं करै। सो प्रत्यक्ष दिवस भोजनतैं रात्रि भोजनविषैं हिंसा विशेष भासै, प्रमाद विशेष होय। बहुरि व्रतादिकरि नाना शृङ्गार बनावै, कुतूहल करै, जूवा आदि रूप प्रवर्तै, इत्यादि पापक्रिया करै। बहुरि व्रतादिकका फल लौकिक इष्टकी प्राप्ति अनिष्टका नाशकों चाहै, तहा कषायनिकी तीव्रता विशेष भई। ऐसें व्रतादिकरि धर्म मानैं हैं, सो कुधर्म है।

बहुरि भक्त्यादिकार्यनिविषैं हिंसादिक पाप बधावैं वा गीत नृत्यगानादिक वा इष्ट भोजनादिक वा अन्य सामग्रीनिकरि विषयनिकों पोषैं, कुतूहल प्रमादादिरूप प्रवर्तै। तहाँ पाप तो बहुत उपजावै अर धर्मका किछू साधन नाही, तहां धर्म मानै सो सब कुधर्म है।

बहुरि केई शरीरकों तो क्लेश उपजावै अर तहां हिंसादिक निपजावैं वा कषायादिरूप प्रवर्त्तै। जैसैं पंचाग्नि तापै, सो अग्निकरि बड़े छोटे जीव जलैं, हिंसादिक बधै, यामैं धर्म कहा भया। बहुरि औंधेमुख भुलैं, ऊर्ध्व बाहु राखै, इत्यादि साधन करैं तहां क्लेश ही

होय; किछू ए धर्म के अंग नाहीं। बहुरि पवन साधन करें, तहां नेती धोती इत्यादि कार्यनिविषें जलादिक करि हिंसादिक उपजै, चमत्कार कोई उपजै, तातें मानादिक बधै, किछू तहां धर्मसाधन नाहीं। इत्यादि क्लेश करें, विषयकषाय घटावनेका कोई साधन करें नाहीं। अंतरंग विषै क्रोध मान माया लोभ का अभिप्राय है, वृथा क्लेशकरि धर्म मानै हैं, सो कुधर्म है।

बहुरि केई इस लोक विषै दुःख सह्या न जाय वा परलोकविषैं इष्ट की इच्छा वा अपनी पूजा बढ़ावने के अर्थि वा कोई क्रोधादिकरि अपघात करें। जैसें पतिवियोगतै अग्निविषैं जलकरि सती कहावै है वा हिमालय गलै है, काशीकरोत ले है, जीवित मांही ले है, इत्यादि कार्यकरि धर्म मानै हैं। सो अपघातका तो बड़ा पाप है। जो शरीरादिकतै अनुराग घट्या था तो तपश्चरणादि किया होता, मरि जानें में कौन धर्म का अंग भया। तातै अपघात करना कुधर्म है। ऐसें ही अन्य भी घने कुधर्मके अंग है। कहां ताई कहिए, जहां विषय कषाय बधै अर धर्म मानिए, सो सर्व कुधर्म जाननें।

देखो कालका दोष, जैनधर्म विषैं भी कुधर्मकी प्रवृत्ति भई। जैनमतविषैं जे धर्मपर्व कहे है, तहां तो विषय कषाय छोरि संयमरूप प्रवर्त्तना योग्य है। ताको तो आदरै नाही अर व्रतादिकका नाम धराय तहां नाना शृङ्गार बनावै वा इष्ट भोजनादि करें वा कुतूहलादि करें वा कषाय बधावनेके कार्य करै, जूवा इत्यादि महापापरूप प्रवर्त्तै।

बहुरि पूजनादि कार्यनिविषै उपदेश तो यहु था--'सावद्यलेशो

बहुपुण्यराशौ दोषाय नालं'* पापका अंश बहुत पुण्य समूहविषैं दोषके अर्थ नाहीं। इस छलकरि पूजाप्रभावनादि कार्यनिविषैं रात्रि विषैं दीपकादिकरि वा अनन्तकायादिकका सग्रहकरि वा अयत्नाचार प्रवृत्तिकरि हिंसादिकरूप पाप तो बहुत उपजावैं अर स्तुति भक्ति आदि शुभ परिणामनिविषै प्रवर्त्तै नाही वा थोरे प्रवर्त्तै, सो टोटा घना नफ़ा थोरा वा नफा किछू नाहीं। ऐसा कार्य करनेमें तो बुरा ही दीखना होय।

बहुरि जिनमंदिर तो धर्मका ठिकाना है। तहाँ नाना कुकथा करनी, सोवना इत्यादिक प्रमाद रूप प्रवर्त्तै वा तहाँ बाग बाड़ी इत्यादि बनाय विषयकषाय पोषै। बहुरि लोभी पुरुषनिकों गुरु मानि दानादिक दें वा तिनकी असत्य स्तुतिकरि महंतपनों मानैं, इत्यादि प्रकार करि विषयकषायनिकों तो बधावै अर धर्म मानैं। सो जिन-धर्म तो वीतरागभावरूप है। तिस विषै ऐसी विपरीत प्रवृत्ति काल दोषतें ही देखिए है। या प्रकार कुधर्म सेवन का निषेध किया।

कुधर्म सेवनसे मिथ्यात्वभाव—

अब इस विषै मिथ्यात्वभाव कैसें भया, सो कहिए है—

तत्वश्रद्धान करनेविषैं प्रयोजनभूत एक यह है, रागादिक छोड़ना। इस ही भाव का नाम धर्म्म है। जो रागादिक भावनिकों बधाय धर्म्म मानैं, तहाँ तत्त्व श्रद्धान कैसे रह्या ? बहुरि जिन आज्ञातैं प्रतिकूली भया। बहुरि रागादिक भाव तो पाप है तिनकों धर्म्म मान्या, सो

* "पूज्यं जिनं त्वार्चयतोजनस्य, सावद्यलेशोबहुपुण्यराशौ।
दोषायनालं कणिका विषस्य, न दूषिका शीतशिवाम्बुराशौ"
—बृहत्स्वयंभूस्तोत्र ॥५८॥

यह झूठ श्रद्धान भया । तातें कुधर्म्म सेवनविषैं मिथ्यात्व भाव है। ऐसें कुदेव कुगुरु कुशास्त्र सेवन विषें मिथ्यात्व भावकी पुष्टता होती जानि याका निरूपण किया। सोई षट्पाहुड़(मोक्षपा०)विषें कह्या है—

कुच्छियदेवं धम्मं कुच्छियलिंगं च वंदए जो दु ।
लज्जाभयगारवदो मिच्छादिट्ठी हवे सो दु ॥ ९२ ॥

याका अर्थ—जो लज्जातें वा भयतें वा बड़ाईतें भी कुत्सित् देवकों वा कुत्सित् धर्म्मकों वा कुत्सित् लिंगकों वंदे हैं सो मिथ्यादृष्टी हो हैं। तातें जो मिथ्यात्वका त्याग किया चाहैं, सो पहलें कुदेव कुगुरु कुधर्म्मका त्यागी होय। सम्यक्त्व के पच्चीस मलनिके त्याग विषें भी अमूढ़दृष्टि विषें वा षडायतनविषें इनहीका त्याग कराया है। तातें इनका अवश्य त्याग करना। बहुरि कुदेवादिकके सेवनतें जो मिथ्यात्वभाव हो है, सो यह हिंसादिक पापनितें बड़ा पाप है। याके फलतें निगोद नरकादि पर्याय पाईए है। तहाँ अनंतकाल पर्यंत महासंकट पाईए है। सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति महादुर्लभ होय जाय है। सो ही षट्पाहुड़विषें (भाव पाहुडमें) कह्या है—

कुच्छियधम्मम्मि-रओ,कुच्छिय पासंडि भत्तिसंजुत्तो ।
कुच्छियतवं कुणंतो कुच्छिय गइभायणो होइ ॥१४०॥

याका अर्थ—जो कुत्सितधर्म्म विषै रत है, कुत्सित पाखंडीनिकी भक्तिकरि सयुक्त है, कुत्सित तपको करता है, सो जीव कुत्सित जो खोटी गति ताकों भोगनहारा हो है। सो हे भव्य हो, किंचिन्मात्र लोभतें वा भयतें कुदेवादिकका सेवनकरि जातें अनन्तकालपर्यंत महादुःख सहना होय ऐसा मिथ्यात्वभाव करना योग्य नाहीं। जिनधर्म्मं

विषै यह तो आम्नाय है, पहलै बडा पाप छुड़ाय पीछैं छोटा पाप छुड़ाया। सो इस मिथ्यात्वकौं सप्तव्यसनादिकतैं भी बड़ा पाप जानि पहलैं छुड़ाया है। तातैं जे पापके फलतै डरैं हैं, अपने आत्माकों दुःख समुद्रमें न डुबाया चाहैं हैं, ते जीव इस मिथ्यात्वकों अवश्य छोड़ो। निन्दा प्रशंसादिकके विचारतै शिथिल होना योग्य नाहीं। जातैं नीति विषैं भी ऐसा कह्या है—

> निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
> लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
> अद्यैव वास्तु मरणं तु युगान्तरे वा
> न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥१॥ (नीतिशतक ८४)

जे निन्दे हैं ते निन्दो अर स्तवैं हैं तो स्तवो, बहुरि लक्ष्मी आवो वा जहाँ तहां जावो, बहुरि अब ही मरण होहु वा युगांतर विषै होहु परन्तु नीतिविषैं निपुण पुरुष न्यायमार्गतै पैंडहू चलै नाहीं। ऐसा न्याय विचारि निन्दा प्रशसादिकका भयतै लोभादिकतैं अन्यायरूप मिथ्यात्व प्रवृत्ति करनी युक्त नाहीं। अहो! देव गुरु धर्म्म तो सर्वोत्कृष्ट पदार्थ हैं। इनके आधारि धर्म है। इन विषैं शिथिलता राखे अन्य धर्म कैसें होइ तातै बहुत कहनेकरि कहा, सर्वथा प्रकार कुदेव कुगुरु कुधर्म्मका त्यागी होना योग्य है। कुदेवादिकका त्याग न किए मिथ्यात्व भाव बहुत पुष्ट हो हे। अर अबार इहां इनकी प्रवृत्ति विशेष पाईए है। तातै इनिका निषेधरूप निरूपण किया है। ताकों जानि मिथ्यात्वभाव छोड़ि अपना कल्याण करो।

इति मोक्षमार्गप्रकाशक शास्त्रविषै कुदेव कुगुरु कुधर्म-निषेध वर्णन रूप छठा अधिकार समाप्त भया ॥ ६ ॥

ॐ नमः

सातवां अधिकार

जैन मतानुयायी मिथ्यादृष्टिका स्वरूप

दोहा।

इस भव तरुका मूल इक, जानहु मिथ्या भाव।
ताकों करि निर्मूल अब, करिए मोक्ष उपाव ।।१।।

अर्थ—जे जीव जैनी हैं, जिन आज्ञाकों मानें हैं अर तिनकै भी मिथ्यात्व रहै है ताका वर्णन कीजिए है - जातें इस मिथ्यात्व वैरी का अंश भी बुरा है, तातें सूक्ष्ममिथ्यात्व भी त्यागने योग्य है। तहां जिन आगम विषै निश्चय व्यवहाररूप वर्णन है। तिन विषै यथार्थका नाम निश्चय है, उपचार का नाम व्यवहार है। सो इनका स्वरूपकों न जानते अन्यथा प्रवर्त्तें हैं, सोई कहिए है—

केवल निश्चयनयावलम्बी जैनाभासका निरूपण

केई जीव निश्चयकों न जानते निश्चयाभासके श्रद्धानी होइ आपकों मोक्षमार्गी मानें हैं। अपने आत्माकों सिद्ध समान अनुभवै हैं। सो आप प्रत्यक्ष संसारी हैं। भ्रमकरि आपकों सिद्ध मानें सोई मिथ्यादृष्टी है। शास्त्रनिविषै जो सिद्ध समान आत्माकों कह्या है सो द्रव्यदृष्टि करि कह्या है, पर्याय अपेक्षा समान नाहीं हैं। जैसें राजा अर रंक मनुष्यपनेकी अपेक्षा समान हैं, राजापना रंकपनाकी अपेक्षा तो समान नाहीं। तैसें सिद्ध अर संसारी जीवत्वपनेकी अपेक्षा समान हैं, सिद्धपना

संसारीपनाकी अपेक्षा तो समान नाहीं। यहु जैसें सिद्ध शुद्ध हैं,तैसें ही आपकों शुद्ध मानें। सो शुद्ध अशुद्ध अवस्था पर्याय है। इस पर्याय अपेक्षा समानता मानिए,सो यहु मिथ्यादृष्टि है। बहुरि आपकें केवलज्ञानादिकका सद्भाव मानें सो आपकें तो क्षयोपशमरूप मतिश्रुतादि ज्ञानका सद्भाव है। क्षायिकभाव तो कर्म्मका क्षय भए होइ है। यह भ्रमतें कर्म्मका क्षय भए विना ही क्षायिकभाव मानें। सो यहु मिथ्यादृष्टी है। शास्त्रविषें सर्वजीवनिका केवलज्ञानस्वभाव कह्या है,सो शक्ति अपेक्षा कह्या है। सर्वजीवनिविषें केवलज्ञानादिरूप होनेकी शक्ति है। वर्तमान व्यक्तता तो व्यक्त भए ही कहिए।

कोऊ ऐसा मानै है–आत्माके प्रदेशनिविषैं तो केवलज्ञान ही है, ऊपरि आवरणतें प्रगट न हो है सो यहु भ्रम है। जो केवलज्ञान होइ तो बज्रपटलादि आडे होतें भी वस्तुकों जानै। कर्मको आडे आए कैसें अटकै। तातें कर्मके निमित्ततें केवलज्ञानका अभाव ही है। जो याका सर्वदा सद्भाव रहै है तो याकों पारिणामिकभाव कहते, सो यहु तो क्षायिकभाव है। जो सर्वभेद जामैं गर्भित ऐसा चेतन्यभाव सो पारिणामिक भाव है। याकी अनेक अवस्था मतिज्ञानादिरूप वा केवलज्ञानादिरूप हैं, सो ए पारिणामिकभाव नाहीं। तातै केवलज्ञानका सर्वदा सद्भाव न मानना। बहुरि जो शास्त्रनिविषै सूर्यका दृष्टान्त दिया है, ताका इतना ही भाव लेना,जैसें मेघपटल होतें सूर्य प्रकाश प्रगट न हो है, तैसें कर्मउदय होतें केवलज्ञान न हो है। बहुरि ऐसा भाव न लेना, जैसें सूर्यविषें प्रकाश रहै है, तैसें आत्म विषै केवलज्ञान रहै है। जातैं दृष्टांत सर्व प्रकार मिलै नाहीं। जैसें पुद्गल विषें वर्ण गुण है, ताकी

हरित पीतादि अवस्था हैं । सो वर्तमान विषें कोई अवस्था होतें अन्य अवस्थाका अभाव ही है। तैसें आत्मा विषें चैतन्यगुण है, ताकी मतिज्ञानादिरूप अवस्था हैं। सो वर्तमान कोई अवस्था होतें अन्य अवस्थाका अभाव ही है।

बहुरि कोऊ कहै कि आवरण नाम तो वस्तु के आच्छादनेका है, केवलज्ञानका सद्भाव नाहीं है तो केवलज्ञानावरण काहेकों कहो हो ?

ताका उत्तर—यहां शक्ति है ताकों व्यक्त न होने दे, इस अपेक्षा आवरण कह्या है। जैसें देशचारित्रका अभाव होतें शक्ति घातनेकी अपेक्षा अप्रत्याख्यानावरण कषाय कह्या तैसें जानना । बहुरि ऐसे जानों—वस्तु विषै जो परनिमित्ततें भाव होय ताका नाम औपाधिक-भाव है अर परनिमित्त बिना जो भाव होय ताका नाम स्वभाव भाव है । सो जैसें जलकै अग्निका निमित्त होतें उष्णपनों भयो, तहां शीतलपनाका अभाव ही है । परन्तु अग्निका निमित्त मिटैं शीतलता ही होय जाय तातें सदाकाल जलका स्वभाव शीतल कहिए,जातै ऐसी शक्ति सदा पाइए है । बहुरि व्यक्त भए स्वभाव व्यक्त भया कहिए । कदाचित् व्यक्तरूप हो है। तैसै आत्माकै कर्म्मका निमित्त होतें अन्य रूप भयो, तहाँ केवलज्ञानका अभाव हो है। परन्तु कर्म्म का निमित्त मिटें सर्वदा केवलज्ञान होय जाय । तातै सदा काल आत्माका स्वभाव केवलज्ञान कहिए है । जातें ऐसी शक्ति सदा पाईए है । व्यक्त भए स्वभाव व्यक्त भया कहिए । बहुरि जैसें शीतल स्वभावकरि उष्णजल कौं शीतल मानि पानादि करै, तो दाझना ही होय । तैसें केवल

ज्ञानस्वभावकरि अशुद्ध आत्माकों केवलज्ञानी मानि अनुभवै, तौ दुःखी ही होय। ऐसें जे केवलज्ञानादिकरूप आत्माकों अनुभवै हैं, ते मिथ्यादृष्टी हैं। बहुरि रागादिक भाव आपकै प्रत्यक्ष होतें भ्रमकरि आत्माकों रागादिरहित मानें। सो पूछिए हैं—ए रागादिक तो होते देखिए हैं, ए किस द्रव्य के अस्तित्वविषें हैं। जो शरीर वा कर्मरूप-पुद्गलके अस्तित्वविषें होंय तो ए भाव अचेतन वा मूर्तीक होय। सो तो ए रागादिक प्रत्यक्ष चेतनता लिएं अमूर्त्तीक भाव भासैं हैं। तातें ए भाव आत्माहीके हैं। सोई समयसारके कलशविषें कह्या है—

कार्यत्वादकृतं न कर्म्म न च तज्जीवप्रकृत्योर्द्वयो–
रज्ञायाः प्रकृतेःस्वकार्यफलभुग्भावानुषंगात् कृतिः।

नैकस्याः प्रकृतेरचित्वलसनाज्जीवऽस्य कर्त्ता ततो
जीवस्यैव च कर्म्म तच्चिदनुगं ज्ञाता न यत् पुद्गलः॥

(सर्ववि० अधिकार कलश २०३)

याका अर्थ यहु—रागादिरूप भावकर्म है, सो काहूकरि न किया, ऐसा नहीं है, जातें यह कार्यभूत है। बहुरि जीव अर कर्म्मप्रकृति इन दोऊनिका भी कर्तव्य नाही जातें ऐसें होय तो अचेतन कर्म्मप्रकृतिकै भी तिस भावकर्मका फल सुख दुःख ताका भोगना होइ, सो असंभव है। बहुरि एकली कर्म्मप्रकृतिका भी यहु कर्त्तव्य नाहीं, जातें वाकै अचेतनपनो प्रगट है। तातें इस रागादिकका जीवही कर्त्ता है अर सो रागादिक जीवहीका कर्म्म है। जातें भावकर्म्म तो चेतना का अनुसारी है, चेतना बिना न होइ। अर पुद्गल ज्ञाता है नाहीं।

ऐसें रागादिकभाव जीव के अस्तित्वविषें हैं। अब जो रागादिक भावनिका निमित्त कर्म्मही को मानि आपकों रागादिकका अकर्त्ता मानें हैं, सो कर्त्ता तो आप अर आपकों निरुद्यमी होय प्रमादी रहना, तातें कर्म्म हीका दोष ठहरावे हैं। सो यहु दुःखदायक भ्रम है। सोई समयसारका कलशा विषें कह्या है—

रागजन्मनि निमित्ततां परद्रव्यमेव कलयन्ति ये तु ते।
उत्तरन्ति न हि मोहवाहिनींशुद्धबोधविधुरान्धबुद्धयः॥
(सर्व वि० अधिकार कलश २२१)

याका अर्थ—जे जीव रागादिककी उत्पत्तिविषें परद्रव्यहीकों निमित्तपनो मानै है, ते जीव शुद्ध ज्ञानकरि रहित है अंधबुद्धि जिनकी ऐसे होत संते मोहनदीकों नाही उतरे हैं। बहुरि समयसारका 'सर्वविशुद्धिअधिकार' विषें जो आत्मा कों अकर्त्ता मानै है अरयहु कहै है—कर्म ही जगावै सुवावै है, परघात कर्मतें हिंसा है, वेदकर्मतें अब्रह्म है, तातें कर्म ही कर्त्ता है; तिस जैनीको सांख्यमती कह्या है। जैसें सांख्यमती आत्माकों शुद्ध मानि स्वच्छन्द हो है, तैसें ही यहु भया। बहुरि इस श्रद्धानतें यहु दोष भया, जो रागादिक अपने न जानें आपकों अकर्त्ता मान्या, तब रागादिक होने का भय रह्या नाहीं वा रागादिक मेटने का उपाय करना रह्या नाहीं, तब स्वच्छन्द होय खोटे कर्म बांधि अनतसंसारविषं रुलै है।

यहां प्रश्न—जो समयसारविषें ही ऐसा कह्या है—

वर्णाद्यावा रागमोहादयो वा

भिन्नाभावा: सर्व्वं एवास्य पुंस:* ।

याका अर्थ—वर्णादिक वा रागादिकभाव हैं, ते सर्व ही इस आत्मातैं भिन्न हैं । बहुरि तहां ही रागादिककों पुद्गलमय कहे हैं। बहुरि अन्य शास्त्रनिविषैं भी रागादिकतै भिन्न आत्माकों कह्या है, सो यहु कैसे है ?

ताका उत्तर—रागादिकभाव परद्रव्य के निमित्ततैं औपाधिकभाव हो हैं अर यहु जीव तिनिकों स्वभाव जानै है । जाकों स्वभाव जानें, ताकों बुरा कैसें मानें वा ताके नाशका उद्यम काहेकों करै । सो यहु श्रद्धान भी विपरीत है। ताके छुड़ावनेकों स्वभावकी अपेक्षा रागादिक कों भिन्न कहे हैं अर निमित्तकी मुख्यताकरि पुद्गलमय कहे हैं । जैसें वैद्य रोग मेटया चाहै है; जो शीतका आधिक्य देखै तो उष्ण औषधि बतावै अर आतापका आधिक्य देखै तो शीतल औषधि बतावै । तैसें श्रीगुरु रागादिक छुड़ाया चाहै हैं । जो रागादिक परका मानि स्वच्छन्द होय निरुद्यमी होय, ताकों उपादान कारणकी मुख्यताकरि रागादिक आत्माका है, ऐसा श्रद्धान कराया । बहुरि जो रागादिक आपका स्वभावमानि तिनिका नाशका उद्यम नाही करै है ताकों निमित्तकारण की मुख्यताकरि रागादिक परभाव है, ऐसा श्रद्धान कराया है । दोऊ विपरीत श्रद्धानतै रहित भए सत्य श्रद्धान होय तब ऐसा मानें— ए रागादिक भाव आत्मा का स्वभाव तो नाहीं हैं, कर्म के निमित्ततैं

---

* वर्णाद्यावा राग मोहादयो वा भिन्ना भावा: सर्व एवास्य पुंस: ।
तेनैवान्तस्तत्त्वत: पश्यतोऽमीनो दृष्टा: स्युर्दृष्टमेकं परं स्यात् ।।
(जीवाजी० कलश ३७)

आत्मा के अस्तित्वविषें विभावपर्याय निपजै हैं। निमित्त मिटे इनका नाश होतें स्वभावभाव रहि जाय है। तातें इनिके नाशका उद्यम करना।

यहाँ प्रश्न—जो कर्मका निमित्त तें ए हो हैं, तो कर्मका उदय रहै तावत् ए विभाव दूरि कैसें होंय? तातें याका उद्यम करना तो निरर्थक है।

ताका उत्तर—एक कार्य होनेविषें अनेक कारण चाहिए हैं। तिनविषें जे कारण बुद्धिपूर्वक होंय, तिनकों तो उद्यम करि मिलावै अर अबुद्धिपूर्वक कारण स्वयमेव मिलें तब कार्यसिद्धि होय। जैसें पुत्र होनेका कारण बुद्धिपूर्वक तो विवाहादिक करना है अर अबुद्धि पूर्वक भवितव्य है। तहाँ पुत्रका अर्थी विवाहादिकका तो उद्यम करै अर भवितव्य स्वयमेव होय, तब पुत्र होय। तैसें विभाव दूरि करनेके कारण बुद्धि पूर्वक तो तत्त्वविचारादिक हैं अर अबुद्धिपूर्वक मोहकर्म का उपशमादिक हैं। सो ताका अर्थी तत्त्वविचारादिकका तो उद्यम करै अर मोहकर्मका उपशमादिक स्वयमेव होय, तब रागादिक दूरि होंय।

यहां ऐसा कहै हैं कि जैसें विवाहादिक भी भवितव्य आधीन हैं तैसें तत्त्वविचारादिक भी कर्मका क्षयोपशमादिकके आधीन हैं, तातें उद्यम करना निरर्थक है।

ताका उत्तर—ज्ञानावरणका तो क्षयोपशम तत्त्वविचारादिक करने योग्य तेरे भया है। याहीतें उपयोगकों यहां लगावनेका उद्यम कराइए हैं। असंज्ञी जीवनिकै क्षयोपशम नाहीं है, तो उनकों काहेकों

उपदेश दीजिए है।

बहुरि वह कहै है—होनहार होय तो तहाँ उपयोग लागै, बिना होनहार कैसे लागै ?

ताका उत्तर—जो ऐसा श्रद्धान है तो सर्वत्र कोई ही कार्य का उद्यम मति करै। तू खान पान व्यापारादिकका तो उद्यम करै अर यहां होनहार बतावै। सो जानिए है, तेरा अनुराग यहाँ नाहीं। मानादिक करि ऐसी झूठी बातें बनावै है। या प्रकार जे रागादिक होतें तिन करि रहित आत्माकों मानै हैं, ते मिथ्यादृष्टी जाननें।

बहुरि कर्म नोकर्मका सम्बन्ध होतें आत्माकों निर्बंध मानैं, सो प्रत्यक्ष इनिका बंधन देखिए है। ज्ञानावरणादिकतैं ज्ञानादिकका घात देखिए है। शरीरकरि ताके अनुसारि अवस्था होती देखिए है। बंधन कैसें नाहीं। जो बंधन न होय तो मोक्षमार्गी इनके नाशका उद्यम काहेकों करै।

यहां कोऊ कहै—शास्त्रनिविषें आत्माकों कर्म नोकर्मतें भिन्न अबद्धस्पष्ट कैसें कह्या है ?

ताका उत्तर—सम्बन्ध अनेक प्रकार हैं। तहाँ तादात्म्य संबंध अपेक्षा आत्माकों कर्म नोकर्मतें भिन्न कह्या है। जातें द्रव्य पलटकरि एक नाहीं होय जाय है अर इस ही अपेक्षा अबद्ध स्पष्ट कह्या है। बहुरि निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध अपेक्षा बन्धन है ही। उनके निमित्ततैं आत्मा अनेक अवस्था धरै ही है। तातें सर्वथा निर्बन्ध आपकों मानना मिथ्यादृष्टि है।

यहां कोऊ कहै—हमकों तो बंध मुक्तिका विकल्प करना नाहीं,

जातैं शास्त्रविषैं ऐसा कह्या है—

"जो बंधउ मुक्कउ मुणइ, सो बंधइ णिभंतु ।"

याका अर्थ—जो जीव बंध्या अर मुक्त भया मानै है,सो निःसन्देह बंधै है ताकौं कहिए है—

जे जीव केवल पर्यायदृष्टि होय बंध मुक्त अवस्था ही कों मानें हैं, द्रव्य स्वभावका ग्रहण नाहीं करैं हैं, तिनकों ऐसा उपदेश दिया है; जो द्रव्य स्वभावकों न जानता जीव बंध्या मुक्त भया मानें, सो बंधै है। बहुरि जो सर्वथा ही बन्ध मुक्ति न होय, तो सो जीव बंधै है, ऐसा काहेकों कहैं । अर बन्ध के नाश का, मुक्त होने का उद्यम काहेकों करिए है। काहेकों आत्मानुभव करिये है। तातैं द्रव्यदृष्टि करि एक दशा है, पर्यायदृष्टिकरि अनेक अवस्था हो है, ऐसा मानना योग्य है।

ऐसैं ही अनेक प्रकारकरि केवल निश्चयनयका अभिप्रायतें विरुद्ध श्रद्धानादिक करै है। जिनवाणीविषै तो नाना नय अपेक्षा कहीं कैसा कहीं कैसा निरूपण किया है । यह अपने अभिप्रायतें निश्चयनय की मुख्यताकरि जो कथन किया होय, ताहीकों ग्रहिकरि मिथ्यादृष्टिकों धारै है। बहुरि जिनवाणीविषैं तो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी एकता भए मोक्षमार्ग कह्या है। सो याकै सम्यग्दर्शन ज्ञान विषैं सप्ततत्त्वनि-का श्रद्धान वा जानना भया चाहिए, सो तिनका विचार नाहीं। अर चारित्रविषैं रागादिक दूरि किया चाहिए, ताका उद्यम नाहीं । एक अपने आत्माकों शुद्ध अनुभवना इसहीको मोक्षमार्ग जानि सन्तुष्ट भया है । ताका अभ्यास करनेकों अंतरंगविषैं ऐसा चिंतवन किया करै है—मैं सिद्ध समान शुद्ध हूं, केवलज्ञानादि सहित हूं, द्रव्यकर्म

नोकर्म रहित हूँ, परमानन्दमय हूँ, जन्म मरणादि दुःख मेरे नाहीं, इत्यादि चिंतवन करै है। सो यहां पूछिए है—यहु चिंतवन जो द्रव्य-दृष्टिकरि करो हो, तो द्रव्य तो शुद्ध अशुद्ध सर्वपर्यायनिका समुदाय है। तुम शुद्ध ही अनुभवन काहेकों करो हो। अर पर्यायदृष्टि करि करो हो, तो तुम्हारै तो वर्त्तमान अशुद्ध पर्याय है। तुम आपाकों शुद्ध कैसें मानो हो? बहुरि जो शक्ति अपेक्षा शुद्ध मानो हो, तो मैं ऐसा होने योग्य हूँ ऐसा मानो। मैं ऐसा हूँ ऐसे काहेकों मानों हो। तातैं आपकों शुद्धरूप चिंतवन करना भ्रम है। काहेतैं—तुम आपकों सिद्ध-समान मान्या, तो यहु संसार अवस्था कौनकी है। अर तुम्हारै केवल-ज्ञानादिक हैं, तो ये मतिज्ञानादिक कौनके हैं। अर द्रव्यकर्म नोकर्म-रहित हो, तो ज्ञानादिककी व्यक्तता क्यों नही? परमानन्दमय हो, तो अब कर्त्तव्य कहा रह्या? जन्म मरणादि दुःख ही नाहीं, तो दुःखी कैसें होते हो? तातैं अन्य अवस्थाविषै अन्य अवस्था मानना भ्रम है।

यहां कोऊ कहै—शास्त्रविषै शुद्ध चिंतवन करनेका उपदेश कैसैं दिया है।

ताका उत्तर—एक तो द्रव्य अपेक्षा शुद्धपना है, एक पर्याय अपेक्षा शुद्धपना है। तहां द्रव्यअपेक्षा तो परद्रव्यतैं भिन्नपनों वा अपने भाव-नितैं अभिन्नपनों ताका नाम शुद्धपना है। अर पर्याय अपेक्षा औपा-धिकभावनिका अभाव होना, ताका नाम शुद्धपना है। सो शुद्ध चित-वनविषैं द्रव्य अपेक्षा शुद्धपना ग्रहण किया है। सोई समयसारव्याख्या-विषैं कह्या है—

एष एवाशेषद्रव्यान्तरभावेभ्यो भिन्नत्वेनोपास्यमानः शुद्ध इत्यभिलप्यते। (समयसार आत्मख्याति टीका गाथा० ६)

याका अर्थ-जो आत्मा प्रमत्त अप्रमत्त नाहीं है । सो यहु ही समस्त परद्रव्यनिके भावनितें भिन्नपनेकरि सेया हुआ शुद्ध ऐसा कहिए है। बहुरि तहाँ ही ऐसा कह्या है।

सकलकारकचक्रप्रक्रियोत्तीर्णनिर्मलानुभूतिमात्रत्वाच्छुद्धः ।
(समयसार आत्मख्याति टीका गाथा७३)

याका अर्थ—समस्त ही कर्त्ता कर्म आदि कारकनिका समूहकी प्रक्रियातें पारंगत ऐसी जो निर्मल अनुभूति जो अभेद ज्ञान तन्मात्र है, तातें शुद्ध है। ताते ऐसें शुद्ध शब्द का अर्थ जानना । बहुरि ऐसें ही केवल शब्द का अर्थ जानना । जो परभावतें भिन्न निःकेवल आप ही ताका नाम केवल है। ऐसे ही अन्य यथार्थ अर्थ अवधारना। पर्याय अपेक्षा शुद्धपनों मानें वा केवली आपकों मानें महाविपरीत होय । तातें आपकों द्रव्यपर्यायरूप अवलोकना । द्रव्यकरि सामान्य-स्वरूप अवलोकना, पर्यायकरि अवस्था विशेष अवधारना । ऐसें ही चिंतवन किएं सम्यग्दृष्टी हो है । जातें सांचा अवलोके बिना सम्यग्दृष्टी कैसें नाम पावे।

बहुरि मोक्षमार्गविषें तो रागादिक मेटनेका श्रद्धान ज्ञान आचरण करना है सो तो विचार ही नाहीं । आपका शुद्ध अनुभवनतें ही आपकों सम्यग्दृष्टी मानि अन्य सर्व साधननिका निषेध करै है; शास्त्र अभ्यास करना निरर्थक बतावे है, द्रव्यादिकका गुणस्थान मार्गणा त्रिलोकादिका विचारकों विकल्प ठहरावे है, तपश्चरण

करना वृथा क्लेश करना मानै है, व्रतादिकका धारना बंधनमें परना ठहरावै है, पूजनादि कार्यनिकों शुभास्रव जानि हेय प्ररूपै है; इत्यादि सर्व साधनकों उठाय प्रमादी होय परिणमैं है। सो शास्त्राभ्यास निरर्थक होय तो मुनिनकै भी तो ध्यान अध्ययन दोय ही कार्य मुख्य हैं। ध्यानविषैं उपयोग न लागै, तब अध्ययनहीविषैं उपयोगकूं लगावै है, अन्य ठिकाना बीच में उपयोग लगावने योग्य है नाहीं। बहुरि शास्त्र अभ्यासकरि तत्त्वनिका विशेष जाननेतैं सम्यग्दर्शन ज्ञान निर्मल होय है। बहुरि तहाँ यावत् उपयोग रहै, तावत् कषाय मन्द रहै। बहुरि आगामी वीतरागभावनिकी वृद्धि होय। ऐसें कार्यकों निरर्थक कैसें मानिए ?

बहुरि वह कहै—जो जिनशास्त्रनिविषैं अध्यात्म उपदेश है, तिनिका अभ्यास करना, अन्य शास्त्रनिका अभ्यासकरि किछू सिद्धि नाहीं।

ताकों कहिए है—जो तेरै सांची दृष्टि भई है, तो सर्व ही जैन शास्त्र कार्यकारी हैं। तहां भी मुख्यपनें अध्यात्म शास्त्रनिविषैं तो आत्मस्वरूपका मुख्य कथन है सो सम्यग्दृष्टी भए आत्मस्वरूपका तो निर्णय होय चुकै, तब तो ज्ञान की निर्मलता के अर्थि वा उपयोग को मंद-कषायरूप राखनेके अर्थि अन्य शास्त्रनिका अभ्यास मुख्य चाहिए। अर आत्मस्वरूपका निर्णय भया है, ताका स्पष्ट राखनेके अर्थि अध्यात्मशास्त्रनिका भी अभ्यास चाहिए परन्तु अन्य शास्त्रनिविषैं अरुचि तो न चाहिए। जाकै अन्य शास्त्रनिकै अरुचि है, ताकै अध्यात्मकी रुचि सांची नाहीं। जैसे जाकै विषयासक्तपना होय, सो

विषयासक्त पुरुषनिकी कथा भी रुचितैं सुनै वा विषयके विशेषकौं भी जानैं वा विषयके आचरनविषैं जो साधन होय ताकौं भी हितरूप मानै वा विषका स्वरूपकौं भी पहिचानैं। तैसें जाकै आत्मरुचिभई होय, सो आत्मरुचिके धारक तीर्थंकरादिक तिनका पुराण भी जानैं। बहुरि आत्माके विशेष जाननेकौं गुणस्थानादिककौं भी जानैं। बहुरि आत्माचरणविषै जे व्रतादिक साधन हैं, तिनकौं भी हितरूप मानैं। बहुरि आत्माके स्वरूपकौं भी पहिचानैं। तातैं च्यारचों ही अनुयोग कार्यकारी हैं। बहुरि तिनका नीका ज्ञान होनेके अर्थि शब्द न्यायशास्त्रादिककौं भी जानना चाहिए। सो अपनी शक्तिके अनुसार सबनिका थोरा वा बहुत अभ्यास करना योग्य है।

बहुरि वह कहै है, 'पद्मनन्दिपच्चीसी' विषैं ऐसा कह्या है—जो आत्मस्वरूपतैं निकसि बाह्य शास्त्रनिविषै बुद्धि विचरै है, सो वह बुद्धि व्यभिचारिणी है।

ताका उत्तर—यहु सत्य कह्या है। बुद्धि तो आत्माकी है, ताकौं छोरि परद्रव्य शास्त्रनिविषैं अनुरागिणी भई, ताकौं व्यभिचारिणी ही कहिए। परन्तु जैसें स्त्री शीलवती रहै तो योग्य ही है अर न रह्या जाय तो उत्तम पुरुषकौं छोरि चांडालादिकका सेवन किए तो अत्यन्त निंदनीक होइ। तैसें बुद्धि आत्मस्वरूपविषैं प्रवर्त्तै तो योग्य ही है अर न रह्या जाय तो प्रशस्त शास्त्रादि परद्रव्यकौं छोरि अप्रशस्त विषयादिविषैं लगैं तो महानिंदनीक ही होइ। सो मुनिनिकै भी स्वरूपविषैं बहुत काल बुद्धि रहै नाहीं तो तेरी कैसें रह्या करै? तातैं शास्त्राभ्यासविषैं उपयोग लगावना युक्त है। बहुरि जो द्रव्यादिक-

का वा गुणस्थानादिकका विचारकों विकल्प ठहरावै है,सो विकल्प तौ है परंतु निर्विकल्प उपयोग न रहै तब इनि विकल्पनिकों न करै तो अन्य विकल्प होइ, ते बहुत रागादि गर्भित हो हैं। बहुरि निर्विकल्प दशा सदा रहै नाहीं।. जातै छद्मस्थका उपयोग एक रूप उत्कृष्ट रहै तो अन्तर्मुहूर्त रहै। बहुरि तू कहैगा–मैं आत्मस्वरूपही का चितवन अनेक प्रकार किया करूंगा, सो सामान्य चितवनविषैं तो अनेक प्रकार बनैं नाहीं। अर विशेष करेगा, तब द्रव्य गुण पर्याय गुणस्थान मार्गणा शुद्ध अशुद्ध अवस्था इत्यादि विचार होयगा। बहुरि सुनि, केवल आत्मज्ञानहीतैं तो मोक्षमार्ग होइ नाहीं। सप्ततत्वनिका श्रद्धान ज्ञान भए वा रागादिक दूरि किएं मोक्षमार्ग होगा। सो सप्त तत्त्वनिका विशेष जाननेकों जीव अजीवके विशेष वा कर्मके आस्रव बंधादिकका विशेष अवश्य जानना योग्य है, जातैं सम्यग्दर्शन ज्ञानकी प्राप्ति होय। बहुरि तहां पीछे रागादिक दूरि करने। सो जे रागादिक बधावने के कारण तिनकों छोड़ि जे रागादिक घटावनेके कारण होंय तहां उपयोगकों लगावना। सो द्रव्यादिकका गुणस्थानादिकका विचार रागादिक घटावनेकों कारण है। इन विषैं कोई रागादिकका निमित्तनाहीं। तातैं सम्यग्दृष्टी भए पीछेभी इहांही उपयोग लगावना।

बहुरि वह कहै है– रागादि मिटावनेकों कारण होंय तिनविषैं तो उपयोग लगावना परन्तु त्रिलोकवर्ती जीवनिका गति आदि विचार करना वा कर्म्मका बंध उदयसत्तादिकका घणा विशेष जानना वा त्रिलोकका आकार प्रमाणादिक जानना इत्यादि विचार कौन कार्यकारी है।

ताका उत्तर—इनिकों भी विचारतें रागादिक बधते नाहीं। जातें ए ज्ञेय याके इष्ट अनिष्टरूप हैं नाहीं। तातें वर्तमान रागादिककों कारण नाही। बहुरि इनको विशेष जानें तत्त्वज्ञान निर्मल होय, तातें आगामी रागादिक घटावनेकों ही कारण हैं। तातै कार्यकारी हैं।

बहुरि वह कहै है—स्वर्ग नरकादिककों जानें तहाँ रागद्वेष हो है।

ताका समाधान—ज्ञानीकै तो ऐसी बुद्धि होइ नाहीं, अज्ञानीकै होय। तहां पाप छोरि पुण्यकार्यविषैं लागै तहाँ किछू रागादिक घटै ही हैं।

बहुरि वह कहै है-शास्त्रविषै ऐसा उपदेश है, प्रयोजनभूत थोरा ही जानना कार्यकारी है तातें बहुत विकल्प काहेकों कीजिए।

ताका उत्तर—जे जीव अन्य बहुत जानै अर प्रयोजनभूतकों न जानें अथवा जिनको बहुत जानने की शक्ति नाहीं, तिनकों यहु उपदेश दिया है। बहुरि जाकी बहुत जाननेकी शक्ति होय, ताकों तो यहु कह्या नाहीं जो बहुत जाने बुरा होगा। जेता बहुत जानेगा, तितना प्रयोजनभूत जानना निर्मल होगा। जातैंशास्त्रविषैं ऐसा कह्या है—

सामान्यशास्त्रतो नूनं विशेषो बलवान् भवेत्।

याका अर्थ यहु—सामान्य शास्त्रतें विशेष बलवान है। विशेषहीतें नीके निर्णय हो है। तातें विशेष जानना योग्य है। बहुरि वह तपश्चरणकों वृथा क्लेश ठहरावै है। सो मोक्षमार्गी भए तो संसारी जीवनितें उलटी परणति चाहिए। संसारीनिकै इष्ट अनिष्ट सामग्रीतें रागद्वेष हो है, याकै रागद्वेष न चाहिए। तहाँ राग छोड़नेके अर्थि इष्ट सामग्री भोजनादिकका त्यागी हो है अर द्वेष छोड़नेके अर्थि अनिष्ट

सामग्री अनशनादिक ताका अंगीकार करै है। स्वाधीनपनें ऐसा साधन होय तो पराधीन इष्ट अनिष्ट सामग्री मिलें भी राग द्वेष न होय। सो चाहिए तो ऐसें अर तेरै अनशनादितें द्वेष भया, तातें ताकों क्लेश ठहराया। जब यहु क्लेश भया, तब भोजन करना सुख स्वयमेव ठहर्‍या, तहां राग आया; तो ऐसी परिणति तो ससारीनिकै पाईएही है, तैं मोक्षमार्गी होय कहा किया।

बहुरि जो तू कहेगा, केई सम्यग्दृष्टी भी तपश्चरण नाहीं करें हैं।

ताका उत्तर—यहु कारण विशेषतें तप न होय सकै है परन्तु श्रद्धानविषै तो तपकों भला जानें हैं। ताके साधनका उद्यम राखें हैं। तेरै तो श्रद्धान यहु है, तप करना क्लेश है। बहुरि तपका तेरै उद्यम नाहीं, तातें तेरै सम्यग्दृष्टी कैसे होय ?

बहुरि वह कहै है—शास्त्रविषैं ऐसा कह्या है—तप आदिका क्लेश करै है तो करो, ज्ञान बिना सिद्धि नाहीं।

ताका उत्तर—यहु जे जीव तत्त्वज्ञानतें तो पराङ्मुख हैं, तपहीतें मोक्ष मानें हैं, तिनकों ऐसा उपदेश दिया है, तत्त्वज्ञान बिना केवल तपहीतें मोक्षमार्ग न होय। बहुरि तत्त्वज्ञान भए रागादिक मेटनेके अर्थि तपकरनेका तो निषेध है नाहीं। जो निषेध होय तो गणधरादिक तप काहेकों करैं। तातें अपनी शक्ति अनुसारि तप करना योग्य है। बहुरि वह व्रतादिककों बंधन मानै है। सो स्वच्छन्दवृत्तितो अज्ञान-अवस्थाही विषैं थी, ज्ञान पाएं तो परिणतिकों रोकै ही है। बहुरि तिस परिणति रोकनेके अर्थि बाह्य हिंसादिक कारणनिका त्यागी अवश्य भया चाहिए।

बहुरि वह कहै है–हमारे परिणाम तो शुद्ध हैं, बाह्य त्याग न किया तो न किया।

ताका उत्तर–जे ए हिंसादि कार्य तेरे परिणाम बिना स्वयमेव होते होंय, तो हम ऐसें मानें। बहुरि जो तू अपना परिणामकरि कार्य करै, तहां तेरे परिणाम शुद्ध कैसे कहिए। विषय सेवनादि क्रिया वा प्रमादरूप गमनादि क्रिया परिणाम बिना कैसें होय। सो क्रिया तो आपउद्यमी होय तू करै अर तहां हिंसादिक होय ताकों तू गिनै नाहीं, परिणाम शुद्ध मानै। सो ऐसी मानितें तेरे परिणाम अशुद्ध ही रहेंगे।

बहुरि वह कहै है–परिणामनिकों रोकिए वा बाह्य हिंसादिक भी घटाईए परन्तु प्रतिज्ञा करने में बन्धन हो है, तातें प्रतिज्ञारूप व्रत नाहीं अंगीकार करना।

ताका समाधान—जिस कार्य करनेकी आशा रहै है, ताकी प्रतिज्ञा न लीजिए है। अर आशा रहै तिसतें राग रहै है। तिस रागभावतें बिना कार्य किएं भी अविरतितें कर्मका बन्ध हुवा करै। तातें प्रतिज्ञा अवश्य करनी युक्त है। अर कार्य करनेका बंधन भए बिना परिणाम कैसें रुकेंगे, प्रयोजन पड़े तद्रूप परिणाम होंय ही होंय वा बिना प्रयोजन पड़े ताकी आशा रहै। तातै प्रतिज्ञा करनी युक्त है।

बहुरि वह कहै है—न जानिए कैसा उदय आवै, पीछें प्रतिज्ञाभंग होय तो महापाप लागै। तातें प्रारब्ध अनुसारि कार्य बनें सो बनों, प्रतिज्ञाका विकल्प न करना।

ताका समाधान—प्रतिज्ञा ग्रहण करतं जाका निर्वाह होता न

जानें, तिस प्रतिज्ञाकों तो करै नाहीं। प्रतिज्ञा लेतें ही यहु अभिप्राय रहै, प्रयोजन पड़े छोड़िद्यूंगा, तो वह प्रतिज्ञा कौन कार्यकारी भई। अर प्रतिज्ञा ग्रहण करतें तो यहु परिणाम है, मरणांत भए भी न छोड़ूंगा तो ऐसी प्रतिज्ञा करनी युक्त ही है। बिना प्रतिज्ञा किए अविरत सम्बन्धी बंध मिटै नाहीं। बहुरि आगामी उदयका भयकरि प्रतिज्ञा न लीजिए सो उदयकों विचारें सर्व ही कर्त्तव्यका नाश होय। जैसें आपकों पचाता जानैं, तितना भोजन करै, कदाचित् काहूकै भोजनतें अजीर्ण भया होय तो तिस भयतें भोजन करना छांडै तो मरण ही होय। तैसें आपकै निर्वाह होता जानै तितनी प्रतिज्ञा करै, कदाचित् काहूकै प्रतिज्ञातें भ्रष्टपना भया होय, तो तिस भयतें प्रतिज्ञा करनी छांडै तो असंयम ही होय। तातें बनें सो प्रतिज्ञा लेनी युक्त है। बहुरि प्रारब्ध अनुसारि तो कार्य बनै ही है, तू उद्यमी होय भोजनादि काहेकों करै है। जो तहां उद्यम करै है, तो त्याग करने का भी उद्यम करना युक्त ही है। जब प्रतिमावत् तेरी दशा होय जायगी, तब हम प्रारब्ध ही मानेंगे, तेरा कर्त्तव्य न मानेंगे। तातें काहेकों स्वच्छन्द होनेंकी युक्ति बनावै है। बनै सो प्रतिज्ञाकरि व्रत धारना योग्य ही है।

बहुरि वह पूजनादि कार्यकों शुभास्रव जानि हेय मानै है सो यहु सत्य ही है। परन्तु जो इनि कार्यनिकों छोरि शुद्धोपयोगरूप होय तो भले ही है अर विषय कषायरूप अशुभरूप प्रवर्ते तो अपना बुरा ही किया। शुभोपयोगतें स्वर्गादि होय वा भली वासनातें वा भला निमित्ततें कर्मका स्थिति अनुभाग घटि जाय तो सम्यक्त्वादिककी भी प्राप्ति

होय जाय। बहुरि अशुभोपयोगतैं नरक निगोदादि होय वा बुरी वासनातैं वा बुरा निमित्ततैं कर्मका स्थिति अनुभाग बधि जाय, तौ सम्यक्तादिक महा दुर्लभ होय जाय। बहुरि शुभोपयोग होतैं कषाय मंद हो है, अशुभोपयोगहोतैं तीव्र हो है। सो मदकषायका कार्य छोरि तीव्रकषाय का कार्य करना तो ऐसा है, जैसें कडवी वस्तु न खानी अर विष खाना। सो यहु अज्ञानता है।

बहुरि वह कहै है—शास्त्र विषै शुभ अशुभकों समान कह्या है, तातैं हमकों तो विशेष जानना युक्त नाहीं।

ताका समाधान—जे जीव शुभोपयोगकों मोक्षका कारण मानि उपादेय मानै हैं, शुद्धोपयोगकों नाहीं पहिचानैं हैं, तिनकों शुभ अशुभ दोऊनिकों अशुद्धताकी अपेक्षा वा बंधकारणकी अपेक्षा समान दिखाए हैं। बहुरि शुभ अशुभनिका परस्पर विचार कीजिए, तो शुभ भावनि विषै कषायमद हो है, तातैं बंध हीन हो है। अशुभभावनिविषैं कषायतीव्र हो है, तातैं बंध बहुत हो है। ऐसैं विचार किएं अशुभकी अपेक्षा सिद्धान्तविषै शुभकों भला भी कहिए है। जैसें रोग तो थोरा वा बहुत बुरा ही है परन्तु बहुत रोगकी अपेक्षा थोरा रोगकों भला भी कहिए है। तातैं शुद्धोपयोग नाहीं होय, तब अशुभतैं छूटि शुभविषैं प्रवर्त्तनायुक्त है। शुभकों छोरि अशुभविषैं प्रवर्त्तना युक्त नाहीं।

बहुरि वह कहै है—जो कामादिक वा क्षुधादिक मिटावनेकों अशुभरूप प्रवृत्ति तो भए विना रहती नाहीं अर शुभप्रवृत्ति चाहिकरि करनी परै है, ज्ञानीकै चाह चाहिए नाहीं; तातैं शुभका उद्यम नाहीं

करना ।

ताका उत्तर—शुभप्रवृत्तिविषें उपयोग लागनेकरि वा ताके निमित्ततें विरागता बधनेकरि कामादिक हीन हो हैं अर क्षुधादिकविषें भी संक्लेश थोरा हो है। तातें शुभोपयोगका अभ्यास करना । उद्यम किए भी जो कामादिक वा क्षुधादिक पीडैं हैं तो ताके अर्थि जैसें थोरा पाप लागै सो करना । बहुरि शुभोपयोगकों छोड़ि निश्शंक पापरूप प्रवर्त्तना तो युक्त नाहीं। बहुरि तू कहै—ज्ञानीकै चाहि नाहीं अर शुभोपयोग चाहि किएं हो है सो जैसें पुरुष किंचिन्मात्र भी अपना धन दिया चाहै नाहीं परन्तु जहाँ बहुत द्रव्य जाता जानै, तहाँ चाहिकरि स्तोक द्रव्य देनेका उपाय करै है । तैसें ज्ञानी किंचिन्मात्र भी कषायरूप कार्य किया चाहै नाही परन्तु जहाँ बहुत कषायरूप अशुभ कार्य होता जानै तहाँ चाहिकरि स्तोक कषायरूप शुभ कार्य करनेका उद्यम करै है । ऐसें यहु बात सिद्ध भई—जहाँ शुद्धोपयोग होता जानें, तहाँ तो शुभ कार्यका निषेध हो है अर जहां अशुभोपयोग होता जानें, तहाँ शुभकों उपायकरि अंगीकार करना युक्त है । या प्रकार अनेक व्यवहारकार्यकों उथापि स्वच्छन्दपनाकों स्थापै हैं, ताका निषेध किया।

अब तिस ही केवल निश्चयावलम्बी जीवकी प्रवृत्ति दिखाइए है—

एक शुद्धात्माकों जानें ज्ञानी हो है, अन्य किछू चाहिए नाहीं। ऐसा जानि कबहूं एकांत तिष्ठिकरि ध्यान मुद्रा धारि मैं सर्वकर्म उपाधिरहित सिद्ध समान आत्मा हूँ, इत्यादि विचारकरि सन्तुष्ट हो है। सो ए विशेषण कैसें संभवै, ऐसा विचार नाहीं । अथवा अचल

अखंड अनौपम्यादि विशेषण करि आत्माकों ध्यावै है, सो ए विशेषण अन्य द्रव्यनिविषैं भी सम्भवैं हैं। बहुरि ए विशेषण किस अपेक्षा हैं, सो विचार नाहीं। बहुरि कदाचित् सूता बैठ्या जिस तिस अवस्थाविषैं ऐसा विचार राखि आपकों ज्ञानी मानैं है। बहुरि ज्ञानी कै आस्रव बंध नाहीं ऐसा आगमविषैं कह्या है तातैं कदाचित् विषय-कषायरूप हो है। तहाँ बध होनेंका भय नाहीं है, स्वच्छन्द भया रागादिरूप प्रवर्त्तै है। सो आपा परकों जाननेका तो चिन्ह वैराग्य-भाव है सो समयसारविषैं कह्या है—

"सम्यग्दृष्टेर्भवति नियतं ज्ञानवैराग्यशक्तिः।"*

याका अर्थ—यहु सम्यग्दृष्टीकै निश्चयसों ज्ञानवैराग्य शक्ति होय। बहुरि कह्या है—

सम्यग्दृष्टिः स्वयमयमहं जातु बन्धो न मे स्या—
दित्युत्तानोत्पुलकवदना रागिणोऽप्याचरन्तु।
आलम्बन्तां समितिपरतां ते यतोऽद्यापि पापा
आत्मानात्मावगमविरहात्सन्ति सम्यक्त्व रिक्ताः॥१३७॥

याका अर्थ—स्वयमेव यहु मैं सम्यग्दृष्टी हूँ, मेरे कदाचित् बंध नाहीं, ऐसैं ऊँचा फुलाया है मुख जिनने ऐसें रागी वैराग्य शक्ति रहित भी आचरण करै हैं तो करो, बहुरि पंचसमितिकी सावधानीकों

---

* सम्यग्दृष्टेर्भवति नियतं ज्ञानवैराग्यशक्तिः, स्वं वस्तुत्वं कलयितुमयं स्वान्य रूपाप्तिमुक्त्या। यस्माज्ज्ञात्वा व्यतिकरमिदं तत्त्वतः स्वं परं च, स्वस्मिन्नास्ते विरमति परात्सर्वतो रागयोगात्॥ निर्जरा० कलश १३६॥

अवलम्बें हैं तो अवलम्बो, जातें वे ज्ञान शक्ति बिना अबहू पापी ही हैं। ए दोऊ आत्मा अनात्माका ज्ञानरहितपनातें सम्यक्त्वरहित ही हैं।

बहुरि पूछिए है—परकों पर जान्या, तो परद्रव्यविषें रागादि करनेका कहा प्रयोजन रहा ? तहां वह कहै है—मोहके उदयतें रागादि हो हैं। पूर्वे भरतादिक ज्ञानी भए, तिनकै भी विषय कषाय रूप कार्य भया सुनिये है।

ताका उत्तर—ज्ञानीकै भी मोहके उदयतें रागादिक हो हैं—यहु सत्य परन्तु बुद्धि पूर्वक रागादिक होते नाहीं। सो विशेष वर्णन आगें करेंगे। बहुरि जाकै रागादिक होनेका किछू विषाद नाहीं, तिनके नाशका उपाय नाही, ताकै रागादिक बुरे हैं ऐसा श्रद्धान भी नाहीं सम्भवै है। ऐसें श्रद्धान बिना सम्यग्दृष्टी कैसें होय ? जीवाजीवादि तत्त्वनिके श्रद्धान करनेका प्रयोजन तो इतना ही श्रद्धान है। बहुरि भरतादिक सम्यग्दृष्टीनिकै विषय कषायकी प्रवृत्ति जैसें हो है, सो भी विशेष आगे कहेंगे। तू उनका उदाहरणकरि स्वछन्द होगा तो तेरे तीव्र आस्रव बंध होगा। सोई कह्या है—

मग्नाः ज्ञाननयैषिणोपि यदि ते स्वच्छन्दोद्यमाः*।

---

* मग्नाः कर्मनयावलम्बनपरा ज्ञानं न जानन्ति यन्।
मग्नाः ज्ञाननयैषिणोपि यदिति स्वच्छन्दमन्दोद्यमाः ॥
विश्वस्योपरि ते तरन्ति सततं ज्ञानं भवन्तः स्वयं।
ये कुर्वन्ति न कर्म जातु न वशं यान्ति प्रमादस्य च ॥

—समयसार कलश १११

याका अर्थ—यहु ज्ञाननयके अवलोकनहारे भी जे स्वच्छन्द मंद उद्यमी हो हैं, ते संसारविषैं डूबें और भी तहां **"ज्ञानिन कर्म्म न जातु कर्तु मुचितं"** —इत्यादि कलशाविषैं वा **"तथापि न निरर्गलं चरितुमिष्यते ज्ञानिनः"**—इत्यादि कलशा विषैं स्वच्छन्द होना निषेध्या है। बिना चाहि जो कार्य होय सो कर्मबन्धका कारण नाहीं। अभिप्रायतैं कर्त्ता होय करै अर ज्ञाता रहै, यहु तो बनै नाहीं; इत्यादि निरूपण किया है। तातैं रागादिक बुरे अहितकारी जानि तिनका नाशके अर्थि उद्यम राखना। तहां अनुक्रमविषैं पहलैं तीव्र-रागादि छोड़नेके अर्थि अशुभ कार्य छोरि शुभ विषैं लागना, पीछैं मंदरागादि भी छोड़नेके अर्थि शुभकों भी छोरि शुद्धोपयोग रूप होना।

बहुरि केई जीव अशुमविषैं क्लेश मानि व्यापारादि कार्य वा स्त्रीसेवनादि कार्यनिकों भी घटावै हैं। बहुरि शुभकों हेय जानि शास्त्राभ्यासादि कार्यनिविषैं नाहीं प्रवर्त्तै हैं। वीतराग भावरूप शुद्धोपयोगकों प्राप्त भए नाहीं, ते जीव अर्थ काम धर्म्म मोक्षरूप पुरुषार्थतैं रहित होते संते आलसी निरुद्यमी हो हैं। तिनकी निन्दा पंचास्तिकायकी व्याख्या विषैं कीनी है। तिनकों दृष्टांत दिया है—जैसें बहुत क्षीर खांड खाय पुरुष आलसी हो है वा जैसें वृक्ष निरुद्यमी हैं, तैसें ते जीव आलसी निरुद्यमी भए हैं।

अब इनको पूछिए है—तुम बाह्य तो शुभ अशुभकार्यनिकों घटाया परन्तु उपयोग तो आलम्बन बिना रहता नाहीं, सो तुम्हारा उपयोग कहां रहै है, सो कहो। जो वह कहै—आत्माका चिंतवन करै है, सो

शास्त्रादि करि अनेक प्रकारके आत्माका विचारकों तो तुम विकल्प ठहराया अर कोई विशेषण आत्माका जाननेमें बहुतकाल लागै नाहीं बारम्बार एकरूप चितवनविषै छद्मस्थका उपयोग लगता नाहीं । गणधरादिकका भी उपयोग ऐसें न रहि सकै, तातै वे भी शास्त्रादि कार्यनिविषै प्रवर्त्तै हैं । तेरा उपयोग गणधरादिकतैं भी कैसे शुद्ध भया मानिए । तातैं तेरा कहना प्रमाण नाही । जैसे कोऊ व्यापारादिविषैं निरुद्यमी होय ठाला जैसें तैसे काल गुमावै, तैसें तू धर्म्म विषै निरुद्यमी होइ प्रमादी यूँही काल गमावै है । कबहूं किछू चितवनसा करै, कबहूं बातैं बनावै, कबहूँ भोजनादि करै, अपना उपयोग निर्मल करनेकों शास्त्राभ्यास तपश्चरण भक्ति आदि कार्यनिविषै प्रवर्त्तता नाही । सूनासा होय प्रमादी होनेका नाम शुद्धोपयोग ठहराय, तहा क्लेश थोरा होनेते जैसे कोई आलसी होय परचा रहने मे सुख मानै, तैसे आनन्द मानै है । अथवा जैसे सुपने विषै आपकों राजा मानि सुखी होय, तसे आपकों भ्रमते सिद्ध समान शुद्ध मानि आप ही आनन्दित हो है । अथवा जैसें कही रति मानि सुखी हो है, तैसें किछू विचार करने विषै रति मानि सुखी होय, ताकों अनुभवजनित आनंद कहै है । बहुरि जैसें कही अरति मानि उदास होय, तैसें व्यापारादिक पुत्रादिककों खेदका कारण जानि तिनतै उदास रहै है, ताको वैराग्य मानै है । सो ऐसा ज्ञान वैराग्य तो कषायगर्भित है । जो वीतरागरूप उदासीन दशाविषै निराकुलता होय, सो सांचा आनन्द ज्ञान वैराग्य ज्ञानी जीवनिकै चारित्र मोहकी हीनता भए प्रगट हो है । बहुरि वह व्यापारादि क्लेश छोड़ि यथेष्ट भोजनादि करि सुखी हुवा

प्रवर्त्तै है । आपकों तहाँ कषायरहित मानें है, सो ऐसें आनन्दरूप भए तो रौद्रध्यान हो है । जहां सुख सामग्री छोड़ि दुख सामग्री का संयोग भए संक्लेश न होय, रागद्वेष न उपजै, तब निःकषाय भाव हो हैं। ऐसें भ्रमरूप तिनकी प्रवृत्ति पाईए है । या प्रकार जे जीव केवल निश्चयाभासके अवलम्बी हैं, ते मिथ्यादृष्टी जाननें । जैसें वेदांती वा सांख्यमतवाले जीव केवल शुद्धात्माके श्रद्धानी हैं, तैसें ए भी जानने । जातैं श्रद्धानकी समानताकरि उनका उपदेश इनकों इष्ट लागै है, इनका उपदेश उनकों इष्ट लागै है ।

बहुरि तिन जीवनिकै ऐसा श्रद्धान है–जो केवल शुद्धात्मा का चिंतवनतें तो संवर निर्जरा हो है वा मुक्तात्माका सुखका अंश तहाँ प्रगट हो है । बहुरि जीवके गुणस्थानादि अशुद्ध भावनिका वा आप बिना अन्य जीव पुद्गलादिकका चिंतवन किए आस्रव बन्ध हो है । तातै अन्य विचारतै पराङ्मुख रहै हैं । सो यहु भी सत्य श्रद्धान नाहीं, जातैं शुद्ध स्वद्रव्यका चिंतवन करो वा अन्य चिंतवन करो; जो वीतरागता लिए भाव होय, तो तहाँ संवर निर्जरा ही है अर जहाँ रागादिरूप भाव होय, तहाँ आस्रव बंध ही है । जो परद्रव्यके जानने-हीतैं आस्रव बन्ध होय तो केवली तो समस्त परद्रव्यकों जानै हैं, तिनकै भी आस्रव बन्ध होय । बहुरि वह कहै है—जो छद्मस्थकै पर-द्रव्य चिंतवन होतें आस्रव बन्ध हो है । सो भी नाही, जातै शुक्ल ध्यानविषैं भी मुनिनिकै छहो द्रव्यनिका द्रव्यगुण पर्यायका चितवन होना निरूपण किया है वा अवधिमनः पर्यायादिविषैं परद्रव्यके जाननेही को विशेषता हो है । बहुरि चौथा गुणस्थानविषै कोई अपने

स्वरूपका चितवन करै है, ताकै भी आस्रव बन्ध अधिक है वा गुण श्रेणी निर्जरा नाहीं है। पंचम षष्टम गुणस्थानविषें आहार विहारादि क्रिया होतें परद्रव्य चितवनतें भी आस्रव बन्ध थोरा हो है वा गुण-श्रेणी निर्जरा हुवा करै है। तातैं स्वद्रव्य परद्रव्यका चितवनतैं निर्जरा बंध नाहीं। रागादिकके घटे निर्जरा है, रागादिक भए बन्ध है। ताकौं रागादिकके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान नाहीं, ताते अन्यथा मानै है।

तहाँ वह पूछै है कि ऐसैं है तो निर्विकल्प अनुभव दशा विषैं नयप्रमाण निक्षेपादिकका वा दर्शन ज्ञानादिकका भी विकल्प का निषेध किया है, सो कैसें है ?

ताका उत्तर—जे जीव इनही विकल्पनिविषें लगि रहे हैं, अभेद-रूप एक आपकों अनुभवै नाहीं हैं, तिनकों ऐसा उपदेश दिया है, जो ए सर्व विकल्प वस्तुका निश्चय करनेकों कारण हैं। वस्तु का निश्चय भये इनका प्रयोजन किछू रहता नाहीं। ताते इन विकल्पनिकों भी छोडि अभेदरूप एक आत्माका अनुभवन करना। इनिके विचाररूप विकल्पनिही विषै फँसि रहना योग्य नाहीं। बहुरि वस्तुका निश्चय भए पीछै ऐसा नाहीं, जो सामान्यरूप स्वद्रव्यहीका चितवन रह्या करे। स्वद्रव्यका वा परद्रव्यका सामान्यरूप वा विशेषरूप जानना होय परन्तु वीतरागता लिएं होय, तिसहीका नाम निर्विकल्प दशा है।

तहाँ वह पूछै है-यहाँ तो बहुत विकल्प भए, निर्विकल्पसंज्ञा कैसें सम्भवै ?

ताका उत्तर—निर्विचार होनेका नाम निर्विकल्प नाहीं है। जातैं छद्मस्थकै जानना विचार लिए है। ताका अभाव मानें ज्ञानका अभाव

होय, तब जड़पना भया सो आत्माके होता नाहीं । तातें विचार तो रहै। बहुरि जो कहिए, एक सामान्यका ही विचार रहता है,विशेषका नाहीं । तो सामान्यका विचार तो बहुत काल रहता नाहीं वा विशेष की अपेक्षा बिना सामान्यका स्वरूप भासता नाहीं। बहुरि कहिए— आपहीका विचार रहता है परका नाहीं, तो परविषें पर बुद्धि भए बिना आपविषे निजबुद्धि कैसें आवै ? तहाँ वह कहे है, समयसारविषे ऐसा कह्या है —

भावयेद्भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया ।
तावद्यावत्पराच्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठितं ॥

(कलश १३०–संवर अधिकार)

याका अर्थ यहु–भेद विज्ञान तावत् निरन्तर भावना, यावत् परतें छूटे ज्ञान है सो ज्ञानविषे स्थित होय। तातें भेद विज्ञान छूट पर का जानना मिटि जाय है। केवल आपहीको आप जान्या करै है।

सो यहां तो यहु कह्या है—पूर्वे आपा परको एक जान था, पीछे जुदा जाननेकों भेद विज्ञानकों तावत् भावना ही योग्य है, यावत् ज्ञान पररूपकों भिन्न जानि अपने ज्ञानस्वरूपही विषै निश्चित होय। पीछे भेदविज्ञान करनेंका प्रयोजन रह्या नाहीं । स्वयमेव परकों पररूप आपकों आपरूप जान्या करै है । ऐसा नाहीं, जो परद्रव्यका जानना ही मिटि जाय है । तातैं परद्रव्यका जानना वा स्वद्रव्यका विशेष जाननेका नाम विकल्प नाही है। तो कैसें है ? सो कहिए है– राग द्वेषके वशतें किसी ज्ञेयके जाननें विषै उपयोग लगावना, किसी ज्ञेयके

जाननेतें छुड़ावना, ऐसें बार बार उपयोगको भ्रमावना, ताका नाम विकल्प है । बहुरि जहाँ वीतरागरूप होय जाकों जानै है, ताकों यथार्थ जानै है । अन्य अन्य ज्ञेयके जाननेके अर्थि उपयोगकों नाहीं भ्रमावै है, तहाँ निर्विकल्पदशा जाननी।

यहां कोऊ कहै—छद्मस्थका उपयोग तो नाना ज्ञेय विषैं भ्रमै ही भ्रमै। तहाँ निर्विकल्पता कैसे सम्भवै है ?

ताका उत्तर–जेते काल एक जाननें रूप रहै, तावत् निर्विकल्प नाम पावै । सिद्धान्तविषें ध्यानका लक्षण ऐसा ही किया है– **"एकाग्रचिंतानिरोधो ध्यानम् ।"**❀

एकका मुख्य चिंतवन होय अर अन्य चिंता रुकै,ताका नाम ध्यान है। **सर्वार्थसिद्धि** सूत्रकी टीका विषै यहु विशेष कह्या है–जो सर्व चिंता रुकनेका नाम ध्यान होय तो अचेतनपनो होय जाय । बहुरि ऐसी भी विविक्षा है जो संतान अपेक्षा नाना ज्ञेयका भी जानना होय। परन्तु यावत् वीतरागता रहै, रागादिककरि आप उपयोगकों भ्रमावै नाही, तावत् निर्विकल्पदशा कहिए है।

बहुरि वह कहै–ऐसें है तो परद्रव्यतें छुड़ाय स्वरूपविषै उपयोग लगावने का उपदेश काहेकों दिया है ?

ताका समाधान—जो शुभ अशुभ भावनिकों कारण पर द्रव्य हैं, तिनविषैं उपयोग लगे जिनकै राग द्वेष होइ आवै हैं अर स्वरूप-

---

❀ "उत्तम संहननस्यैकाग्रचिन्ता निरोधो ध्यानमान्तमुहूर्त्तात् ।"
(तत्त्वार्थसूत्र ९-२७)

चिंतवन करै तो राग द्वेष घटै हैं, ऐसें नीचली अवस्थावारे जीवनिकों पूर्वोक्त उपदेश है । जैसें कोऊ स्त्री विकारभावकरि पर घर जाती थी, ताकों मनै करी—पर घर मति जाय, घर में बैठि रहो । बहुरि जो स्त्री निर्विकार भावकरि काहूके घर जाय यथायोग्य प्रवर्त्तै तो किछू दोष है नाहीं। तैसें उपयोगरूप परणति राग-द्वेष भावकरि पर द्रव्यनिविषें प्रवर्त्तै थी, ताकों मनै करी—परद्रव्यनिविषें मति प्रवर्त्तै, स्वरूपविषें मग्न रहो । बहुरि जो उपयोगरूप परणति वीतरागभावकरि परद्रव्यकों जानि यथायोग्य प्रवर्त्तै, तो किछू दोष है नाही।

बहुरि वह कहै है—ऐसें है तो महामुनि परिग्रहादिक चिंतवनका त्याग काहेकों करैं हैं।

ताका समाधान—जैसे विकाररहित स्त्री कुशीलके कारण परघरनिका त्याग करै, तैसें वीतराग परणति रागद्वेषके कारण परद्रव्यनिका त्याग करै है। बहुरि जे व्यभिचारके कारण नाहीं, ऐसे परघर जानेका त्याग है नाहीं। तैसे जे राग द्वेषकों कारण नाहीं,ऐसे परद्रव्य जाननेका त्याग है नाहीं ।।

बहुरि वह कहै है–जैसें जो स्त्री प्रयोजन जानि पितादिकके घरि जाय तो जावो, बिना प्रयोजन जिस तिसके घर जाना तो योग्य नाही। तैसें परणतिकों प्रयोजन जानि सप्ततत्त्वनिका विचार करना, बिना प्रयोजन गुणस्थानादिकका विचार करना योग्य नाहीं ।

ताका समाधान–जैसें स्त्री प्रयोजन जानि पितादिक वा मित्रादिकके भी घर जाय तैसें परणति तत्त्वनिका विशेष जाननेंकों कारण

गुणस्थानादिक वा कर्म्मादिककों भी जानै। बहुरि तहाँ ऐसा जानना—जैसें शीलवती स्त्री उद्यमकरि तो विटपुरुषनिके स्थान न जाय, जो परवश तहाँ जाना बनि जाय, तहाँ कुशील न सेवै तो स्त्री शीलवती ही है। तैसें वीतराग परणति उपायकरि तो रागादिकके कारण परद्रव्यनिविषैं न लागै, जो स्वयमेव तिनका जानना होय जाय, तहां रागादिक न करै तो परणति शुद्ध ही है। तातैं स्त्री आदिकी परीषह मुनिनकै होय, तिनिकों जानै ही नाहीं, अपने स्वरूप ही का जानना रहै है, ऐसा मानना मिथ्या है। उनको जानै तो है परन्तु रागादिक नाहीं करै है। या प्रकार परद्रव्यकों जानते भी वीतरागभाव हो है, ऐसा श्रद्धान करना।

बहुरि वह कहै—ऐसें है तो शास्त्रविषै ऐसें कैसे कह्या है, जो आत्माका श्रद्धान ज्ञान आचरण सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र है।

ताका समाधान—अनादितैं परद्रव्यविषै आपका श्रद्धान ज्ञान आचरण था, ताके छुड़ावनेकों यहु उपदेश है। आपही विषैं आपका श्रद्धान ज्ञान आचरण भए परद्रव्यविषैं रागद्वेषादि परणति करनेका श्रद्धान वा ज्ञान वा आचरन मिटि जाय, तब सम्यग्दर्शनादि हो है। जो परद्रव्यका परद्रव्यरूप श्रद्धानादि करनेतैं सम्यग्दर्शनादि न होते होंय, तो केवलीकै भी तिनका अभाव होय। जहा परद्रव्यकों बुरा जानना, निज द्रव्यकों भला जानना, तहाँ तो रागद्वेष सहज ही भया। जहाँ आपकों आपरूप परकों पररूप यथार्थ जान्या करै, तैसें ही श्रद्धानादिरूप प्रवर्तै, तब ही सम्यग्दर्शनादि हो हैं, ऐसे जानना। तातैं बहुत कहा कहिए, जसैं रागादि मिटावनेका श्रद्धान होय सो ही

श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। बहुरि जैसें रागादि मिटावनेका जानना होय सोही जानना सम्यग्ज्ञान है। बहुरि जैसें रागादि मिटैं सोही आचरण सम्यक्चारित्र है। ऐसा ही मोक्षमार्ग मानना योग्य है । या प्रकार निश्चयनयका आभास लिए एकान्तपक्षके धारी जैनाभास तिनके मिथ्यात्व का निरूपण किया।

केवल व्यवहारावलम्बी जैनाभास का निरूपण

अब व्यवहाराभास पक्षके धारक जैनाभासनिके मिथ्यात्वका निरूपण कीजिए है–जिनआगम विषें जहां व्यवहारको मुख्यताकरि उपदेश है, ताकों मानि बाह्यसाधनादिकहीका श्रद्धानादिक करे है, तिनके सर्व धर्मके अंग अन्यथारूप होय मिथ्याभावकों प्राप्त होय हैं सो विशेष कहिए हैं। यहां ऐसा जानि लेना; व्यवहारधर्मकी प्रवृत्तितें पुण्यबंध होय है, तातें पापप्रवृत्ति अपेक्षा तो याका निषेध है नाहीं। परन्तु इहां जो जीव व्यवहार प्रवृत्ति ही करि सन्तुष्ट होय, सांचा मोक्षमार्गविषें उद्यमी न होय है, ताकों मोक्षमार्गविषें सन्मुख करनेकों तिस शुभरूप मिथ्याप्रवृत्तिका भी निषेधरूप निरूपण कीजिए है। जो यहु कथन कीजिए है, ताकों सुनि जो शुभ प्रवृत्ति छोड़ि अशुभविषें प्रवृत्ति करोगे तो तो तुम्हारा बुरा होगा और जो यथार्थ श्रद्धान करि मोक्षमार्गविषें प्रवर्तोगे तो तुम्हारा भला होगा । जैसे कोऊ रोगी निर्गुण औषधिका निषेध सुनि औषधि साधन छोड़ि कुपथ्य करेगा तो वह मरेगा, वैद्यका किछू दोष नाहीं। तैसे कोउ संसारी पुण्यरूप-धर्मका निषेध सुनि धर्मसाधन छोड़ि विषयकषायरूप प्रवर्त्तेगा, ता वह ही नरकादिविषें दुःख पावेगा । उपदेश दाताका तो दोष है

नाहीं। उपदेश देनेवालेका तो अभिप्राय असत्य श्रद्धानादि छुड़ाय मोक्षमार्गविषैं लगावनेका जानना। सो ऐसा अभिप्रायतें इहाँ निरूपण कीजिए है।

कुल अपेक्षा धर्म मानने का निषेध

तहाँ कोई जीव तो कुलक्रमकरि ही जैनी हैं, जैनधर्मका स्वरूप जानते नाहीं। परन्तु कुलविषै जैसी प्रवृत्ति चली आई, तैसें प्रवर्त्तें हैं। सो जैसें अन्यमती अपने कुलधर्मविषें प्रवर्त्तें हैं, तैसें हो यहु प्रवर्त्तें है। जो कुलक्रमहोतें धर्म होय, तो मुसलमान आदि सर्व ही धर्मात्मा होंय। जैनधर्मका विशेष कहा रह्या? सोई कह्या है।

लोयम्मि रायणोई णायं ण कुलकम्मि कइयावि।
किं पुण तिलोयपहुणो जिणंदधम्माहिगारम्मि ॥१॥

(उप. सि. र. गा. ७)

याका अर्थ—लोकविषैं यहु राजनीति है—कदाचित् कुलक्रमकरि न्याय नाही होय है। जाका कुल चोर होय, ताकों चोरी करता पकरै तो वाका कुलक्रम जानि छोड़ै नाहीं, दंड ही दे। तो त्रिलोक प्रभु जिनेन्द्रदेवके धर्मका अधिकारविषै कहा कुलक्रम अनुसारि न्याय सम्भवै। बहुरि जो पिता दरिद्री होय आप धनवान् होय, तहाँ तो कुलक्रम विचारि आप दरिद्री रहता ही नाहीं, तो धर्मविषैं कुलका कहा प्रयोजन है। बहुरि पिता नरक जाय पुत्र मोक्ष जाय, तहाँ कुलक्रम कसैं रह्या? जो कुल ऊपरि दृष्टि होय, तो पुत्र भी नरकगामी होय। तातैं धर्मविषैं कुलक्रमका किछू प्रयोजन नाही। शास्त्रनिका अर्थ विचारि जो कालदोष तैं जिनधर्म विषैं भी पापी पुरुषनिकरि

कुदेव कुगुरु कुधर्म सेवनादिरूप वा विषय कषाय पोषणादिरूप विपरीत प्रवृत्ति चलाई होय, ताका त्यागकरि जिनआज्ञा अनुसारि प्रवर्त्तना योग्य है।

इहां कोऊ कहै—परम्परा छोडि नवीन मार्गविषें प्रवर्तना युक्त नाहीं। ताकों कहिए है—

जो अपनी बुद्धिकरि नवीन मार्ग पकरं तो युक्त नाहीं। जो परम्परा अनादिनिधन जैनधर्मका स्वरूप शास्त्रनिविषें लिख्या है, ताकी प्रवृत्ति मेटि बीचिमे पापी पुरुषां अन्यथा प्रवृत्ति चलाई, तो ताकों परम्परा मार्ग कैसे कहिए। बहुरि ताकों छोड़ि पुरातन जैनशास्त्रनिविषें जैसा धर्म लिख्या था तैसें प्रवत्त, तो ताकों नवोन मार्ग कैसें कहिए। बहुरि जो कुलविषें जैसें जिनदेवकी आज्ञा है, तैसे ही धर्म्मकी प्रवृत्ति है, तो आपको भी तैसें ही प्रवर्त्तना योग्य है। परन्तु ताकों कुलाचार न जानना, धर्म जानि ताके स्वरूप फलादिकका निश्चय करि अंगोकार करना। जो साचा भी धर्मको कुलाचार जानि प्रवर्त्तै है तो वाको धर्मात्मा न कहिए, जातै सर्व कुलके उस आचरणको छोड़े तो आप भी छोडि दे। बहुरि जो वह आचरण करै है सो कुलका भयकरि करै है, किछू धर्म बुद्धितें नाहीं करै है; तातै वह धर्मात्मा नाहीं। तातें विवाहादि कुल सम्बन्धी कार्यनिविषें तो कुलक्रम का विचार करना अर धर्मसम्बन्धी कार्यविषें कुलका विचार न करना। जैसें धर्ममार्ग सांचा है, तैसें प्रवर्त्तना योग्य है।

परीक्षा रहित आज्ञानुसारी जैनत्व का प्रतिषेध

बहुरि केई आज्ञानुसारि जैनी हो हैं। जैसे शास्त्रविषें आज्ञा है

तम मानें हैं परन्तु आज्ञाकी परीक्षा करते नाहीं । सो आज्ञा ही मानना धर्म होय तो सर्व मतवाले अपने अपने शास्त्रकी आज्ञा मानि धर्मात्मा होंय । तातै परीक्षाकरि जिनवचननिकों सत्यपनो पहिचानि जिन आज्ञा माननी योग्य है । बिना परीक्षा किए सत्य असत्य का निर्णय कैसे होय ? अर बिना निर्णय किए जैसे अन्यमती अपने शास्त्रनिकी आज्ञा मानै हैं, तैसें यान जैनशास्त्रनिकी आज्ञा मानी । यहु तो पक्षकरि आज्ञा मानना है।

कोउ कहै, शास्त्रविषें दश प्रकार सम्यक्त्वविषै आज्ञा सम्यक्त्व कह्या है वा आज्ञाविचय धर्म ध्यानका भेद कह्या है वा निःशंकित अंगविषें जिनवचनविषै संशय करना निषेध्या है, सो कैसे है ?

ताका समाधान—शास्त्रनिविषै कथन केई तो ऐसे हैं, जिनको प्रत्यक्ष अनुमानादिकरि परीक्षा करि सकिए है । बहुरि केई कथन ऐसे है, जो प्रत्यक्ष अनुमानादि गोचर नाही । तातै आज्ञा ही करि प्रमाण होय हैं । तहां नाना शास्त्रनिविषै जे कथन समान होंय, तिनको तो परीक्षा करनेका प्रयोजन ही नाही । बहुरि जो कथन परस्पर विरुद्ध होइ, तिनिविषें जो कथन प्रत्यक्ष अनुमानादि गोचर होय, तिनको तो परीक्षा करनी । तहा जिनशास्त्र क कथन की प्रमाणता ठहर, तिनि शास्त्रविषै जे प्रत्यक्ष अनुमान गोचर नाही ऐसे कथन किए होय, तिनको भी प्रमाणता करनी । बहुरि जिनशास्त्रनिके कथनकी प्रमाणता न ठहरै, तिनके सर्वहू कथनकी अप्रमणता माननी ।

इहां कोऊ कहै—परीक्षा किए कोई कथन कोई शास्त्रविषें प्रमाण भासै, कोई कथन कोई शास्त्रविषै अप्रमाण भासै तो कहा करिए ?

ताका समाधान—जे आप्तके भाखे शास्त्र हैं, तिनिविषें कोई ही कथन प्रमाण-विरुद्ध न होय। जातैं कै तो जानपना ही न होय, कै राग द्वेष होय तो असत्य कहै। सो आप्त ऐसा होय नाहीं, तातैं परीक्षाती कौ नाहीं करी है, तातैं भ्रम है।

बहुरि वह कहै है—छद्मस्थकैं अन्यथा परीक्षा होय जाय तौ कहा करै ?

ताका समाधान—सांची झूंठी दोऊ वस्तुनिकौं मीड़े अर प्रमाद छोड़ि परीक्षा किए तो सांची ही परीक्षा होय। जहां पक्षपातकरि नीके परीक्षा न करै, तहां ही अन्यथा परीक्षा हो है।

बहुरि वह कहै है, जो शास्त्रनिविषें परस्पर विरुद्ध कथन तो घन, कौन-कौनकी परीक्षा करिए।

ताका समाधान—मोक्षमार्गविषें देव गुरू धर्म वा जीवादि तत्त्व वा बंधमोक्षमार्ग प्रयोजनभूत हैं, सो इनिकी परीक्षा करि लेनी। जिन शास्त्रनिविषें ए सांचे कहे, तिनकी सर्व आज्ञा माननी। जिनविषें ए अन्यथा प्ररूपे, तिनकी आज्ञा न माननी। जैसें लोकविषें जो पुरुष प्रयोजनभूत कार्यनिविषें झूठ न बोलै, सो प्रयोजनरहित कार्यनिविषैं कैसें झूठ बोलेगा। तैसें जिस शास्त्रविषें प्रयोजनभूत देवादिकका स्वरूप अन्यथा न कह्या, तिस विषें प्रयोजनरहित द्वीप समुद्रादिकका कथन अन्यथा कैसें होय ? जातें देवादिकका कथन अन्यथा किए वक्ताके विषय कषाय पोषे जांय हैं।

इहां प्रश्न—देवादिकका कथन तो अन्यथा विषयकषायतैं किया, तिनि ही शास्त्रनिविषें अन्य कथन अन्यथा काहेकौं किया।

ताका समाधान—जो एक ही कथन अन्यथा कहै, वाका अन्यथापना शीघ्र ही प्रगट होय जाय। जुदी पद्धति ठहरै नाहीं। तातैं घने कथन अन्यथा करनेतैं जुदी पद्धति ठहरै। तहां तुच्छ बुद्धि भ्रममें पड़ि जाय—यहु भी मत है। तातैं प्रयोजनभूतका अन्यथापना का भेलनेके अर्थि अप्रयोजनभूत भी अन्यथा कथन घने किए। बहुरि प्रतीति अनावने के अर्थि कोई२ सांचा भी कथन किया। परन्तु स्यान होय सो भ्रम में परै नाहीं। प्रयोजनभूत कथनकी परीक्षाकरि जहाँ सांच भासै, तिस मत की सर्व आज्ञा मानै, सो परीक्षा किए जैनमत ही सांचा भासै है, अन्य नाहीं। जातैं याका वक्ता सर्वज्ञ वीतराग है, सो झूंठ काहेकों कहै। ऐसे जिन आज्ञा माने जो सांचा श्रद्धान होय, ताका नाम आज्ञा सम्यक्त्व है। बहुरि तहां एकाग्र चिन्तवन होय, ताहीका नाम आज्ञाविचय धर्मध्यान है। जो ऐसे न मानिए अर बिना परीक्षा किए ही आज्ञा माने सम्यक्त्व वा धर्म ध्यान होय जाय, तो जो द्रव्यलिंगी आज्ञा मानि मुनि भया, आज्ञा अनुसारि साधनकरि ग्रैवेयिक पर्यन्त प्राप्त होय, ताकै मिथ्यादृष्टिपना कैसे रह्या ? तातैं किछू परीक्षाकरि आज्ञा माने ही सम्यक्त्व वा धर्म ध्यान होय है। लोकविषै भी कोई प्रकार परीक्षा भए ही पुरुषकी प्रतीति कीजिए है। बहुरि तैं कह्या—जिनवचनविषै संशय करनेतैं सम्यक्त्वका शंका नामा दोष हो है, सो 'न जानै यह कैसे है', ऐसा मानि निर्णय न कीजिए, तहां शंका नाम दोष हो है। बहुरि जो निर्णय करनेको विचार करते ही सम्यक्त्वको दोष लागै, तो अष्टसहस्रीविषै आज्ञाप्रधानतैं परीक्षा प्रधानको उत्तम काहेको कह्या ? पृच्छना आदि स्वाध्यायके अंग कैसें

कहे । प्रमाण नयतें पदार्थनिका निर्णय करनेका उपदेश काहेकों दिया। तातें परीक्षा करि आज्ञा मानना योग्य है । बहुरि केई पापी पुरुषां अपना कल्पित कथन किया है अर तिनकों जिनवचन ठहराया है, तिनकों जैनमतका शास्त्र जानि प्रमाण न करना। तहाँ भी प्रमाणादिकतें परीक्षाकरि वा परस्पर शास्त्रनितें विधि मिलाय वा ऐसें सम्भवै है कि नाहीं, ऐसा विचारकरि विरुद्ध अर्थकों मिथ्या ही जानना। जैसे ठिग आप पत्र लिखि तामे लिखनेवालेका नाम किसी साहूकार का धरया, तिस नामके भ्रमतं धनको ठिगावै तो दरिद्री ही होय। तैसे पापी आप ग्रन्थादि बनाय,तहा कर्त्ताका नाम जिन गणधर आचार्यनिका धरया, तिस नामके भ्रमते झूंठा श्रद्धान करै तो मिथ्यादृष्टी ही होय ।

बहुरि वब कहै है— **गोम्मटसार**❀ विषै ऐसा कह्या है— सम्यग्दृष्टि जीव अज्ञान गुरुके निमित्ततै झूठ भी श्रद्धान करै तो आज्ञा माननेतै सम्यग्दृष्टि ही है। सो यहु कथन कैसे किया है ?

ताका उत्तर–जे प्रत्यक्ष अनुमानादिगोचर नाहीं, सूक्ष्मपनेतें जिनका निर्णय न होय सकै, तिनिकी अपेक्षा यहु कथन है। मूलभूत देव गुरु धर्मादि वा तत्त्वादिकका अन्यथा श्रद्धान भए तो सर्वथा सम्यक्त्व रहै नाहीं, यहु निश्चय करना । तातें बिना परीक्षा किए केवल आज्ञा ही करि जैनो है, ते भो मिथ्यादृष्टि जाननें । बहुरि केई परीक्षा भी करि जैनी हो हैं परन्तु मूल परीक्षा नाहीं करै हैं । दया

❀ सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि ।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा ।।२७।।

शील तप संयमादि क्रियानिकरि वा पूजा प्रभावनादि कार्यनिकरि वा अतिशय चमत्कारादिकरि वा जिनधर्मतें इष्ट प्राप्ति होनेकरि जिनमतकों उत्तम जानि प्रीतिवंत होय जैनी होय हैं। सो अन्यमतविषें भी ऐसा तो कार्य पाईए है,तातें इन लक्षणनिविषै अतिव्याप्ति पाईए है।

कोऊ कहै–जैसें जिनधर्मविषें ए कार्य हैं, तैसें अन्यमतविषें नाहीं पाइए हैं। तातें अतिव्याप्ति नाहीं।

ताका समाधान–यहु तो सत्य है, ऐसें ही है । परन्तु जैसें तू दयादिक मानें है, तैसें तो वे भी निरूपै हैं । परजीवनिकी रक्षाकों दया तू कहै है, सोई वे कहैं हैं। ऐसे ही अन्य जाननें।

बहुरि वह कहै है—उनकै ठीक नाहीं। कबहूँ दया प्ररूपै, कबहूँ हिंसा प्ररूपै।

ताका उत्तर– तहाँ दयादिकका अंशमात्र तो आया। तातें अतिव्याप्तिपना इन लक्षणनिकै पाइए है । इनकरि साँची परीक्षा होय नाहीं। तो कैसें होय। जिनधर्म विषै सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र मोक्षमार्ग कह्या है । तहाँ सांचे देवादिकका वा जीवादिकका श्रद्धान किए सम्यक्त्व होय वा तिनकों जाने सम्यग्ज्ञान होय वा साचा रागादिक मिटें सम्यक्चारित्र होय, सो इनका स्वरूप जैसे जिनमत विषै निरूपण किया है, तैसें कहो निरूपण किया नाही वा जैनी बिना अन्यमती ऐसा कार्य करि सकते नाही । तातै यहु जिनमतका सांचा लक्षण है। इस लक्षण कों पहचानि जे परीक्षा करें, तेई श्रद्धानी हैं। इस बिना अन्य प्रकार करि परीक्षा करें हैं, ते मिथ्यादृष्टी ही रहै हैं।

बहुरि केई संगतिकरि जैनधर्म धारै हैं । केई महान् पुरुषको जिनधर्मविषें प्रवर्त्तता देखि आप भी प्रवर्त्तै हैं । केई देखा देखी

जिनधर्मका शुद्ध वा अशुद्ध क्रियानिविषैं प्रवर्त्तै हैं। इत्यादि अनेक प्रकारके जीव आप विचारकरि जिनधर्मका रहस्य नाहीं पहिचानैं हैं अर जैनी नाम धरावैं हैं,ते सर्व मिथ्यादृष्टी ही जानने। इतना तो है, जिनमतविषैं पापका प्रवृत्तिविशेष नहीं होय सकै है अर पुण्यके निमित्त घने है अर साचा मोक्षमार्गके भी कारण तहाँ बनि रहे है। तातैं जे कुलादिकरि भी जैनी है, ते भी औरनितै तो भले ही है।

आजीविकादि प्रयोजनार्थधर्मसाधनका प्रतिषेध

बहुरि जे जीव कपटकरि आजीविकाके अर्थि वा बड़ाईके अर्थि वा किछू विषयकषायसम्बन्धी प्रयोजनविचारि जैनी हो है, ते तो पापी ही हैं। अति तीव्रकषाय भए ऐसी बुद्धि आव है। उनका सुलझना भी कठिन है। जैनधर्म तो संसारका नाश के अर्थि सेइए है। ताकरि जो संसारीक प्रयोजन साध्या चाहै सो बड़ा अन्याय करै है। तातैं ते तो मिथ्यादृष्टि है ही।

इहाँ कोऊ कहै—हिंसादिकरि जिन कार्यकों करिए, ते कार्य धर्मसाधनकरि सिद्ध कीजिए तो बुरा कहा भया। दोऊ प्रयोजन सधै।

ताकों कहिए है—पापकार्य अर धर्मकार्यका एक साधन किए पाप ही होय। जैसें कोऊ धर्मका साधन चैत्यालय बनाय, तिसहीकों स्त्रीसेवनादि पापनिका भी साधन करै,ता पापी ही होय। हिंसादिकरि भोगादिकके अर्थि जुदा मन्दिर बनावै तो बनावो परन्तु चैत्यालयविषैं भोगादि करना युक्त नाहीं। तैसें धर्मका साधन पूजा शास्त्रादि कार्य हैं, तिनहीकों आजीविका आदि पाप का भी साधन करै, तो पापी ही होय। हिंसादि करि आजीविकादि के अर्थि व्यापारादि करै तो करो

परन्तु पूजादि कार्यनिविषैं तो आजीविका आदिका प्रयोजन विचारना युक्त नाहीं।

इहां प्रश्न—जो ऐसैं है तो मुनि भो धर्म साधि पर घर भोजन करें हैं वा साधर्मी साधर्मी का उपकार करें करावे हैं, सो कैसें बनै ?

ताका उत्तर—जो आप तो किछू आजीविका आदि का प्रयोजन विचारि धर्म नाही साधैं हैं,आपकों धर्मात्मा जानि केई स्वयमेव भोजन उपकारादि करें है तौ तो किछु दोष है नाही। बहुरि जो आप ही भोजनादिका प्रयोजन विचारि धर्मसाधैहै,तो पापी है ही। जे विरागी होय मुनिपनो अंगीकार करैं हैं, तिनिकै भोजनादिका प्रयोजन नाहीं, शरीरकी स्थिति के अर्थि स्वयमेव भोजनादि कोई दे तो लें, नाहा समता राखे। संक्लेशरूप होय नाहीं। बहुरि आप हितके अर्थि धर्म साधै हैं, उपकार करवानेका अभिप्राय नाहीं है। अर आपकै जाका त्याग नाही, ऐसा उपकार करावैं। कोई साधर्मी स्वयमेव उपकार करै तो करो अर न करै तो आपके किछू सक्लेश होता नाहीं। सो ऐसैं तो योग्य है। अर आपही आजोविका आदिका प्रयोजन विचारि बाह्य धर्मका साधन करै, जहाँ भोजनादि उपकार कोई न करै तहाँ सक्लेश करै, याचना करै,उपाय करै वा धर्मसाधनविषैं शिथिल होय जाय सो पापी ही जानना। ऐसैं संसारीक प्रयोजन लिए जे धर्म साधै हैं ते पापी भी हैं अर मिथ्यादृष्टि हैं ही। या प्रकार जिनमतवाले भी मिथ्यादृष्टि जानने। अब इनकै धर्मका साधन कैसे पाइए है,सो विशेष दिखाइए है—

जैनाभाषी मिथ्यादृष्टि कीधर्म साधना

तहाँ केई जीव कुलप्रवृत्तिकरि वा देख्यां देखो लोभादिका

अभिप्रायकरि धर्म साधै हैं,तिनिकै तो धर्मदृष्टि नाहीं । जो,भक्ति करै है तो चित्त तो कहीं है, दृष्टि फिरचा करै है । अर मुखतें पाठादि कर है वा नमस्कारादि करै है परन्तु यहु ठीक नाहीं--में कौन हूँ,किसकी स्तुति करूं हूँ, किस प्रयोजनके अर्थि स्तुति करूं हूं, पाठविषें कहा अर्थ है, सो किछू ठीक नाहीं। बहुरि कदाचित कुदेवादिककी भी सेवा करने लगि जाय। तहां सुदेवसुगुरुसुशास्त्रादि वा कुदेवकुगुरुकुशास्त्रादि विषें विशेष पहिचान नाहीं । बहुरि जो दान दे है तो पात्र अपात्र का विचाररहित जैसें अपनी प्रशंसा होय तैसे दान दे है । बहुरि तप करै है तो भूखा रहनेकरि महंतपनो होय सो कार्य करै है । परिणामनि-की पहिचान नाहीं । बहुरि व्रतादिक धारै है, तहां बाह्य क्रिया ऊपर दृष्टि है। सो भी कोई साँची क्रिया करै है, कोई झूठी करै है । अर अतरंग रागादि भाव पाइए है, तिनिका विचार ही नाहीं वा बाह्य भी रागादि पोषने का साधन करै है। बहुरि पूजा प्रभावना आदि कार्य करै है, तहां जैसे लोकविषै बड़ाई होय वा विषय कषाय पोषे जांय तैसे कार्य करै है। बहुरि बहुत हिंसादिक निपजावै है । सो ए कार्य तो अपना वा अन्य जीवनिका परिणाम सुधारने के अर्थि कहे हैं। बहुरि तहां किंचित् हिंसादिक भी निपजै है तो थोरा अपराध होय, गुण बहुत होय सो कार्य करना कह्या है । सो परिणामनिकी पहचान नाहीं । अर यहाँ अपराध केता लागै है, गुण केता हो है सो नफ़ा टोटा का ज्ञान नाहीं वा विधि अविधिका ज्ञान नाहीं । बहुरि शास्त्राभ्यास करै है, तहां पद्धतिरूप प्रवर्त्तै है। जो वांचै है तो और-निकों सुनाय दे है। पढ़ै है तो आप पढ़ि जाय है। सुनै है तो कहै है

सो सुनि ले है। जो शास्त्राभ्यासका प्रयोजन है, ताको आप अंतरंग विषें नाहीं अवधारें है। इत्यादि धर्मकार्यनिका मर्मकों नाहीं पहिचानें। केई तो कुलविषें जैसें बड़े प्रवर्त्तें तैसें हमकों भी करना अथवा और करें हैं तैसे हमको भी करना वा ऐसें किए हमारा लोभादिकको सिद्धि होसी, इत्यादि विचार लिए अभूतार्थ धर्म कों साधें हैं। बहुरि केई जीव ऐसे हैं जिनकें किछू तो कुलादिरूप बुद्धि है, किछू धर्मबुद्धि भी है,तातें पूर्वोक्त प्रकार भी धर्मका साधन करै है अर किछू आगें कहिए है, तिस प्रकार करि अपने परिणामनिकों भी सुधारै हैं। मिश्रपनो पाइए है। बहुरि केई धर्म्मबुद्धिकरि धर्म साधै हैं परन्तु निश्चय धर्म्म-कों न जानें हैं। तातें अभूतार्थ रूप धर्मकों साधै हैं। तहां व्यवहार सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्रकों मोक्षमार्ग जानि तिनिका साधन करै हैं। तहा शास्त्रविषै देव गुरु धर्मकी प्रतीति किए सम्यक्त्व होना कह्या है। ऐसी आज्ञा मानि अरहन्तदेव, निर्ग्रन्थगुरु, जैनशास्त्र बिना औरनिकों नमस्कारादि करने का त्याग किया है परन्तु तिनिका गुण अवगुणकी परीक्षा नाही करै हैं। अथवा परोक्षा भी करै हैं तो तत्त्वज्ञान पूर्वक साँची परीक्षा नाही करै है, बाह्यलक्षणनिकरि परीक्षा करै है। ऐसें प्रतीतिकरि सुदेव सुगुरु सुशास्त्रनिकी भक्तिविषै प्रवर्त्तें हैं।

अरहंतभक्तिका अन्यथा रूप

तहाँ अरहत देव है, सो इन्द्रादिकरि पूज्य हैं,अनेक अतिशयसहित हैं, क्षुधादि दोषरहित हैं, शरीरकी सुन्दरताको धरै हैं, स्त्रीसंगमादि रहित हैं, दिव्यध्वनिकरि उपदेश दे हैं, केवलज्ञानकरि लोकालोक जानै हैं, काम क्रोधादिक नष्ट किए हैं,इत्यादि विशेषण कहे हैं। तहां

इनविषें केई विशेषण पुद्‌गलके आश्रय, केई जीवके आश्रय हैं, तिनकों भिन्न भिन्न नाहीं पहिचानै है । जैसें असमानजातीय मनुष्यादि पर्यायनिविषें जीव पुद्‌गलके विशेषणकों भिन्न न जानि मिथ्यादृष्टि धरै है तैसें यह असमान जातीय अरहन्तपर्यायविषें जीव पुद्‌गलके विशेषणनिकों भिन्न न जानि मिथ्यादृष्टि धरै है । बहुरि जे बाह्य विशेषण हैं,तिनकों तो जानि तिनकरि अरहन्तदेवकों महन्तपनो विशेष मानै है अर जे जीवके विशेषण हैं, तिनकों यथावत् न जानि तिन-करि अरहन्तदेवको महन्तपनो आज्ञा अनुसार मानै है अथवा अन्यथा मानै है । जातें यथावत् जोवका विशेषण जानें मिथ्यादृष्टो रहै नाहीं । बहुरि तिनि अरहन्तनिकों स्वर्गमोक्षका दाता दोनदयाल अधम उधा-रकपतितपावन मानै है सो अन्यमती कर्तृत्वबुद्धितें ईश्वरकों जैसें मानै है,तैसें ही यहु अरहन्तकों मानै है । ऐसा नाहीं जानै है—फलतो अपने परिणामनिका लागै है अरहन्त तिनिकों निमित्तमात्र है,तातें उपचार-करि वे विशेषण सम्भवै हैं । अपने परिणाम शुद्ध भए बिना अरहन्त ही स्वर्गमोक्षादिका दाता नाहीं । बहुरि अरहन्तादिकके नामादिकतें श्वानादिक स्वर्ग पाया तहां नामादिकका ही अतिशय मानै है । बिना परिणाम नाम लेने वालोंके भी स्वर्गकी प्राप्ति न होय तो सुननेवालेकै कसें होय । श्वानादिकके नाम सुननेके निमित्ततें कोई मंदकषायरूप भाव भए हैं, तिनका फल स्वर्ग भया है । उपचारकरि नामहीकी मुख्यता करी है । बहुरि अरहन्तादिकके नाम पूजनादिकतें अनिष्ट सामग्रीका नाश, इष्ट सामग्रीकी प्राप्ति मानि रोगादि मेटनेके अर्थि वा धनादिकी प्राप्तिके अर्थि नाम ले है वा पूजनादि करै है । सो इष्ट

अनिष्टका तो कारण पूर्वकर्मका उदय है। अरहन्त तो कर्त्ता है नाहीं। अरहन्तादिकको भक्तिरूप शुभोपयोग परिणामनितें पूर्व पापका संक्रमणादिक होय जाय है। तातें उपचारकरि अनिष्टका नाशकों वा इष्टकी प्राप्तिकों कारण अरहतादिककी भक्ति कहिए है। अर जे जीव पहलेही संसारी प्रयोजन लिए भक्ति करै, ताके तो पापहीका अभिप्राय भया। कांक्षा विचिकित्सारूप भाव भए तिनिकरि पूर्वपापका संक्रमणादि कैसे होय ? बहुरि तिनिका कार्यसिद्ध न भया।

बहुरि केई जोव भक्तिकों मुक्तिका कारण जानि तहां अति अनुरागी होय प्रवर्त्तै है सो अन्यमती जैसे भक्ति तै मुक्ति मानें हैं तैसे याकै भी श्रद्धान भया। सो भक्ति तो रागरूप है। रागतें बंध है। तातें मोक्ष का कारण नाहीं। जब राग उदय आवै, तब भक्ति न करै तो पापानुराग होय। तातें अशुभ राग छोडनेको ज्ञानी भक्ति विषै प्रवर्त्तै है वा मोक्षमार्ग कों बाह्य निमितमात्र भी जानें है। परन्तु यहां ही उपादेयपना मानि संतुष्ट न हो है, शुद्धोपयोगका उद्यमी रहै है। सो ही पंचास्तिकायव्याख्याविषं कह्या है *:—

इयं भक्तिःकेवलभक्तिप्रधानस्याज्ञानिनो भवति। तीव्रराग ज्वरविनोदार्थमस्थानरागनिषेधार्थं क्वचित् ज्ञानिनोपि भवति।

याका अर्थ – यहु भक्ति केवल भक्ति ही है प्रधान जाकै ऐसा अज्ञानी जीवकै हो है। बहुरि तीव्ररागज्वर मेटनेके अर्थि वा कुठिकानें

* अयं हि स्थूल लक्ष्यतया केवलभक्तिप्रधानस्याज्ञानिनो भवति। उपरितनभूमिकायामलब्धास्पदस्यास्थानराग निषेधार्थं तीव्ररागज्वरविनोदार्थं वा कदाचिज्ज्ञानिनोऽपि भवतीति ॥ स० टीका गा० १३६ ॥

रागनिषेधनेके अर्थि कदाचित् ज्ञानिकैं भी हो है।

तहां वह पूछे है, ऐसे है तो ज्ञानी तें अज्ञानीके भक्तिकी अधिकता होती होगी।

ताका उत्तर—यथार्थपनेंकी अपेक्षा तो ज्ञानीकै सांची भक्ति है अज्ञानीकै नाहीं है। अर रागभावकी अपेक्षा अज्ञानीकै श्रद्धानविषैं भी मुक्तिका कारण जाननेतें अति अनुराग है। ज्ञानीकै श्रद्धानविषैं शुभबंधका कारण जाननेंतें तैसा अनुराग नाहीं है। बाह्य कदाचित् ज्ञानीकै अनुराग घना हो है, कदाचित् अज्ञानीकै हो है,ऐसा जानना। ऐसे देवभक्तिका स्वरूप दिखाया।

अब गुरुभक्तिका स्वरूप वाकै कैसें है, सो कहिए है:—

गुरुभक्तिका अन्यथा रूप

केई जीव आज्ञानुसारी हैं। ते तो ए जैनके साधु हैं, हमारे गुरु हैं, तातें इनिकी भक्ती करनी, ऐसें विचारि तिनकी भक्ति करै हैं। बहुरि केई जीव परीक्षा भी करैं हैं। तहां ए मुनि दया पालैं हैं, शील पालै हैं, धनादि नाहीं राखै हैं, उपवासादि तप करै हैं,क्षुधादि परीषह सहैं हैं, किसीसों क्रोधादि नाहीं करैं हैं,उपदेश देय औरनिकों धर्मविषैं लगावें हैं, इत्यादि गुण विचारि तिनविषैं भक्तिभाव करै हैं। सो ऐसे गुण तो परमहंसादिक अन्यमती हैं, तिनविषैं वा जैनी मिथ्यादृष्टीनिविषै भी पाईए हैं। तातें इनिविषैं अतिव्याप्तपनो है। इनिकरि सांची परीक्षा होय नाहीं। बहुरि इनि गुणनिको विचारै है, तिनविषैं केई जीवाश्रित हैं, केई पुद्गलाश्रित हैं, तिनका विशेष न जानता असमानजातीय मुनिपर्यायविषैं एकत्व बुद्धितें मिथ्यादृष्टि ही रहै है।

बहुरि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रको एकतारूप मोक्षमार्ग सोई मुनिनका सांचा लक्षण है, ताकों पहिचानें नाही । जातें यहु पहिचानि भए मिथ्यादृष्टी रहता नाही। ऐसे मुनिनका सांचा स्वरूप ही न जानें तो सांची भक्ति कैसे होय ? पुण्यबंधकों कारणभूत शुभक्रियारूप गुणनिकों पहचानि तिनको सेवातें अपना भला होना जानि तिनविषै अनुरागी होय भक्ति करै है । ऐसें गुरुभक्तिका स्वरूप कह्या।

अब शास्त्रभक्तिका स्वरूप कहिए है :—

शास्त्र भक्तिका अन्यथा रूप

केई जीव तो यहु केवली भगवान्की वाणी है, तातें केवलीके पूज्यपनातें यहु भी पूज्य है, ऐसा जानि भक्ति करें हैं । बहुरि केई ऐसे परीक्षा करें हैं—इन शास्त्रनिविषै विरागता दया क्षमा शील संतोषादिकका निरूपण है तातें ए उत्कृष्ट हैं, ऐसा जानि भक्ति करें हैं। सो ऐसा कथन तो अन्य शास्त्र वेदांतादिक तिनविषै भी पाईए है । बहुरि इन शास्त्रनिविषै त्रिलोकादिकका गम्भीर निरूपण है, तातैं उत्कृष्टता जानि भक्ति करै है। सो इहाँ अनुमानादिकका तो प्रवेश नाहीं । सत्य असत्यका निर्णयकरि महिमा कैसे जानिए । तातैं ऐसैं सांचो परीक्षा होय नाही। इहा अनेकान्तरूप सांचा जीवादितत्वनिका निरूपण है अर सांचा रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग दिखाया है । ताकरि जैनशास्त्रनिकी उत्कृष्टता है, ताकों नाहीं पहिचानै हैं। जातें यहु पहचानि भए मिथ्यादृष्टि रहै नाहीं । ऐसे शास्त्रभक्तिका स्वरूप कह्या ।

या प्रकार याकें देव गुरु शास्त्रकी प्रतीति भई, तातें व्यवहार-सम्यक्त्व भया मानै है । परन्तु उनका सांचा स्वरूप भास्या नाहीं। तातैं प्रतीति भी सांची भई नाहीं । सांची प्रतीति बिना सम्यक्तकी

प्राप्ति नाहीं। तातैं मिथ्यादृष्टी ही है।

तत्वार्थ श्रद्धानका अयथार्थपना

बहुरि शास्त्रविषै **'तत्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्'** (तत्वा॰ सू॰१-२) ऐसा वचन कह्या है। तातैं जैसे शास्त्रनिविषैं जीवादि तत्व लिखे हैं, तैसें आप सीखिले है। तहाँ उपयोग लगावै है। औरनिकों उपदेशै है परन्तु तिन तत्वनिका भाव भासता नाहीं। अर इहां तिस वस्तुके भावहीका नाम तत्व कह्या। सो भाव भासे बिना तत्वार्थ-श्रद्धान कैसें होय? भावभासना कहा सो कहिए है:—

जैसें कोऊ पुरुष चतुर होनेके अर्थि शास्त्रकरि स्वर ग्राम मूर्छना रागनिका रूप ताल तानके भेद तिनिकों सीखै है परन्तु स्वरादिकका स्वरूप नाहीं पहिचानै है। स्वरूप पहिचान भए विना अन्य स्वरा-दिकको अन्य स्वरादिकरूप मानै है वा सत्य भी मानै है तो निर्णय करि नाहीं मानै है। तातैं वाक चतुरपनों होय नाहीं। तैसे कोऊ जीव सम्यक्ती होनेंके अर्थि शास्त्रकरि जीवादिक तत्वनिका स्वरूपकों सीखै है परन्तु तिनके स्वरूपकों नाहीं पहिचानै है। स्वरूप पहिचानें बिना अन्य तत्वनिकों अन्य तत्वरूप मानि ले है वा सत्य भी मानै है तो निर्णयकरि नाहीं मानै है। तातैं वाकै सम्यक्त्व होय नाहीं। बहुरि जैसे कोई शास्त्रादि पढ़्या है वा न पढ़्या है, जो स्वरादिकका स्वरूपकों पहिचानै है तो वह चतुर ही है। तैसें शास्त्र पढ़्या है वा न पढ़्या है, जो जीवादिकका स्वरूप पहिचानै है तो वह सम्यग्दृष्टी ही है। जैसें हिरण स्वर रागादिकका नाम न जानै है अर ताका स्वरूप कों पहिचानै है तैसें तुच्छ बुद्धि जीवादिकका नाम न जानै है अर तिनका स्वरूपकों पहिचानै है। यहु मैं हूँ, ए पर हैं; ए भाव बुरे हैं, ए

भले हैं,ऐसें स्वरूप पहिचानै ताका नाम भावभासना है। **शिवभूति***
मुनि जीवादिकका नाम न जानै था अर "तुषमाषभिन्न" ऐसा घोषने
लगा, सो यहु सिद्धान्तका शब्द था नाहीं परन्तु आपा परका भावरूप
ध्यान किया, तातैं केवली भया। अर ग्यारह अंगके पाठी जीवादि
तत्वनिका विशेषभेद जानैं परन्तु भाव भासै नाहीं, तातै मिथ्यादृष्टी
ही रहै हैं। अब याकै तत्वश्रद्धान किस प्रकार हो है सो कहिए है—

जीव अजीव तत्वके श्रद्धानका अन्यथा रूप

जिनशास्त्रनितैं जीवके त्रस स्थावरादिरूप वा गुणस्थान मार्गणा-
दिरूप भेदनिकों जानै है, अजीवके पुद्गलादि भेदनिकों वा तिनके
वर्णादि विशेषनिकों जानै है परन्तु अध्यात्मशास्त्रनिविषै भेदविज्ञानकों
कारणभूत वा वीतरागदशा होनेकों कारणभूत जैसे निरूपण किया है
तैसे न जानै है। बहुरि किसी प्रसंगतै तैसे भी जानना होय तो शास्त्र
अनुसारि जानि तो ले है परन्तु आपकों आप जानि परका अंश भी
आप विषै न मिलावना अर आपका अंश भी पर विषै न मिलावना,
ऐसा साँचा श्रद्धान नाहीं करै है। जैसैं अन्य मिथ्यादृष्टी निर्धार
बिना पर्यायबुद्धिकरि जानपना विषैं वा वर्णादिविषैं अहंबुद्धि धारै है,
तैसैं यहु भी आत्माश्रित ज्ञानादिविषै वा शरीराश्रित उपदेश उप-
वासादि क्रियानिविषै आपो मानै है। बहुरि शास्त्रके अनुसार कबहूँ
साँची बात भी बनावै परन्तु अंतरंग निर्धाररूप श्रद्धान नाहीं। तातै
जैसे मतवाला माताकों माता भी कहै तो स्याना नाहीं तैसे याकों

* तुसमासं घोसंतो भावविसुद्धो महाणुभावोय।
णामेण य सिवभूई केवलणाणी फुडो जाओ॥ —भावपा० ५३॥

सम्यक्ती न कहिए। बहुरि जैसे कोई औरहीकी बातें करता होय तैसें आत्माका कथन कहै परन्तु यहु आत्मा मैं हूँ, ऐसा भाव नाहीं भासै। बहुरि जैसे कोई औरकूं औरतें भिन्न बतावता होय तैसें आत्म शरीरकी भिन्नता प्ररूपै परन्तु मै इस शरीरादिकतें भिन्न हूँ, ऐसा भाव भासै नाही। बहुरि पर्यायविषैं जीव पुद्गलके परस्पर निमित्ततें अनेक क्रिया हो हैं, तिनकों दोय द्रव्यका मिलापकरि निपजी जानै। यहु जीवकी क्रिया है ताका पुद्गल निमित्त है, यहु पुद्गलकी क्रिया है ताका जोव निमित्त है, ऐसा भिन्न-भिन्न भाव भासै नाहीं। इत्यादि भाव भासे बिना जीव अजीवका सांचा श्रद्धानी न कहिए। तातै जीव अजीव जाननेका तो यह ही प्रयोजन था सो भया नाहीं।

आश्रव तत्वके श्रद्धानका अन्यथा रूप

बहुरि आस्रवतत्वविषै जे हिंसादिरूप पापास्रव हैं, तिनकों हेय जानै है। अहिंसादिरूप पुण्य आस्रव है, तिनको उपादेय मानै है। सो ए तो दोऊ ही कर्मबधके कारण इन विषैं उपादेयपनो माननों सोई मिथ्यादृष्टि है। सोही समयसारका बधाधिकारविषै कह्या है❀—

सर्व जीवनिकै जीवन मरण सुख दुःख अपने कर्मके निमित्ततै हो हैं। जहाँ अन्य जीव अन्य जीवके इन कार्यनिका कर्त्ता होय सोई मिथ्याध्यवसाय बधका कारण है+। तहाँ अन्य जीवनिकों जिवावनेका

❀ समयसार गा० २५४ से २५६

+ सर्वं सदैव नियतं भवति स्वकीय, कर्मोदयान्मरणजीवितदुःखसौख्यम्।
अज्ञानमेतदिह यत्तु परःपरस्य, कुर्यात्पुमान् मरणजीवित दुःख-सौख्यम्॥ १६८

वा सुखी करनेका अध्यवसाय होय सो तो पुण्यबंधका कारण है अर मारनेका वा दुःखी करने का अध्यवसाय होय सो पापबंधका कारण है। ऐसे अहिंसावत् सत्यादिक तो पुण्यबधकों कारण हैं अर हिंसावत् असत्यादिक पापबंधकों कारण हैं। ए सर्व मिथ्याध्यवसाय हैं ते त्याज्य हैं। तातै हिंसादिवत् अहिंसादिककों भी बंधका कारण जानि हेय ही मानना। हिंसाविषै मारनेकी बुद्धि होय सो वाका आयु पूरा हुवा बिना मर नाही, अपनी द्वेषपरणतिकरि आप ही पाप बांधै है। अहिंसाविषै रक्षा करनेकी बुद्धि होय सो वाका आयु अवशेष बिना वह जीवै नाही, अपनी प्रशस्त रागपरणतिकरि आप ही पुण्य बांधै है। ऐसै ए दोऊ हेय हैं। जहा वीतराग होय दृष्टा ज्ञाता प्रवर्त्तै, तहाँ निर्बन्ध है सो उपादेय है। सो ऐसी दशा न होय, तावत् प्रशस्त राग-रूप प्रवर्त्तौ परन्तु श्रद्धान तो ऐसा राखो—यहु भी बंधका कारण है, हेय है। श्रद्धानविषै याकों मोक्षमार्ग जाने मिथ्यादृष्टी ही हो है।

बहुरि मिथ्यात्व अविरति कषाय योग ए आस्रवके भेद हैं, तिनकों बाह्यरूप तो मानै, अंतरंग इन भावनिकी जातिकों पहिचानै नाहीं। तहाँ अन्य देवादिकके सेवनेरूप गृहीतमिथ्यात्वकों मिथ्यात्व जानै अर अनादि अगृहीत मिथ्यात्व है ताकों न पहिचानं। बहुरि बाह्य त्रस-स्थावरको हिंसा वा इन्द्रिय मनके विषयनिविषैं प्रवृत्ति ताकों अविरति

अज्ञानमेतदधिगम्य परात्परस्य, पश्यन्ति ये मरणजीवितदुःखसौख्यम्।
कर्माण्यहंकृतिरसेन चिकीर्षवस्ते, मिथ्यादृशो नियतमात्महनो भवन्ति ॥१६९

—समयसार बंधाधिकार कलश

जानै। हिंसाविषैं प्रमादपरणति मूल है अर विषय सेवनविषैं अभिलाषा मूल है ताकों न अवलोकै। बहुरि बाह्य क्रोधादि करना ताकों कषाय जानै, अभिप्रायविषैं रागद्वेष बसै ताकों न पहिचानै। बहुरि बाह्य चेष्टा होय ताकों योग जानै, शक्तिभूत योगनिकों न जानै। ऐसें आस्रवनिका स्वरूप अन्यथा जानै।

बहुरि रागद्वेष मोहरूप जे आस्रवभाव हैं, तिनका तो नाश करनेकी चिंता नाही अर बाह्यक्रिया वा बाह्य निमित्त मेटनेका उपाय राखै सो तिनके मेटे आश्रव मिटता नाही। द्रव्यलिंगी मुनि अन्य देवादिककी सेवा न करै है, हिंसा वा विषयनिविषैं न प्रवर्त्तै है, क्रोधादि न करै है,मन वचन कायकों रोकै है,तो भी वाकै मिथ्यात्वादि च्यारो आस्रव पाईए हैं। बहुरि कपटकरि भी ए कार्य न करै है। कपटकरि करै तो ग्रैवेयक पर्यंत कैसे पहुँचै। तातै जो अंतरंग अभिप्राय विषैं मिथ्यात्वादिरूप रागादिभाव हैं सोही आस्रव हैं। ताकों न पहिचानै, तातै याकै आस्रवतत्वका भी सत्य श्रद्धान नाही।

बंध तत्वके श्रद्धानका अन्यथा रूप

बहुरि बंधतत्वविषैं जे अशुभभावनिकरि नरकादिरूप पापका बंध होय, ताकों तो बुरा जानै अर शुभभावनिकरि देवादि रूप पुण्यका बंध होय, ताकों भला जानै। सो सर्व ही जीवनिकै दुःखसामग्रीविषैं द्वेष सुख सामग्रीविषैं राग पाईए है, सो ही याकै राग द्वेष करनेका श्रद्धान भया। जैसा इस पर्यायसंबंधी सुखदुःखसामग्रीविषैं राग द्वेष करना तैसा ही आगामी पर्यायसंबंधी सुख दुःख सामग्रीविषैं राग द्वेष

करना। बहुरि शुभग्रशुभभावनिकरि पुण्यपापका विशेष तो अघाति कर्मनिविषें हो है। सो अघातिकर्म आत्मगुणके घातक नाहीं। बहुरि शुभ अशुभ भावनिविषें घातिकर्मनिका तो निरंतर बंध होय, ते सर्व पापरूप ही हैं अर तेई आत्मगुणके घातक हैं। तातें अशुद्ध भावनिकरि कर्मबंध होंय, तिसविषें भला बुरा जानना सोई मिथ्याश्रद्धान है। सो ऐसे श्रद्धानतें बंधका भी याकै सत्य श्रद्धान नाही।

संवर तत्वके श्रद्धानका अन्यथा रूप

बहुरि सवरतत्वविषें अहिसादिरूप शुभास्रव भाव तिनकों संवर जानै है। सो एक कारणतें पुण्यबंध भी मानै अर संवर भी मानै, सो बनै नाही।

यहा प्रश्न—जो मुनिनकै एक काल एकभाव हो है, तहां उनकै बध भी हो है अर सवर निर्जरा भी हो है, सो कैसें है?

ताका समाधान—वह भाव मिश्ररूप है। किछू वीतराग भया है, किछू सराग रह्या है। जे अंश वीतराग भए तिनकरि संवर है अर जे अंश सराग रहे तिनकरि बध है। सो एक भावतें तो दोय कार्य बनें परन्तु एक प्रशस्तरागहीतें पुण्यास्रव भी मानना अर संवर निर्जरा भी मानना सो भ्रम है। मिश्रभावविषे भी यहु सरागता है, यहु विरागता है; ऐसी पहिचान सम्यग्दृष्टीहीकै होय। तातें अवशेष सरागताकों हेय श्रद्धै है। मिथ्यादृष्टीकै ऐसी पहिचान नाहीं तातें सरागभाव विषै संवरका भ्रमकरि प्रशस्त रागरूप कार्यनिकों उपादेय श्रद्धै है।

बहुरि सिद्धांतविषें गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय,

चारित्र इनकरि संवर हो है, ऐसा कह्या है*, सो इनको भी यथार्थ न श्रद्धे है। कैसें सो कहिए है:—

बाह्य मन वचन कायकी चेष्टा मेटै, पापचिंतवन न करै, मौन धरै, गमनादि न करै सो गुप्ति मानै है। सो यहां तो मनविषै भक्ति आदि रूप प्रशस्त रागकरि नाना विकल्प हो हैं, वचन कायकी चेष्टा आप रोकि राखी है तहां शुभप्रवृत्ति है अर प्रवृत्तिविषैं गुप्तिपनो बनैं नाहीं। तातैं वीतरागभाव भए जहां मन वचन कायकी चेष्टा न होय सो ही सांची गुप्ति है।

बहुरि परजीवनिकी रक्षाके अर्थ यत्नाचार प्रवृत्ति ताकौं समिति मानै है। सो हिंसाके परिणामनितैं तो पाप हो है अर रक्षाके परिणामनितें संवर कहोगे तो पुण्यबधका कारण कौन ठहरेगा। बहुरि एषणासमितिविषै दोष टालै है। तहा रक्षाका प्रयोजन है नाही। तातैं रक्षाहीके अर्थ समिति नाहीं है। तो समिति कैसे हो है—मुनिनकै किंचित् राग भए गमनादि क्रिया हो हैं। तहां तिन क्रियानिविषै अति आसक्तताके अभावतै प्रमादरूप प्रवृत्ति न हो है। बहुरि और जीवनिकों दुःखीकरि अपना गमनादि प्रयोजन न साधै हैं तातैं स्वयमेव ही दया पलै है। ऐसे सांची समिति है।

बहुरि बंधादिकके भयतैं स्वर्गमोक्षकी चाहतैं क्रोधादि न करै है, सो यहां क्रोधादि करनेका अभिप्राय तो गया नाहीं। जैसें कोई राजादिकका भयतैं वा महंतपनाका लोभतैं परस्त्री न सेवै है, तो वाकौं त्यागी न कहिए। तैसे ही यहु क्रोधादिका त्यागी नाहीं। तो

* स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षा परीषहजयचारित्रैः। तत्वा० सू०९-२

कैसें त्यागी होय? पदार्थ अनिष्ट इष्ट भासें क्रोधादि हो है। जब तत्व-ज्ञानके अभ्यासतै कोई इष्ट अनिष्ट न भासै, तब स्वयमेव ही क्रोधादिक न उपजें, तब सांचा धर्म हो है।

बहुरि अनित्यादि चितवनतै शरीरादिककों बुरा जानि हितकारी न जानि तिनतै उदास होना ताका नाम अनुप्रेक्षा कहै है। सो यहु तो जैसें काऊ मित्र था, तब उसतै राग था, पीछै वाका अवगुण देखि उदासीन भया। तैसें शरीरादिकतै राग था, पीछै अनित्यादि अवगुण अवलोकि उदासीन भया। सो ऐसी उदासीनता तो द्वेषरूप है। जहाँ जैसा अपना वा शरीरादिकका स्वभाव है, तैसा पहिचान भ्रमको मेटि भला जानि राग न करना, बुरा जानि द्वेष न करना, ऐसी सांची उदासीनताके अर्थि यथार्थ अनित्यत्वादिकका चितवन सोई साची अनुप्रेक्षा है।

बहुरि क्षुधादिक भए तिनके नाशका उपाय न करना, ताकों परीषह सहना कहै है। सो उपाय तो न किया अर अंतरंग क्षुधादि अनिष्ट सामग्री मिले दुखी भया, रति आदिका कारण मिले सुखी भया तो सो दुःख-सुखरूप परिणाम है, सोई आर्त्तध्यान रौद्रध्यान हैं। ऐसे भावनितै संवर कैसे होय ? तातै दुःखका कारण मिले दुखी न होय, सुखका कारण मिले सुखी न होय, ज्ञेयरूपकरि तिनिका जाननहारा ही रहै, सोई साचो परीषहका सहना है।

बहुरि हिंसादि सावद्ययोगका त्यागकों चारित्र मानै है। तहाँ महाव्रतादिरूप शुभयोगकों उपादेयपनेंकरि ग्रहणरूप मानै है। सो तत्त्वार्थसूत्रविषें आस्रव-पदार्थका निरूपण करते महाव्रत अणुव्रत भी आस्रवरूप कहे हैं। ए उपादेय कैसै होय? अर आस्रव तो बंधका साधक

है, चारित्र मोक्षका साधक है तातैं महाव्रतादिरूप आस्रवभावनिकों चारित्रपनों सम्भवै नाहीं,सकल कषायरहित जो उदासीनभाव ताहीका नाम चारित्र है। जो चारित्रमोहके देशघाती स्पर्द्धकनिके उदयतें महा-मंद प्रशस्त राग हो है, सो चारित्रका मल है। याकों छूटता न जानि याका त्याग न करै है,सावद्ययोगहीका त्याग करै है। परन्तु जैसें कोई पुरुष कंदमूलादि बहुत दोषीक हरितकायका त्याग करै है अर केई हरितकायनिको भखै है परन्तु ताकों धर्म न मानै है। तैसें मुनि हिंसादि तीव्रकषायरूप भावनिका त्याग करैं हैं अर केई मंदकषायरूप महाव्रतादिकों पाले हैं परन्तु ताकों मोक्षमार्ग न माने हैं।

यहां प्रश्न—जो ऐसें है तो चारित्रके तेरह भेदनिविषैं महाव्रतादि कैसें कहे हैं ?

ताका समाधान—यहु व्यवहारचारित्र कह्या है। व्यवहार नाम उपचारका है। सो महाव्रतादि भए ही वीतरागचारित्र हो है। ऐसा सम्बन्ध जानि महाव्रतादिविषै चारित्रका उपचार किया है। निश्चय-करि निःकषाय भाव है सोई सांचा चारित्र है। या प्रकार संवरके कारणनिकों अन्यथा जानता संवरका सांचा श्रद्धानी न हो है।

निर्जरा तत्वके श्रद्धानकी अयथार्थता

बहुरि यहु अनशनादि तपतै निर्जरा मानै है। सो केवल बाह्यतप ही तो किए निर्जरा होय नाहीं। बाह्यतप तो शुद्धोपयोग बधावनेके अर्थि कीजिए है। शुद्धोपयोग निर्जराका कारण है तातें उपचारकरि तपकों भी निर्जराका कारण कह्या है। जो बाह्य दुःख सहना ही निर्जराका कारण होय तो तिर्यंचादि भी भूख तृषादि सहैं हैं।

तब वह कहै है—वे तो पराधीन सहैं हैं, स्वाधीनपनें धर्मबुद्धितैं उपवासादिरूप तप करे, ताकैं निर्जरा हो है ?

ताका समाधान—धर्मबुद्धिते बाह्य उपवासादि तो किए, बहुरि तहाँ उपयोग अशुभ शुभ शुद्धरूप जैसें परिणमै तैसें परिणमो। घनें उपवासादि किए घनी निर्जरा होय,थोरे किए थोरी निर्जरा होय; जो ऐसे नियम ठहरै तौ तो उपवासादिकही मुख्य निर्जराका कारण ठहरे, सो तो बनै नाहीं। परिणाम दुष्ट भए उपवासादिकतैं निर्जरा होनी कैसे सम्भवै ? बहुरि जो कहिए—जैसा अशुभ शुभ शुद्धरूप उपयोग परिणमै ताके अनुसार बध निर्जरा है। तो उपवासादि तप मुख्य निर्जराका कारण कैसे रह्या? अशुभ शुभ परिणाम बंधके कारण ठहरे, शुद्ध परिणाम निर्जराके कारण ठहरे।

यहाँ प्रश्न—जो तत्वार्थसूत्रविषै "**तपसा निर्जरा च**" [९-३] ऐसा कैसें कह्या है ?

ताका समाधान—शास्त्रविषैं "**इच्छानिरोधस्तपः**" ऐसा कह्या है। इच्छाका रोकना ताका नाम तप है। सो शुभ अशुभ इच्छा मिटै उपयोग शुद्ध होय, तहाँ निर्जरा हो है। तातै तपकरि निर्जरा कही है।

यहाँ कोऊ कहै; आहारादिरूप अशुभकी तो इच्छा दूरि भए ही तप होय परन्तु उपवासादिक वा प्रायश्चित्तादि शुभ कार्य हैं तिनकी इच्छा तो रहै ?

ताका समाधान—ज्ञानी जननिकै उपवासादि की इच्छा नाहीं है, एक शुद्धोपयोग की इच्छा है। उपवासादि किए शुद्धोपयोग बधै है, तातै उपवासादि करै हैं। बहुरि जो उपवासादिकतैं शरीर वा परिणामनिकी शिथिलताकरि शुद्धोपयोग शिथिल होता जानें, तहां

आहारादिक ग्रहै हैं। जो उपवासादिकहीतें सिद्धि होय, तो अजितनाथादिक तेईस तीर्थंकर दीक्षा लेय दोय उपवास ही कैसें धरते? उनको तो शक्ति भी बहुत थी। परन्तु जैसें परिणाम भए तैसें बाह्य साधनकरि एक वीतराग शुद्धोपयोगका अभ्यास किया।

यहां प्रश्न--जो ऐसें है तो अनशनादिकको तपसंज्ञा कैसें भई?

ताका समाधान—इनिको बाह्यतप कहै हैं। सो बाह्यका अर्थ यहु-जो बाह्य औरनिकों दीसें यहु तपस्वी है। बहुरि आप तो फल जैसा अन्तरग परिणाम होगा तैसा ही पावेगा। जातें परिणामशून्य शरीर की क्रिया फलदाता नाही है।

बहुरि इहां प्रश्न—जो शास्त्रविषै तो अकामनिर्जरा कही है। तहां बिना चाहि भूख तृषादि सहे निर्जरा हो है तो उपवासादिकरि कष्ट सहें कैसे निर्जरा न होय?

ताका समाधान--अकामनिर्जराविषैं भी बाह्य निमित्त तो बिना चाह भूख तृषाका सहना भया है। अर तहां मंद कषायरूप भाव होय तो पापकी निर्जरा होय, देवादि पुण्यका बध होय। अर जो तीव्रकषाय भए भी कष्ट सहे पुण्यबंध होय, तो सर्व तिर्यंचादिक देव ही होंय सो बनै नाही। तैसे ही चाहकरि उपवासादि किए तहां भूख तृषादि कष्ट सहिए है। सो यहु बाह्य निमित्त है। यहां जैसा परिणाम होय तैसा फल पावै है। जैसे अन्नको प्राण कह्या। बहुरि ऐसें बाह्यसाधन भए अंतरंगतपकी वृद्धि हो है तातै उपचारकरि इनकों तप कहे हैं। जो बाह्य तप तो करै अर अंतरंग तप न होय तो उपचारतै भी वाको तपसंज्ञा नाहीं। सोई कह्या है—

कषायविषयाहारो त्यागो यत्र विधीयते।
उपवासः स विज्ञेयः शेषं लंघनकं विदुः ॥

जहाँ कषाय विषय आहारका त्याग कीजिए सो उपवास जानना। अवशेषकों श्रीगुरु लंघन कहैं हैं।

यहाँ कहेगा– जो ऐसैं है तो हम उपवासादि न करेंगे ?

ताकों कहिए है—उपदेश तो ऊँचा चढ़नेको दीजिए हैं। तू उलटा नीचा पड़ेगा तो हम कहा करेंगे। जो तू मानादिकतें उपवासादि करै है तो करि वा मति करै; किछू सिद्धि नाहीं। अर जो धर्मबुद्धितें आहारादिकका अनुराग छोड़े है, तो जेता राग छूटचा तेता ही छूटचा परन्तु इसहीको तप जानि इसतें निर्जरामानि सन्तुष्ट मति होहु। बहुरि अंतरंग तपनिविषैं प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, त्याग, ध्यानरूप जो क्रिया ताविषैं बाह्य प्रवर्त्तन सो तो बाह्य तपवत् ही जानना। जैसे अनशनादि बाह्य क्रिया हैं, तैसैं ए भी बाह्य क्रिया हैं। तातें प्रायश्चित्तादि बाह्य साधन अंतरंग तप नाहीं हैं। ऐसा बाह्य प्रवर्त्तन होतें जो अंतरंग परिणामनिकी शुद्धता होय, ताका नाम अंतरंग तप जानना। तहां भी इतना विशेष है, बहुत शुद्धता भए शुद्धोपयोगरूप परणति होइ; तहाँ तो निर्जरा ही है, बंध नाही हो है। अर स्तोक शुद्धता भए शुभोपयोगका भी अंश रहै, तो जेती शुद्धता भई ताकरि तो निर्जरा है अर जेता शुभ भाव है ताकरि बंध है। ऐसा मिश्रभाव युगपत् हो है, तहां बंध वा निर्जरा दोऊ हो हैं।

यहाँ कोऊ कहै–शुभ भावनितें पापकी निर्जरा हो है, पुण्यका बंध हो है, शुद्ध भावनितें दोऊनिकी निर्जरा हो है, ऐसा क्यों न कहो ?

ताका उत्तर—मोक्षमार्गविषें स्थितिका तो घटना सर्वही प्रकृतीनिका होय। तहाँ पुण्य पापका विशेष है ही नाहीं। अर अनुभागका घटना पुण्यप्रकृतीनिका शुद्धोपयोगतें भी होता नाहीं। ऊपरि ऊपरि पुण्यप्रकृतीनिके अनुभागका तीव्रबंध उदय हो है अर पापप्रकृतिके परमाणु पलटि शुभप्रकृतिरूप होंय, ऐसा संक्रमण शुभ व शुद्ध दोऊ भाव होतें होय। तातैं पूर्वोक्त नियम सम्भवै नाहीं। विशुद्धताहीके अनुसारि नियम सम्भवै है। देखो, चतुर्थगुणस्थानवाला शास्त्राभ्यास आत्मचिंतवनादि कार्यकरै, तहाँ भी निर्जरा नाहीं, बंध भी घना होय। अर पंचमगुणस्थानवाला विषय-सेवनादि कार्य करै, तहाँ भी वाकै गुणश्रेणि निर्जरा हुआ करै, बंध भी थोरा होय। बहुरि पंचम गुण-स्थानवाला उपवासादि वा प्रायश्चित्तादि तप करै,तिस कालविषैं भी वाकै निर्जरा थोरी अर छठागुणस्थानवाला आहार विहारादि क्रिया करै,तिस कालविषैं भी वाकै निर्जरा घनी, उसतें भी बंध थोरा होय। तातैं बाह्य प्रवृत्तिके अनुसारि निर्जरा नाही है। अंतरंग कषाय-शक्ति घटे विशुद्धता भए निर्जरा हो है। सो इसका प्रगट स्वरूप आगै निरूपण करेंगे, तहाँ जानना। ऐसे अनशनादि क्रियाकों तपसंज्ञा उपचारतें जाननी। याहीतैं इनकों व्यवहार तप कह्या है। व्यवहार उपचारका एक अर्थ है। बहुरि ऐसा साधनतें जो वीतरागभावरूप विशुद्धता होय सो सांचा तप निर्जराका कारण जानना। यहा दृष्टांत—जैसैं धनकों वा अन्नकों प्राण कह्या सो धनतें अन्न ल्याय भक्षण किए प्राण पोषे जांय, तातें उपचार करि धन अन्नकों प्राण कह्या। कोई इन्द्रियादिक प्राणकों न जानें अर इनहीकों प्राण जानि संग्रह करै, तो

मरणही पावै। तैसें अनशनादिककों वा प्रायश्चित्तादिककों तप कह्या, सो अनशनादि साधनतें प्रायश्चित्तादिरूप प्रवर्त्ते वीतरागभावरूप सत्य तप पोष्या जाय। तातें उपचारकरि अनशनादिकों वा प्रायश्चित्तादिकों तप कह्या। कोई वीतरागभावरूप तपकों न जानै अर इनिहीकों तप जानि संग्रह करै तो ससारहीमें भ्रमै। बहुत कहा, इतना समझि लेना, निश्चय धर्म्मतो वीतरागभाव है। अन्य नाना विशेष बाह्य साधन अपेक्षा उपचारतें किए हैं, तिनकों व्यवहारमात्र धर्मसंज्ञा जाननी। इस रहस्यकों न जानैं, तातें वाकै निर्जराका भी सांचा श्रद्धान नाहीं है।

मोक्ष तत्वके श्रद्धानकी अयथार्थता

बहुरि सिद्ध होना ताकों मोक्ष मानै है। बहुरि जन्म जरा मरण रोग क्लेशादि दुःख दूरि भए अनन्तज्ञान करि लोकालोकका जानना भया, त्रिलोकपूज्यपना भया, इत्यादि रूपकरि ताकी महिमा जानै है। सो सर्व जीवनिकै दुःख दूर करनेकी वा ज्ञेय जाननेकी वा पूज्य होनेकी चाहि है। इनिहीके अर्थ मोक्षकी चाह कीनी तो याकै और जीवनिका श्रद्धानतैं कहा विशेषता भई।

बहुरि याकै ऐसा भी अभिप्राय है—स्वर्गविषै सुख है, तिनितैं अनन्तगुणे मोक्षविषैं सुख है। सो इस गुणकारविषै स्वर्ग मोक्ष सुखकी एक जाति जानै है। तहाँ स्वर्गविषै तो विषयादि सामग्रीजनित सुख हो है, ताकी जाति याकों भासै है अर मोक्षविषैं विषयादि सामग्री है नाहीं, सो वहांका सुखकी जाति याको भासै तो नाही परन्तु स्वर्गतै भी मोक्षकों उत्तम महानपुरुष कहै हैं, तातें यहु भी उत्तम ही मानै है। जैसे कोऊ गानका स्वरूप न पहिचानै परन्तु सर्व सभाके सराहैं, तातैं

आप भी सराहै है। तैसे यहु मोक्षको उत्तम मानैं है।

यहाँ वह कहै है—शास्त्रविषैं भी तो इन्द्रादिकतैं अनंत गुणा सुख सिद्धनिकं प्ररूपैं हैं।

ताका उत्तर—जैसे तीर्थंकरके शरीरकी प्रभाको सूर्य प्रभातैं कोट्यां गुणी कही तहां तिनकी एक जाति नाहीं। परन्तु लोकविषैं सूर्यप्रभा की महिमा है, तातै भी बहुत महिमा जनावनेको उपमालकार कोजिए है। तैसे सिद्ध सुखको इन्द्रादिसुखतैं अनन्त गुणा कह्या। तहाँ तिनकी एक जाति नाहीं। परन्तु लोकविषैं इन्द्रादिसुखकी महिमा है, तातै भी बहुत महिमा जनावनेकों उपमालंकार कोजिए है।

बहुरि प्रश्न—जो सिद्ध सुख अर इन्द्रादिसुखकी एक जाति वह जानै है, ऐसा निश्चय तुम कैसे किया ?

ताका समाधान—जिस धर्मसाधनका फल स्वर्ग मानै है, तिस धर्मसाधनहीका फल मोक्ष मानै है। कोई जीव इन्द्रादिपद पावै, कोई मोक्ष पावै, तहां तिन दोऊनिकै एक जाति धर्मका फल भया मानैं। ऐसा तो मानै जो जाकै साधन थोरा हो है सो इन्द्रादिपद पावै है, जाकै सम्पूर्ण साधन होय सो मोक्ष पावै है परन्तु तहां धर्मकी जाति एक जानै है। सो जो कारणको एक जाति जानै, ताकों कार्यको भी एक जातिका श्रद्धान अवश्य होय। जातैं कारणविशेष भए ही कार्य विशेष हो है। तातै हम यहु निश्चय किया, वाकै अभिप्राय विषै इन्द्रादिसुख अर सिद्धसुखकी एक जातिका श्रद्धान है। बहुरि कर्म-निमित्ततैं आत्माकै औपाधिक भाव थे, तिनका अभाव होतैं शुद्ध स्वभावरूप केवल आत्मा आप भया। जसैं परमाणु स्कंधतैं विछुरें

शुद्ध हो है, तैसें यहु कर्मादिकतें भिन्न होय शुद्ध हो है। विशेष इतना– वह दोऊ अवस्थाविषैं दुःखी सुखी नाहीं, आत्मा अशुद्ध अवस्थाविषैं दुःखी था, अब ताके अभाव होनेतें निराकुल लक्षण अनंतसुखकी प्राप्ति भई। बहुरि इन्द्रादिकनिकै जो सुख है, सो कषायभावनिकरि आकुलता रूप है। सो वह परमार्थतं दुःख ही है। तातें वाकी याकी एक जाति नाहीं। बहुरि स्वर्गसुखका कारण प्रशस्तराग है, मोक्षसुखका कारण वीतरागभाव है, तातें कारणविषैं भी विशेष है। सो ऐसा भाव याकौं भासै नाहीं। तातें मोक्षका भी याकै साँचा श्रद्धान नाहीं है।

या प्रकार याकै साँचा तत्वश्रद्धान नाही है। इस ही वास्ते समयसारविषैं* कह्या है–"अभव्यकै तत्वश्रद्धान भए भी मिथ्यादर्शन ही रहै है।" वा प्रवचनसारविषैं+ कह्या है–"आत्मज्ञानशून्य तत्वार्थश्रद्धान कार्यकारी नाही।" बहुरि यहु व्यवहारदृष्टिकरि सम्यग्दर्शनके आठ अंग कहे हैं तिनिकों पालै है। पच्चीस दोष कहे हैं, तिनिको टालै है। संवेगादिक गुण कहे हैं, तिनिकों धारै है। परन्तु जैसें बीज बोए बिना खेतका सब साधन किए भी अन्न होता नाहीं, तैसें साँचा तत्वश्रद्धान भए बिना सम्यक्त होता नाही। सो पंचास्तिकाय व्याख्याविषैं जहाँ अन्तविषैं व्यवहाराभासवालेका वर्णन किया है, तहाँ ऐसा ही कथन किया है। या प्रकार याकै सम्यग्दर्शनके अर्थि साधन करते भी

---

* सद्दहदि य पत्तेदि य रोचेदि य तह पुणो य फासेदि।
धम्मं भोगणिमित्त ण दु सो कम्मक्खयणिमित्तं ॥ गाथा २७५ ॥

+ अत: आत्मज्ञानशून्यमागमज्ञान तत्वार्थश्रद्धान-संयतत्वयौगपद्यमप्यकिंचित्करमेव ॥ सं० टीका अ० ३ गाथा ३९ ॥

सम्यग्दर्शन न हो है।

सम्यग्ज्ञानके अर्थि साधनमें अयथार्थता

अब यहु सम्यग्ज्ञानके अर्थि शास्त्रविषें शास्त्राभ्यास किए सम्यग्ज्ञान होना कह्या है, तातें शास्त्राभ्यासविषें तत्पर रहै है। तहाँ सीखना, सिखावना, याद करना, बांचना, पढ़ना आदि क्रियाविषें तो उपयोगको रमावै है परन्तु वाके प्रयोजन ऊपरि दृष्टि नाहीं है। इस उपदेशविषें मुझको कार्यकारी कहा, सो अभिप्राय नाहीं। आप शास्त्राभ्यासकरि औरनिको सम्बोधन देनेका अभिप्राय राखै है। घने जीव उपदेश मानें तहाँ सन्तुष्ट हो है। सो ज्ञानाभ्यास तो आपके अर्थि कीजिए है, प्रसंग पाय परका भी भला होय तो परका भी भला करै। बहुरि कोई उपदेश न सुनै तो मति सुनो, आप काहेकों विषाद कीजिए। शास्त्रार्थका भाव जानि आपका भला करना। बहुरि शास्त्राभ्यासविषें भी केई तो व्याकरण न्याय काव्य आदि शास्त्रनिकों बहुत अभ्यासै हैं। सो ए तो लोकविषें पंडितता प्रगट करनेके कारण हैं। इन विषें आत्महित निरूपण तो है नाहीं। इनका तो प्रयोजन इतना ही है, अपनी बुद्धि बहुत होय तो थोरा बहुत इनका अभ्यासकरि पीछें आत्महितके साधक शास्त्र तिनिका अभ्यास करना। जो बुद्धि थोरी होय, तो आत्महितके साधक सुगम शास्त्र तिनहीका अभ्यास करै। ऐसा न करना, जो व्याकरणादिकका ही अभ्यास करते करतें आयु पूरी होय जाय अर तत्वज्ञानकी प्राप्ति न बनें।

यहाँ कोऊ कहै—ऐसें है तो व्याकरणादिकका अभ्यास न करना ?

ताकौं कहिए है--

तिनका अभ्यास बिना महान् ग्रन्थनिका अर्थ खुलै नाहीं । तातैं तिनका भी अभ्यास करना योग्य है ।

बहुरि यहां प्रश्न--महान् ग्रन्थ ऐसे क्यों किए, जिनका अर्थ व्याकरणादि बिना न खुलै । भाषाकरि सुगमरूप हितोपदेश क्यों न लिख्या । उनकै किछू प्रयोजन तो था नाहीं ?

ताका समाधान--भाषाविषैं भी प्राकृत संस्कृतादिकके ही शब्द हैं परन्तु अपभ्रंश लिए हैं । बहुरि देश देशविषैं भाषा अन्य अन्य प्रकार है सो महंत पुरुष शास्त्रनिविषै अपभ्रंश शब्द कैसैं लिखे । बालक तोतला बोलै तो बड़े तो न बोलै । बहुरि एकदेशकी भाषारूप शास्त्र दूसरे देशविषैं जाय तो तहां ताका अर्थ कैसै भासै । तातै प्राकृत संस्कृतादि शुद्ध शब्दरूप ग्रन्थ जोड़े । बहुरि व्याकरण बिना शब्दका अर्थ यथावत् न भासै । न्याय बिना लक्षण परीक्षा आदि यथावत् न होय सकै । इत्यादि वचनद्वारि वस्तुका स्वरूप निर्णय व्याकरणादि बिना नीके न होता जानि तिनको आम्नाय अनुसार कथन किया । भाषाविषै भी तिनकी थोरी बहुत आम्नाय आए ही उपदेश होय सकै है । तिनकी बहुत आम्नायतै नीकै निर्णय होय सकै है ।

बहुरि जो कहोगे--ऐसे है, तो अब भाषारूप ग्रन्थ काहेकौं बनाइए है ।

ताका समाधान--कालदोषतैजीवनिकी मंद बुद्धि जानि केई जीवनिकैं जेता ज्ञान होगा तेता ही होगा, ऐसा अभिप्राय विचारि

भाषाग्रन्थ कीजिए है। सो जे जीव व्याकरणादिका अभ्यास न करि सकें, तिनकों ऐसे ग्रंथनिकरि ही अभ्यास करना। बहुरि जे जीव शब्दनिको नाना युक्ति लिएं अर्थ करनेकों ही व्याकरण अवगाहैं हैं, वादादिकरि महंत होनेकों न्याय अवगाहैं हैं, चतुरपना प्रगट करनेके अर्थि काव्य अवगाहैं हैं, इत्यादि लौकिक प्रयोजन लिएं इनिका अभ्यास करें हैं ते धर्मात्मा नाहीं। बनें जेता थोरा बहुत अभ्यास इनका करि आत्महितके अर्थि तत्वादिकका निर्णय करै हैं, सोई धर्मात्मा पंडित जानना।

बहुरि केई जीव पुण्य पापादिक फलके निरूपक पुराणादि शास्त्र वा पुण्य पापक्रियाके निरूपक आचारादि शास्त्र वा गुणस्थान मार्गणा कर्मप्रकृति त्रिलोकादिकके निरूपक करणानुयोगके शास्त्र तिनका अभ्यास करै हैं। सो जो इनिका प्रयोजन आप न विचारै, तब तो सूवाकामा ही पढ़ना भया। बहुरि जो इनका प्रयोजन विचारै है तहाँ पापकों बुरा जानना, पुण्यकों भला जानना, गुणस्थानादिकका स्वरूप जानि लेना, इनका अभ्यास करेंगे तितना हमारा भला है, इत्यादि प्रयोजन विचारया सो इसतै इतना तो होसी—नरकादिक न होसी, स्वर्गादिक होसी परन्तु मोक्षमार्गकी तो प्राप्ति होय नाहीं। पहलें साँचा तत्वज्ञान होय, तहाँ पीछें पुण्यपापका फलकों संसार जानें, शुद्धोपयोगतें मोक्ष मानें, गुणस्थानादिरूप जीवका व्यवहार निरूपण जानै, इत्यादि जैसाका तैसा श्रद्धान करता संता इनिका अभ्यास करै तो सम्यग्ज्ञान होय। सो तत्वज्ञानकों कारण अध्यात्मरूप द्रव्यानुयोगके शास्त्र हैं। बहुरि केई जीव तिन

शास्त्रनिका भी अभ्यास करें हैं। परन्तु जहां जैसें लिख्या है, तैसें आप निर्णय करि आपकों आपरूप, परकों पररूप, आस्रवादिक कों आस्रवादिरूप न श्रद्धान करें हैं। मुखतें तो यथावत् निरूपण ऐसा भी करें, जाके उपदेशतें और जीव सम्यग्दृष्टी होय जांय। परन्तु जैसें लड़का स्त्रीका स्वांगकरि ऐसा गान करै, जाकों सुनते अन्य पुरुष स्त्री कामरूप होय जाँय परन्तु वह जैसें सीख्या तैसें कहै है, वाकों किछू भाव भासै नाहीं, तातें आप कामासक्त न हो है। तैसें यहु जैसे लिख्या तैसें उपदेश दे परन्तु आप अनुभव नाहीं करै है। जो आपकै श्रद्धान भया होता तो और तत्वका अंश और तत्वविषैं न मिलावता। सो याकै थल नाहो, तातें सम्यग्ज्ञान होता नाही। ऐसे यहु ग्यारह अंग-पर्यंत पढ़ै तो भी सिद्धि होतो नाहीं। सो समयसारादिविषै मिथ्या-दृष्टीकै ग्यारह अंगनिका ज्ञान होना लिख्या है।

यहां कोऊ कहै—ज्ञान तो इतना हो है परन्तु जैसें अभव्यसेनकै श्रद्धानरहित ज्ञान भया, तैसें हो है ?

ताका समाधान—वह तो पापी था, जाकै हिंसादिकी प्रवृत्तिका भय नाही। परन्तु जो जीव ग्रैवेयिक आदिविषै जाय है, ताकै ऐसा ज्ञान हो है सो तो श्रद्धानरहित नाही; वाकै तो ऐसा ही श्रद्धान है, ए ग्रन्थ साचे हैं परन्तु तत्वश्रद्धान साचा न भया। समयसारविषै*एकही

* मोक्ख असद्दहंतो अभवियसत्तो दु जो अधीएज्ज।
पाठो ण करेदि गुण असद्दहंतस्स णाण तु।। गाथा २७४।।

मोक्षहि न तावदभव्यः श्रद्धत्ते शुद्धज्ञानमयात्मज्ञानशून्यत्वात्। ततो ज्ञानमपि नासौ श्रद्धत्ते। ज्ञानमश्रद्दधानश्चाचाराद्येकादशांग श्रुतमधीयानोऽपि

जीवके धर्मका श्रद्धान, एकदशांगका ज्ञान, महाव्रतादिकका पालना लिख्या है। प्रवचनसारविषैं❀ ऐसा लिख्या है—आगमज्ञान ऐसा भया जाकरि सर्वपदार्थनिको हस्तामलकवत् जानैं है। यह भी जानै है, इनका जाननहारा मैं हूं। परन्तु मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, ऐसा आपकों परद्रव्यतं भिन्न कैवल चैतन्यद्रव्य नाहीं अनुभवै है। तातैं आत्मज्ञान-शून्य आगमज्ञान भी कार्यकारी नाहीं। या प्रकार सम्यग्ज्ञानके अर्थि जैनशास्त्रनिका अभ्यास करै है, तो भी याकै सम्यग्ज्ञान नाही।

सम्यकचारित्रके अर्थि साधनमें अयथार्थता

बहुरि इनकै सम्यक्चारित्रके अर्थि कैसे प्रवृत्ति है सो कहिए है–बाह्यक्रिया ऊपरि तो इनकै दृष्टि है अर परिणाम सुधरने बिगरनेका विचार नाही। बहुरि जो परिणामनिका भो विचार होय, तो जैसा अपना परिणाम होता दीसै,तिनहीके ऊपरि दृष्टि रहै है। परन्तु उन परिणामनिकी परंपरा विचारें अभिप्रायविषे जो वासना है,ताकों न विचारै है। अर फल लागै है सो अभिप्रायविषें वासना है ताका लागै है। सो इसका विशेष व्याख्यान आगै करेंगे, तहां स्वरूप नीके भासेगा। ऐसी पहिचान बिना बाह्य आचरणका ही उद्यम है।

श्रुताध्ययनगुणाभावान्न ज्ञानी स्यात्। स किल गुणः श्रुताध्ययनस्य यद्वि-विक्तवस्तुभूतज्ञानमयात्मज्ञानं,तच्च विविक्तवस्तुभूतं ज्ञानमश्रद्दधानस्याभव्यस्य श्रुताध्ययनेन न विधातुं शक्येन ततस्तस्य तद्गुणाभावः। ततश्च ज्ञानश्रद्धानाभावात् सोऽज्ञानीति प्रतिनियतः।

❀ परमाणुपमाणं वा मुच्छा देहादिएसु जस्स पुणो।
विज्जदि जदि सो सिद्धि ण लहदि सव्वागमधरो वि।। अ० ३ गाथा ३९।।

तहां केई जोव तो कुलक्रमकरि वा देखादेखी वा क्रोध मान माया लोभादिकतें आचरण आचरै हैं । सो इनकै तो धर्मबुद्धि ही नाहीं, सम्यक्चारित्र कहांतें होय । ए जीव कोईतो भोले हैं वा कषायी हैं, सो अज्ञानभाव वा कषाय होते सम्यक्चारित्र होता नाहीं । बहुरि केई जीव ऐसा मानै है, जो जाननेमें कहा है (अर मानने में कहा है) किछू करेगा तो फल लागेगा । ऐसें विचारि व्रत तप आदि क्रियाहीके उद्यमी रहै हैं अर तत्वज्ञानका उपाय न करै हैं । सो तत्वज्ञान बिना महाव्रतादिका आचरण भी मिथ्याचारित्र ही नाम पावै है । अर तत्वज्ञान भए किछू भी व्रतादिक नाहीं हैं, तो भी असंयतसम्यग्दृष्टी नाम पावै है । तातैं पहले तत्वज्ञानका उपाय करना, पीछेंकषाय घटावनेकों बाह्य साधनकरना । सो ही **योगीन्द्रदेवकृत श्रावकाचारविषै** कह्या है–

"दंसणभूमिहं बाहिरा जिय वयरुक्ख ण हुंति।"

याका अर्थ—यहु सम्यग्दर्शनभूमिका बिना हे जीव व्रतरूपी वृक्ष न होय। बहुरि जिन जीवनिकै तत्वज्ञान नाहीं, ते यथार्थ आचरण न आचरै हैं । सोई विशेष दिखाईए है–

केई जोव पहले तो बड़ी प्रतिज्ञा धरि बैठें अर अंतरंग विषय कषायवासना मिटी नाहीं । तब जैसे तैसें प्रतिज्ञा पूरी किया चाहै,तहा तिस प्रतिज्ञाकरि परिणाम दुःखी हो हैं । जैसे बहुत उपवासकरि बैठे, पीछें पीड़ातें दुःखी हुवा रोगीवत् काल गमावै, धर्मसाधन न करै । सो पहले ही सधतो जानिए तितनी ही प्रतिज्ञा क्यों न लीजिए । दुःखी होनेमें आर्तध्यान होय, ताका फल भला कैसें लागेगा । अथवा

उस प्रतिज्ञाका दुःख न सह्या जाय, तब ताकी एवज विषय पोषनेकौं अन्य उपाय करै। जैसें तृषा लागै तब पानी तो न पीवै अर अन्य शीतल उपचार अनेक प्रकार करै वा घृत तो छोड़ै अर अन्य स्निग्ध वस्तुकों उपायकरि भखै। ऐसें ही अन्य जानना। सो परीषह न सही जाय थी, विषयवासना न छूटै थी, तो ऐसी प्रतिज्ञा काहेकौं करी। सुगम विषय छोड़ि पीछें विषम विषयनिका उपाय करना पड़ै, ऐसा कार्य काहेकों कीजिए। यहां तो उलटा रागभाव तीव्र हो है अथवा प्रतिज्ञाविषें दुःख होय तब परिणाम लगावनेकों कोई आलम्बन विचारै। जैसें उपवासकरि पीछें क्रीड़ा करें। केई पापी जूवा आदि कुविसनविषें लगै है अथवा सोय रह्या चाहैं। यहु जानैं, किसी प्रकारकरि काल पूरा करना। ऐसें ही अन्य प्रतिज्ञाविषै जानना। अथवा केई पापी ऐसे भी हैं, पहलें प्रतिज्ञा करें, पीछें तिसतैं दुःखी होंय तब प्रतिज्ञा छोड़िदे। प्रतिज्ञा लेना छोड़ना तिनके ख्याल-मात्र है। सो प्रतिज्ञा भग करनेका महापाप है। इसतैं तो प्रतिज्ञा न लेनी ही भली है। या प्रकार पहलै तो निर्विचार होय प्रतिज्ञा करें, पीछें ऐसी दशा होय। सो जैनधर्मविषै प्रतिज्ञा न लेनेका दड तो है नाही। जैनधर्मविषैतो यहु उपदेश है, पहलें तो तत्वज्ञानी होय। पीछें जाका त्याग करै, ताका दोष पहिचानें। त्याग किए गुण होय, ताकों जानें। बहुरि अपने परिणामनिको ठीक करै। वर्तमान परिणा-मनिहीके भरोसे प्रतिज्ञा न करि बैठै। आगामी निर्वाह होता जानै, तो प्रतिज्ञा करै। बहुरि शरीरकी शक्ति वा द्रव्य क्षेत्र काल भावादिकका विचार करै। ऐसें विचारि पीछें प्रतिज्ञा करनी, सो भी ऐसी करनी,

जिस प्रतिज्ञातें निरादरपना न होय, परिणाम बढ़ते रहैं। ऐसी जैन-धर्मकी आम्नाय है।

यहां कोऊ कहै— चांडालादिकोंने प्रतिज्ञा करी, तिनकै इतना विचार कहाँ हो है।

ताका समाधान—मरणपर्यन्त कष्ट होय तो होहु बरन्तु प्रतिज्ञा न छोड़नी, ऐसा बिचारिकरि प्रतिज्ञा करै है, प्रतिज्ञाविषै निरादरपना नाहीं। अर सम्यग्दृष्टी प्रतिज्ञा करै हैं, सो तत्वज्ञानादिपूर्वक ही करैं हैं। बहुरि जिनकै अंतरंग विरक्तता न भई अर बाह्य प्रतिज्ञा धरैं हैं, ते प्रतिज्ञाके पहलें वा पीछें जाकी प्रतिज्ञा करैं, ताविषैं अति आसक्त होय लागै हैं। जैसें उपवासके धारने पारने भोजनविषै अति लोभी होय गरिष्ठादि भोजन करै, शीघ्रता घनी करै। सो जैसे जलको मूंदि राख्या था, छूटचा तब ही बहुत प्रवाह चलने लागा। तैसे प्रतिज्ञाकरि विषय प्रवृत्ति मूंदि, अतरग आसक्तता बधती गई। प्रतिज्ञा पूरी होतें ही अत्यंत विषयप्रवृत्ति होने लागी। सो प्रतिज्ञाका कालविषै विषयवासना मिटी नाही। आगै पीछें ताकी एवज अधिक राग किया, तो फल तो रागभाव मिटे होगा। तातें जेती विरक्तता भई होय, तितनी ही प्रतिज्ञा करनी। महामुनि भी थोरी प्रतिज्ञा करै,पीछें आहारादिविषैं उछटि करै। अर बडी प्रतिज्ञा करै हैं,सो अपनी शक्ति देखकरि करै हैं। जैसें परिणाम चढते रहै सो करै है, प्रमाद भी न होय अर आकुलता भी न उपजै। ऐसो प्रवृत्ति कार्यकारी जाननी।

बहुरि जिनकैं धर्म ऊपरि दृष्टि नाही,ते कबहूँ तो बड़ा धर्म आचरैं, कबहूं अधिक स्वछन्द होय प्रवर्त्तैं। जैसे कोई धर्म पर्वविषैं तो बहुत

उपवासादि करें, कोई धर्मपर्वविषै बारम्बार भोजनादि करैं। सो धर्मबुद्धि होय तो यथायोग्य सर्व धर्मपर्वनिविषै यथायोग्य संयमादि धरैं। बहुरि कबहुँ तो कोई धर्मकार्यविषैं बहुत धन खरचै, कबहुँ कोई धर्मकार्यप्रानि प्राप्त भया होय, तो भी तहाँ थोरा भी धन न खरचैं। सो धर्मबुद्धि होय, तो यथाशक्ति यथायोग्य सर्व ही धर्मकार्यनिविषैं धन खरच्या करै। ऐसैं ही अन्य जानना।

बहुरि जिनकै साँचा धर्मसाधन नाहीं, ते कोई क्रिया तो बहुत बड़ी अंगीकार करैं अर कोई हीनक्रिया किया करैं। जैसे धनादिकका तो त्याग किया अर चोखा भोजन चोखा वस्त्र इत्यादि विषयनिविषैं विशेष प्रवर्त्तै। बहुरि कोई जामा पहरना, स्त्रीसेवन करना, इत्यादि कार्यनिका तो त्यागकरि धर्मात्मापना प्रगट करै अर पीछै खोटे व्यापारादि कार्य करैं, लोकनिंद्य पापक्रियाविषैं प्रवर्त्तै; ऐसैं ही कोई क्रिया अति ऊंची, कोई क्रिया अति नीची करैं। तहां लोकनिंद्य होय धर्मकी हास्य करावै। देखो अमुक धर्मात्मा ऐसे कार्य करै है। जैसें कोई पुरुष एक वस्त्र तो अति उत्तम पहरै, एक वस्त्र अति हीन पहरै तो हास्य ही होय। तैसें यहु हास्य पावै है। साँचा धर्मको तो यहु आम्नाय है, जेता अपना रागादि दूर भया होय, ताके अनुसार जिस पदविषैं जो धर्मक्रिया सम्भवै, सो सर्व अंगोकार करै। जो थोरा रागादि मिट्या होय तो नीचा ही पदविषै प्रवर्त्तै परन्तु ऊँचा पद धराय नीची क्रिया न करै।

यहाँ प्रश्न—जो स्त्रीसेवनादिकका त्याग ऊपरकी प्रतिमाविषैं कह्या है, सो नीचली अवस्थावाला तिनका त्याग करै कि न करै

ताका समाधान—सर्वथा तिनका त्याग नीचली अवस्थावाला कर सकता नाहीं। कोई दोष लागै है, तातैं ऊपरकी प्रतिमाविषैं त्याग कह्या है। नीचली अवस्थाविषै जिसप्रकार त्याग सम्भवै,तैसा नीचली अवस्थावाला भी करै। परन्तु जिस नीचली अवस्थाविषै जो कार्य सम्भवै ही नाहीं ताका करना तो कषायभावनिहीतैं हो है, जैसैं कोऊ सप्तव्यसन सेवै, स्वस्त्रीका त्याग करै, तो कैसे बनें? यद्यपि स्वस्त्रीका त्याग करना धर्म है, तथापि पहलैं सप्तव्यसनका त्याग होय, तब ही स्वस्त्रीका त्याग करना योग्य है। ऐसैं ही अन्य जाननें।

बहुरि सर्व प्रकार धर्मकों न जानें, ऐसा जीव कोई धर्मका अंगकों मुख्यकरि अन्य धर्मनिकों गौण करैहै। जेसें केई जीव दयाधर्मकों मुख्य करि पूजा प्रभावनादि कार्यकों उथापै है,केई पूजा प्रभावनादि धर्मकों मुख्यकरि हिंसादिक का भय न राखै हैं, केई तपकी मुख्यताकरि आर्त्त ध्यानादिकरिकैं भी उपवासादि करें वा आपकों तपस्वी मानि निःशक क्रोधादि करें, केई दानकी मुख्यताकरि बहुत पाप करिकै भी धन उपजाय दान दे हैं, केई आरम्भ त्यागकी मुख्यताकरि याचना आदि करैं हैं※.[केईजीव हिंसा मुख्यकरि स्नानशौचादि नाही करैं है वा लौकिक कार्यआए धर्म छोड़ि तहाँ लगि जांय इत्यादि करें है।] इत्यादि प्रकार करि कोई धर्मकों मुख्यकरि अन्य धर्मकों न गिनै हैं वा वाके आसरैं पापआचरैं है। सो जैसें अविवेकी व्यापारीको कोई व्यापारका नफ़ेके अर्थि अन्य प्रकारकरि बहुत टोटा पाड़ै तैसें यहु कार्य भया। चाहिए

※ यहाँ खरडा प्रति मे अन्य कुछ और लिखनेके लिये संकेत किया है। यह संकेत निम्न प्रकार है:-

'यहां स्नानादि शौच धर्म का कथन तथा लौकिक कार्य आए धर्म छोड़ि तहाँ लगि जाय है,तिनिका कथन लिखना है,किन्तु पं०जी लिख नही पाए।'

तो ऐसें, जैसें व्यापारीका प्रयोजन नफ़ा है, सर्व विचारकरि जैसें नफ़ा घना होय तैसें करे। तसं ज्ञानीका प्रयोजन वीतरागभाव है। सर्व विचारकरि जैसें वीतरागभाव घना होय तैसें करं। जातें मूलधर्म वीतरागभाव है। याही प्रकार प्रविवेकी जीव अन्यथा धर्म अंगीकार करे हैं, तिनकै तो सम्यक्चारित्रका आभास भी न होय।

बहुरि केई जीव अणुव्रत महाव्रतादि रूप यथार्थ आचरण करे हैं। बहुरि आचरणके अनुसार ही परिणाम हैं। कोई माया लोभादिकका अभिप्राय नाहीं है। इनिको धर्म जानि मोक्षके अर्थि इनिका साधन करे हैं। कोई स्वर्गादिक भोगनिकी भी इच्छा न राखे हैं परन्तु तत्त्वज्ञान पहलें न भया, तातें आप तो जानें मैं मोक्षका साधन करूं हूं अर मोक्षका साधन जो है ताकों जाने भी नाहीं। केवल स्वर्गादिकहीका साधन करें। सो मिश्रीकों अमृत जानि भखे अमृतका गुण तो न होय। आपकी प्रतीतिके अनुसार फल होता नाहीं। फल जैसा साधन करै, तैसा ही लागै है'। शास्त्रविषें ऐसा कह्या है—चारित्रविषें 'सम्यक्' पद है, सो अज्ञानपूर्वक आचरणकी निवृत्तिके अर्थि है। तातें पहलें तत्वज्ञान होय, तहाँ पीछे चारित्र होय सो सम्यक्चारित्र नाम पावै है। जैसें कोई खेतीवाला बीज तो बोवै नाहीं अर अन्य साधन करै तो अन्नप्राप्ति कैसें होय। घास फूस ही होय। तैसें अज्ञानी तत्वज्ञानका तो अभ्यास करे नाहीं अर अन्य साधन करै तो मोक्षप्राप्ति कैसें होय, देवपदादिक ही होय। तहाँ केई जीव तो ऐसे हैं, तत्वादिकका नीकें नाम भी न जानें,केवल व्रतादिकविषें ही प्रवर्तें हैं। केई जीव ऐसे हैं, पूर्वोक्त प्रकार सम्यग्दर्शन ज्ञानका अयथार्थ साधनकरि व्रतादि

विषैं प्रवर्त्तें हैं। सो यद्यपि व्रतादिक यथार्थ आचरैं तथापि यथार्थ श्रद्धान ज्ञान बिना सर्व आचरण मिथ्याचारित्र ही है। सोई समयसारका कलशाविषैं कह्या है—

क्लिश्यन्तां स्वयमेव दुष्करतरैर्मोक्षोन्मुखैः कर्मभिः
क्लिश्यन्तां च परे महाव्रततपोभारेण भग्नाश्चिरम्।
साक्षान्मोक्षइदं निरामयपदं संवेद्यमानं स्वयं
ज्ञानं ज्ञानगुणं विना कथमपि प्राप्तुं क्षमन्ते न हि ॥
—निर्जराधिकार ॥१४२॥

याका अर्थ—मोक्षतें पराङ्मुख ऐसे अतिदुस्तर पंचाग्नि तपनादि कार्य तिनकरि आपही क्लेश करै है तो करो। बहुरि अन्य केई जीव महाव्रत अर तपका भारकरि चिरकालपर्यन्त क्षीण होते क्लेश करै हैं तो करो। परन्तु यहु साक्षात् मोक्षस्वरूप सर्वरोगरहित पद जो आपै आप अनुभवमें आवै, ऐसा ज्ञान स्वभाव सो तो ज्ञानगुण बिना अन्य कोई भी प्रकारकरि पावनेकों समर्थ नाहीं है। बहुरि पचास्तिकायविषैं जहाँ अंतविषै व्यवहाराभास वालेका कथन किया है तहां तेरह प्रकार चारित्र होतें भी ताका मोक्षमार्गविषैं निषेध किया है। बहुरि प्रवचनसारविषैं आत्मज्ञानशून्य संयमभाव अकार्यकारी कह्या है। बहुरि इनही ग्रन्थनिविषैं वा अन्य परमात्मप्रकाशादि शास्त्रनिविषैं इस प्रयोजन लिए जहां तहां निरूपण है। तातैं पहलें तत्वज्ञान भए ही आचरण कार्यकारी है।

यहां कोऊ जानेगा, बाह्य तो अणुव्रत महाव्रतादि साधैं हैं, अंतरंग

परिणाम नाहीं वा स्वर्गादिककी वांछाकरि साधै हैं, सो ऐसें साधे तो पापबंध होय । द्रव्यलिंगी मुनि ऊपरिम ग्रैवेयकपर्यन्त जाय है । परावर्तनिविषं इकतीस सागर पर्यन्त देवायुकी प्राप्ति अनन्तबार होनी लिखी है। सो ऐसे ऊंचेपद तो तब ही पावै जब अंतरंग परिणामपूर्वक महाव्रत पाले, महामंदकषायी होय, इस लोक परलोकके भोगादिककी चाह न होय, केवल धर्मबुद्धितें मोक्षाभिलाषी हुवा साधन साधै। तातें द्रव्यलिंगीकै स्थूल तो अन्यथापनों है नाहीं, सूक्ष्म अन्यथापनों है सो सम्यग्दृष्टीकों भासै है। अब इनकै धर्मसाधन कैसे है अर तामें अन्यथापनों कैस है ? सो कहिए हैं—

द्रव्य लिंगी के धर्म साधन में अन्यथापना

प्रथम तो संसारविषै नरकादिकका दुःख जानि वा स्वर्गादिविषै भी जन्म मरणादिकका दुःख जानि संसारतें उदास होय मोक्षकों चाहै हैं। सो इन दुःखनिकों तो दुःख सब ही जानै हैं। इन्द्र अहमिन्द्रादिक विषयानुरागतं इन्द्रियजनित सुख भोगवै हैं ताकों भी दुःख जानि निराकुल सुख अवस्थाको पहचानि मोक्ष चाहैं हैं, सोई सम्यग्दृष्टि जानना। बहुरि विषयसुखादिकका फल नरकादिक है, शरीर अशुचि विनाशीक है—पोषने योग्य नाही, कुटुम्बादिक स्वार्थके सगे हैं, इत्यादि परद्रव्यनिका दोष विचारि तिनिका तो त्याग करै है। व्रतादिकका फल स्वर्गमोक्ष है,तपश्चरणादि पवित्र अविनाशी फलके दाताहैं,तिन-करि शरीर सोखने योग्य है, देव गुरु शास्त्रादि हितकारी हैं, इत्यादि परद्रव्यनिका गुण विचारि तिनहीकों अंगीकार करै है । इत्यादि प्रकारकरि कोई परद्रव्यकों बुरा जानि अनिष्ट श्रद्धै है, कोई परद्रव्य

कों भला जानि इष्ट श्रद्धै है। सो परद्रव्यविषें इष्ट अनिष्टरूप श्रद्धान सो मिथ्या है। बहुरि इसही श्रद्धानतें याकै उदासीनता भी द्वेषबुद्धि रूप हो है। जातें काहूकों बुरा जानना, ताहीका नाम द्वेष है।

कोऊ कहेगा, सम्यग्दृष्टी भी तो बुरा जानि परद्रव्यकों त्यागै है।

ताका समाधान—सम्यग्दृष्टी परद्रव्यनिकों बुरा न जानै है। अपना रागभावकों बुरा जानै है। आप रागभावकों छोरै, तातें ताका कारणका भी त्याग हो है। वस्तु विचारें कोई परद्रव्य तो बुरा भला है नाहीं।

कोऊ कहेगा, निमित्तमात्र तो है।

ताका उत्तर—परद्रव्य जोरावरी तो कोई बिगारता नाहीं। अपने भाव बिगरै तब वह भी बाह्यनिमित्त है। बहुरि वाका निमित्त विना भी भाव बिगरै हैं। तातें नियमरूप निमित्त भी नाही। ऐसें परद्रव्यका तो दोष देखना मिथ्याभाव है। रागादिभाव ही बुरे हैं सो याकै ऐसी समझि नाही। यहु परद्रव्यनिका दोष देखि तिनविषें द्वेषरूप उदासीनता करै है। सांची उदासीनता तो ताका नाम है, कोई ही द्रव्यका दोष वा गुण न भासै, तातें काहूकों बुरा भला न जानै। आपकों आप जानै, परकों पर जानै, परतें किछू भी प्रयोजन मेरा नाहीं ऐसा मानि साक्षीभूत रहै। सो ऐसी उदासीनता ज्ञानीहोकै होय। बहुरि यहु उदासीन होय शास्त्रविषें व्यवहारचारित्र अणुव्रत महाव्रतरूप कह्या है ताकों अंगीकार करै है, एकदेश वा सर्वदेश हिंसादि पापकों छांड़ै है, तिनकी जायगा अहिंसादि पुण्यरूप कार्यनिविषें प्रवर्त्तै है। बहुरि जैसें पर्यायाश्रित पापकार्यनिविषें कर्त्तापना अपना मानें था तैसें ही

और पर्यायाश्रित पुण्यकार्यनिविषैं कर्त्तापना अपना माननें लागा, ऐसें पर्यायाश्रित कार्यनिविषैं अहंबुद्धि माननेकी समानता भई। जैसें मैं जीव मारूं हूं, मैं परिग्रहधारी हूं, इत्यादिरूप मानि थी, तैसें ही मैं जीवनिकी रक्षा करूं हूँ, मैं नग्न परिग्रह रहित हूँ, ऐसी मानि भई। सो पर्यायाश्रित कार्यविषैं अहंबुद्धि सो ही मिथ्यादृष्टि है। सोई समयसारविषैं कह्या है—

ये तु कर्त्तारमात्मानं पश्यन्ति तमसाततः।
सामान्यजनवत्तेषां न मोक्षोपि मुमुक्षुतां ॥१॥
(सर्व वि० अधिकार १६६)

याका अर्थ—जे जीव मिथ्या अन्धकारव्याप्त होते संते आपकों पर्यायाश्रित क्रियाका कर्त्ता मानैं हैं, ते जीव मोक्षाभिलाषी हैं, तोऊ तिनकै जैसें अन्यमती सामान्य मनुष्यनिकै मोक्ष न होय तैसें मोक्ष न हो है। जातैं कर्त्तापनाका श्रद्धानकी समानता है। बहुरि ऐसें आप कर्त्ता होय श्रावकधर्म वा मुनिधर्मकी क्रियाविषैं मन वचन कायकी प्रवृत्ति निरन्तर राखै हैं। जैसें उन क्रियानिविषैं भंग न होय तैसें प्रवर्त्तैं हैं। सो ऐसे भाव तो सराग हैं। चारित्र है सो वीतरागभावरूप है। तातैं ऐसे साधनकों मोक्षमार्ग मानना मिथ्याबुद्धि है।

यहाँ प्रश्न - जो सराग वीतराग भेदकरि दोयप्रकार चारित्र कह्या है सो कैसें हैं?

ताका उत्तर—जैसें तन्दुल दोय प्रकारके हैं - एक तुषसहित हैं एक तुषरहित हैं, तहाँ ऐसा जानना - तुष है सो तन्दुलका स्वरूप नाहीं, तन्दुलविषैं दोष है। अर कोई स्याना तुषसहित तन्दुलका संग्रह करै

था, ताकों देखि कोई भोला तुषनिहीको तन्दुल मानि संग्रह करै तौ वृथा खेद खिन्न ही होय। तैसे चारित्र दोय प्रकारका है—एक सराग है एक वीतराग है। तहां ऐसा जानना—राग है सो चारित्रका स्वरूप नाहीं, चारित्रविषै दोष है। अर केई ज्ञानी प्रशस्तरागसहित चारित्र धरै हैं, तिनकों देखि कोई अज्ञानी प्रशस्तरागहीकों चारित्र मानि संग्रह करै तो वृथा खेदखिन्न ही होय।

यहाँ कोऊ कहेगा—पापक्रिया करतें तीव्ररागादिक होते थे, अब इनि क्रियानिकों करते मंदराग भया। तातै जेता अंशा रागभाव घट्या, तितना अंशा तो चारित्र कहो। जेता अंशा राग रह्या, तेता अंशा राग कहो। ऐसें याकै सरागचारित्र सम्भवै है।

ताका समाधान—जो तत्वज्ञानपूर्वक ऐसें होय तो कहो हो तैसें ही है। तत्वज्ञान बिना उत्कृष्ट आचरण होते भी असंयम ही नाम पावै है। जातैं रागभाव करनेका अभिप्राय नाही मिटै है। सोई दिखाईए है—

द्रव्य लिंगी के अभिप्राय में अयथार्थपना

द्रव्यलिंगी मुनि राज्यादिकको छोड़ि निर्ग्रन्थ हो है, अठाईस मूल गुणनिकों पाले है, उग्रोग्र अनशनादि घना तप करै है, क्षुधादिक बाईस परीषह सहै है, शरीरका खंड खंड भए भी व्यग्र न हो है, व्रत भंगके कारण अनेक मिलैं तो भी दृढ रहै है, कोई सेती क्रोध न करै है, ऐसा साधनका मान न करै है, ऐसे साधनविषैं कोई कपटाई नाहीं है, इस साधनकरि इस लोक परलोकके विषय सुखकों न चाहै है, ऐसी याकी दशा भई है। जो ऐसी दशा न होय तो ग्रैवेयकपर्यन्त कैसें पहुँचै परन्तु याकों मिथ्यादृष्टि असंयमी ही शास्त्रविषैं कह्या। सो ताका

कारण यहु है—याकै तत्वनिका श्रद्धान ज्ञान सांचा भया नाहीं। पूर्वै वर्णन किया,तैसें तत्वनिका श्रद्धान ज्ञान भया है। तिसही अभिप्रायतें सब साधन करै है। सो इन साधननिका अभिप्रायकी परम्पराकों विचारें कषायनिका अभिप्राय आवै है। कैसे ? सो सुनहु—यहु पापका कारण रागादिककों तो हेय जानि छोरै है परन्तु पुण्यका कारण प्रशस्तरागकों उपादेय मानै है। ताके बधनेका उपाय करै है। सो प्रशस्तराग भी तो कषाय है। कषायकों उपादेय मान्या, तब कषाय करनेका ही श्रद्धान रह्या। अप्रशस्त परद्रव्यनिस्यों द्वेषकरि प्रशस्त परद्रव्यनिविषै राग करनेका अभिप्राय भया। किछू परद्रव्य-निविषैं साम्यभावरूप अभिप्राय न भया।

यहां प्रश्न—जो सम्यग्दृष्टी भी तो प्रशस्तरागका उपाय राखै है ।

ताका उत्तर यहु—जैसें काहूकै बहुत दंड होता था, सो वह थोरा दंड देनेका उपाय राखै है अर थोरा दंड दिए हर्ष भी मानै है परन्तु श्रद्धानविषै दंड देना अनिष्ट ही मानै है। तैसें सम्यग्दृष्टीकै पापरूप बहुत कषाय होता था, सो यहु पुण्यरूप थोरा कषाय करनेका उपाय राखै है अर थोरा कषाय भए हर्ष भी मानै है परन्तु श्रद्धान विषैं कषायकौंहेय ही मानै है। बहुरि जैसें कोऊ कमाईका कारण जानि व्यापारादिकका उपाय राखै है, उपाय बनि आए हर्ष मानै है तैसें द्रव्यलिंगी मोक्षका कारण जानि प्रशस्त रागका उपाय राखै है, उपाय बनिआए हर्ष मानै है। ऐसें प्रशस्तरागका उपायविषैं वा हर्षविषैं समानता होतें भी सम्यग्दृष्टीकै तो दण्डसमान मिथ्यादृष्टिकै व्यापारसमान श्रद्धान पाईए है। तातें अभिप्रायविषैं विशेष भया।

बहुरि याकै परीषह तपश्चरणादिकके निमित्ततें दुःख होय, ताका इलाज तो न करै है परन्तु दुःख वेदै है। सो दुःखका वेदना कषाय ही है। जहां वीतरागता हो है, तहां तो जैसें अन्य ज्ञेयकों जानें है तैसें ही दुःखका कारण ज्ञेयकों जानें है। सो ऐसी दशा याकी न हो है। बहुरि उनकों सहै है, सो भी कषायका अभिप्रायरूप विचारतें सहै है। सो विचार ऐसा ही है--जो परवशपनें नरकादिगतिविषैं बहुत दुःख सहे, ये परीषहादिका दुःख तो थोरा है। याकों स्ववश सहे स्वर्ग मोक्षसुखको प्राप्ति हो है। जो इनकों न सहिए अर विषयसुख सेइए तो नरकादिकको प्राप्ति होसी, तहां बहुत दुःख होगा। इत्यादि विचारविषैं परीषहनिविषैं अनिष्टबुद्धि रहै है। केवल नरकादिकके भयतें वा सुखके लोभतें तिनकों सहै है। सो ए सर्व कषायभाव ही हैं। बहुरि ऐसा विचार हो है-जे कर्म बांधे थे, ते भोगे बिना छूटते नाहीं, तातैं मोकों सहनें आए। सो ऐसे विचारतें कर्मफल चेतना रूप प्रवर्त्ते है। बहुरि पर्यायदृष्टितें जे परीषहादिकरूप अवस्था हो है, ताकों आपकै भई मानै है। द्रव्यदृष्टितें अपनी वा शरीरादिककी अवस्थाकों भिन्न न पहिचानै है। ऐसें ही नाना प्रकार व्यवहार विचारतें परीषहादिक सहै है।

बहुरि यानें राज्यादि विषयसामग्रीका त्याग किया है वा इष्ट भोजनादिकका त्याग किया करै है। सो जैसें कोऊ दाहज्वरवाला वायु होनेके भयतें शीतलवस्तु सेवनका त्याग करै है परन्तु यावत् शीतल वस्तुका सेवन रुचै तावत् वाकै दाहका अभाव न कहिए। तैसें राग सहित जीव नरकादिके भयतें विषयसेवनका त्याग करै है परन्तु यावत्

विषयसेवन रुचै तावत् रागका अभाव न कहिए। बहुरि जैसें अमृत का आस्वादी देवकों अन्य भोजन स्वयमेव न रुचै, तैसें स्वरसक आस्वादकरि विषयसेवनकी रुचि याकै न हो है। या प्रकार फलादिक की अपेक्षा परीषह सहनादिकों सुखका कारण जानें है अर विषय-सेवनादिकों दु:खका कारण जानें है। बहुरि तत्कालविषें परीषह सहनादिकतें दु:ख होना मानें है, विषयसेवनादिकतें सुख मानें है। बहुरि जिनतें सुख दु:ख होना मानिए, तिनविषें इष्ट अनिष्ट बुद्धितें रागद्वेष रूप अभिप्रायका अभाव होय नाहीं। बहुरि जहां रागद्वेष है, तहां चारित्र होय नाहीं। तातें यहु द्रव्यलिंगी विषयसेवन छोरि तप-श्चरणादि करै है तथापि असंयमी हो है। सिद्धांतविषें असंयत देश-संयतसम्यग्दृष्टीतें भी याकों हीन कह्या है। जातें उनकै चौथा पांचवां गुणस्थान है, याकें पहला ही गुणस्थान है।

यहाँ कोऊ कहै कि—असंयत देशसंयत सम्यग्दृष्टीकै कषायनिकी प्रवृत्ति विशेष है अर द्रव्यलिंगी मुनिकै थोरी है, याहीतें असंयत देशसंयत सम्यग्दृष्टि तो सोलहवां स्वर्ग पर्यन्त ही जाय अर द्रव्यलिंगी उपरिम ग्रैवेयकपर्यन्त जाय। तातें भावलिंगो मुनितें तो द्रव्यलिंगीकों हीन कहो, असंयत देशसयत सम्यग्दृष्टीतें याकों हीन कैसें कहिए?

ताका समाधान—असंयत देशसंयत सम्यग्दृष्टीकै कषायनिकी प्रवृत्ति तो है परन्तु श्रद्धानविषै किसी ही कषायके करनेका अभिप्राय नाहीं। बहुरि द्रव्यलिंगीकै शुभ कषाय करनेंका अभिप्राय पाइए है। श्रद्धानविषें तिनकों भले जानैं है। तातें श्रद्धान अपेक्षा असंयत सम्य-दृष्टितें भी याकै अधिक कषाय है। बहुरि द्रव्यलिंगीकै योगनिक

प्रवृत्ति शुभ रूप घनी हो है अर अघातिकर्मनिविषें पुण्य पापबंधका विशेष शुभ अशुभ योगनिके अनुसार है। तातें उपरिम ग्रैवेयकपर्यन्त पहुँचे है,सो किछू कार्यकारी नाहीं। जाते अघातिया कर्म आत्मगुणके घातक नाहीं। इनके उदयतें ऊँचे नीचे पद पाए तो कहा भया। ए तो बाह्य संयोगमात्र संसार दशाके स्वांग हैं। आप तो आत्मा है, तातें आत्मगुणके घातक घातिया कर्म हैं तिनका हीनपना कार्यकारी है। सो घातियाकर्मनिका बध बाह्य प्रवृत्तिके अनुसार नाहीं। अंतरंग कषाय शक्तिके अनुसार है। याहीतें द्रव्यलिंगीतें असंयत देशसयत सम्यग्दृष्टिकै घातिकर्मनिका बध थोरा है। द्रव्यलिंगीकै तो सर्वघातिकर्मनिका बध बहुत स्थिति अनुभाग लिए होय अर असंयत देशसंयत सम्यग्दृष्टिकै मिथ्यात्व अनन्तानुबंधी आदि कर्मका तो बध है ही नाहीं, अवशेष-निका बंध हो है सो स्तोक स्थिति अनुभाग लिए हो है। बहुरि द्रव्यलिंगीकै कदाचित् गुणश्रेणीनिर्जरा न होय, सम्यग्दृष्टिकै कदाचित् हो है अर देश सकल संयम भए निरन्तर हो है। याहीते यहु मोक्ष-मार्गी भया है। तातें द्रव्य लिगी मुनि असंयत देशसंयतसम्यग्दृष्टीतें हीन शास्त्रविषें कह्या है। सो समयसार शास्त्रविषें द्रव्यलिंगी मुनिका हीनपना गाथा वा टीकाकलशानिविषें प्रगट किया है। बहुरि पचा-स्तिकायकी टीकाविषें जहा केवल व्यवहारावलम्बीका कथन किया है, तहाँ व्यवहार पंचाचार होतें भी ताका हीनपना ही प्रगट किया है। बहुरि प्रवचनसारविषें ससार तत्व द्रव्यलिंगीकों कह्या। बहुरि परमात्म प्रकाशादि अन्य शास्त्रनिविषें भी इस व्याख्यानकों स्पष्ट किया है। बहुरि द्रव्यलिंगीकै जप तप शील संयमादि क्रिया पाइए हैं,

तिनकों भी प्रकार्यकारी इन शास्त्रनिविषैं जहां तहां दिखाई हैं, सो तहाँ देखि लेना। यहां ग्रन्थ बधनेके भयतें नाहीं लिखिए हैं। ऐसें केवल व्यवहाराभासके अवलम्बी मिथ्याद्दष्टी तिनका निरूपण किया।

अब निश्चय व्यवहार दोऊ नयनिके आभासको अवलम्बे हैं, ऐसे मिथ्याद्दष्टी तिनिका निरूपण कीजिए है—

निश्चय व्यवहारनयाभासावलम्बी मिथ्यादृष्टियोंका निरूपण

जे जीव ऐसा मानें हैं - जिनमतविषैं निश्चय व्यवहार दोय नय कहे हैं, तातैं हमको तिनि दोऊनिका अंगीकार करना। ऐसें विचारि जैसें केवल निश्चयाभासके अवलम्बीनिका कथन किया था, तैसें तो निश्चयका अंगीकार करें हैं अर जैसें केवल व्यवहाराभासके अवलम्बीनिका कथन किया था, तैसे व्यवहारका अंगीकार करें हैं। यद्यपि ऐसें अगीकार करने विषैं दोऊ नयनिके परस्पर विरोध है तथापि करै कहा, सांचा तो दोऊ नयनिका स्वरूप भास्या नाह अर जिनमतविषैं दोय नय कहे, तिनिविर्षै काहूकों छोड़ी भी जाती नाहीं। तातैं भ्रम लिए दोऊनिका साधन साधै हैं,ते भी जीव मिथ्या-दृष्टी जानने।

अब इनकी प्रवृत्तिका विशेष दिखाईए है—अंतरगविषै आप त निर्द्धार करि यथावत् निश्चय व्यवहार मोक्षमार्गकों पहिचान्या नाहीं जिनआज्ञा मानि निश्चय व्यवहाररूप मोक्षमार्ग दोय प्रकार मानै है सो मोक्षमार्ग दोय नाहो, मोक्षमार्गका निरूपण दोय प्रकार है। जहां सांचा मोक्षमार्गकों मोक्षमार्ग निरूपिए सो निश्चय मोक्षमार्ग है अर जहां जो मोक्षमार्ग तो है नाहीं परन्तु मोक्षमार्गका निमित्त है

वा सहचारी है, ताकों उपचारकरि मोक्षमार्ग कहिए सो व्यवहार मोक्षमार्ग है, जातैं निश्चय व्यवहारका सर्वत्र ऐसा ही लक्षण है। सांचा निरूपण सो निश्चय, उपचार निरूपण सो व्यवहार, तातैं निरूपण अपेक्षा दोय प्रकार मोक्षमार्ग जानना। एक निश्चयमोक्षमार्ग है, एक व्यवहार मोक्षमार्ग है;ऐसें दोय मोक्षमार्ग मानना मिथ्या है। बहुरि निश्चय व्यवहार दोऊनिकूं उपादेय मानै है, सो भी भ्रम है। जातैं निश्चय व्यवहारका स्वरूप तो परस्पर विरोध लिए है। जातैं समयसार विषैं ऐसा कह्या है—

"ववहारोऽभूयत्थो भूयत्थो देसिदो दु सुद्धणओ*।" गाथा ११

याका अर्थ—व्यवहार अभूतार्थ है। सत्य स्वरूपकों न निरूपै है। किसी अपेक्षा उपचारकरि अन्यथा निरूपै है। बहुरि शुद्धनय जो निश्चय है सो भूतार्थ है। जैसा वस्तुका स्वरूप है तैसा निरूपै है। ऐसें इन दोऊनिका स्वरूप तो विरुद्धता लिए है।

बहुरि तू ऐसे मानै है, जो सिद्धसमान शुद्ध आत्माका अनुभवन सो निश्चय अर व्रत शील संयमादिरूप प्रवृत्ति सो व्यवहार, सो ऐसा तेरे मानना ठीक नाहीं। जातैं कोई द्रव्यभावका नाम निश्चय, कोईका नाम व्यवहार ऐसें है नाहीं। एक ही द्रव्यके भावकों तिस स्वरूप ही निरूपण करना, सो निश्चयनय है। उपचारकरि तिस द्रव्यके भावकों अन्य द्रव्यके भावस्वरूप निरूपण करना,सो व्यवहार है। जैसें माटीके

* ववहारोऽभूयत्थो भूयत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूयत्थमस्सिदो खलु सम्माइट्ठी हवइ जीवो ॥ गाथा ११ ॥

घड़ेकों माटीका घड़ा निरूपिए सो निश्चय अर घृत संयोगका उपचार करि वाकों ही घृतका घड़ा कहिए सो व्यवहार । ऐसें ही अन्यत्र जानना । तातें तू किसीकों निश्चय मानें, किसीकों व्यवहार मानें सो भ्रम है। बहुरि तेरे माननें विषै भी निश्चय व्यवहारकै परस्पर विरोध आया । जो तू आपकों सिद्धसमान शुद्ध मानै है, तो व्रतादिक काहेकों करे है। जो व्रतादिका साधनकरि सिद्ध भया चाहै है, तो वर्तमानविषै शुद्ध आत्माका अनुभवन मिथ्या भया । ऐसें दोऊ नयनिकै परस्पर विरोध है । तातें दोऊ नयनिका उपादेयपना बनै नाहीं ।

यहां प्रश्न—जो समयसारादिविषैं शुद्ध आत्माका अनुभवकों निश्चय कह्या है, व्रत तप संयमादिककों व्यवहार कह्या है तैसें ही हम मानें हैं ।

ताका समाधान—शुद्ध आत्माका अनुभव सांचा मोक्षमार्ग है तातें वाकों निश्चय कह्या । यहां स्वभावतें अभिन्न, परभावतें भिन्न ऐसा शुद्ध शब्दका अर्थ जानना । ससारीकों सिद्ध मानना ऐसा भ्रमरूप अर्थ शुद्ध शब्दका न जानना । बहुरि व्रत तप आदि मोक्षमार्ग हैं नाहीं, निमित्तादिकको अपेक्षा उपचारतें इनको मोक्षमार्ग कहिए है तातें इनकों व्यवहार कह्या । ऐसें भूतार्थ अभूतार्थ मोक्षमार्गपनाकरि इनकों निश्चय व्यवहार कहे हैं । सो ऐसै ही मानना । बहुरि ए दोऊ ही साचे मोक्षमार्ग हैं, इन दोऊनिको उपादेय मानना सो तो मिथ्याबुद्धि ही है । तहाँ वह कहै है—श्रद्धान तो निश्चयका राखै हैं अर प्रवृत्ति व्यवहार रूप राखै हैं, ऐसें हम दोऊनिकों अंगीकार करें हैं । सो ऐसैं भी बनें नाहीं, जातें निश्चयका निश्चयरूप अर व्यवहारका

व्यवहार रूप श्रद्धान करना युक्त है। एक ही नयका श्रद्धान भए एकान्तमिथ्यात्व हो है। बहुरि प्रवृत्तिविषैं नयका प्रयोजन ही नाहीं। प्रवृत्ति तो द्रव्यकी परणति है। तहाँ जिस द्रव्यकी परणति होय,ताकों तिसहीकी प्ररूपिए सो निश्चयनय अर तिसहीकों अन्य द्रव्यकी प्ररूपिए सो व्यहारनय, ऐसें अभिप्राय अनुसार प्ररूपणतें तिस प्रवृत्तिविषैं दोऊ नय बनै हैं। किछू प्रवृत्ति ही तो नयरूप है नाहीं। तातें या प्रकार भी दोऊ नयका ग्रहण मानना मिथ्या है। तो कहा करिए, सो कहिए हैं— निश्चयनयकरि जो निरूपण किया होय, ताकों तो सत्यार्थ मानि ताका श्रद्धान अंगीकार करना अर व्यवहारनयकरि जो निरूपण किया होय, ताकों असत्यार्थ मानि ताका श्रद्धान छोड़ना। सो ही समयसार विषैं कह्या है —

> सर्वत्राध्यवसानमेवमखिलं त्याज्यंयदुक्तं जिनै-
> स्तन्मन्ये व्यवहार एव निखिलोऽप्यन्याश्रयस्त्याजितः।
> सम्यग्निश्चयमेकमेव तदयो निष्कम्पमाक्रम्य किं
> शुद्धज्ञानघने महिम्नि न निजे बध्नन्ति सन्तो धृतिम् ॥१॥

समयसार कलश बंधाधिकार १७३

याका अर्थ- जातै सर्व ही हिंसादि वा अहिंसादिविषैं अध्यवसाय है सो समस्त ही छोड़ना, ऐसा जिनदेवनिकरि कह्या है। तातें मैं ऐसें मानूँ हूँ, जो पराश्रित व्यवहार है सो सर्व ही छुड़ाया है। सन्त पुरुष एक परम निश्चयहीकों भले प्रकार निष्कम्प अंगीकारकरि शुद्ध ज्ञानघनरूप निजमहिमाविषैं स्थिति क्यों न करें हैं।

भावार्थ—यहाँ व्यवहारका तो त्याग कराया, तातें निश्चयकों अंगीकारकरि निजमहिमारूप प्रवर्त्तना युक्त है। बहुरि षट्पाहुड़विषें कह्या है—

जो सुत्तो ववहारे सो जोई जागदे सकज्जम्मि।
जो जागदि ववहारे सो सुत्तो अप्पणे कज्जे ॥१॥

याका अर्थ—जो व्यवहारविषें सूता है सो जोगी अपने कार्यविषें जागै है। बहुरि जो व्यवहारविषें जागै है सो अपने कार्यविषें सूता है। तातें व्यवहारनयका श्रद्धान छोड़ि निश्चयनयका श्रद्धान करना योग्य है। व्यवहारनय स्वद्रव्य परद्रव्यकों वा तिनके भावनिकों वा कारण कार्यादिककों काहूकों काहूविषै मिलाय निरूपण करै है। सो ऐसे ही श्रद्धानतें मिथ्यात्व है तातें याका त्याग करना। बहुरि निश्चयनय तिनही कों यथावत् निरूपै है, काहूकों काहूविषै न मिलावै है। सो ऐसेही श्रद्धानतै सम्यक्त्व हो है तातैं याका श्रद्धान करना।

यहाँ प्रश्न—जो ऐसै है तो जिनमार्गविषै दोऊ नयनिका ग्रहण करना कह्या है सो कैसे ?

ताका समाधान—जिनमार्गविषै कहीं तो निश्चयनयकी मुख्यता लिए व्याख्यान है ताको तो 'सत्यार्थ ऐसैं ही है' ऐसा जानना। बहुरि कही व्यवहारनयकी मुख्यता लिए व्याख्यान है ताको 'ऐसै है नाही, निमित्तादि अपेक्षा उपचार किया है' ऐसा जानना। इस प्रकार जानने का नाम ही दोऊ नयनिका ग्रहण है। बहुरि दोऊ नयनिके व्याख्यानकों समान सत्यार्थ जानि ऐसें भी है, ऐसै भी है—ऐसा भ्रमरूप प्रवर्त्तनेकरि तो दोऊ नयनिका ग्रहण करना कह्या है नाही।

बहुरि प्रश्न—जो व्यवहारनय असत्यार्थ है तो ताका उपदेश जिनमार्गविषैं काहेकों दिया ? एक निश्चयनयहीका निरूपण करना था।

ताका समाधान—ऐसा ही तर्क समयसारविषै किया है। तहाँ यह उत्तर दिया है—

जह णवि सक्कमणज्जो अणज्जभासं विणा उ गाहेउं।
तह ववहारेण विणा परमत्थुवएसणमसक्कं ।। गाथा ८ ।।

याका अर्थ—जैसे अनार्य जो म्लेक्ष सो ताहिकों म्लेक्षभाषा विना अर्थ ग्रहण करावनेकों समर्थ न हूजे। तैसे व्यवहार बिना परमार्थका उपदेश अशक्य है। तातै व्यवहारका उपदेश है। बहुरि इसही सूत्रकी व्याख्याविषै ऐसा कह्या है—'**व्यवहारनयो नानुसर्त्तव्य**'। याका अर्थ—यहु निश्चयके अंगीकार करावनेको व्यवहार करि उपदेश दीजिए है। बहुरि व्यवहारनय है सो अंगीकार करने योग्य नाही।

यहाँ प्रश्न—व्यवहारविना निश्चय का उपदेश कैसे न होय। बहुरि व्यवहारनय कैसे अंगीकार न करना, सो कहो ?

ताका समाधान—निश्चयनयकरि तो आत्मा परद्रव्यनितैं भिन्न स्वभावनितै अभिन्न स्वयंसिद्ध वस्तु है। ताकों जे न पहिचानैं, तिनकों ऐसे ही कह्या करिए तो वह समझै नाहीं। तब उनकों व्यवहारनयकरि शरीरादिक परद्रव्यनिकी सापेक्षकरि नर नारक पृथ्वीकायादिरूप जीवके विशेष किए। तब मनुष्यजीव हैं, नारकी जीव हैं, इत्यादि प्रकार लिए वाकै जीवकी पहिचान भई। अथवा अभेदवस्तुविषै भेद

उपजाय ज्ञान दर्शानदि गुणपर्यायरूप जीवके विशेष किए, तब जाननेवाला जीव है, देखनेवाला जीव है, इत्यादि प्रकार लिए वाकै जीवकी पहिचान भई। बहुरि निश्चयकरि वीतरागभाव मोक्षमार्ग है। ताकों जे न पहिचानै, तिनिको ऐसें ही कह्या करिए, तो वे समझैं नाहीं। तब उनकों व्यवहारनयकरि तत्वश्रद्धानज्ञानपूर्वक पर द्रव्यका निमित्त मेटनेंका सापेक्षकरि व्रत शील सयमादिकरूप वीतराग भावके विशेष दिखाए, तब वाकं वीतरागभावकी पहिचान भई। याही प्रकार अन्यत्र भी व्यवहारविना निश्चय के उपदेशका न होना जानना। बहुरि यहाँ व्यवहारकरि नर नरकादि पर्यायहीकों जीव कह्या, सो पर्यायहीकों जीव न मानि लेना। पर्याय तो जीव पुद्गलका संयोगरूप है। तहां निश्चयकरि जीवद्रव्य जुदा है, ताहीकों जीव मानना। जीवका संयोगतैं शरीरादिककों भी उपचारकरि जीव कह्या, सो कहनें मात्र ही है। परमार्थतें शरीरादिक जीव होते नाहीं, ऐसा ही श्रद्धान करना। बहुरि अभेद आत्माविषै ज्ञानदर्शनादि भेद किए, सो तिनकों भेदरूप ही न मानि लेनें। भेद तो समझावने के अर्थ किए हैं। निश्चयकरि आत्मा अभेद ही है, तिसहीकों जीव वस्तु मानना। सज्ञा संख्यादिकरि भेद कहे, सो कहनें मात्र ही हैं, परमार्थतें जुदे जुदे हैं नाहीं। ऐसा ही श्रद्धान करना। बहुरि परद्रव्य का निमित्त मिटनेकी अपेक्षा व्रतशीलसंयमादिककों मोक्षमार्ग कह्या, सो इनहीकों मोक्षमार्ग न मानि लेना। जातै परद्रव्यका ग्रहण त्याग आत्माके होय, तो आत्मा परद्रव्यका कर्त्ता हर्त्ता होय। सो कोई द्रव्य कोई द्रव्यके आधीन है नाहीं। तातैं आत्मा अपने भाव

रागादिक हैं, तिनकों छोडि वीतरागी हो है। सो निश्चयकरि वीतराग भाव ही मोक्षमार्ग है। वीतराग भावनिकै अर व्रतादिकनिकै कदाचित् कार्य कारणपनों है। तातैं व्रतादिककों मोक्षमार्ग कहे, सो कहनेमात्र ही हैं। परमार्थतैं बाह्य क्रिया मोक्षमार्ग नाहीं, ऐसा ही श्रद्धान करना। ऐसें ही अन्यत्र भी व्यवहारनयका अगीकार न करना जानि लेना।

यहाँ प्रश्न—जो व्यवहारनय परकों उपदेशविषै ही कार्यकारी है कि अपना भी प्रयोजन साधै है?

ताका समाधान—आप भी यावत् निश्चयनयकरि प्ररूपित वस्तुकों न पहिचानै, तावत् व्यवहार मार्गकरि वस्तुका निश्चय करै। तातैं नीचली दशाविषै आपकों भी व्यवहारनय कार्यकारी है। परन्तु व्यवहारकों उपचार मात्र मानि वाके द्वारे वस्तुका ठीक (निश्चय) करै, तौ तो कार्यकारी होय। बहुरि जो निश्चयवत् व्यवहार को भी सत्यभूत मानि वस्तु ऐसें ही है, ऐसा श्रद्धान करै तो उलटा अकार्यकारी होय जाय। सो ही पुरुषार्थसिद्धय् पायविषै कह्या है—

अबुधस्य बोधनार्थं मुनीश्वरा देषयन्त्यभूतार्थम्।
व्यवहारमेव केवलमवैति यस्तस्य देशना नास्ति॥६॥
माणवक एव सिंहो यता भवत्यनवगीतसिंहस्य।
व्यवहार एव हि तथा निश्चयतां यात्यनिश्चयज्ञस्य॥७॥

इनका अर्थ—मुनिराज अज्ञानीके समझावनेकों असत्यार्थ जो व्यवहारनय ताकों उपदेशें हैं। जो केवल व्यवहारहीकों जानै है, ताकों उपदेश ही देना योग्य नाही है। बहुरि जैसे जो सांचा सिंहकों न

जानै, ताकै बिलाव ही सिंह है। तैसें जो निश्चयकों न जानै, ताकै व्यवहार ही निश्चयपणाकों प्राप्त हो है।

इहाँ कोई निर्विचार पुरुष ऐसें कहै—तुम व्यवहारकों असत्यार्थ हेय कहो हो तो हम व्रत शील सयमादि व्यवहार कार्य काहेकों करें—सर्व कों छोडि देवेंगे। ताकों कहिए है—किछू व्रत शील संयमादिक का नाम व्यवहार नाही है। इनको मोक्षमार्ग मानना व्यवहार है सो छोड़ि दे। बहुरी ऐसा श्रद्धानकरि जो इनकों तो बाह्य सहकारी जानि उपचारतें मोक्षमार्ग कह्या है। ए तो परद्रव्याश्रित हैं। बहुरि सांचा मोक्षमार्ग वीतरागभाव है सो स्वद्रव्याश्रित है। ऐसें व्यवहारकों असत्यार्थ हेय जानना। व्रतादिककों छोडनेतें तो व्यवहारका हेयपना होता है नाहीं। बहुरि हम पूछें हैं—व्रतादिककों छोड़ि कहा करेगा ? जो हिंसादिरूप प्रवर्त्तेगा तो तहाँ तो मोक्षमार्ग का उपचार भी सम्भवै नाही। तहाँ प्रवर्त्तनेतें कहा भला होयगा, नरकादिक पावोगे। तातें ऐसें करना तो निर्विचारपना है। बहुरि व्रतादिकरूप परिणति मेटि केवल वीतराग उदासीन भावरूप होना बनै तो भले ही है। सो नीचली दशाविषै होय सकै नाहीं। तातें व्रतादिसाधन छोड़ि स्वच्छन्द होना योग्य नाहीं। या प्रकार श्रद्धानविषैं निश्चयकों, प्रवृत्तिविषै व्यवहारकों उपादेय मानना सो भी मिथ्याभाव ही है।

बहुरि यहु जीव दोऊ नयनिका अंगीकार करनेके अर्थि कदाचित् आपकों शुद्ध सिद्धसमान रागादिरहित केवलज्ञानादिसहित आत्मा अनुभवै है, ध्यानमुद्रा धारि ऐसे विचारविषै लागै है। सो ऐसा आप नाहीं परन्तु भ्रमतें निश्चय करि मैं ऐसा ही हूँ, ऐसा मानि सन्तुष्ट हो

है। कदाचित् वचनद्वारि निरुपण ऐसें ही करै है। सो निश्चय तो यथावत् वस्तुको प्ररूपै, प्रत्यक्ष आप जैसा नाहीं तैसा आपको मानना, सो निश्चय नाम कैसे पावै। जैसा केवल निश्चयाभासवाला जीवकै पूर्वे अयथार्थपना कह्या था, तैसे हीं याकै जानना।

अथवा यह ऐसें मानै है, जो इस नयकरि आत्मा ऐसा है, इस नयकरि ऐसा है। सो आत्मा तो जैसा है तैसा ही है, तिसविषै नयकरि निरूपण करने का जो अभिप्राय है, ताकों न पहिचानै है। जैसे आत्मा निश्चयकरि तो सिद्धसमान केवलज्ञानादिसहित द्रव्यकर्म-नोकर्म-भावकर्मरहित है, व्यवहारनय करि ससारी मतिज्ञानादिसहित वा द्रव्यकर्म-नोकर्म-भावकर्मसहित है—ऐसा मानै है। सो एक आत्माके ऐसे दोय वरूप तो होय नाहीं। जिस भावहीका सहितपना तिस भावहोका रहितपना एकवस्तुविषै कैसे सम्भवै ? तातैं ऐसा मानना भ्रम है। तो कैसै है—जैसै राजा रक मनुष्यपनेकी अपेक्षा समान हैं तैसे सिद्ध ससारी जीवत्वपनेकी अपेक्षा समान कहे हैं, केवलज्ञानादि अपेक्षा समानता मानिए सो है नाही। ससारीकै निश्चयकरि मतिज्ञानादिक ही हैं, सिद्धकै केवलज्ञान है। इतना विशेष है-ससारीकै मतिज्ञानादिक कर्म का निमित्ततै हैं तातै स्वभावअपेक्षा ससारोकै केवलज्ञानकी शक्ति कहिए तो दोष नाही। जैसे रक मनुष्यकै राजा होनेकी शक्ति पाईए, तैसै यहु शक्ति जाननी। बहुरि नोकर्म द्रव्यकर्म पुद्गलकरि निपजे हैं, तातै निश्चयकरि ससारीकै भी इनका भिन्नपना है। परन्तु सिद्धवत् इनका कारण कार्य अपेक्षा सम्बन्ध भी न मानै तो भ्रम ही है। बहुरि भावकम आत्माका भाव है, सो निश्चयकरि आत्माहीका है। कर्मके निमित्त-

तैं हो है, तातैंव्यवहारकरि कर्म का कहिए है । बहुरि सिद्धवत् संसारीकै भी रागादिक न मानना, कर्महीका मानना—यहु भ्रम है। याही प्रकारकरि नयकरि एक ही वस्तुकों एक भावअपेक्षा वैसा भी मानना, वैसा भी मानना, सो तो मिथ्याबुद्धि है। बहुरि जुदे जुदे भावनिकी अपेक्षा नयनिकी प्ररूपणा है, ऐसे मानि यथासंभव वस्तुकों मानना सो साँचा श्रद्धान है। तातैं मिथ्यादृष्टी अनेकान्तरूप वस्तुकों मानै परन्तु यथार्थ भावकों पहिचानि मानि सकै नाहीं, ऐसा जानना।

बहुरि इस जीवकै व्रत शील संयमादिकका अंगीकार पाईए है, सो व्यवहारकरि 'ए भी मोक्ष के कारण हैं' ऐसा मानि तिनकों उपादेय मानै है। सो जैसें केवल व्यवहारावलम्बी जीवकै पूर्वे अयथार्थपना कह्या था, तैसें ही याकै भी अयथार्थपना जानना । बहुरि यहु ऐसें भी मानै है—जो यथा योग्य व्रतादि क्रिया तो करनी योग्य है परन्तु इनविषैं ममत्व न करना। सो जाका आप कर्त्ता होय, तिसविषैं ममत्व कैसे न करिए। आप कर्त्ता न है, तो मुझकों करनी योग्य है ऐसा भाव कैसे किया। अर जो कर्त्ता है, तो वह अपना कर्म भया, तब कर्त्ताकर्म सम्बन्ध स्वयमेव ही भया। सो ऐसी मान्यता तो भ्रम है। तो कैसें है—बाह्य व्रतादिक हैं सो तो शरीरादि परद्रव्यके आश्रय हैं। परद्रव्यका आप कर्त्ता है नाहीं, तातैं तिसविषैकर्तृत्वबुद्धि भी न करनी अर तहाँ ममत्व भी न करना। बहुरि व्रतादिकविषै ग्रहण त्यागरूप अपना शुभोपयोग होय सो अपने आश्रय है। ताका आप कर्त्ता है, तातैं तिसविषै कर्तृत्वबुद्धि भी माननी अर तहाँ ममत्व भी करना। बहुरि

इस शुभोपयोगकों बंधकाही कारण जानना, मोक्षका कारण न जानना, जातैं बंध अर मोक्षकै तो प्रतिपक्षीपना है। तातैं एक ही भाव पुण्य-बध को भी कारण होय अर मोक्षको भी कारण होय, ऐसा मानना भ्रम है। तातैं व्रत अव्रत दोऊ विकल्परहित जहाँ परद्रव्य के ग्रहण त्यागका किछू प्रयोजन नाहीं, ऐसा उदासीन वीतराग शुद्धोपयोग सोई मोक्ष-मार्ग है। बहुरि नीचली दशाविषै केई जीवनिक शुभोपयोग अर शुद्धो पयोगका युक्तपना पाईए है। तातैं उपचारकरि व्रतादिक शुभोपयोगकों मोक्षमार्ग कह्या है। वस्तुविचारता शुभोपयोग मोक्षका घातक ही है। जातैं बधकों कारण सोई मोक्षका घातक है, ऐसा श्रद्धान करना। बहुरि शुद्धोपयोगहीकों उपादेय मानि ताका उपाय करना, शुभोपयोग अशुभपयोग को हेय जानि तिनके त्यागका उपाय करना। जहाँ शुद्धो-पयोग न होय सक, तहाँ अशुभ पयोगको छोडि शुभही विषै प्रवर्त्तना। जातैं शुभोपयोगतैं अशुभोपयोगविषै अशुद्धता की अधिकता है। बहुरि शुद्धोपयोग होय, तब तो परद्रव्यका साक्षीभूत ही रहै है। तहाँ तो किछू परद्रव्य का प्रयोजन ही नाहीं। बहुरि शुभोपयाग होय, तहाँ बाह्य व्रता-दिककी प्रवृत्ति होय अर अशुभोपयोग होय, तहाँ बाह्य अव्रतादिककी प्रवृत्ति होय। जातैं अशुद्धोपयोगकै अर परद्रव्यकी प्रवृत्तिकै निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध पाईए है। बहुरि पहलै अशुभोपयोग छूटि शुभोपयोग होइ, पीछै शुभोपयोग छूटि शुद्धोपयोग होइ। ऐसी क्रमपरिपाटी है।

बहुरि कोई ऐसैं मानै कि शुभोपयोग है सो शुद्धोपयोगको कारण है। सो जैसें अशुभोपयोग छूटि शुभोपयोग हो है, तैसैं शुभोपयोग छूटि शुद्धोपयोग हो है—ऐसै ही कार्यकारणपना होय तो

शुभोपयोगका कारण अशुभोपयोग ठहरै। अथवा द्रव्यलिंगीकै शुभोपयोग तो उत्कृष्ट हो है, शुद्धोपयोग होता ही नाही। तातै परमार्थतै इन कै कारण कार्यपना है नाही। जैसे रोगीके बहुत रोग था, पीछे स्तोक रोग भया, तो वह स्तोक रोग तो निरोग होनेका कारण है नाही। इतना है, स्तोक रोग रहे निरोग होने का उपाय करै तो होइ जाय। वहुरि जो स्तोक रोगहीकों भला जानि ताका राखने का यत्न करै तो निरोग कैसे होय। तैसे कषायीकै तीव्रकषायरूप अशुभोपयोग था, पीछे मदकषायरूप शुभोपयोग भया, तो वह शुभोपयोग तो निकषाय शुद्धोपयोग होनेको कारण है नाही। इतना है—शुभोपयोग भए शुद्धोपयोग का यत्न करै तो होय जाय। बहुरि जो शुभोपयोगहीको भला जानि ताका साधन किया करै तो शुद्धोपयोग कैसे होय। तातै मिथ्यादृष्टी का शुभोपयोग तो शुद्धोपयोगको कारण है नाही। सम्यग्दृष्टीकै शुभोपयोग भए निकट शुद्धोपयोग प्राप्त होय, ऐसा मुख्यपनाकरि कही शुभोपयोगको शुद्धोपयोगका कारण भी कहिए है, ऐसा जानना।

बहुरि यह जीव आपको निश्चय व्यवहाररूप मोक्षमार्गका साधक मानै है। तहाँ पूर्वोक्त प्रकार आत्माको शुद्ध मान्या सो तो सम्यग्दर्शन भया। तैसेही जान्या सो सम्यग्ज्ञान भया। तैसेही विचारविषै प्रवर्त्या सो सम्यक्चारित्र भया। ऐसे तो आपकै निश्चय रत्नत्रय भया मानै। सो मैं प्रत्यक्ष अशुद्ध सो शुद्ध कैसे मानू, जानू, विचारु हूँ इत्यादि विवेकरहित भ्रमतै सन्तुष्ट हो है। बहुरि अरहतादि बिना अन्य देवादिककों न मानै है वा जैन शास्त्र अनुसार जीवादिके भेद सीखि लिए हैं तिनहीकों मानै है, औरकों न मानै सो तो सम्यग्दर्शन

भया। बहुरि जैनशास्त्रनिका अभ्यास विषैं बहुत प्रवर्त्तै है सो सम्यग्ज्ञान भया। बहुरि व्रतादिरूप क्रियानिविषै प्रवर्त्तै है सो सम्यक्चारित्र भया। ऐसे आपकै व्यवहार रत्नत्रय भया मानै। सो व्यवहार तो उपचारका नाम है। सो उपचार भी तो तब बनै जब सत्यभूत निश्चय रत्नत्रयका कारणादिक होय। जैसैं निश्चय रत्नत्रय सधै तैसे इनको साधै तो व्यवहारपनो भी सम्भवै। सो याकै तो सत्यभूत निश्चय रत्नत्रयकी पहिचान ही भई नाही। यहु ऐसे कैसें साधि सकै। आज्ञा अनुसारी हुवा देख्यादेखी साधन करै है। तातैं याकै निश्चय व्यवहार मोक्षमार्ग न भया। आगै निश्चय व्यवहार मोक्षमार्गका निरूपण करेंगे, ताका साधन भए ही मोक्षमार्ग होगा।

ऐसें यहु जीव निश्चयाभासको मानै जानै है परन्तु व्यवहार साधनको भी भला जानै है, तातैं स्वच्छन्द होय अशुभरूप न प्रवर्त्तै है। व्रतादिक शुभोपयोगरूप प्रवर्त्तै है, तातैं अन्तिम ग्रैवेयक पर्यन्त पदको पावै है। बहुरि जो निश्चयाभासकी प्रबलतातैं अशुभरूप प्रवृत्ति होय जाय तो कुगतिविषै भी गमन होय, परिणामनिके अनुसारि फल पावै है परन्तु ससारका ही भोक्ता रहै है। सांचा मोक्षमार्ग पाए बिना सिद्धपदको न पावै है। ऐसै निश्चयाभास व्यवहाराभास दोऊनिके अवलम्बी मिथ्यादृष्टि तिनिका निरूपण किया।

अब सम्यक्त्वके सन्मुख जे मिथ्यादृष्टी तिनका निरूपण कीजिए है—

सम्यक्त्वके सन्मुख मिथ्यादृष्टि का निरूपण

कोई मंदकषायादिकका कारण पाय ज्ञानावरणादि कर्मनिका क्षयोपशम भया, तातैं तत्वविचार करनेकी शक्ति भई अर मोह मद भया, तातै तत्व विचारविषैं उद्यम भया। बहुरि बाह्य निमित्त देव, गुरु, शास्त्रादिकका भया तिनकरि सांचा उपदेशका लाभ भया। तहाँ अपने प्रयोजनभूत मोक्षमार्गका वा देवगुरुधर्मादिकका वा जीवादि तत्वनिका वा आपा परका वा आपकों अहितकारी हितकारी भावनिका इत्यादिकका उपदेशतें सावधान होय ऐसा विचार किया— अहो मुझकों तो इन बातनिकी खबरि ही नाहीं, मैं भ्रमते भूलि पाया पर्याय ही विषैं तन्मय भया। सो इस पर्यायकी तो थोरे ही कालकी स्थिति है। बहुरि यहाँ मोकों सर्व निमित्त मिले हैं तातै मोकों इन बातनिका ठीक करना। जातै इनविषै तो मेरा ही प्रयोजन भासै है। ऐसै विचारि जो उपदेश सुन्या ताका निर्द्धार करनेका उद्यम किया। तहाँ उद्देश, लक्षणनिर्देश, परीक्षा द्वारकरि तिनका निर्द्धार होय। तातै पहले तो तिनके नाम सीखै सो उद्देश भया। बहुरि तिनके लक्षण जानै। बहुरि ऐसे सम्भवै है कि नाही, ऐसा विचारलिए परीक्षा करने लगै। तहाँ नाम सीखि लेना अर लक्षण जानि लेना ये दोऊ तो उपदेशके अनुसार हो हैं। जैसै उपदेश दिया तैसै याद करि लेना। बहुरि परीक्षा करनेविषै अपना विवेक चाहिए है। सो विवेककरि एकान्त अपने उपयोगविषै विचारै, जैसे उपदेश दिया तैसे ही है कि अन्यथा है। तहाँ अनुमानादि प्रमाणकरि ठीक करै वा उपदेश तो ऐसै है अर ऐसै न मानिए तो ऐसैं होय। सो इनविषै प्रबल युक्ति कौन है अर निर्बल युक्ति कौन है। जो प्रबल भासै, ताकों सांच जानै। बहुरि

जो उपदेशतें अन्यथा सांच भासै वा सन्देह रहै, निर्द्धार न होय, तो बहुरि विशेष ज्ञानी होय तिनकों पूछै । बहुरि वह उत्तर दे, ताकों विचारै । ऐसे ही यावत् निर्द्धार न होय, तावत् प्रश्न उत्तर करै । अथवा समानबुद्धिके धारक होय, तिनकों अपना विचार जैसा भया होय तैसा कहै । प्रश्न उत्तरकरि परस्पर चर्चा करै । बहुरि जो प्रश्नोत्तरविषै निरूपण भया होय, ताकों एकान्तविषै विचारै । याही प्रकार अपने अन्तरगविषै जैसे उपदेश दिया था, तैसें ही निर्णय होय भाव न भासै, तावत् ऐसे ही उद्यम किया करै। बहुरि अन्यमतीनिकरि कल्पित तत्वनिका उपदेश दिया है, ताकरि जैन उपदेश अन्यथा भासै वा सन्देह होय तो भी पूर्वोक्त प्रकारकरि उद्यम करै। ऐसें उद्यम किए जैसे जिनदेवका उपदेश है तैसें ही साच है, मुझकों भी ऐसें ही भासै है, ऐसा निर्णय होय । जातै जिनदेव अन्यथावादी हैं नाहीं ।

यहाँ कोऊ कहै—जिनदेव जो अन्यथावादी नाहीं हैं तो जैसै उनका उपदेश है तैसै श्रद्धान करि लीजिए, परीक्षा काहेकों कीजिए ?

ताका समाधान—परीक्षा किए बिना यहु तो मानना होय, जो जिनदेव ऐसै कह्या है सो सत्य है परन्तु उनका भाव आपकों भासै नाहीं । बहुरि भाव भासे बिना निर्मल श्रद्धान न होय । जाकी काहू का वचनही करि प्रतीति करिए, ताकी अन्यका वचनकरि अन्यथा भी प्रतीति होय जाय, तातै शक्तिअपेक्षा वचनकरि कीन्ही प्रतीति अप्रतीतिवत् है । बहुरि जाका भाव भास्या होय, ताको अनेक प्रकारकरि भी अन्यथा न मानै । तातै भाव भासे प्रतीति होय सोई साची प्रतीति है । बहुरि जो कहोगे, पुरुषप्रमाणते वचनप्रमाण कीजिए है, तो पुरुष-

की भी प्रमाणता स्वयमेव तो न होय। वाके केई वचननिकी परीक्षा पहलें करि लीजिए, तब पुरुषकी प्रमाणता होय।

यहाँ प्रश्न—उपदेश तो अनेक प्रकार, किस-किसकी परीक्षा करिए ?

ताका समाधान—उपदेशविषै केई उपादेय केई हेय केई ज्ञेय तत्व निरूपिए हैं। तहाँ उपादेय हेय तत्वनिकी तो परीक्षा करि लेना। जातै इन विषै अन्यथापनो भए अपना बुरा हो है। उपादेयकों हेय मानि लै तो बुरा होय, हेयकों उपादेय मानि लै तो बुरा होय।

बहुरि जो कहैगा—आप परीक्षा न करी अर जिनवचनहीते उपादेयकों उपादय जानै, हेयकों हेय जानै तो यामें कैसै बुरा होय ?

ताका समाधान—अर्थका भाव भासे बिना वचनका अभिप्राय न पहिचानै। यहु तो मानि ले, जो मैं जिनवचन अनुसारि मानू हूँ परन्तु भाव भासे बिना अन्यथापनो होय जाय। लोकविषै भी किकर कों किसी कार्यकों भेजिए सो वह उस कार्यका भाव जानै तो कार्यकों सुधारै, जो भाव न भासै तो कहीं चूकि ही जाय। तातै भाव भासने के अर्थि हेय उपादेय तत्वनिकी परीक्षा अवश्य करनी।

बहुरि वह कहै है—जो परीक्षा अन्यथा होय जाय तो कहा करिए ?

ताका समाधान—जिन वचन अर अपनी परीक्षा इनकी समानता होय, तब तो जानिए सत्य परीक्षा भई। यावत् ऐसै न होय तावत् जैसें कोई लेखा करै है, ताकी विधि न मिलै तावत् अपनी चूककों

ढूंढे। तैसे यह अपनी परीक्षा विषें विचार किया करै। बहुरि जो ज्ञेयतत्व हैं, तिनकी परीक्षा होय सकै तो परीक्षा करै। नाहीं यह अनुमान करै, जो हेय उपादेय तत्व ही अन्यथा न कहै तो ज्ञेयतत्व अन्यथा किस अर्थि कहै। जैसें कोऊ प्रयोजनरूप कार्यनिविषें झूठ न बोलै सो अप्रयोजन झूठ काहेको बोलै। तातै ज्ञेयतत्वनिका परीक्षाकरि भी वा आज्ञाकरि स्वरूप जानै है। तिनका यथार्थ भाव न भासै तो भी दोष नाही। याहीतै जैनशास्त्रनिविषै तत्वादिकका निरूपण किया, तहाँतो हेतु युक्ति आदिकरि जैसें याकै अनुमानादिकरि प्रतीति आवै, तैसै कथन किया। बहुरि त्रिलोक, गुणस्थान, मार्गणा, पुराणादिकका कथन आज्ञा अनुसारि किया। तातें हेयोपादेय तत्वनिकी परीक्षा करनी योग्य है। तहाँ जीवादिक द्रव्य वा तत्व तिनकों पहचानना। बहुरि तहाँ आपा पर को पहचानना। बहुरि त्यागने योग्य मिथ्यात्व रागादिक अर ग्रहणे योग्य सम्यग्दर्शनादिक तिनका स्वरूप पहिचानना। बहुरि निमित्त नैमित्तिकादिक जैसे हैं, तैसे पहिचानना। इत्यादि मोक्षमार्गविषै जिनके जाने प्रवृत्ति होय, तिनकों अवश्य जाननें। सो इनकीतो परीक्षा करनी। सामान्यपने किसी हेतु युक्ति करि इनकों जानने वा प्रमाण नयकरि जानने वा निदश स्वामित्वादिकरि वा सत् सख्यादि करि इनका विशेष जानना। जैसी बुद्धि होय जैसा निमित्त बनै तैसे इनकों सामान्य विशेषरूप पहचाननें। बहुरि इस जाननेंका उपकारी गुणस्थान, मार्गणादिक वा पुराणादिक वा व्रतादिक क्रियादिकका भी जानना योग्य है। यहाँ परीक्षा होय सकै तिनकी परीक्षा करनी, न होय सकै ताका आज्ञा अनुसारि जानपना करना।

ऐसें इस जानने के अर्थ कबहू आपही विचार करै है, कबहू शास्त्र बाँचै है, कबहू सुनै है, कबहू अभ्यास करै है, कबहू प्रश्नोत्तर करै है इत्यादि रूप प्रवर्त्तै है। अपना कार्य करनेका जाकै हर्ष बहुत है, तातै अंतरंग प्रीतितै ताका साधन करै। या प्रकार साधन करतां यावत् सांचा तत्वश्रद्धान न होय, 'यहु ऐसैं ही है' ऐसी प्रतीति लिए जीवादि तत्वनिका स्वरूप आपकों न भासै, जैसे पर्यायविषैं अहंबुद्धि है तैसैं केवल आत्मविषै अहबुद्धि न आवै, हित अहितरूप अपने भावनिकों न पहिचानै, तावत् सम्यक्तके सन्मुख मिथ्यादृष्टी है। यह जीव थोरे ही कालमें सम्यक्तकों प्राप्त होगा। इस ही भवमें वा अन्य पर्यायविषै सम्यक्तकों पावेगा। इस भव में अभ्यासकरि परलोविषै तिर्यंचादि गतिविषै भी जाय तो तहाँ संस्कारके बलतै देव गुरु शास्त्रका निमित्त विना भी सम्यक्त होय जाय। जातै ऐसे अभ्यासके बलतै मिथ्यात्वकर्म का अनुभाग हीन हो है। जहाँ वाका उदय न होय, तहाँ ही सम्यक्त होय जाय। मूलकारण यहु ही है। देवादिकका तो बाह्य निमित्त है सो मुख्यताकरि तो इनके निमित्ताहीतें सम्यक्त हो है। तारतम्यतैं पूर्व अभ्यास सस्कारतै वर्तमान इनका निमित्त न होय तो भी सम्यक्त होय सकै है। सिद्धान्तविषैऐसा सूत्र है—"**तन्निसगादधिगमाद्वा**"

(तत्वा० सू० १,३)

याका अर्थ यहु—सो सम्यग्दर्शन निसर्ग वा अधिगमतै हो है। तहाँ देवादिक बाह्य निमित्त बिना होय, सो निसर्गतै भया कहिए। देवादिकका निमित्ततै होय सो अधिगमतें भया कहिए। देखो तत्वविचारकी महिमा, तत्वविचाररहित देवादिककी प्रतीति करै, बहुत

शास्त्र अभ्यासै, व्रतादिक पालै, तपश्चरणादि करै, ताकै तो सम्यक्त होनेका अधिकार नाही। अर तत्वविचारवाला इन विना भी सम्यक्त का अधिकारी हो है। बहुरि कोई जीवकै तत्वविचारके होने पहले किसी कारण पाय देवादिककी प्रतीति होय वा व्रत तपका अगीकार होय, पीछे तत्वविचार करै। परन्तु सम्यक्तका अधिकारी तत्वविचार भए ही हो है।

बहुरि काहूकै तत्वविचार भए पीछे तत्वप्रतीति न होनेतें सम्यक्त तो न भया अर व्यवहार धर्मकी प्रतीति रुचि होय गई, तातै देवादिक की प्रतीति करै है वा व्रत तपकों अंगीकार करै है। काहूकै देवादिककी प्रतीति अर सम्यक्त युगपत होय अर व्रत तप सम्यक्तकी साथ भी होय अर पहले पीछे भी होय, देवादिककी प्रतीतिका तो नियम है। इस बिना सम्यक्त न होय। व्रतादिकका नियम है नाही। घनें जीव तो पहले सम्यक्त होय पीछे ही व्रतादिकको धारै हैं। काहूकै युगपत् भी होय जाय है। ऐसैं यहु तत्वविचारवाला जीव सम्यक्तका अधिकारी है परन्तु याकै सम्यक्त होय ही होय, ऐसा नियम नाही। जातैं शास्त्र-विषै सम्यक्त होनेतें पहले पंच लब्धिका होना कह्या है—

पंच लब्धियोंका स्वरूप

क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य, करण। तहाँ जिसको होते सते तत्वविचार होय सकै, ऐसा ज्ञानावरणादि कर्मनिका क्षयोपशम होय। उदयकालको प्राप्त सर्वघाती स्पर्द्धकनिके निषेकनिका उदयका अभाव सो क्षय अर अनागतकालविषै उदय आवने योग्य तिनही का सत्तारूप रहना सो उपशम, ऐसी देशघाती स्पर्द्धकनिका

उदय सहित कर्मनिकी अवस्था ताका नाम क्षयोपशम है। ताको प्राप्ति सो क्षयोपशमलब्धि है। बहुरि मोहका मंद उदय आवनेतें मंदकषाय रूप भाव होय जहाँ तत्व विचार होय सकै सो विशुद्धलब्धि है। बहुरि जिनदेवका उपदेश्या तत्वका धारण होय, विचार होय सो देशनालब्धि है। जहाँ नरकादिविषैं उपदेशका निमित्त न होय, तहाँ पूर्वसंस्कारतें होय। बहुरि कर्मनिकी पूर्व सत्ता (घटकरि) अंतः कोटाकोटी सागरप्रमाण रहि जाय अर नवीन बंध अंतःकोटाकोटी प्रमाण ताके संख्यातवे भाग मात्र होय, सो भी तिस लब्धि कालतें लगाय क्रमतें घटता होय, केतीक पापप्रकृतिनिका बंध क्रमतें मिटता जाय, इत्यादि योग्य अवस्थाका होना सो प्रायोग्यलब्धि है। सो ए च्यारों लब्धि भव्य या अभव्यकं होय हैं। इन च्यार लब्धि भए पीछें सम्यक्त होय तो होय, न होय तो नाही भी होय। ऐसे 'लब्धिसार' विषै कह्या है[1]। तातैं तिस तत्व विचारवालाकै सम्यक्त्व होनेंका नियम नाहीं। जैसे काहूकों हितकी शिक्षा दई, ताको वह जानि विचार करै, यह सीख दई सो कैसे है? पीछें विचारता वाकै ऐसैं ही है, ऐसी उस सीखि की प्रतीति होय जाय। अथवा अन्यथा विचार होय वा अन्य विचारविषै लागि तिस सीखका निर्द्धार न करै, तो प्रतीति नाही भी होय। तैसें श्रीगुरु तत्वोपदेश दिया, ताकों जानि विचार करै, यहु उपदेश दिया सो कैसे है। पीछें विचार करनेतें वाकै 'ऐसैं ही है' ऐसी प्रतीति होय जाय। अथवा अन्यथा विचार होय वा अन्य विचारविषै लागि तिस उपदेशका निर्द्धार न करै तो प्रतीति नाहीं भी होय सो मूल कारण मिथ्यात्व कर्म है, याका उदय मिटै तो प्रतीति होई जाय, न मिटै तो नाहीं होय, ऐसा नियम है। याका उद्यम तो तत्वविचार करने मात्र ही है।

1 लब्धि० ३

बहुरि पाँचवी करणलब्धि भए सम्यक्त होय ही होय, ऐसा नियम है। सो जाकै पूर्वे कही थीं च्यारि लब्धि ते तो भई होंय अर अंतर्मुहूर्त्त पीछें जाकै सम्यक्त होना होय, तिसही जीवकै करणलब्धि हो है। सो इस 'करणलब्धिवालाकै बुद्धिपूर्वक तो इतनाही उद्यम हो है—तिस तत्व-विचारविषै उपयोगकौं तद्रूप होय लगावै, ताकरि समय समय परिणाम निर्मल होते जांय हैं। जैसे काहूकै सीखका विचार ऐसा निर्मल होने लग्या, जाकरि याकै शीघ्र ही ताकी प्रतीत होय जासी। तैसे तत्वउपदेश का विचार ऐसा निर्मल होनें लग्या, जाकरि याकै शीघ्र ही ताका श्रद्धान होसी। बहुरि इन परिणामनिका तारतम्य केवलज्ञानकरि देख्या, ताका निरूपण करणानुयोगविषैं किया है। सो इस करणलब्धिके तीन भेद हैं—अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण। इनका विशेष व्याख्यान तो लब्धिसार शास्त्रविषै किया है, तिसतें जानना। यहाँ सक्षेपसों कहिए है—

त्रिकालवर्त्ती सर्व करणलब्धिवाले जीव तिनके परिणामनिकी अपेक्षा ए तीन नाम हैं। तहाँ करण नाम तो परिणामका है। बहुरि जहाँ पहले पिछले समयनिके परिणाम समान होय सो अध करण है[1]। जैसें कोई जीवका परिणाम तिस करणके पहिले समय स्तोक विशुद्धता लिए भया, पीछे समय समय अंनतगुणी विशुद्धताकरि बधते भए। बहुरि वाकै जैसै द्वितीय तृतीयादि समयनिविषै परिणाम होंय, तैसे केई अन्य जीवनिकै प्रथम समयविषै ही होंय। ताकै तिसतें समय समय अनन्तगुणी विशुद्धताकरि बधते होंय। ऐसे अध.प्रवृत्तिकरण जानना।

1 लब्धि० ३५

बहुरि जिसविषै पहले पिछले समयनिके परिणाम समान न होंय, अपूर्व ही होंय, सो अपूर्वकरण है। जैसें तिस करणके परिणाम, जैसे पहले समय होंय तैसे कोई ही जीवकै द्वितीयादि समयनिविषैं न होंय, बधते ही होंय। बहुरि इहाँ अधः करणवत् जिन जीवनिकै करणका पहला समय ही होय, तिनि अनेक जीवनिकै परस्पर परिणाम समान भी होंय अर अधिक हीन विशुद्धता लिए भी होंय। परन्तु यहाँ इतना विशेष भया, जो इसकी उत्कृष्टतातें भी द्वितीयादि समयवालेका जघन्य परिणाम भी अनन्तगुणी विशुद्धता लिए ही होय। ऐसें ही जिनकोंकरण माँडे द्वितीयादि समय भया होय, तिनकै तिस समयवालों कै तो परस्पर परिणाम समान वा असमान होंय परन्तु ऊपरले समयवालोंकै तिस समय समान सर्वथा न होंय, अपूर्व ही होंय। ऐसे अपूर्वकरण [1] जानना।

बहुरि जिस विषै समान समयवर्ती जीवनिकै परिणाम समान ही होंय, निवृत्ति कहिए परस्पर भेद ताकरि रहित होंय। जैसें तिस करणका पहला समयविषै सर्व जीवनिका परिणाम परस्पर समानही होय, ऐसैही द्वितीयादि समयनिविषैं समानता परस्पर जाननी। बहुरि प्रथमादि समयवालोंतें द्वितीयादि समयवालोंकै अनन्तगुणी विशुद्धता लिए होय। ऐसै अनिवृत्तिकरण [2] जानना।

1 समए समए भिण्णा भावा तम्हा अपुव्वकरणो हु।
जम्हा उवरिमभावा हेट्ठिमभावेहिं णत्थि सरिसत्ता ।। लब्धि ३६ ।।
तम्हा विदिय करण अपुव्वकरणेत्ति णिद्दिट्ठं ।।लब्धि० ५१ ।।
करण परिणामो अपुव्वाणि च ताणि करणाणि च अपुव्वकरणाणि, असमाणपरिणामा त्ति जं उत्तं होदि। धवला, १-६-८-४

2 एगसमए वट्टंताण जीवाण परिणामेहि ण विज्जदे णियट्टी णिव्वित्ती जत्थ ते अणियट्टीपरिणामा। धवला १-६-८-४। एक्कम्हि काल-समये संठाणादीहिं जह णिवट्टंति। ण णिवट्टंति तहा विय परिणामेहिं मिहो जेहिं ।। गो० जी० ५६ ।।

ऐसें ए तीन करण जाननें। तहाँ पहले अंतर्मुहूर्त्त कालपर्यन्त अधःकरण होय। तहाँ च्यारि आवश्यक हो हैं। समय समय अनन्तगुणी विशुद्धता होय, बहुरि एक अंतर्मुहूर्त्त करि नवीन बधकी स्थिति घटती होय सो स्थितिबधापसरण होय, बहुरि समय समय प्रशस्त प्रकृतिनिका अनन्तगुणा अनुभाग बधै, बहुरि समय समय अप्रशस्त प्रकृतिनिका अनुभागबंध अनन्तवें भाग होय; ऐसे च्यारि आवश्यक होंय—तहाँ पीछें अपूर्वकरण होय। ताका काल अधःकरणके कालके संख्यातवें भाग है। ताविषै ए आवश्यक और होंय। एक एक अन्त-र्मुहूर्त्तकरि सत्ताभूत पूर्वकर्मकी स्थिति थी, ताको घटावै सो स्थितिकाण्डकघात होय। बहुरि तिसतें स्तोक एक एक अन्तर्मुहूर्त्तकरि पूर्वकर्मका अनुभागकों घटावै सो अनुभाग काडक घात होय। बहुरि गुणश्रेणिका कालविषै क्रमतें असख्यातगुणा प्रमाण लिए कर्म निर्जरने योग्य करिए सो गुणश्रेणीनिर्जरा होय। बहुरि गुणसंक्रमण यहाँ नाहीं हो है। अन्यत्र अपूर्वकरण हो है, तहाँ हो है। ऐसे अपूर्वकरण भए पीछे अनिवृत्तिकरण होय। ताका काल अपूर्वकरणके भी सख्यातवें भाग है। तिसविषै पूर्वोक्त आवश्यकसहित केता काल गए पीछें अन्तरकरण[1] करै है। अनिवृत्तिकरणके काल पीछें उदय आवने योग्य

---

1 किमन्तरकरण णाम ? विवक्खियकम्माण हेट्ठिमोवरिमट्ठिदीओ मोत्तूण मज्झे अन्तोमुहुत्तमेत्ताण ट्ठिदीणं परिणामविसेसेण णिसेगा-णमभावीकरण मन्तरकरणमिदि भण्णदे ॥

जय ध० अ० प० ९५३

अर्थ—अन्तरकरण का क्या स्वरूप है? उत्तर—विवक्षित कर्मोंकी अधस्तन और उपरिम स्थितियों को छोडकर मध्यवर्ती अन्तर्मुहूर्तमात्र स्थितियों के निषेकोंका परिणाम विशेष के द्वारा अभाव करने को अन्तर-करण कहते हैं।

ऐसें मिथ्यात्वकर्मके मुहूर्त्तमात्र निषेक तिनिका अभाव करै है, तिन परमाणुनिको अन्य स्थितिरूप परिणमावै है। बहुरि अन्तरकरण किये पीछें उपशमकरण करै है। अन्तरकरणकरि अभावरूप किए निषेकनिके ऊपरि जो मिथ्यात्वके निषेक तिनकों उदय आवनेकों अयोग्य करै है। इत्यादिक क्रियाकरि अनिवृत्तिकरणका अन्तसमयके अनन्तर जिन निषेकनिका अभाव किया था, तिनका उदयकाल आया तब निषेकनि बिना उदय कौनका आवै। तातै मिथ्यात्वका उदय न होनेते प्रथमोपशम सम्यक्त की प्राप्ति हो है। अनादि मिथ्यादृष्टीकै सम्यक्तमोहनीय, मिश्रमोहनीय की सत्ता नाही है। तातै एक मिथ्यात्वकर्महीकों उपशमाय उपशमसम्यग्दृष्टी होय है। बहुरि कोई जीव सम्यक्त पाय पीछे भ्रष्ट हो है, ताकी भी दशा अनादिमिथ्यादृष्टीकी सी होय जाय है।

यहाँ प्रश्न—जो परीक्षाकरि तत्वश्रद्धान किया था, ताका अभाव कैसे होय ?

ताका समाधान—जैसे किसी पुरुषकों शिक्षा दई, ताकी परीक्षा करि वाकै ऐसें ही है ऐसी प्रतीति भी आई थी, पीछे अन्यथा कोई प्रकारकरि विचार भया, तातैं उस शिक्षाविषै सन्देह भया। ऐसे है कि ऐसें है, अथवा 'न जानों कैसैं है', अथवा तिस शिक्षाकों झूठ जानि तिसते विपरीति भई, तब वाकै प्रतीति न भई तब वाकै तिस शिक्षाकी प्रतीतिका अभाव होय। अथवा पूर्वै तो अन्यथा प्रतीति थी ही, बीचिमें शिक्षाका विचारते यथार्थ प्रतीति भई थी बहुरि तिस शिक्षाका विचार किए बहुत काल होय गया तब ताकों भूलि जैसैं पूर्वै अन्यथा प्रतीन

थी तैसें ही स्वयमेव होय गई तब तिस शिक्षा की प्रतीतिका अभाव होय जाय। अथवा यथार्थ प्रतीति पहलें तो कीन्हीं, पीछें न तो किछु अन्यथा विचार किया, न बहुत काल भया परन्तु तैसा ही कर्म उदयतें होनहारके अनुसारि स्वयमेव ही तिस प्रतीति का अभाव होय अन्यथापना भया। ऐसै अनेक प्रकार तिस शिक्षा की यथार्थ प्रतीतिका अभाव हो है। तैसै जीवके जिनदेव का तत्वादिरूप उपदेश भया, ताकी परीक्षाकरि वाकै 'ऐसै ही है' ऐसा श्रद्धान भया, पीछें पूर्वं जैसें कहे तैसै अनेक प्रकार तिस पदार्थश्रद्धान का अभाव हो है। सो यहु कथन स्थूलपने दिखाया है। तारतम्यकरि केवलज्ञानविषैं भासै है—इस समय श्रद्धान है कि इस समय नाही है। जातै यहाँ मूल कारण मिथ्यात्वकर्म है। ताका उदय होय, तब तो अन्य विचारादि कारण मिलो वा मति मिलो, स्वयमेव सम्यक्श्रद्धानका अभाव हो है। बहुरि ताका उदय न होय, तब अन्य कारण मिलो वा मति मिलो, स्वयमेव सम्यक् श्रद्धान होय जाय है। सो ऐसी अन्तरग समय समय सम्बन्धी सूक्ष्मदशाका जानना छद्मस्थकै होता नाहीं। तातैं अपनी मिथ्या सम्यक्श्रद्धानरूप अवस्थाका तारतम्य याकों निश्चय हो सकै नाही, केवलज्ञानविषै भासै है। तिस अपेक्षा गुणस्थाननिकी पलटनि शास्त्रविषै कही है। या प्रकार जो सम्यक्ततै भ्रष्ट होय सो सादि मिथ्यादृष्टी कहिए। ताकै भी बहुरि सम्यक्तकी प्राप्ति विषै पूर्वोक्त पाँच लब्धि हो हैं। विशेष इतना-यहाँ कोई जीवकै दर्शन मोहकी तीन प्रकृतिनिकी सत्ता हो है सो तिनोंकों उपशमाय प्रथमोपशमसम्यक्ती हो है। अथवा काहूकै सम्यक्तमोहनीयका उदय आवै है, दोय प्रकृतिनिका उदय न हो है, सो क्षयोपशमसम्यक्ती हो है। याकै गुणश्रेणी आदि क्रिया न हो है वा अनिवृत्तिकरण न हो है। बहुरि काहू कै मिश्रमोहनीयका उदय आवै है, दोय प्रकृतिनिका उदय

न हो है, सो मिश्रगुणस्थानकों प्राप्त हो है। याकं करण न हो है। ऐसें सादि मिथ्यादृष्टीकै मिथ्यात्व छूटे दशा हो है। क्षायिकसम्यक्तकों वेदकसम्यग्दृष्टीही पावै है तातै ताका कथन यहाँ न किया है। ऐसे सादि मिथ्यादृष्टीका जघन्य तो मध्यम अन्तर्मु हूर्त्तमात्र उत्कृष्ट किंचित-ऊन अर्द्धपुद्गलपरिवर्त्तन मात्र काल जानना। देखो परिणामनिकी विचित्रता, कोई जीव तो ग्यारवें गुणस्थान यथाख्यातचारित्र पाय बहुरि मिथ्यादृष्टीहोय किंचित ऊन अर्द्धपुद्गल परिवर्त्तन कालपर्यंत संसारमें रुलै अर कोई नित्यनिगोदमेंसों निकसि मनुष्य होय मिथ्यात्व छूटे पीछे अंतर्मु हूर्त्त में केवलज्ञान पावै। ऐसें जानि अपने परिणाम बिगरनेका भय राखना अर तिनके सुधारनेका उपाय करना।

बहुरि इस सादिमिथ्यादृष्टीकै थोरे काल मिथ्यात्वका उदय रहै तो बाह्य जैनीपना नाहीं नष्ट हो है वा तत्वनिका अश्रद्धान व्यक्त न हो है वा बिना विचार किए ही वा स्तोक विचारहीतें बहुरि सम्यक्तकी प्राप्ति होय जाय है। बहुरि बहुत काल मिथ्यात्वका उदय रहै तो जैसी अनादि मिथ्यादृष्टीकी दशा तैसी याकी भी दशा हो है। गृहीत मिथ्यात्वकों भी ग्रहै है। निगोदादिविषै भी रुलै है। याका किछू प्रमाण नाही।

बहुरि कोई जीव सम्यक्तते भ्रष्ट होय सासादन हो है। सो तहाँ जघन्य एक समय उत्कृष्ट छह आवली प्रमाण काल रहै है, सो याका परिणामकी दशा वचनकरि कहनेमें आवती नाही। सूक्ष्मकालमात्र कोई जातिके केवलज्ञानगम्य परिणाम हो हैं। तहाँ अनतानुबधीका तो उदय हो है, मिथ्यात्वका उदय न हो है। सो आगम प्रमाणते याका स्वरूप जानना।

बहुरि कोई जीव सम्यक्त भ्रष्ट होय, मिश्रगुणस्थानकों प्राप्त हो है। तहाँ मिश्रमोहनीयका उदय हो है। याका काल मध्यम अन्तर्मु हूर्त-

मात्र है। सो याका भी काल थोरा है, सो याकै भी परिणाम केवल-ज्ञानगम्य हैं। यहाँ इतना भासै है—जैसे काहूकों सीख दई तिसकों वह किछू सत्य किछू असत्य एकै काल मानैं तैसैं तत्वनिका श्रद्धान अश्रद्धान एकैं काल होय सो मिश्रदशा है। केई कहै हैं—हमकों तो जिनदेव वा अन्य देव सर्व ही वदने योग्य हैं इत्यादि मिश्र श्रद्धान कों मिश्रगुणस्थान कहै हैं, सो नाहीं। यहु तो प्रत्यक्ष मिथ्यात्वदशा है। व्यवहाररूप देवादिका श्रद्धान भए भी मिथ्यात्व रहै है, तो याकै तो देव कुदेव का किछू ठीक ही नाही। याकै तो यहु विनयमिथ्यात्व प्रगट है, ऐसैं जानना।

ऐसें सम्यक्तके सन्मुख मिथ्यादृष्टीनिका कथन किया। प्रसग पाय अन्य भी कथन किया है। या प्रकार जैनमतवाले मिथ्यादृष्टीनिका स्वरूप निरूपण किया। यहाँ नाना प्रकार मिथ्यादृष्टीनिका कथन किया है ताका प्रयोजन यह जानना—जो इन प्रकारनिकों पहिचानि आपविषैं ऐसा दोष होय तो ताकों दूरिकरि सम्यकश्रद्धानी होना। औरनिहीके ऐसे दोष देखि देखि कषायी न होना। जातै अपना भला बुरा तो अपने परिणामनितें है। औरनिकों तो रुचिवान् देखिए, तो किछू उपदेश देय वाका भी भला कीजिये। तातै अपने परिणाम सुधारनेका उपाय करना योग्य है। जातैं ससारका मूल मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व समान अन्य पाप नाही है। एक मिथ्यात्व अर ताके साथ अनन्तानुबंधीका अभाव भए इकतालीस प्रकृतिनिका तो बध ही मिटि जाय। स्थिति अन्त कोटाकोटी सागरकी रहि जाय। अनुभाग थोरा ही रहि जाय। शीघ्र ही मोक्षपदकों पावं। बहुरि मिथ्यात्वका सद्भाव रहें अन्य अनेक उपाय किए भी मोक्षमाग न होय। तात जिस तिस उपायकरि सर्व प्रकार मिथ्यात्वका नाश करना योग्य है।

इति मोक्षमार्गप्रकाशकनाम शास्त्रविषै जैनमतवाले मिथ्यादृष्टीनिका निरूपण जामें भया ऐसा सातवाँ अधिकार सम्पूर्ण भया ॥७॥

ॐ नमः

आठवाँ अधिकार

उपदेश का स्वरूप

अब मिथ्यादृष्टी जीवनिकों मोक्षमार्गका उपदेश देय तिनका उपकार करना यहु ही उत्तम उपकार है। तीर्थंकर गणधरादिक भी ऐसा ही उपकार करें हैं। तातें इस शास्त्रविषै भी तिनहीका उपदेशके अनुसारि उपदेश दीजिए है। तहाँ उपदेशका स्वरूप जाननेके अर्थि किछू व्याख्यान कीजिए है। जातें उपदेशकों यथावत् न पहिचानें तो अन्यथा मानि विपरीत प्रवर्तै, तातें उपदेशका स्वरूप कहिए है—

जिनमतविषै उपदेश च्यार अनुयोगका दिया है। सो प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग ए च्यार अनुयोग हैं। तहाँ तीर्थंकर, चक्रवर्त्ती आदि महान् पुरुषनिके चरित्र जिसविषै निरूपण किया होय, सो **प्रथमानुयोग** है[1]। बहुरि गुणस्थान मार्गणादिकरूप जीवका वा कर्मनिका वा त्रिलोकादिकका जाविषै निरूपण होय, सो **करणानुयोग** है[2]। बहुरि गृहस्थ मुनिके धर्म आचरण करनेंका जाविषै निरूपण होय, सो **चरणानुयोग** है[3]। बहुरि षट् द्रव्य सप्ततत्वादिकका वा स्वपरभेद विज्ञानादिकका जाविषै निरूपण होय, सो **द्रव्यानुयोग** है[4]। अब इनका प्रयोजन कहिये है—

1-रत्नक० २,२। 2-रत्नक० २,३। 3-रत्नक० २,४। 4-रत्नक० २,५।

प्रथमानुयोगका प्रयोजन

प्रथमानुयोगविषें तो संसारकी विचित्रता, पुण्य पापका फल, महंतपुरुषनिकी प्रवृत्ति इत्यादि निरूपणकरि जीवनिकों धर्मविषै लगाए हैं। जे जीव तुच्छबुद्धि होंय, ते भी तिसकरि धर्म सन्मुख हो हैं, जातें वे जीव सूक्ष्मनिरूपणकों पहिचानै नाहीं। लौकिक वार्तानिको जानें। तहाँ तिनका उपयोग लागै। बहुरि प्रथमानुयोग विषें लौकिक प्रवृत्तिरूप ही निरूपण होय, ताकों ते नीके समझि जांय। बहुरि लोकविषें तो राजादिककी कथानिविषै पापका पोषण हो है। तहाँ महंत पुरुष राजादिक तिनकी कथा तो हैं परन्तु प्रयोजन जहाँ तहाँ पापको छुड़ाय धर्मविषें लगावनेका प्रगट करै हैं। तातें ते जीव कथानिके लालचकरि तो तिसकों बाचै सुनै, पीछें पापकों बुरा धर्मकों भला जानि धर्मविषै रुचिवंत हो हैं। ऐसैं तुच्छ बुद्धीनिके समझावनेकों यहु अनुयोग है। 'प्रथम' कहिए 'अव्युत्पन्न मिथ्यादृष्टी' तिनके अर्थि जो अनुयोग सो प्रथमानुयोग है। ऐसा अर्थ गोमट्टसारकी टीकाविषै[1] किया है। बहुरि जिन जीवनिकै तत्वज्ञान भया होय, पीछे इस प्रथमानुयोगकों बांचै सुनै, तो तिनकों यहु तिसका उदाहरणरूप भासै है। जैसें जीव अनादिनिधन है, शरीरादिक सयोगी पदार्थ हैं, ऐसें यहु जानें था। बहुरि पुराणनिविषै जीवनिके भवांतर निरूपण किए, ते तिस जाननेके उदाहरण भए। बहुरि शुभ अशुभ शुद्धोपयोगकों जानै

---

1 प्रथमं मिथ्यादृष्टिमव्रतिकमव्युत्पन्न वा प्रतिपाद्यमाश्रित्य प्रवृत्तोऽनुयोगोऽधिकार: प्रथमानुयोग., जी. प्र. टी. गा. ३६१-२।

था वा तिनके फलकों जानैं था। बहुरि पुराणनिविषैं तिन उपयोगनिकी प्रवृत्ति अर तिनका फल जीवनिकै भया, सो निरूपण किया। सो ही तिस जाननेंका उदाहरण भया। ऐसैं ही अन्य जानना। यहाँ उदाहरणका अर्थ यहु जो जैसे जानैं था तैसैं ही तहाँ कोई जीवकै अवस्था भई तातै यह तिस जाननेकी साखि भई। बहुरि जैसैं कोई सुभट है, सो सुभटनिकी प्रशसा अर कायरनिकी निन्दा जाविषैं होय, ऐसी कोई पुराणपुरुषनिकी कथा सुननेंकरि सुभटपनाविषैं अति उत्साहवान् हो है। तैसैं धर्मात्मा है, सो धर्मात्मानिकी प्रशंसा अर पापीनिकी निन्दा जाविषै होय, ऐसे कोई पुराणपुरुषनिकी कथा सुननेकरि धर्मविषैं अति उत्साहवान् हो है। ऐसैं यहु प्रथमानुयोगका प्रयोजन जानना।

करणानुयोगका प्रयोजन

बहुरि करणानुयोगविषैं जीवनिकी वा कर्मनिका विशेष वा त्रिलोकादिककी रचना निरूपणकरि जीवनिकों धर्मविषैं लगाए हैं। जे जीव धर्मविषैं उपयोग लगाया चाहैं, ते जीवनिका गुणस्थान मार्गणा आदि विशेष अर कर्मनिका कारण अवस्था फल कौन कौनकै कैसै कैसै पाइए, इत्यादि विशेष अर त्रिलोकविषै नरक स्वर्गादिकके ठिकानें पहिचानि पापतें विमुख होय धर्मविषै लागै हैं। बहुरि ऐसे विचारविषै उपयोग रमि जाय, तब पाप प्रवृत्ति छूटि स्वयमेव तत्काल धर्म उपजै है। तिस अभ्यासकरि तत्वज्ञानकी प्राप्ति शीघ्र हो है। बहुरि ऐसा सूक्ष्म यथार्थ कथन जिनमतविषैं ही है, अन्यत्र नाहीं, ऐसै महिमा जानि जिनमतका श्रद्धानी हो है। बहुरि जे जीव तत्वज्ञानी होय इस करणानुयोगकों अभ्यासै हैं, तिनकों यहु तिसका विशेषरूप भासै है।

जो जीवादिक तत्व आप जानैं है, तिनहीका विशेष करणानुयोगविषै किए हैं। तहाँ केई विशेषण तो यथावत् निश्चयरूप हैं, केई उपचार लिए व्यवहाररूप हैं। केई द्रव्य क्षेत्र काल भावादिकका स्वरूप प्रमाणादिरूप हैं, केई निमित्त आश्रयादि अपेक्षा लिए हैं। इत्यादि अनेक प्रकारके विशेषण निरूपण किए हैं, तिनकों जैसाका तैसा मानता तिस करणानुयोगकों अभ्यासै है। इस अभ्यासतै तत्वज्ञान निर्मल हो है। जैसे कोऊ यहु तो जानैं था यहु रत्न है परन्तु उस रत्नके घने विशेष जाने निर्मल रत्नका पारखी होय, तैसै तत्वनिकों जानै था ए जीवादिक हैं परन्तु तिन तत्वनिके घने विशेष जानैं तो निर्मल तत्वज्ञान होय। तत्वज्ञान निर्मल भए आप ही विशेष धर्मात्मा हो है। बहुरि अन्य ठिकाने उपयोगकों लगाईए तो रागादिककी वृद्धि होय अर छद्मस्थका एकाग्र निरन्तर उपयोग रहै नाही। तातै ज्ञानी इस करणानुयोगका अभ्यासविषै उपयोगकों लगावै है। तिसकरि केवलज्ञानकरि देखे पदार्थनिका जानपना याकै हो है। प्रत्यक्ष अप्रत्यक्षहीका भेद है, भासनेविषै विरुद्ध है नाही। ऐसे यहु करणानुयोगका प्रयोजन जानना। 'करण' कहिए गणित कार्यकों कारण सूत्र तिनका जाविषै 'अनुयोग' अधिकार होय, सो करणानुयोग है। इस विषै गणित वर्णनकी मुख्यता है, ऐसा जानना।

चरणानुयोगका प्रयोजन

अब चरणानुयोगका प्रयोजन कहिए है। चरणानुयोगविषै नाना प्रकार धर्मके साधन निरूपणकरि जीवनिकों धर्मविषै लगाईए है। जे जीव हित अहितकों जानै नाहीं, हिंसादिक पाप कार्यनिविषै तत्पर

होय रहे हैं, तिनकों जैसे पापकार्यनिकों छोड़ि धर्मकार्यनिविषै लागै तैसें उपदेश दिया, ताकों जानि धर्म आचरण करनेको सन्मुख भए, ते जीव गृहस्थधर्म वा मुनिधर्म का विधान सुनि आपते जैसा सधै तैसा धर्म-साधनविषै लागै हैं। ऐसे साधनतें कषाय मंद हो है। ताके फलतें इतना तो हो है, जो कुगतिविषै दुख न पावै अर सुगतिविषै सुख पावै। बहुरि ऐसे साधनतें जिनमत का निमित्त बन्या रहै, तहाँ तत्व ज्ञानकी प्राप्ति होनी होय तो होय जावै। बहुरि जे जीव तत्वज्ञानी होयकरि चरणानुयोगकों अभ्यासै हैं, तिनकों ए सर्व आचरण अपने वीतरागभावके अनुसारी भासै हैं। एकदेश वा सर्वदेश वीतरागता भए ऐसी श्रावकदशा ऐसी मुनिदशा हो है। जातैं इनकै निमित्त नैमित्तिकपनों पाईए है। ऐसे जानि श्रावक मुनिधर्मके विशेष पहिचानि जैसा अपना वीतरागभाव भया होय, तैसा अपने योग्य धर्मकों साधै हैं। तहाँ जेता अंशां वीतरागता हो है, ताकों कार्यकारी जानै हैं, जेता अंशां राग रहै है, ताकों हेय जानै हैं। सम्पूर्ण वीतरागताकों परमधर्म मानै हैं। ऐसे चरणानुयोगका प्रयोजन है।

द्रव्यानुयोगका प्रयोजन

अब द्रव्यानुयोगका प्रयोजन कहिये है। द्रव्यानुयोगविषैं द्रव्यनिका वा तत्वनिका निरूपण करि जीवनिकों धर्मविषै लगाईए है। जे जीव जीवादिक द्रव्यनिकों वा तत्वनिकों पहिचानैं नाहीं, आपा परकों भिन्न जानै नाहीं, तिनकों हेतु दृष्टांत युक्तिकरि वा प्रमाण-नयादिककरि तिनका स्वरूप ऐसे दिखाया जैसे याकै प्रतीति होय जाय। ताके अभ्यासतें अनादि अज्ञानता दूरि होय, अन्यमत कल्पित तत्वादिक झूठ भासैं,

तब जिनमतकी प्रतीति होय। अर उनके भावकों पहिचाननेका अभ्यास राखैं तो शीघ्र ही तत्वज्ञानकी प्राप्ति होय जाय। बहुरि जिनकै तत्व ज्ञान भया होय, ते जीव द्रव्यानुयोगकों अभ्यासै। तिनकों अपने श्रद्धान के अनुसारि सो सर्व कथन प्रतिभासै है। जैसे काहूने किसी विद्याकों सीखि लई परन्तु जो ताका अभ्यास किया करै तो वह यादि रहै, न करै तो भूलि जाय। तैसे याकै तत्वज्ञान भया परन्तु जो ताका प्रतिपादक द्रव्यानुयोगका अभ्यास किया करै तो वह तत्वज्ञान रहै, न करै तो भूलि जाय। अथवा सक्षेपपनें तत्वज्ञान भया था, सो नाना युक्ति हेतु दृष्टातादिककरि स्पष्ट होय जाय तो तिसविषै शिथिलता न होय सकै। बहुरि इस अभ्यासतें रागादि घटनेतें शीघ्र मोक्ष सधै। ऐसें द्रव्यानुयोग का प्रयोजन जानना।

अब इन अनुयोगनिविषै किस प्रकार व्याख्यान है, सो कहिए है—

प्रथमानुयोग में व्याख्यान का विधान

प्रथमानुयोगनिविषै जे मूलकथा हैं, ते तो जैसी हैं तैसी ही निरूपिये हैं। अर तिनविषै प्रसग पाय व्याख्यान हो है सो कोई तो जैसाका तैसा हो है, कोई ग्रथकर्त्ताका विचारके अनुसारि हो है परन्तु प्रयोजन अन्यथा न हो है।

ताका उदाहरण—जैसें तीर्थंकर देवनिके कल्याणकनिविषै इन्द्र आया, यहु कथा तो सत्य है। बहुरि इन्द्र स्तुति करी, ताका व्याख्यान किया, सो इन्द्र तो और ही प्रकार स्तुति कीनी थी अर यहाँ ग्रन्थ कर्त्ता और ही प्रकार स्तुति कीनी लिखी परन्तु स्तुतिरूप प्रयोजन अन्यथा न भया। बहुरि परस्पर किनिहूकै वचनालाप भया। तहाँ

उनके तो और प्रकार अक्षर निकसे थे, यहाँ ग्रन्थकर्त्ता अन्य प्रकार कहे परन्तु प्रयोजन एक ही दिखावे हैं। बहुरि नगर वन संग्रामादिकका नामादिक तो यथावत् ही लिखे अर वर्णन हीनाधिक भी प्रयोजन-कों पोषता निरूपे हैं। इत्यादि ऐसें ही जानना। बहुरि प्रसंगरूप कथा भी ग्रन्थकर्त्ता अपना विचार अनुसारि कहै। जैसे **धर्मपरीक्षाविषं** मूर्खनिकी कथा लिखी, सो ए ही कथा मनोवेग कही थी ऐसा नियम नाहीं। परन्तु मूर्खपनाकों पोषती कोई वार्त्ता कही ऐसा अभिप्राय पोषै है। ऐसें ही अन्यत्र जानना।

यहां कोऊ कहै— अयथार्थ कहना तो जैन शास्त्रनिविषै सम्भवै नाहीं ?

ताका उत्तर—अन्यथा तो वाका नाम है, जो प्रयोजन औरका और प्रगट करै। जैसे काहूकों कह्या—तू ऐसै कहियो, वानै वे ही अक्षर तो न कहे परन्तु तिसही प्रयोजन लिए कह्या तो वाकों मिथ्या-वादी न कहिए, तैसे जानना। जो जैसाका तैसा लिखनेंकी सम्प्रदाय होय तो काहूने बहुत प्रकार वैराग्य चितवन किया था, ताका वर्णन सब लिखें ग्रन्थ बधि जाय, किछू न लिखे तो वाका भाव भासै नाहीं। तातैं वैराग्यके ठिकानें थोरा बहुत अपना विचारके अनुसारि वैराग्य पोषता ही कथन करै, सराग पोषता न करै। तहां प्रयोजन अन्यथा न भया तातै याकों अयथार्थ न कहिए, ऐसै ही अन्यत्र जानना।

बहुरि प्रथमानुयोगविषै जाकी मुख्यता होय, ताकों ही पोषै हैं। जैसें काहूनें उपवास किया, ताका तो फल स्तोक था बहुरि वाकै अन्यधर्म परिणतिकी विशेषता भई, तातै विशेष उच्चपदकी प्राप्ति भई। तहाँ तिसकों उपवासहीका फल निरूपण करे, ऐसै ही अन्य

जाननें। बहुरि जैसें काहूनें शीलादिकी प्रतिज्ञा दृढ़ राखी वा नमस्कार मन्त्र स्मरण किया वा अन्य धर्म साधन किया, ताकै कष्ट दूरि भए, अतिशय प्रगट भये, तहाँ तिनहीका तैसा फल न भया अर अन्य कोई कर्म के उदयतें वैसे कार्य भए तो भी तिनकों तिन शीलादिकका ही फल निरूपण करै। ऐसै ही कोई पापकार्य किया, ताकै तिसहीका तो तैसा फल न भया अर अन्य कर्मउदयतें नीचेगतिकों प्राप्त भया वा कष्टादिक भए, ताकों तिसही पाप कार्य का फल निरूपण करै। इत्यादि ऐसें ही जानना।

यहाँ कोऊ कहै—ऐसा झूठा फल दिखावना तो योग्य नाही, ऐसे कथनकों प्रमाण कैसें कीजिए ?

ताका समाधान—जे अज्ञानी जीव बहुत फल दिखाए बिना धर्म विषै न लागै वा पापतें न डरै, तिनका भला करनेके अर्थि ऐसा वर्णन करिए है। बहुरि झूठ तो तब होय, जब धर्मका फलकों पापका फल बतावै, पापका फलकों धर्मका फल बतावै। सो तो है नाहीं। जैसें दश पुरुष मिलि कोई कार्य करै, तहाँ उपचारकरि एक पुरुष का भी किया कहिए तो दोष नाही अथवा जाके पितादिकने कोई कार्य किया होय, ताकों एक जाति अपेक्षा उपचारकरि पुत्रादिकका किया कहिए तो दोष नाहीं। तैसे बहुत शुभ वा अशुभकार्यनिका एक फल भया, ताकों उपचारकरि एक शुभ वा अशुभकार्यका फल कहिए तो दोष नाही अथवा और शुभ वा अशुभकार्यका फल जो भया होय, ताकों एक जाति अपेक्षा उपचारकरि कोई और ही शुभ वा अशुभकार्यका फल कहिए तो दोष नाहीं। उपदेशविषैं कहीं व्यवहार वर्णन है, कहीं

निश्चय वर्णन है। यहाँ उपचाररूप व्यवहार वर्णन किया है, ऐसें याकों प्रमाण कीजिए है। याकों तारतम्य न मानि लेना। तारतम्य करणानुयोगविषै निरूपण किया है, सो जानना।

बहुरि प्रथमानुयोग विषै उपचाररूप कोई धर्मका अंग भए सम्पूर्ण धर्म भया कहिए है। जैसे जिन जीवनिकै शका कांक्षादिक न भए, तिन कै सम्यक्त भया कहिए। सो एक कोई कार्यविषै शका कांक्षा न किए ही तो सम्यक्त न होय, सम्यक्त तो तत्वश्रद्धान भए हो है। परन्तु निश्चय सम्यक्तका तो व्यवहार सम्यक्त विषै उपचार किया, बहुरि व्यवहार सम्यक्त के कोई एक अङ्गविषै सम्पूर्ण व्यवहार सम्यक्तका उपचार किया, ऐसे उपचारकरि सम्यक्त भया कहिए है। बहुरि कोई जैनशास्त्रका एक अग जाने सम्यग्ज्ञान भया कहिए है, सो सशयादिरहित तत्वज्ञान भए सम्यग्ज्ञान होय परन्तु पूर्ववत् उपचारकरि कहिए। बहुरि कोई भला आचरण भए सम्यक्चारित्र भया कहिए है। तहाँ जाने जैनधर्म अंगीकार किया होय वा कोई छोटी मोटी प्रतिज्ञा ग्रही होय, ताको श्रावक कहिए सो श्रावक तो पचमगुणस्थानवर्त्ती भए हो है परन्तु पूर्ववत् उपचार करि याको श्रावक कह्या है। उत्तरपुराणविषै श्रणिककों श्रावकोत्तम कह्या सो वह तो असयत था परन्तु जैनी था तातै कह्या। ऐसै ही अन्यत्र जानना। बहुरि जो सम्यक्तरहित मुनिलिग धारै वा कोई द्रव्याँ भी अतिचार लगावता होय, ताकों मुनि कहिए। सो मुनि तो षष्टादि गुणस्थानवर्त्ती भए ही हो है परन्तु पूर्ववत् उपचारकरि मुनि कह्या है। समवसरणसभाविषै मुनिनिकी सख्या कही, तहाँ सर्व ही शुद्ध भावलिगी मुनि न थे परन्तु मुनिलिग धारनेते सबनिकों मुनि कहे। ऐसैही अन्यत्र जानना।

बहुरि प्रथमानुयोगविषें कोई धर्मबुद्धितें अनुचित कार्य करै ताकी भी प्रशसा करिये है। जंसें **विष्णुकुमार** मुनिनका उपसर्ग दूरि किया सो धर्मानुरागते किया परन्तु मुनिपद छोड़ि यहु कार्य करना योग्य न था। जातें ऐसा कार्य तो गृहस्थधर्मविषें सम्भवे अर गृहस्थ धर्मत मुनिधर्म ऊँचा है। सो ऊँचा धर्म छोड़ि नोचाधर्म अंगीकार किया सो अयोग्य है परन्तु वात्सल्य अगकी प्रधानताकरि विष्णुकुमार जीकी प्रशंसा करी। इस छलकरि औरनिकों ऊँचा धर्मछोड़ि नीचाधर्म अंगीकार करना योग्य नाही। बहुरि जैसें **गुवालिया** मुनिको अग्नि करि तपाया सो करुणातें यहु कार्य किया। परन्तु आया उपसर्गकों तो दूरि करै, सहज अवस्थाविषें जो शीतादिककी परीषह हो है, ताकों दूर किए रति माननेका कारण होय, उनको रति करनी नाहीं, तब उलटा उपसर्ग होय। याहीते विवेकी उनकै शीतादिकका उपचार करते नाहीं। गुवालिया अविवेको था, करुणाकरि यहु कार्य किया, तातै याकी प्रशसा करी। इस छलकरि औरनिकों धर्मपद्धति-विषें जो विरुद्ध होय सो कार्य करना योग्य नाही। बहुरि जेसै **वज्रकरण** राजा **सिंहोवर** राजाकों नम्या नाही, मुद्रिकाविषै प्रतिमा राखी। सो बड़े बड़े सम्यग्दृष्टी राजादिककों नमें, याका दोष नाहीं अर मुद्रिका विषै प्रतिमा राखनेमें अविनय होय, यथावत् विधिते ऐसी प्रतिमा न होय, तातें इस कार्यविषै दोष है। परन्तु वाकै ऐसा ज्ञान न था, धर्मा-नुरागतें मैं औरकों नमूं नाहीं, ऐसी बुद्धि भई, तातें वाकी प्रशंसा करी। इस छलकरि औरनिकों ऐसे कार्य करने युक्त नाही। बहुरि केई पुरुषों ने पुत्रादिककी प्राप्तिके अर्थि वा रोग कष्टादि दूरि करनेके अर्थि चैत्या-

लय पूजनादि कार्य किए, स्तोत्रादि किए, नमस्कार मन्त्र स्मरण किया। सो ऐसें किए तो निःकांक्षित गुण का अभाव होय, निदानबंध-नामा आर्त्तध्यान होय। पापहीका प्रयोजन अंतरगविषै है, तातैं पाप-हीका बंध होई। परन्तु मोहित होयकरि भी बहुत पापबंधका कारण कुदेवादिकका तो पूजनादि न किया, इतना वाका गुण ग्रहणकरि वाकी प्रशंसा करिए है। इस छलकरि औरनिकों लौकिक कार्यनिके अर्थि धर्मसाधन करना युक्त नाहीं। एसें ही अन्यत्र जानने। ऐसें ही प्रथमानुयोगविषै अन्य कथन भी होंय, ताको यथासंभव जानि भ्रम-रूप न होना।

अब करणानुयोगविषै किस प्रकार व्याख्यान है, सो कहिये है—

करणानुयोग में व्याख्यान का विधान

जैसे केवलज्ञानकरि जान्या तैसें करणानुयोगविषें व्याख्यान है। बहुरि केवलज्ञानकरि तो बहुत जान्या परन्तु जीवकों कार्यकारी जीव कर्मादिकका वा त्रिलोकादिकका ही निरूपण या विषै हो है। बहुरि तिनका भी स्वरूप सर्व निरूपण न होय सकै, तातैं जैसें वचनगोचर होय छद्मस्थके ज्ञानविषै उनका किछू भाव भासै तैसें संकोचन करि निरूपण करिए है। यहाँ उदाहरण—जीवके भावनिकी अपेक्षा गुण-स्थानक कहे, ते भाव अनन्तस्वरूप लिये वचनगोचर नाहीं। तहाँ बहुत भावनिकी एक जातिकरि चौदह गुणस्थान कहे। बहुरि जीव जाननेके अनेक प्रकार हैं। तहाँ मुख्य चौदह मार्गणाका निरूपण किया। बहुरि कर्मपरमाणू अनन्तप्रकार शक्तियुक्त हैं, तिनविषै बहुतनिकी एक जाति करि आठ वा एकसौ अड़तालीस प्रकृति कही। बहुरि त्रिलोकविषैं अनेक रचना हैं, तहाँ मुख्य केतीक रचना निरूपण करिए है। बहुरि

प्रमाण के अनन्त भेद तहाँ संख्यातादि तीन भेद वा इनके इकईस भेद निरूपण किए, ऐसैं ही अन्यत्र जानना।

बहुरि करणानुयोगविषै यद्यपि वस्तु के क्षेत्र, काल, भावादिक अखंडित हैं, तथापि छद्मस्थकों हीनाधिक ज्ञान होनेके अर्थि प्रदेश समय अविभागप्रतिच्छेदादिककी कल्पनाकरि तिनका प्रमाण निरूपिए है। बहुरि एक वस्तुविषैं जुदे जुदे गुणनिका वा पर्यायनिका भेदकरि निरूपण कीजिए है। बहुरि जीव पुद्‌गलादिक यद्यपि भिन्न भिन्न हैं, तथापि सम्बन्धादिककरि अनेक द्रव्यकरि निपज्या गति जाति आदि भेद तिनकों एक जीवके निरूपे हैं, इत्यादि व्यवहार नयकी प्रधानता लिये व्याख्यान जानना। जातै व्यवहारबिना विशेष जानि सकै नाही। बहुरि कहीं निश्चयवर्णन भी पाइए है। जैसें जीवादिक द्रव्यनिका प्रमाण निरूपण किया, सो जुदे जुदे इतने ही द्रव्य हैं। सो यथासम्भव जानि लेना।

बहुरि करणानुयोगविषैं जे कथन हैं ते केई तो छद्मस्थके प्रत्यक्ष अनुमानादिगोचर होंय, बहुरि जे न होंय तिनकों आज्ञा प्रमाणकरि माननें। जैसे जीव पुद्‌गलके स्थूल बहुत कालस्थायी मनुष्यादि पर्याय वा घटादि पर्याय निरूपण किए, तिनका तो प्रत्यक्ष अनुमानादि होय सकै, बहुरि समय समय प्रति सूक्ष्म परिणमन अपेक्षा ज्ञानादिकके वा स्निग्ध रूक्षादिकके अंश निरूपण किए ते आज्ञाहीतें प्रमाण हो हैं। ऐसें ही अन्यत्र जानना।

बहुरि करणानुयोगविषैं छद्मस्थनिकी प्रवृत्ति के अनुसार वर्णन किया नाहीं, केवलज्ञानगम्य पदार्थनिका निरूपण है। जैसे केई जीव तो द्रव्यादिक का विचार करै हैं वा व्रतादिक पालैं हैं परन्तु तिनकै अन्तरंग सम्यक्त चारित्रशक्ति नाहीं, तातैं उनकों मिथ्यादृष्टि अव्रती

कहिए है। बहुरि केई जीव द्रव्यादिकका वा व्रतादिकका विचार रहित हैं, अन्य कार्यनिविषें प्रवर्त्तें हैं वा निद्रादिकरि निर्विचार होय रहे हैं परन्तु उनकै सम्यक्तादि शक्तिका सद्भाव है, तातैं उनकौं सम्यक्त्वी वा व्रती कहिए है। बहुरि कोई जीवकै कषायनिकी प्रवृत्ति तो घनी है अर वाकै अन्तरग कषायशक्ति थोरी है, तो वाकौं मंदकषायी कहिए है। अर कोई जीवकै कषायनिकी प्रवृत्ति तो थोरी है अर वाकै अन्तरग कषायशक्ति घनी है, तो वाकौं तीव्रकषायी कहिए है। जैसें व्यन्तरादिक देव कषायनितें नगर नाशादि कार्य करैं, तो भी तिनकै थोरी कषायशक्तितें पीतलेश्या कही। बहुरि एकेन्द्रियादिक जीव कषायकार्य करते दीखें नाहीं, तिनकै बहुत कषायशक्तितें कृष्णादि लेश्या कही। बहुरि सर्वार्थसिद्धि के देव कषायरूप थोरे प्रवर्त्तें, तिनकै बहुत कषायशक्तितें असयम कह्या अर पचमगुणस्थानी व्यापार अब्रह्मादि कषायकार्यरूप बहुत प्रवर्त्तें, तिनकै मन्दकषाय शक्तितें देशसयम कह्या। ऐसें ही अन्यत्र जानना।

बहुरि कोई जीवकै मन वचन कायकी चेष्टा थोरी होती दीसै, तो भी कर्माकर्षण शक्ति की अपेक्षा बहुत योग कह्या। काहूकै चेष्टा बहुत दीसै तो भी शक्तिकी हीनतातें स्तोक योग कह्या। जैसें केवली गमनादिक्रियारहित भया, तहाँ भी ताकै योग बहुत कह्या। बेंद्रियादिक जीव गमनादि करै हैं, तो भी तिनकै योग स्तोक कहे। ऐसें ही अन्यत्र जानना।

बहुरि कही जाकी व्यक्तता किछू न भासै, तो भी सूक्ष्मशक्तिके सद्भावतें ताका तहाँ अस्तित्व कह्या। जैसें मुनिकै अब्रह्मकार्य किछू नाही, तो भी नवम गुणस्थानपर्यन्त मैथुनसंज्ञा कही। अहमिंद्रनिकै

दुःखका कारण व्यक्त नाही, तो भी कदाचित् असाताका उदय कह्या। नारकीनिकै सुख का कारण व्यक्त नाही, तो भी कदाचित् साताका उदय कह्या। ऐसै ही अन्यत्र जानना।

बहुरि करणानुयोग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रादिक धर्मका निरूपण कर्मप्रकृतिनिका उपशमादिककी अपेक्षा लिए सूक्ष्मशक्ति जैसे पाइए तैसें गुणस्थानादिविषै निरूपण करै है वा सम्यग्दर्शनादिकके विषयभूत जीवादिक तिनका भी निरूपण सूक्ष्मभेदादि लिये करै है। यहाँ कोई करणानुयोगके अनुसारि आप उद्यम करै तो होय सकै नाही। करणानुयोगविषै तो यथार्थ पदार्थ जनावनेका मुख्यप्रयोजन है, आचरण करावनेकी मुख्यता नाही। तातै यहु तो चरणानुयोगादिकके अनुसार प्रवर्त्तै, तिसतै जो कार्य होना है सो स्वयमेव ही होय है। जैसे आप कर्मनिका उपशमादि किया चाहै तो कैसे होय ? आप तो तत्वादिकका निश्चय करनेका उद्यम करै, तातै स्वयमेव ही उपशमादि सम्यक्त होय। ऐसै ही अन्यत्र जानना। एक अतर्मुहूर्त्तविषै ग्यारहवाँ गुणस्थानसों पडि क्रमतें मिथ्यादृष्टि होय बहुरि चढिकरि केवलज्ञान उपजावै। सो ऐसे सम्यक्तादिकके सूक्ष्मभाव बुद्धिगोचर आवते नाही, तातै करणानुयोगके अनुसारि जैसाका तैसा जानि तो ले अर प्रवृत्ति बुद्धिगोचर जैसै भला होय तैसे करै।

बहुरि करणानुयोगविषै भी कही उपदेशकी मुख्यता लिए व्याख्यान हो है, ताकों सर्वथा तैसे ही न मानना। जैसे हिंसादिकका उपायकों कुमतिज्ञान कह्या, अन्यमतादिकके शास्त्राभ्यास कों कुश्रुतज्ञान कह्या, बुरा दीसै भला न दीसै ताकों विभंगज्ञान कह्या, सो इनकों छोडनेके

अर्थि उपदेशकरि ऐसैं कह्या। तारतम्यतें मिथ्यादृष्टीकै सर्व ही ज्ञान कुज्ञान हैं, सम्यग्दृष्टीकै सर्व ही ज्ञान सुज्ञान हैं। ऐसैं ही अन्यत्र जानना।

बहुरि कही स्थूल कथन किया होय, ताकों तारतम्यरूप न जानना। जैसैं व्यासतें तिगुणी परिधि कहिए, सूक्ष्मपनें किछू अधिक तिगुणी हो है। ऐसै ही अन्यत्र जानना। बहुरि कहीं मुख्यताकी अपेक्षा व्याख्यान होय, ताकों सर्व प्रकार न जानना। जैसे मिथ्यादृष्टी सासादन गुणस्थानवालेकों पापजीव कहे, असयतादि गुणस्थानवालेकों पुण्यजीव कहे सो मुख्यपने ऐसें कहे, तारतम्यते दोऊनिकै पाप पुण्य यथासम्भव पाईए है। ऐसै ही अन्यत्र जानना। ऐसै ही और भी नाना प्रकार पाईए है, ते यथासम्भव जानने। ऐसे करणानुयोगविषे व्याख्यानका विधान दिखाया।

अब चरणानुयोगविषें किस प्रकारका व्याख्यान है, सो दिखाईए है—

चरणानुयोग में व्याख्यान का विधान

चरणानुयोगविषे जैसे जीवनिकै अपनी बुद्धिगोचर धर्मका आचरण होय सो उपदेश दिया है। तहाँ धर्म तो निश्चयरूप मोक्षमार्ग है सोई है। ताके साधनादिक उपचारतें धर्म है सो व्यवहारनयकी प्रधानताकरि नाना प्रकार उपचार धर्मके भेदादिक याविषै निरूपण करिए है। जातै निश्चय धर्मविषै तो किछू ग्रहण त्यागका विकल्प नाहीं अर याकै नीचली अवस्थाविषै विकल्प छूटता नाही, तातै इस जीवको धर्मविरोधी कार्यनिकों छुड़ावनेका अर धर्मसाधनादि कार्यनिके ग्रहण करावनेका उपदेश या विषै है। सो उपदेश दोय प्रकार दीजिए है। एक तो व्यवहारहीका उपदेश दीजिए है, एक निश्चयसहित व्यवहारका उपदेश दीजिए है। तहाँ जिन जीवनिकै निश्चयका

ज्ञान नाहीं है वा उपदेश दिए भी न होता दीसै ऐसे मिथ्यादृष्टी जीव किछू धर्मकों सन्मुख भए तिनको व्यवहारहीका उपदेश दीजिए है। बहुरि जिन जीवनिकै निश्चय-व्यवहारका ज्ञान है वा उपदेश दिए तिनका ज्ञान होता दीसै है, ऐसे सम्यग्दृष्टी जीव वा सम्यक्तको सन्मुख मिथ्यादृष्टी जीव तिनको निश्चयसहित व्यवहारका उपदेश दीजिए है। जातैं श्रीगुरु सर्व जीवनिके उपकारी हैं। सो असञ्ज्ञी जीव तो उपदेश ग्रहणे योग्य नाही, तिनका तो उपकार इतना ही किया—और जीवनिकों तिनकी दयाका उपदेश दिया। बहुरि जे जीव कर्म-प्रबलतातै निश्चयमोक्षमार्गकों प्राप्त होय सकै नाही, तिनका इतना ही उपकार किया—जो उनको व्यवहार धर्मका उपदेश देय कुगतिके दुखनिका कारण पापकार्य छुडाय सुगतिके इन्द्रियसुखनिका कारण पुण्यकार्यनिविषै लगाया। जेता दुःख मिटया, तितना ही उपकार भया। बहुरि पापीकै तो पापवासना ही रहै अर कुगतिविषै जाय तहाँ धर्मका निमित्त नाही। तातै परम्पराय दुःखहीकों पाया करै। अर पुण्यवानकै धर्मवासना रहै अर सुगति विषै जाय, तहां धर्म के निमित्त पाईए, तातै परम्पराय सुखको पावै। अथवा कर्मशक्ति हीन होय जाय तो मोक्षमार्गको भी प्राप्त होय जाय। तातैं व्यवहार उपदेशकरि पापतै छुडाय पुण्यकार्यनिविषै लगाईए है। बहुरि जे जीव मोक्षमार्गकों प्राप्त भये वा प्राप्त होने योग्य हैं, तिनका ऐसा उपकार किया जो उनकों निश्चयसहित व्यवहारका उपदेश देय मोक्षमार्गविषैं प्रवर्ताए। श्रीगुरु तो सर्वका ऐसा ही उपकार करै। परन्तु जिन जीव-निका ऐसा उपकार न बनै तो श्रीगुरु कहा करें। जैसा बन्या तैसा ही

उपकार किया। तातै दोय प्रकार उपदेश दीजिए है। तहाँ व्यवहार उपदेशविषैं तो बाह्य क्रियानिहीकी प्रधानता है। तिनका उपदेशतं जीव पापक्रिया छोड़ि पुण्यक्रियानिविषै प्रवर्त्ते। तहाँ क्रियाके अनुसार परिणाम भी तीव्रकषाय छोड़ि किछू मदकषायी होय जाय। सो मुख्य-पने तो ऐसे है। बहुरि काहूके न होय तो मति होहु। श्रीगुरु तो परिणाम सुधारनेके अर्थि बाह्यक्रियानिकों उपदेशै हैं। बहुरि निश्चय-सहित व्यवहारका उपदेशविषै परिणामनिहीकी प्रधानता है। ताका उपदेशतै तत्वज्ञानका अभ्यासकरि वा वैराग्य भावनाकरि परिणाम सुधारै, तहाँ परिणामके अनुसारि बाह्यक्रिया भी सुधरि जाय। परिणाम सुधरे बाह्यक्रिया सुधरै ही सुधरै। तातै श्रीगुरु परिणाम सुधारनेको मुख्य उपदेशै हैं। ऐसे दोय प्रकार उपदेशविषै जहा व्यव-हारही का उपदेश होय तहाँ सम्यग्दर्शनके अर्थि अरहत देव, निर्ग्रन्थ गुरु, दया धर्मको ही मानना, औरको न मानना। बहुरि जीवादिक तत्वनिका व्यवहारस्वरूप कह्या है ताका श्रद्धान करना, शकादि पच्चीस दोष न लगावने, निशकितादिक अग वा सवेगादिक गुण पालने, इत्यादि उपदेश दीजिए है। बहुरि सम्यग्ज्ञानके अर्थि जिनमतके शास्त्रनिका अभ्यास करना, अर्थ व्यजनादि अगनिका साधन करना, इत्यादि उपदेश दीजिए है। बहुरि सम्यक्चारित्रके अर्थि एकोदेश वा सर्वदेशहिसादि पापनिका त्याग करना, व्रतादि अगनिकों पालने, इत्यादि उपदेश दीजिए है। बहुरि कोई जीवकों विशेष धर्मका साधन न होता जानि एक आखड़ी आदिकका ही उपदेश दीजिए है। जैसें भीलकों कागलाका मास छुड़ाया, गुवालियाकों नमस्कार मन्त्र जपने

का उपदेश दिया, गृहस्थकों चैत्यालय पूजा प्रभावनादि कार्यका उपदेश दीजिये है, इत्यादि जैसा जीव होय ताकों तैसा उपदेश दीजिए है। बहुरि जहाँ निश्चयसहित व्यवहारका उपदेश होय, तहाँ सम्यग्दर्शनके अर्थि यथार्थ तत्वनिका श्रद्धान कराईए है। तिनका जो निश्चय स्वरूप है सो भूतार्थ है। व्यवहार स्वरूप है सो उपचार है। ऐसा श्रद्धान लिए वा स्वपरका भेदविज्ञानकरि परद्रव्यविषै रागादि छोड़नेका प्रयोजन लिए तिन तत्वनिका श्रद्धान करनेका उपदेश दीजिए है। ऐसे श्रद्धानतैं अरहतादि बिना अन्य देवादिक झूंठ भासें तब स्वयमेव तिनका मानना छूटै है, ताका भी निरूपण करिए है। बहुरि सम्यग्ज्ञानके अर्थि सशयादिरहित तिनही तत्वनिका तैसैं ही जाननेका उपदेश दीजिए है, तिस जाननेकों कारण जिनशास्त्रनिका अभ्यास है। तातै तिस प्रयोजनके अर्थि जिनशास्त्रनिका भी अभ्यास स्वयमेव हो है, ताका निरूपण करिए है। बहुरि सम्यक्चारित्रके अर्थि रागादि दूरि करनेका उपदेश दीजिए है। तहाँ एकदेश वा सर्वदेश तीव्ररागादिकका अभाव भए तिनके निमित्ततै होती थी जे एकदेश सर्वदेश पापक्रिया, ते छूटै हैं। बहुरि मदरागते श्रावकमुनिके व्रतनिकी प्रवृत्ति हो है। बहुरि मदरागादिकनिका भी अभाव भए शुद्धोपयोगकी प्रवृत्ति हो है, ताका निरूपण करिए है। बहुरि यथार्थ श्रद्धान लिए सम्यग्दृष्टीनिकै जैसे यथार्थ कोई आखड़ी हो है वा भक्ति हो है वा पूजा प्रभावनादि कार्य हो है वा ध्यानादिक हो है, तिनका उपदेश दीजिए है। जैसा जिनमतविषे सांचा परम्पराय मार्ग है, तैसा उपदेश दीजिए है। ऐसै दोय प्रकार उपदेश चरणानुयोगविषै जानना।

बहुरि चरणानुयोगविषै तीव्रकषायनिका कार्य छुड़ाय मंदकषाय रूप कार्य करनेका उपदेश दीजिए है। यद्यपि कषाय करना बुरा ही है, तथापि सर्वकषाय न छूटते जानि जेते कषाय घटै तितना ही भला होगा, ऐसा प्रयोजन तहाँ जानना। जैसे जिन जीवनिकै आरम्भादि करनेकी वा मंदिरादि बनावनेकी वा विषय सेवनेकी वा क्रोधादि करनेकी इच्छा सर्वथा दूरि न होती जानै, तिनको पूजा प्रभावनादिक करनेका वा चैत्यालयादि बनावनेका वा जिनदेवादिकके आगे शोभादिक नृत्य गानादिकरनेका वा धर्मात्मा पुरुषनिकी सहायादि करनेका उपदेश दीजिए है। जातै इनिविषै परम्परा कषायका पोषण न हो है। पापकार्यनिविषै परम्परा कषायपोषण हो है, तातै पापकार्यनिते छुड़ाय इन कार्यनिनिषै लगाईए है। बहुरि थोरा बहुत जेता छूटता जानै, तितना पापकार्य छुडाय सम्यक्त्व वा अणुव्रतादि पालनेका तिनकौं उपदेश दीजिए है। बहुरि जिन जीवनिकै सर्वथा आरम्भादिककी इच्छा दूरि भई, तिनकौ पूर्वोक्त पूजादिक कार्य वा सर्व पापकार्य छुडाय महाव्रतादि क्रियानिका उपदेश दीजिए है। बहुरि किंचित् रागादिक छूटता न जानि, तिनको दया धर्मोपदेश प्रतिक्रमणादि कार्य करने का उपदेश दीजिए है। जहाँ सर्वराग दूरि होय, तहाँ किछू करने का कार्य ही रह्या नाही। तातै तिनकों किछू उपदेश ही नाही। ऐसे क्रम जानना।

बहुरि चरणानुयोगविषै कषायी जीवनिकों कषाय उपजायकरि भी पापकों छुडाईए है अर धर्मविषै लगाईए है। जैसै पापका फल नरकादिकके दुःख दिखाय तिनिकौं भय कषाय उपजाय पापकार्य

छुड़ाईए है। बहुरि पुण्यका फल स्वर्गादिकके सुख दिखाय तिनकों लोभ कषाय उपजाय धर्मकार्यनिविषैं लगाईए है। बहुरि यहु जीव इन्द्रिय-विषय शरीर पुत्र धनादिकके अनुरागतें पाप करै है, धर्म पराङ मुख रहै है, तातैं इन्द्रियविषयनिकों मरण कलेशादिकके कारण दिखावनेकरि तिनविषै अरतिकषाय कराईए है। शरीरादिककों अशुचि दिखावनेंकरि तहाँ जुगुप्साकषाय कराईए है, पुत्रादिककों धनादिकके ग्राहक दिखाय तहाँ द्वेष कराईए है, बहुरि धनादिककों मरण क्लेशादिकका कारण दिखाय तहाँ अनिष्टबुद्धि कराईए है। इत्यादि उपायतें विषयादिविषै तीव्रराग दूरि होनेकरि तिनकै पापक्रिया छूटि धर्मविषै प्रवृत्ति हो है। बहुरि नाम-स्मरण स्तुति-कारण पूजा दान शीलादिकतें इस लोकविषै दारिद्र कष्ट दुख दूरि हो है, पुत्रधनादिककी प्राप्ति हो है, ऐसै निरूपणकरि तिनकै लोभ उपजाय तिन धर्मकार्यनिविषैं लगाईए है। ऐसै ही अन्य उदाहरण जाननें।

यहाँ प्रश्न—जो कोई कषाय छुड़ाय कोई कषाय करावनेका प्रयोजन कहा ?

ताका समाधान—जैसै रोग तो शीतांग भी है अर ज्वर भी है परन्तु कोईकै शीतागतै मरण होता जानै, तहाँ वैद्य है सो वाकै ज्वर होनेका उपाय करै, ज्वर भए पीछें वाकै जीवनेकी आशा होय, तब पीछें ज्वर के भी मेटनेका उपाय करै। तैसै कषाय तो सर्व ही हेय हैं परन्तु केई जीवनिकै कषायनिते पापकार्य होता जानै, तहाँ श्रीगुरु हैं सो उनकै पुण्यकार्यकों कारणभूत कषाय होनेका उपाय करै, पीछें वाकै साची धर्मबुद्धि भई जानै, तब पीछे तिस कषाय मेटनेका उपाय करैं; ऐसा प्रयोजन जानना।

बहुरि चरणानुयोगविषैं जैसें जीव पाप छोड़ि धर्मविषैं लागै, तैसैं अनेक युक्तिकरि वर्णन करिए है। तहाँ लौकिक दृष्टान्त युक्ति उदाहरण न्यायप्रवृत्तिके द्वारि समझाईए है वा कही अन्य-मतके भी उदाहरणादि कहिए है। जैसें **सूक्तमुक्तावली** विषैं लक्ष्मीकों कमलावासिनी कही वा समुद्रविषैं विष और लक्ष्मी उपजै, तिस अपेक्षा विषकी भगिनी कही। ऐसैं ही अन्यत्र कहिए है। तहाँ केई उदाहरणादि झूठे भी हैं परन्तु साँचा प्रयोजनकों पोषैं हैं। तातैं दोष नाहीं।

यहाँ काऊ कहै कि झूठका तो दोष लागै। ताका उत्तर—जो झूंठ भी है अर सांचा प्रयोजनकों पोषै तो वाको झूंठ न कहिए। बहुरि सांच भी है अर झूठा प्रयोजनकों पोषै तो वह झूंठा ही है। अलंकारयुक्ति नामादिकविषै वचन अपेक्षा झूंठ सांच नाही, प्रयोजन अपेक्षा झूंठ सांच है। जैसै तुच्छशोभासहित नगरीकों इन्द्रपुरीके समान कहिए है सो झूठ है परन्तु शोभाका प्रयोजनको पोषै है तातै झूंठ नाही। बहुरि "इस नगरीविषै छत्रहीकै दंड है, अन्यत्र नाही" ऐसा कह्या, सो झूंठ है। अन्यत्र भी दड देना पाईए है परन्तु तहाँ अन्यायवान् थोरे हैं, न्यायवानकों दण्ड न दीजिए है, ऐसा प्रयोजनकों पोषै है, तातै झूठ नाही। बहुरि वृहस्पतिका नाम 'सुर-गुरु' लिखें वा मंगलका नाम 'कुज' लिखे, सो ऐसे नाम अन्यमत अपेक्षा हैं। इनका अक्षरार्थ है सो झूठा है। परन्तु वह नाम तिस पदार्थका अर्थ प्रगट करै है, तातै झूठ नाहीं। ऐसै अन्य मतादिकके उदाहरणादि दीजिए है सो झूठे हैं परन्तु उदाहरणादिकका तो

श्रद्धान करावना है नाही, श्रद्धान तो प्रयोजनका करावना है। सो प्रयोजन सांचा है, तातै दोष नाही है।

बहुरि चरणानुयोगविषै छद्मस्थकी बुद्धिगोचर स्थूलपनाकी अपेक्षा लोकप्रवृत्तिकी मुख्यता लिए उपदेश दीजिए है। बहुरि केवलज्ञानगोचर सूक्ष्मपनाकी अपेक्षा न दीजिए है, जातै तिसका आचरण न होय सकै। यहाँ आचरण करावनेका प्रयोजन है। जैसै अणुव्रतीकै त्रसहिंसाका त्याग कह्या अर वाकै स्त्रीसेवनादि क्रियानिविषै त्रस हिंसा हो है। यहु भी जानै है —जिनवानी विषै यहाँ त्रस कहे हैं परन्तु याकै त्रस मारनेका अभिप्राय नाही अर लोकविषै जाका नाम त्रसघात है, ताकों करै नाही। तातै तिस अपेक्षा वाकै त्रसहिंसाका त्याग है। बहुरि मुनिकै स्थावरहिंसाका भी त्याग कह्या, सो मुनि पृथ्वी जलादिविषै गमनादि करै है, तहाँ सर्वथा त्रसका भी अभाव नाही। जातै त्रसजीवकी भी अवगाहना ऐसी छोटी हो है, जो दृष्टिगोचर न आवै अर तिनकी स्थिति पृथ्वी जलादि विषै ही है। सो मुनि जिनवानीतें जानै हैं वा कदाचित् अवधि ज्ञानादिकरि भी जानै हैं परन्तु याकै प्रमादतै स्थावर त्रसहिंसा-का अभिप्राय नाही। बहुरि लोकविषै भूमि खोदना अप्रासुक जलतें क्रिया करनी इत्यादि प्रवृत्तिका नाम स्थावरहिंसा है अर स्थूल त्रसनिके पीड़नेका नाम त्रस हिंसा है, ताकों न करै। तातै मुनिकै सर्वथा हिंसाका त्याग कहिए है। बहुरि ऐसै ही अनृत्य, स्तेय, अब्रह्म, परिग्रहका त्याग कह्या। अर केवलज्ञानका जाननेकी अपेक्षा असत्यवचनयोग बारवाँ गुण स्थान पर्यन्त कह्या। अदत्तकर्मपरमाणु आदि परद्रव्यका ग्रहण तेरवाँ गुण-स्थान पर्यन्त है। वेदका उदय नवमगुणस्थान पर्यन्त है। अंतरगपरिग्रह

दसवाँ गुणस्थानपर्यन्त है। बाह्य परिग्रह समवसरणादि केवलीकै भी हो है परन्तु प्रमादतें पापरूप अभिप्राय नाहीं अर लोकप्रवृत्तिविषै जिनक्रियानिकरि यहु झूठ बोलै है, चोरी करै है, कुशील सेवै है, परिग्रह राखै है ऐसा नाम पावै, वे क्रिया इनकै हैं नाही। तातै अनृतादिकका इनिकै त्याग कहिए है। बहुरि जैसें मुनिकै मूलगुणनिविषै पंचइन्द्रियनिके विषयका त्याग कह्या सो जानना तो इन्द्रियनिका मिटै नाहीं अरविषयनिविषैं रागद्वेष सर्वथा दूरि भया होय तो यथाख्यात चारित्र होय जाय सो भया नाहीं परन्तु स्थूलपनें विषय इच्छाका अभाव भया अर बाह्य विषय सामग्री मिलावनेकी प्रवृत्ति दूरि भई तातैं याकै इन्द्रियविषयका त्याग कह्या। ऐसै ही अन्यत्र जानना। बहुरि व्रती जीव त्याग वा आचरण करै है, सो चरणानुयोगकी पद्धति अनुसारि वा लोकप्रवृत्तिके अनुसारि त्याग करै है। जैसै काहूने त्रसहिंसाका त्याग किया, तहाँ चरणानुयोगविषै वा लोकविषै जाको त्रस हिंसा कहिए है, ताका त्याग किया है। केवलज्ञानादिकरि जे त्रस देखिए हैं, तिनिकी हिंसाका त्याग बनै ही नाहीं। तहाँ जिस त्रसहिंसाका त्याग किया, तिसरूप मनका विकल्प न करना सो मनकरि त्याग है, वचन न बोलना सो वचनकरि त्याग है, कायकरि न प्रवर्तना सो कायकरि त्याग है। ऐसै अन्य त्याग वा ग्रहण हो है, सो ऐसी पद्धति लिए ही हो है, ऐसा जानना।

यहाँ प्रश्न—जो करणानुयोगविषै तो केवलज्ञान अपेक्षा तारतम्य कथन है, तहाँ छठे गुणस्थाननिमें सर्वथा बारह अविरतिनिका अभाव कह्या, सो कैसे कह्या ?

ताका उत्तर— अविरति भी योगकषायविषैं गर्भित थे परन्तु तहाँ भी चरणानुयोग अपेक्षा त्यागका अभाव तिसहीका नाम अविरति कह्या है । तातैं तहाँ तिनका अभाव है। मन अविरतिका अभाव कह्या, सो मुनिकै मनके विकल्प हो हैं परन्तु स्वेच्छाचारी मनकी पापरूप प्रवत्तिके अभावतैं मनअविरतिका अभाव कह्या है, ऐसा जानना ।

बहुरि चरणानुयोगविषै व्यवहार लोकप्रवृत्ति अपेक्षा ही नामादिक कहिए है । जैसें सम्यक्तवीको पात्र कह्या, मिथ्यात्वीकों अपात्र कह्या । सो यहाँ जाकै जिनदेवादिकका श्रद्धान पाईए सो तो सम्यक्त्वी, जाकै तिनका श्रद्धान नाही सो मिथ्यात्वी जानना । जातैं दान देना चरणानुयोगविषै कह्या है, सो चरणानुयोगहीके सम्यक्त मिथ्यात्व ग्रहण करने । करणानुयोग अपेक्षा सम्यक्त मिथ्यात्व ग्रहैं वो ही जीव ग्यारवे गुणस्थान था अर वो ही अन्तर्मुहूर्त्तमे पहिले गुणस्थान आवै, तहाँ दातार पात्र अपात्रका कैसे निर्णय करि सकै ? बहुरि द्रव्यानुयोग अपेक्षा सम्यक्त मिथ्यात्व ग्रहैं मुनि सघविषै द्रव्यलिगी भी हैं, भावलिंगी भी हैं । सो प्रथम तो तिनका ठीक होना कठिन है, जातैं बाह्य प्रवृत्ति समान है । अर जो कदाचित् सम्यक्तीकों कोई चिन्हकरि ठीक पडै अर वह वाकी भक्ति न करै, तब औरनिकै सशय होय, याकी भक्ति क्यों न करी । ऐसैं वाका मिथ्यादृष्टीपना प्रगट होय, तब सघविषै विरोध उपजै । तातै यहाँ व्यवहार सम्यक्त मिथ्यात्वकी अपेक्षा कथन जानना ।

यहाँ कोई प्रश्न करै—सम्यक्ती तो द्रव्यलिगीकों आपतै हीनगुणयुक्त मानै है, ताकी भक्ति कैसे करै ?

ताका समाधान—व्यवहारधर्मका साधन द्रव्यलिंगीकै बहुत है अर भक्ति करनी सो भी व्यवहार ही है। तातें जैसें कोई धनवान होय परन्तु जो कुलविषै बड़ा होय ताकों कुल अपेक्षा बड़ा जानि ताका सत्कार करै, तैसें आप सम्यक्तगुणसहित है परन्तु जो व्यवहारधर्मविषै प्रधान होय ताकों व्यवहारधर्म अपेक्षा गुणाधिक मानि ताकी भक्ति करै है, ऐसा जानना। बहुरि ऐसै ही जो जीव बहुत उपवासादि करै, ताकों तपस्वी कहिए है। यद्यपि कोई ध्यान अध्ययनादि विशेष करै है सो उत्कृष्ट तपस्वी है तथापि इहा चरणानुयोगविषै बाह्यतपहीकी प्रधानता है। तातै तिसहीकों तपस्वी कहिए है। याही प्रकार अन्य नामादिक जानने। ऐसें ही अन्य अनेक प्रकार लिए चरणानुयोगविषै व्याख्यानका विधान जानना।

अब द्रव्यानुयोगविषै कहिए है—

द्रव्यानुयोग में व्याख्यान का विधान

जीवनिकै जीवादि द्रव्यनिका यथार्थ श्रद्धान जैसे होय, तैसे विशेष युक्ति हेतु दृष्टान्तादिकका यहाँ निरूपण कीजिए है। जातें या विषै यथार्थ श्रद्धान करावनेका प्रयोजन है। तहाँ यद्यपि जीवादि वस्तु अभेद है तथापि तिनविषै भेदकल्पनाकरि व्यवहारतैं द्रव्य गुण पर्यायादिकका भेद निरूपण कीजिए है। बहुरि प्रतीति अनावनेके अर्थ अनेक युक्तिकरि उपदेश दीजिए है अथवा प्रमाणनयकरि उपदेश दीजिए सो भी युक्ति है। बहुरि वस्तुका अनुमान प्रत्यभिज्ञानादिक करनेकों हेतु दृष्टांतादिक दीजिए है। ऐसै तहाँ वस्तुकी प्रतीति करावनेकों उपदेश दीजिए है। बहुरि यहाँ मोक्षमार्गका श्रद्धान करावनेके अर्थ जीवादि तत्वनिका विशेष युक्ति हेतु दृष्टातादिकरि निरूपण

कीजिए है। तहाँ स्वपरभेदविज्ञानादिक जैसे होय तैसे जीव अजीवका निर्णय कीजिए है। बहुरि वीतरागभाव जैसे होय तैसे आस्रवादिकका स्वरूप दिखाइए है। बहुरि तहाँ मुख्यपने ज्ञान वैराग्यको कारण आत्मानुभवनादिक ताकी महिमा गाइए है। बहुरि द्रव्यानुयोग विषैं निश्चय अध्यात्म उपदेशकी प्रधानता होय, तहाँ व्यवहारधर्मका भी निषेध कीजिए है। जे जीव आत्मानुभवनके उपायकों न करैं हैं अर बाह्य क्रियाकाडविषै मग्न हैं, तिनको तहाँतैं उदासकरि आत्मानुभवनादिविषैं लगावनेकों व्रत शील संयमादिकका हीनपना प्रगट कीजिए है। तहाँ ऐसा न जानि लेना, जो इनको छोड़िपापविषै लगना। जातैं तिस उपदेशका प्रयोजन अशुभविषै लगावनेका नाहीं है। शुद्धोपयोगविषै लगावनेको शुभोपयोगका निषध कीजिए है।

यहाँ कोऊ कहै कि अध्यात्म-शास्त्रनिविषैं पुण्य पाप समान कहे हैं, तातैं शुद्धोपयोग होय तो भला ही है, न होय तो पुण्यविषै लगो वा पापविषैं लगो।

ताका उत्तर—जैसैं शूद्रजातिअपेक्षा जाट चाडाल समान कहे परन्तु चाडालतैं जाट किछू उत्तम है। वह अस्पृश्य है यह स्पृश्य है। तसैं बन्धकारण अपेक्षा पुण्य पाप समान हैं परन्तु पापतैं पुण्य किछू भला है। वह तीव्रकषायरूप है, यह मदकषायरूप है। तातैं पुण्य छोडि पापविषैं लगना युक्त नाहीं, ऐसा जानना।

बहुरि जे जीव जिनबिम्बभक्त्यादि कार्यनिविषैं ही मग्न हैं, तिनकों आत्मश्रद्धानादि करावनेकों "देहविषै देव है, देहराविषैं नाहीं" इत्यादि उपदेश दीजिए है। तहाँ ऐसा न जानि लेना, जो भक्ति

छुड़ाय भोजनादिकतैं आपकौं सुखी करना। जातैं तिस उपदेशका प्रयोजन ऐसा नाहीं है। ऐसै ही अन्य व्यवहारका निषेध तहाँ किया होय, ताकौं जानि प्रमादी न होना। ऐसा जानना— जे केवल व्यवहार साधनविषै ही मग्न हैं, तिनकौं निश्चयरुचि करावने के अर्थि व्यवहारको हीन दिखाया है। बहुरि तिन ही शास्त्रनिविषै सम्यग्दृष्टी-के विषय भोगादिककौं बधका कारण न कह्या, निर्जराका कारण कह्या। सो यहाँ भोगनिका उपादेयपना न जानि लेना। तहाँ सम्यग्दृष्टी-की महिमा दिखावनेको जे तीव्रबंधके कारण भोगादिक प्रसिद्ध थे, तिन भोगादिकको होतेसते भी श्रद्धानशक्तिके बलतैं मन्दबंध होने लगा, ताकौं गिन्या नाहीं अर तिसही बलतैं निर्जरा विशेष होने लगी, तातैं उपचारतै भोगनिको भी बंधका कारण न कह्या, निर्जरा का कारण कह्या। विचार किए भोग निर्जराके कारण होंय, तो तिनकौं छोडि सम्यग्दष्टी मुनिपदका ग्रहण काहेकों करै ? यहाँ इस कथनका इतना ही प्रयोजन है—देखो, सम्यक्तकी महिमा जाके बलतै भोग भी अपने गुणकों न करि सकै हैं। याही प्रकार और भी कथन होय तो ताका यथार्थपना जानि लेना।

बहुरि द्रव्यानुयोगविषै भी चरणानुयोगवत् ग्रहण त्याग करावनेका प्रयोजन है। तातैं छद्मस्थके बुद्धिगोचर परिणामनिकी अपेक्षा ही तहाँ कथन कीजिए है। इतना विशेष है, जो चरणानुयोगविषै तो बाह्य-क्रियाकी मुख्यताकरि वर्णन करिए है, द्रव्यानुयोगविषै आत्मपरिणाम-निकी मुख्यताकरि निरूपण कीजिए है। बहुरि करणानुयोगवत् सूक्ष्मवर्णन न कीजिए है। ताके उदाहरण कहिए हैं:—

उपयोगके शुभ अशुभ शुद्ध ऐसैं तीन भेद कहे। तहां धर्मानुरागरूप

परिणाम सो शुभोपयोग अर पापानुरागरूप वा द्वेषरूप परिणाम सो अशुभोपयोग अर रागद्वेषरहित परिणाम सो शुद्धोपयोग, ऐसें कह्या। सो इस छद्मस्थके बुद्धिगोचर परिणामनिकी अपेक्षा यहु कथन है। करणानुयोगविषें कषायशक्ति अपेक्षा गुणस्थानादिविषें सक्लेश विशुद्ध परिणाम अपेक्षा निरूपण किया है सो विवक्षा यहाँ नाहीं है। करणानुयोगविषें तो रागादिरहित शुद्धोपयोग यथाख्यातचारित्र भए होय, सो मोहका नाशतें स्वयमेव होसी। नीचली अवस्थावाला शुद्धोपयोगका साधन कैसें करै। अर द्रव्यानुयोगविषें शुद्धोपयोग करने-ही का मुख्य उपदेश है, तातें यहाँ छद्मस्थ जिस कालविषें बुद्धिगोचर भक्ति आदि वा हिंसा आदि कार्यरूप परिणामनिको छुड़ाय आत्मानु-भवनादि कार्यनिविषें प्रवर्त्तै, तिस काल ताको शुद्धोपयोगी कहिए। यद्यपि यहाँ केवलज्ञानगोचर सूक्ष्मरागादिक हैं तथापि ताकी विवक्षा यहाँ न करी, अपनी बुद्धिगोचररागादिक छोडै तिस अपेक्षा याकों शुद्धोपयोगी कह्या। ऐसैं ही स्वपर श्रद्धानादिक भए सम्यक्तादिक कहे, सो बुद्धिगोचर अपेक्षा निरूपण है। सूक्ष्म भावनिकी अपेक्षा गुण-स्थानादिविषें सम्यक्तादिकका निरूपण करणानुयोगविषें पाईए है। ऐसैं ही अन्यत्र जानने। तातें द्रव्यानुयोगके कथनकी करणानुयोगतें विधि मिलाया चाहै सो कहीं तो मिलै, कहीं न मिलै। जैसे यथाख्यातचारित्र भए तो दोऊ अपेक्षा शुद्धोपयोग है, बहुरि नीचली दशाविषें द्रव्यानुयोग अपेक्षा तो कदाचित् शुद्धोपयोग होय अर करणानुयोग अपेक्षा सदा काल कषायअंश के सद्भावतें शुद्धोपयोग नाहीं। ऐसैं ही अन्य कथन जानि लेना।

बहुरि द्रव्यानुयोगविषैं परमतविषैं कहे तत्वादिक तिनकों असत्य दिखावने के अर्थि तिनका निषेध कीजिए है, तहाँ द्वेषबुद्धि न जाननी। तिनकों असत्य दिखाय सत्य श्रद्धान करावनेका प्रयोजन जानना। ऐसैं ही और भी अनेक प्रकारकरि द्रव्यानुयोगविषैं व्याख्यानका विधान है। या प्रकार च्यारों अनुयोगके व्याख्यानका विधान कह्या। सो कोई ग्रन्थविषैं एक अनुयोगकी, कोई विषै दोयकी, कोई विषैं तीन को, कोई विषै च्यारोंकी प्रधानता लिए व्याख्यान हो है। सो जहाँ जैसा सम्भवै, तहाँ तैसा समझ लेना।

अब इन अनुयोगनिविषैं कैसी पद्धतिकी मुख्यता पाईए है, सो कहिए है—

चारों अनुयोगोंमें व्याख्यान की पद्धति

प्रथमानुयोगविषै तो अलंकारशास्त्रनिकी वा काव्यादि शास्त्रनिकी पद्धति मुख्य है जातैं अलकारादिकते मन रजायमान होय, सूधी बात कहें ऐसा उपयोग लागै नाही जैसा अलंकारादि युक्ति सहित कथनते उपयोग लागै। बहुरि परोक्ष बातकों किछू अधिकताकरि निरूपण करिए तो वाका स्वरूप नीके भासै। बहुरि करणानुयोगविषै गणित आदि शास्त्रनिकी पद्धति मुख्य है जातै तहाँ द्रव्य क्षेत्र काल भावका प्रमाणादिक निरूपण कीजिए है। सो गणित ग्रन्थनिकी आम्नायते ताका सुगम जानपना हो है। बहुरि चरणानुयोगविषै सुभाषित नीतिशास्त्रनिकी पद्धति मुख्य है जातै यहाँ आचरण करावना है, सो लोकप्रवृत्तिके अनुसार नीतिमार्ग दिखाए वह

आचरण करै। बहुरि द्रव्यानुयोगविषै न्यायशास्त्रनिकी पद्धति मुख्य है जातैं यहाँ निर्णय करनेका प्रयोजन है अर न्यायशास्त्रनिविषै निर्णय करनेका मार्ग दिखाया है। ऐसैं इन अनुयोगनिविषैं पद्धति मुख्य है। और भी अनेक पद्धित लिए व्याख्यान इनविषै पाईए है।

यहाँ कोऊ कहै—अलंकार गणित नीति न्यायका तो ज्ञान पडित-निकै होय, तुच्छबुद्धि समझै नाही तातै सूधा कथैन क्यो न किया ?

ताका उत्तर—शास्त्र हैं सो मुख्यपने पडित अर चतुरनिके अभ्यास करने योग्य हैं। सो अलकारादि आम्नाय लिए कथन होय तो तिनका मन लागै। बहुरि जे तुच्छबुद्धि हैं, तिनको पडित समझाय दें अर जे न समझि सकै, तो तिनकों मुखते सूधा ही कथन कहैं। परन्तु ग्रन्थनिविषै सूधा कथन लिखे विशेषबुद्धि तिनका अभ्यासविषै विशेष न प्रवर्त्तैं। तातै अलंकारादि आम्नाय लिए कथन कीजिए है। ऐसें इन च्यारि अनुयोगनिका निरूपण किया।

बहुरि जिनमतविषै घने शास्त्र तो इन च्यारों अनुयोगनिविषै गर्भित हैं। बहुरि व्याकरण न्याय छन्द कोषादिक शास्त्र वा वैद्यक ज्योतिष मन्त्रादि शास्त्र भी जिनमतविषै पाईए हैं। तिनका कहा प्रयोजन है, सो सुनहु—

व्याकरण न्यायादिकका अभ्यास भए अनुयोगरूप शास्त्रनिका अभ्यास होय सकै है। तातै व्याकरणादि शास्त्र कहे हैं।

कोऊ कहै—भाषारूप सूधा निरूपण करते तो व्याकरणादिकका कहा प्रयोजन था ?

ताका उत्तर—भाषा तो अपभ्रंशरूप अशुद्ध वाणी है। देश देश

विषें और और है। सो महत पुरुष शास्त्रनिविषें ऐसी रचना कैसें करें। बहुरि व्याकरण न्यायादिकरि जैसा यथार्थ सूक्ष्म अर्थ निरूपण हो है तैसा सूधी भाषाविषें होय सकै नाही। तातैं व्याकरणादि आम्नायकरि वर्णन किया है। सो अपनी बुद्धि अनुसारि थोरा बहुत इनिका अभ्यासकरि अनुयोगरूप प्रयोजनभूत शास्त्रनिका अभ्यास करना। बहुरि वैद्यकादि चमत्कारते जिनमतकी प्रभावना होय वा औषधादिक ते उपकार भी बनै। अथवा जे जीव लौकिक कार्यविषै अनुरक्त हैं ते वैद्यकादिक चमत्कारते जैनी होय पीछे साँचा धर्म पाय अपना कल्याण करै। इत्यादि प्रयोजन लिए वैद्यकादि शास्त्र कहे हैं। यहाँ इतना है—ए भी जिनशास्त्र हैं, ऐसा जानि इनका अभ्यासविषै बहुत लगना नाही। जो बहुत बुद्धिते इनिका सहज जानना होय अर इनिको जाने आपकै रागादिक विकार बधते न जानै, तो इनिका भी जानना होहु। अनुयोग शास्त्रवत् ए शास्त्र बहुत कार्यकारी नाही। तातैं इनिका अभ्यासका विशेष उद्यम करना युक्त नाही।

यहाँ प्रश्न—जो ऐसै है तो गणधरादिक इनकी रचना काहेकों करी ?

ताका उत्तर—पूर्वोक्त किंचित् प्रयोजन जानि इनकी रचना करी। जैसे बहुत धनवान कदाचित् स्तोक कार्यकारी वस्तुका भी सचय करै। बहुरि थोरा धनवान् उन वस्तुनिका सचय करै तो धन तो तहाँ लगि जाय, बहुत कार्यकारी वस्तुका सग्रह काहेते करै। तैसे बहुत बुद्धिमान् गणधरादिक कथचित् स्तोककार्यकारी वैद्यकादि शास्त्रनिका भी सचय करै। थोरा बुद्धिमान् उनका अभ्यासविषै लगै तो बुद्धि

तो तहाँ लगि जाय, उत्कृष्ट कार्यकारी शास्त्रनिका अभ्यास कैसें करै ? बहुरि जैसें मंदरागी तो पुराणादिविषै शृङ्गारादि निरूपण करै तो भी विकारी न होय, तीव्ररागी तैसें शृङ्गारादि निरूपै तो पाप ही बाँधै। तैसें मदरागी गणधरादिक हैं ते वैद्यकादि शास्त्र निरूपै तो भी विकारी न होंय, तीव्ररागी तिनका अभ्यासविषै लगि जाय तो रागादिक बधाय पापकर्मकों बाँधै, ऐसें जानना। या प्रकार जैनमतके उपदेशका स्वरूप जानना।

अब इनविषै दोषकल्पना कोई करै है, ताका निराकरण कीजिए है—

प्रथमानुयोग में दोष-कल्पनाका निराकरण

केई जीव कहै हैं—प्रथमानुयोगविषै शृङ्गारादिकका वा संग्रामादिकका बहुत कथन करै, तिनके निमित्ततै रागादिक बधि जाय, तातै ऐसा कथन न करना था वा ऐसा कथन सुनना नाही। ताकों कहिए है--कथा कहनी होय तब तो सर्व ही अवस्थाका कथन किया चाहिए। बहुरि जो अलकारादिकरि बधाय कथन करै हैं सो पडितनिके बचन युक्ति लिए ही निकसै।

अर जो तू कहेगा, सम्बन्ध मिलावनेको सामान्य कथन किया होता, बधायकरि कथन काहेकों किया ?

ताका उत्तर यहु है—जो परोक्षकथनकों बधाय कहे बिना वाका स्वरूप भासै नाही। बहुरि पहलै तो भोग सग्रामादि ऐसें किए, पीछे सर्वका त्यागकरि मुनि भए, इत्यादि चमत्कार तबही भासै जब बधाय कथन कीजिए। बहुरि तू कहै है, ताके निमित्ततै रागादिक बधि जाय।

सो जैसें कोऊ चैत्यालय बनावै, सो वाका तो प्रयोजन तहाँ धर्मकार्य करावनेका है अर कोई पापी तहाँ पापकार्य करै तो चैत्यालय बनावनेवालेका तो दोष नाहीं। तैसें श्रीगुरु पुराणादिविषैं शृङ्गारादि वर्णन किए, तहाँ उनका प्रयोजन रागादिक करावनेका तो है नाहीं, धर्मविषैं लगावनेका प्रयोजन है। अर कोई पापी धर्म न करै अर रागादिक ही बधावै, तो श्रीगुरुका कहा दोष है ?

बहुरि जो तू कहै--जो रागादिकका निमित्त होय सो कथन ही न करना था।

ताका उत्तर यहु है—सरागी जीवनिका मन केवल वैराग्य कथनविषै लागै नाही। तातै जैसें बालककों पतासाके आश्रय औषधि दीजिए, तैसे सरागीकों भोगादि कथनके आश्रय धर्मविषै रुचि कराईए है।

बहुरि तू कहेगा—ऐसे है तो विरागी पुरुषनिकों तो ऐसे ग्रथनिका अभ्यास करना युक्त नाही।

ताका उत्तर यहु है--जिनकै अन्तरगविषै रागभाव नाही, तिनके शृङ्गारादि कथन सुने रागादि उपजै ही नाही। यहु जानै ऐसै ही यहाँ कथन करनेकी पद्धति है।

बहुरि तू कहेगा—जिनकै शृङ्गारादि कथन सुने रागादि होय आवै, तिनकों तो वैसा कथन सुनना योग्य नाही।

ताका उत्तर यहु है—जहाँ धर्महीका तो प्रयोजन अर जहाँ तहाँ धर्मकों पोषै ऐसे जैनपुराणादिक तिनविषै प्रसग पाय शृङ्गारादिकका कथन किया, ताकों सुने भी जो बहुत रागी भया तो वह अन्यत्र कहाँ

विरागी होसी, पुराण सुनना छोड़ि और कार्य भी ऐसा ही करेगा जहाँ बहुत रागादि होय। तातैं याकै भी पुराण सुने थोरी बहुत धर्मबुद्धि होय तो होय। और कार्यनितैं यहु कार्य भला ही है।

बहुरि कोई कहै—प्रथमानुयोगविषै अन्य जीवनिकी कहानी है, तातैं अपना कहा प्रयोजन सधै है ?

ताको कहिए है—जैसैं कामीपुरुषनिकी कथा सुने आपकै भी काम का प्रेम बधै है, तैसै धर्मात्मा पुरुषनिकी कथा सुनें आपकै धर्मकी प्रीति विशेष हो है। तातैं प्रथमानुयोगका अभ्यास करना योग्य है।

करणानुयोग में दोष कल्पना का निराकरण

बहुरि केई जीव कहैं हैं—करणानुयोगविषै गुणस्थान मार्गणादिक का वा कर्मप्रकृतिनिका कथन किया वा त्रिलोकादिकका कथन किया, सो तिनकों जानि लिया 'यहु ऐसै है' 'यहु ऐसै है', यामें अपना कार्य कहा सिद्ध भया ? कै तो भक्ति करिए, कै व्रत दानादिकरिए, कै आत्मानुभवन करिए, इनते अपना भला होय।

ताको कहिए है--परमेश्वर तो वीतराग हैं। भक्ति किए प्रसन्न होयकरि किछू करते नाहीं। भक्ति करतें मंदकषाय हो है, ताका स्वयमेव उत्तम फल हो है। सो करणानुयोगके अभ्यासविषै तिसतै भी अधिक मन्द कषाय होय सकै है, तातैं याका फल अति उत्तम हो है। बहुरि व्रतदानादिक तो कषाय घटावनेके बाह्य निमित्तका साधन हैं अर करणानुयोगका अभ्यास किए तहाँ उपयोग लगि जाय, तब रागादिक दूरि होय, सो यहु अंतरंग निमित्तका साधन है। तातैं यहु विशेष कार्यकारी है। व्रतादिक धारि अध्ययनादि कीजिए है। बहुरि आत्मानुभव सर्वोत्तम कार्य है। परन्तु सामान्य अनुभवविषै उपयोग

थम्भै नाहीं अर न थम्भै तब अन्य विकल्प होय, तहाँ करणानुयोगका अभ्यास होय तो तिस विचारविषैं उपयोगकों लगावै। यहु विचार वर्तमान भी रागादिक घटावै है अर आगामी रागादिक घटावनेका कारण है तातै यहाँ उपयोग लगावना। जीव कर्मादिकके नाना प्रकार करि भेद जानै, तिनविषै रागादिकरनेका प्रयोजन नाही, तातै रागादि बधै नाही। वीतराग होनेका प्रयोजन जहाँ तहाँ प्रगटै है, तातै रागादि मिटावनेकों कारण है।

यहाँ कोऊ कहै—कोई तो कथन ऐसा ही है परन्तु द्वीप समुद्रादिकके योजनादि निरूपे तिनमें कहा सिद्धि है ?

ताका उत्तर—तिनको जाने किछू तिनविषै इष्ट अनिष्ट बुद्धि न होय, तातै पूर्वोक्त सिद्धि हो है।

वहुरि वह कहै है—ऐसै है तो जिसते किछू प्रयोजन नाही ऐसा पाषाणादिकको भी जानै तहाँ इष्ट अनिष्टपनो न मानिए है, सो भी कार्यकारी भया।

ताका उत्तर—सरागी जीव रागादि प्रयोजनविना काहूकों जानने का उद्यम न करै। जो स्वयमेव उनका जानना होय तो अंतरग रागादिकका अभिप्रायके वशकरि तहाँतैं उपयोगकों छुडाया ही चाहै है। यहाँ उद्यमकरि द्वीप समुद्रादिकको जानै है तहाँ उपयोग लगावै है। सो रागादि घटे ऐसा कार्य होय। बहुरि पाषाणादिकविषै इस लोकका कोई प्रयोजन भासि जाय तो रागादिक होय आवै। अर द्वीपादिकविषै इस लोकसम्बन्धी कार्य किछू नाही तातै रागादिकका कारण नाही। जो स्वर्गादिककी रचना सुनि तहाँ राग होय तो

परलोकसम्बन्धी होय। ताका कारण पुण्यकों जानें तब पाप छोड़ि पुण्यविषें प्रवर्त्ते, इतना ही नफ़ा होय। बहुरि दीपादिकके जानें यथावत् रचना भासे, तब अन्यमतादिकका कह्या झूंठ भासै, सत्य श्रद्धानी होय। बहुरि यथावत् रचना जानने करि भ्रम मिटे उपयोगकी निर्मलता होय, तातें यह अभ्यास कार्यकारी है।

बहुरि केई कहै हैं—करणानुयोगविषै कठिनता घनी, तातैं ताका अभ्यासविषै खेद होय।

ताकों कहिए है—जो वस्तु शीघ्र जाननेमें आवै, तहां उपयोग उलझै नाहीं अर जानी वस्तुकों बारम्बार जानने का उत्साह होय नाहीं, तब पापकार्यनिविषे उपयोग लगि जाय। तातै अपनी बुद्धि अनुसारि कठिनताकरि भी जाका अभ्यास होता जानै ताका अभ्यास करना। अर जाका अभ्यास होय ही सकै नाही, ताका कैसे करै? बहुरि तू कहै है—खेद होय सो प्रमादी रहनेमें तो धर्म है नाही। प्रमादतें सुखिया रहिए, तहाँ तो पाप ही होय। तातै धर्मके अर्थ उद्यम करना ही युक्त है। या विचारि करणानुयोगका अभ्यास करना।

चरणानुयोग में दोष कल्पना का निराकरण

बहुरि केई जीव ऐसै कहै हैं—चरणानुयोगविषै बाह्य व्रतादि साधनका उपदेश है, सो इनितै किछु सिद्धि नाही। अपने परिणाम निर्मल चाहिए, बाह्य चाहो जैसै प्रवर्त्तो। तातै इस उपदेशतै पराङ्-मुख रहै हैं।

तिनकों कहिए हैं—आत्मपरिणामनिकै और बाह्य प्रवृत्तिकै निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है। जातै छद्मस्थकै क्रिया परिणामपूर्वक हो हैं। कदाचित् बिना परिणाम कोई क्रिया हो है, सो परवशतें हो है। अपनें वशतें उद्यमकरि कार्य करिए अर कहिए परिणाम इस

रूप नाहीं है, सो यहु भ्रम है। अथवा बाह्य पदार्थका आश्रय पाय परिणाम होय सकै है। तातै परिणाम मेटनेके अर्थ बाह्यवस्तुका निषेध करना समयसारादिविषै कह्या है। इसही वास्ते रागादिभाव घटे बाह्य ऐसे अनुक्रमतें श्रावक मुनिधर्म होय। अथवा ऐसें श्रावक मुनिधर्म अगीकार किए पचम षष्ठमआदि गुणस्थानतिनिविषै रागादि घटनेरूप परिणामनिकी प्राप्ति होय। ऐसा निरूपण चरणानुयोग-विषै किया। बहुरि जो बाह्य संयमतें किछू सिद्धि न होय, तो सर्वार्थ-सिद्धिके वासी देव सम्यग्दृष्टी बहुतज्ञानी तिनकै तो चौथा गुणस्थान होय अर गृहस्थ श्रावक मनुष्यकै पचम गुणस्थान होय, सो कारण कहा ? बहुरि तीर्थंकरादिक गृहस्थपद छोडि काहेकों सयम ग्रहैं। तातैं यहु नियम है—बाह्य सयम साधनविना परिणाम निर्मल न होय सकै हैं। तातै बाह्य साधनका विधान जाननेंकों चरणानुयोगका अभ्यास अवश्य किया चाहिए।

द्रव्यानुयोग में दोष कल्पना का निराकरण

बहुरि केई जीव कहैं हैं—जो द्रव्यानुयोगविषै व्रत सयमादि व्यवहारधर्मका हीनपना प्रगट किया है। सम्यग्दृष्टीके विषय भोगा-दिककों निर्जराका कारण कह्या है। इत्यादि कथन सुनि जीव हैं, सो स्वच्छन्द होय पुण्य छोडि पापविषै प्रवर्त्तैं, तातै इनिका वांचना सुनना युक्त नाही। ताकों कहिए है—जैसै गर्दभ मिश्री खाए मरै, तो मनुष्य तो मिश्री खाना न छोडै। तैसै विपरीतबुद्धि अध्यात्मग्रन्थ सुनि स्वच्छन्द होय, तो विवेकी तो अध्यात्मग्रन्थनिका अभ्यास न छोड़ै। इतना करै—जाकों स्वच्छन्द होता जानै, ताकों जैसें वह

स्वच्छन्द न होय, तैसें उपदेश दे। बहुरि अध्यात्मग्रन्थनिविषें भी स्वच्छन्द होनेका जहाँ तहाँ निषेध कीजिए है, तातै जो नीके तिनकों सुनें, सो तो स्वछन्द होता नाही। अर एक बात सुनि अपने अभिप्रायतें कोऊ स्वच्छन्द होसी, तो ग्रन्थका तो दोष है नाही, उस जीवहीका दोष है। बहुरि जो भूंठा दोषकी कल्पनाकरि अध्यात्म-शास्त्रका वाँचना सुनना निषेधिए तो मोक्षमार्गका मूल उपदेश तो तहाँ ही है। ताका निषेध किए मोक्षमार्गका निषेध होय। जैसे मेघ-वर्षा भए बहुत जीवनिका कल्याण होय अर काहूकै उलटा टोटा पड़े, तो तिसकी मुख्यताकरि मेघका तो निषेध न करना। तैसें सभाविषै अध्यात्म उपदेश भए बहुत जीवनिको मोक्षमार्गकी प्राप्ति होय अर काहूके उलटा पाप प्रवर्त्ते, तो तिसकी मुख्यताकरि अध्यात्मशास्त्रनि-का तो निषेध न करना। बहुरि अध्यात्मग्रन्थनितै कोऊ स्वच्छन्द होय सो तो पहलै भी मिथ्यादृष्टी था, अब भी मिथ्यादृष्टी ही रह्या। इतना ही टोटा पडै, जो सुगति न होय कुगति होय। अर अध्यात्म उपदेश न भए बहुत जीवनिकै मोक्षमार्गकी प्राप्तिका अभाव होय, सो यामें घने जीवनिका घना बुरा होय। तातै अध्यात्म उपदेशका निषेध न करना।

बहुरि केई जीव कहैं हैं—जो द्रव्यानुयोगरूप अध्यात्म उपदेश है, सो उत्कृष्ट है। सो ऊँची दशाकों प्राप्त होय, तिनको कार्यकारी है। नीचली दशावालोंको तो व्रत सयमादिकका ही उपदेश देना योग्य है।

ताकों कहिए है-जिनमतविषै तो यहु परिपाटी है, जो पहलै सम्यक्त होय पीछे व्रत होय। सो सम्यक्त स्वपरका श्रद्धान भए होय अर सो

श्रद्धान द्रव्यानुयोगका अभ्यास किए होय। तातैं पहलैं द्रव्यानुयोगके अनुसार श्रद्धानकरि सम्दग्दृष्टि होय, पीछैं चरणानुयोगके अनुसार व्रतादिक धारि वृती होय। ऐसैं मुख्यपने तो नीचली दशाविषैं ही द्रव्यानुयोग कार्यकारी है, गौणपने जाकों मोक्षमागकी प्राप्ति होती न जानिए, ताको पहलै कोई व्रतादिकका उपदेश दीजिए है। तातै ऊँची दशावालोकों अध्यात्म अभ्यास योग्य है, ऐसा जानि नीचलीदशावालों कों तहाँतें पराङ्मुख होना योग्य नाही।

बहुरि जो कहोगे—ऊँचा उपदेशका स्वरूप नीचलो दशावालोंको भासै नाही।

ताका उत्तर यहु है—और तो अनेक प्रकार चतुराई जानै अर यहाँ मूर्खपना प्रगट कीजिए, सो युक्त नाहीं। अभ्यास किए स्वरूप नीके भासै है। अपनी बुद्धि अनुसार थोरा बहुत भासै परन्तु सर्वथा निरुद्यमी होनेको पोषिए, सो तो जिनमार्गका द्वेषी होना है।

बहुरि जो कहोगे, अबार काल निकृष्ट है, तातैं उत्कृष्ट अध्यात्म उपदेशकी मुख्यता न करनी।

ताकों कहिए है—अबार काल साक्षात् मोक्ष न होने की अपेक्षा निकृष्ट है, आत्मानुभवनादिककरि सम्यक्तादिक होना अबार मन नाही। तातें आत्मानुभवनादिकके अर्थि द्रव्यानयोगका अवश्य अभ्यास करना। सोई षट्पाहुडविषैं (मोक्षपाहुडमें) कह्या है —

अज्जवि तिरयणसुद्धा अप्पाझाऊण जंति सुरलोए।
लोयंते देवत्तं यत्थ चुया णिव्वुदिं जंति ॥७७॥

याका अर्थ—अबहू त्रिकरणकरि शुद्ध जीव आत्माकों ध्यायकरि

सुरलोकविषें प्राप्त हो है वा लौकान्तिकविषें देवपणों पावें हैं। तहाँ तें च्युत होय मोक्ष जाय हैं। बहुरि[1] तातें इस कालविषें भी द्रव्यानुयोगका उपदेश मुख्य कहिए।

बहुरि कोई कहै है—द्रव्यानुयोगविषें अध्यात्मशास्त्र हैं, तहाँ स्वपरभेद विज्ञानादिकका उपदेश दिया सो तो कार्यकारी भी घना अर समझिमें भी शीघ्र आवें परन्तु द्रव्यगुणपर्यायादिकका वा प्रमाण नय आदिक का वा अन्यमतके कहे तत्वादिकके निराकरणका कथन किया, सो तिनिका अभ्यासतें विकल्प विशेष होय। बहुत प्रयास किए जाननेमें आवै। तातें इनिका अभ्यास न करना। तिनिकों कहिए है—

सामान्य जाननेतें विशेष जानना बलवान् है। ज्यों-ज्यों विशेष जानै त्यों-त्यों वस्तुस्वभाव निर्मल भासै, श्रद्धान दृढ होय, रागादि घटै तातें तिस अभ्यासविषें प्रवर्त्तना योग्य है। ऐसै च्यारों अनुयोगनिविषें दोषकल्पनाकरि अभ्यासतें पराङमुख होना योग्य नाहीं।

बहुरि व्याकरण न्यायादिक शास्त्र है, तिनका भी थोरा बहुत अभ्यास करना। जातै इनिका ज्ञान बिना बड़े शास्त्रनिका अर्थ भासै नाही। बहुरि वस्तुका भी स्वरूप इनकी पद्धति जानें जैसा भासै, तैसा भाषादिककरि भासै नाही। तातें परम्परा कार्यकारी जानि इन का भी अभ्यास करना परन्तु इनहीविषें फंसि न जाना। किछू इनका अभ्यासकरि प्रयोजनभूत शास्त्रनिका अभ्यासविषें प्रवर्त्तना। बहुरि

1. यहाँ 'बहुरि' के आगे ३—४ लाइन का स्थान खरडाप्रति मे छोड़ा गया है जिससे ज्ञात होता है कि मल्लजी वहाँ कुछ और भी लिखना चाहते थे किन्तु लिख नही सके।

वैद्यकादि शास्त्र हैं, तिनते मोक्षमार्गविषै किछू प्रयोजन ही नाहीं। तातैं कोई व्यवहारधर्मका अभिप्रायते विनाखेद इनका अभ्यास होय जाय तो उपकारादि करना, पापरूप न प्रवर्त्तना। अर इनका अभ्यास न होय तो मत होहु, किछू बिगार नाही। ऐसैं जिनमतके शास्त्र निर्दोष जानि तिनका उपदेश मानना।

अपेक्षा ज्ञान के अभाव से आगम में दिखाई देने वाले परस्पर विरोध का निराकरण।

अब शास्त्रनिविषै अपेक्षादिककों न जानें परस्पर विरोध भासै, ताका निराकरण कीजिए है। प्रथमादि अनुयोगनिकी आम्नायके अनुसारि जहाँ जैसें कथन किया होय, तहाँ तैसे जानि लेना। और अनुयोग का कथनको और अनुयोगका कथनते अन्यथा जानि सन्देह न करना। जेसे कहो तो निर्मल सम्यग्दृष्टीहीकै शंका कांक्षा विचिकित्साका अभाव कह्या, कही भय का आठवाँ गुणस्थान पर्यन्त, लोभ का दशमा पर्यन्त, जुगुप्साका आठवाँ पर्यन्त उदय कह्या, तहाँ विरुद्ध न जानना। श्रद्धानपूर्वक तीव्र शंकादिकका सम्यग्दृष्टीकै अभाव भया अथवा मुख्यपने सम्यग्दृष्टी शंकादि न करै, तिस अपेक्षा चरणानुयोगविषै शंकादिकका सम्यग्दृष्टीकै अभाव कह्या। बहुरि सूक्ष्मशक्ति अपेक्षा भयादिकका उदय अष्टमादि गुणस्थान पर्यन्त पाईए है। तातैं करणानुयोगविषैं तहाँ पर्यन्त तिनका सद्भाव कह्या, ऐसैं ही अन्यत्र जानना। पूर्वे अनुयोगनिका उपदेशविधानविषै कई उदाहरण कहे हैं, ते जानने अथवा अपनी बुद्धिते समझि लेने।

बहुरि एक ही अनुयोगविषै विविक्षाके वशतें अनेकरूप कथन करिए है। जैसैं करणानुयोगविषै प्रमादनिका सप्तम गुणस्थानविषैं

अभाव कह्या, तहाँ कषायादिक प्रमाद के भेद कहे। बहुरि तहाँ ही कषायादिकका सद्भाव दशमादि गुणस्थान पर्यन्त कह्या, तहाँ विरुद्ध न जानना। जातै यहाँ प्रमादनिविषै तो जे शुभ अशुभ भावनि का अभिप्राय लिए कषायादिक होय तिनका ग्रहण है। सो सप्तम गुणस्थानविषैं ऐसा अभिप्राय दूर भया, तातै तिनिका तहाँ अभाव कह्या। बहुरि सूक्ष्मादिभावनिकी अपेक्षा तिनहीका दशमादि गुणस्थान पर्यन्त सद्भाव कह्या है।

बहुरि चरणानुयोगविषै चोरी परस्त्री आदि सप्त व्यसनका त्याग प्रथम प्रतिमाविषैं कह्या, बहुरि तहाँ ही तिनका त्याग द्वितीय प्रतिमा-विषै कह्या, तहाँ विरुद्ध न जानना। जातै सप्तव्यसनविषैं तो चोरी आदि कार्य ऐसे ग्रहे हैं, जिनकरि दडादिक पावै, लोकविषै अतिनिन्दा होय। बहुरि व्रतनिविषै चोरी आदि का त्याग करनेयोग्य ऐसे कहे हैं, जे गृहस्थ धर्मविषै विरुद्ध होय वा किंचित् लोकनिद्य होय, ऐसा अर्थ जानना। ऐसै ही अन्यत्र जानना।

बहुरि नाना भावनिकी सापेक्षते एकही भावको अन्य अन्य प्रकार निरूपण कीजिए है। जैसै कही तो महाव्रतादिक चारित्र-के भेद कहे, कही महाव्रतादि होते भी द्रव्यलिगीको असयमी कह्या, तहाँ विरुद्ध न जानना। जातै सम्यग्ज्ञानसहित महाव्रता-दिक तो चारित्र हैं अर अज्ञानपूर्वक व्रतादिक भए भी असयमी ही है।

बहुरि जैसैं पच मिथ्यात्वनिविषै भी विनय कह्या अर बारह प्रकार तपनिविषै भी विनय कह्या, तहाँ विरुद्ध न जानना। जातैं विनय करने योग्य नाही तिनका भी विनय करि धर्म मानना सो तो विनय मिथ्यात्व है अर धर्म पद्धतिकरि जे विनय करने

योग्य हैं, तिनका यथायोग्य विनय करना, सो विनय तप है। बहुरि जैसें कही तो अभिमानकी निन्दा करी, कही प्रशसा करी, तहाँ विरुद्ध न जानना। जातै मानकषायतें आपकों ऊँचा मनावनेके अर्थि विनयादि न करै, सो अभिमान तो निद्य ही है अर निर्लोभपनातें दीनता आदि न करै, सो अभिमान प्रशसा योग्य है।

बहुरि जैसे कही चतुराई की निन्दा करी, कही प्रशसा करी, तहाँ विरुद्ध न जानना। जातें मायाकषायतें काहूका ठिगनेके अर्थ चतुराई कीजिए, सो तो निद्य ही है अर विवेक लिए यथासम्भव कार्य करनेविषै जो चतुराई होय सो श्लाघ्य ही है, ऐसें ही अन्यत्र जानना।

बहुरि एक ही भावकी कही तो तिसतें उत्कृष्ट भावकी अपेक्षाकरि निन्दा करी होय अर कहो तिसते हीनभावकी अपेक्षकरि प्रशंसा करी होय, तहाँ विरुद्ध न जानना। जैसै किसी शुभक्रियाकी जहाँ निन्दा करी होय, तहाँ तो तिसते ऊँची शुभक्रिया वा शुद्धभाव तिनकी अपेक्षा जाननी अर जहाँ प्रशसा करी होय, तहाँ तिसते नीची क्रिया वा अशुभक्रिया तिनको अपेक्षा जाननी, ऐसै ही अन्यत्र जानना। बहुरि ऐसैं ही काहू जीवकी ऊँचे जीवकी अपेक्षा निन्दा करी होय, तहाँ सर्वथा निन्दा न जाननी। काहूकी नीचे जीवकी अपेक्षा प्रशसा करी होय, तो सर्वथा प्रशसा न जाननी। यथासम्भव वाका गुण दोष जानि लेना, ऐसै ही अन्य व्याख्यान जिस अपेक्षा लिए किया होय, तिस अपेक्षा वाका अर्थ समझना।

बहुरि शास्त्रविषै एक ही शब्दका कही तो कोई अर्थ हो है, कहीं कोई अर्थ हो है, तहाँ प्रकरण पहचानि वाका सम्भवता अर्थ जानना।

जैसें मोक्षमार्गविषें सम्यग्दर्शन कह्या तहाँ दर्शन शब्दका अर्थ श्रद्धान है अर उपयोग वर्णनविषै दर्शन शब्दका अर्थ वस्तु का सामान्य स्वरूप ग्रहण मात्र है अर इन्द्रियवर्णनविषै दर्शन शब्दका अर्थ नेत्रकरि देखनें मात्र है। बहुरि जैसै सूक्ष्म वादरका अर्थ वस्तुनिका प्रमाणादिक कथनविषैं छोटा प्रमाण लिए होय, ताका नाम सूक्ष्म अर बड़ा प्रमाण लिए होय ताका नाम बादर, ऐसा अर्थ होय। अर पुद्गल स्कंधादिका कथनविषैं इन्द्रियगम्य न होय सो सूक्ष्म, इन्द्रियगम्य होय सो बादर, ऐसा अर्थ है। जीवादिकका कथनविषै ऋद्धि आदिका निमित्त विना स्वयमेव रुकै नाही ताका नाम सूक्ष्म, रुकै ताका नाम बादर, ऐसा अर्थ है। वस्त्रादिकका कथनविषै महीन का नाम सूक्ष्म, मोटाका नाम बादर, ऐसा अर्थ है। [करणानुयोगके कथनविषै पुद्गल-स्कंधके निमित्ततें रुकै नाही ताका नाम सूक्ष्म है अर रुक जाय ताका नाम बादर है] । बहुरि प्रत्यक्ष शब्दका अर्थ लोकव्यवहारविषें तो इन्द्रियकरि जाननेका नाम प्रत्यक्ष है, प्रमाणभेदनिविषै स्पष्ट प्रति-भासका नाम प्रत्यक्ष है, आत्मानुभवनादिविषै आपविषै अवस्था होय ताका नाम प्रत्यक्ष है। बहुरि जैसें मिथ्यादृष्टीकै अज्ञान कह्या तहाँ सर्वथा ज्ञानका अभावतें न जानना, सम्यग्ज्ञानके अभावतें अज्ञान कह्या है। बहुरि जैसे उदीरणा शब्दका अर्थ जहाँ देवादिककै उदीरणा न कही, तहाँ तो अन्य निमित्ततें मरण होय ताका नाम उदीरणा है अर दश करणनिका कथनविषै उदीरणा करण देवायुकै भी कह्या, तहाँ ऊपरिके निषेकनिका द्रव्य उदयावलीविषें दीजिए ताका नाम उदी-

रणा है। ऐसें ही अन्यत्र यथासम्भव अर्थ जानना। बहुरि एक ही शब्दका पूर्व शब्द जोड़ें अनेक प्रकार अर्थ हो है वा उस ही शब्दके अनेक अर्थ हैं। तहाँ जैसा सम्भवै तैसा अर्थ जानना। जैसे 'जीतै' ताका नाम 'जिन' है परन्तु धर्मपद्धतिविषें कर्मशत्रुकों जीतै, ताका नाम 'जिन' जानना। यहाँ कर्मशत्रु शब्दकों पूर्वे जोड़ें जो अर्थ होय सो ग्रहण किया, अन्य न किया। बहुरि जैसे 'प्राण धारै' ताका नाम 'जीव' है। जहाँ जीवनमरणका व्यवहार अपेक्षा कथन होय, तहां तो इन्द्रियादि प्राणधारै सो जीव है। बहुरि द्रव्यादिकका निश्चय अपेक्षा निरूपण होय तहाँ चैतन्यप्राणकों धारै सो जीव है। बहुरि जैसे समय शब्दके अनेक अर्थ हैं तहाँ आत्माका नाम समय है, सर्व पदार्थका नाम समय है, कालका नाम समय है, समयमात्र काल का नाम समय है, शास्त्रका नाम समय है, मतका नाम समय है। ऐसें अनेक अर्थनिविषैं जैसा जहां सम्भवै तैसा तहाँ अर्थ जानि लेना। बहुरि कहीं तो अर्थ अपेक्षा नामादिक कहिए है, कहीं रूढि अपेक्षा नामादिक कहिए है। जहाँ रूढ़ि अपेक्षा नामादिक लिख्या होय, तहाँ वाका शब्दार्थ न ग्रहण करना। वाका रूढिवाद अर्थ होय सो ही ग्रहण करना। जैसें सम्यक्तादिककों धर्म कह्या तहाँ तो यहु जीवकों उत्तमस्थानविषै धारै है, तातैं याका नाम सार्थक है। बहुरि धर्मद्रव्यका नाम धर्म कह्या तहाँ रूढ़ि नाम है, याका अक्षरार्थ न ग्रहण करना। इस नाम धारक एक वस्तु है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना। ऐसै ही अन्यत्र जानना। बहुरि कही जो शब्दका अर्थ होता होई सो तो न ग्रहण करना अर तहाँ जो प्रयोजनभूत अर्थ होय सो ग्रहण करना।

जैसे कहीं किसीका अभाव कह्या होय अर तहाँ किंचित् सद्भाव पाईए, तो तहाँ सर्वथा अभाव ग्रहण करना। किंचित् सद्भावकों न गिणि अभाव कह्या है, ऐसा अर्थ जानना। सम्यग्दृष्टीके रागादिकका अभाव कह्या, तहाँ ऐसें अर्थ जानना। बहुरि नोकषायका अर्थ तो यहु—'कषायका निषेध' सो तो अर्थ न ग्रहण करना अर यहाँ क्रोधादि सारिखे ए कषाय नाही, किंचित् कषाय हैं तातैं नोकषाय हैं, ऐसा अर्थ ग्रहण करना। एसैं ही अन्यत्र जानना।

बहुरि जैसे कही कोई युक्तिकरि किया होय, तहाँ प्रयोजन ग्रहण करना। **समयसारका कलशाविषै**[1] यहु कहा—"धोबीका दृष्टान्तवत् परभावका त्यागकी दृष्टि यावत् प्रवृत्तिकों न प्राप्त भई तावत् यहु अनुभूति प्रगट भई"। सो यहाँ यहु प्रयोजन है—परभावका त्याग होते ही अनुभूति प्रगट हो है। लोकविषै काहूके आवतें ही कोई कार्य भया होय, तहाँ ऐसै कहिए—"जो यहु आया ही नाही अर यहु कार्य होय गया।" ऐसा ही यहाँ प्रयोजन ग्रहण करना। ऐसै ही अन्यत्र जानना। बहुरि जैसें कही प्रमाणादिक किछू कह्या होय, सोई तहाँ न मानि लेना, तहाँ प्रयोजन होय सो जानना। **ज्ञानार्णवविषै** ऐसा कह्या है—"अबार दोय तीन सत्पुरुष हैं[2]।" सो नियमतें इतने ही नाहीं। यहाँ

1. अवतरति न यावद्वृत्ति मत्यन्तवेगादनवमपरभावत्यागदृष्टान्तदृष्टि ।
झटिति सकलभावैरन्यदीयैर्विमुक्ता, स्वयमियमनुभूतिस्तावदाविर्बभूव ।।

(जीवाजीव अ० कलश २९)

2 दुःप्रज्ञाबललुप्तवस्तुनिचया विज्ञानशून्यामया। ।
विद्यन्ते प्रतिमन्दिरं निजनिजस्वार्थोद्यता देहिन ।।

'थोरे हैं' ऐसा प्रयोजन जानना। ऐसे ही अन्यत्र जानना। इसही रीति लिएं और भी अनेक प्रकार शब्दनिके अर्थ हो हैं, तिनकों यथासम्भव जाननें। विपरीत अर्थ न जानना।

बहुरि जो उपदेश होय, ताकों यथार्थ पहचानि जो अपने योग्य उपदेश होय ताका अंगीकार करना। जैसे वैद्यकशास्त्रनिविषै अनेक औषधि कही हैं, तिनकों जानै अर ग्रहण तिसहीका करै, जाकरि अपना रोग दूरि होय। आपकै शीतका रोग होय तो उष्ण औषधिका ही ग्रहण करै, शीतल औषधिका ग्रहण न करै, यहु औषधि औरनिकों कार्यकारी है, ऐसा जानै। तैसे जैनशास्त्रनि विषै अनेक उपदेश हैं, तिनकों जानै अर ग्रहण तिसहीका करै, जाकरि अपना विकार दूरि होय। आपकै जो विकार होय ताका निषेध करनहारा उपदेशकों ग्रहै, तिसका पोषक उपदेशकों न ग्रहै। यहु उपदेश औरनिकों कार्यकारी है, ऐसा जानै। यहाँ उदाहरण कहिए है—जैसे शास्त्रविषै कहीं निश्चयपोषक उपदेश है, कही व्यवहार पोषक उपदेश है। तहाँ आपकै व्यवहार का आधिक्य होय तो निश्चय पोषक उपदेशका ग्रहण करि यथावत् प्रवर्त्तै अर आपकै निश्चयका आधिक्य होय तो व्यवहारपोषक उपदेशका ग्रहणकरि यथावत् प्रवर्त्तै। बहुरि पूर्वे तो व्यवहार श्रद्धानतें आत्मज्ञानतें भ्रष्ट होय रह्या था, पीछे व्यवहार उपदेशही-की मुख्यताकरि आत्मज्ञानका उद्यम न करै अथवा पूर्वे तो निश्चय-श्रद्धानतें वैराग्यते भ्रष्ट होय स्वच्छन्द होय रह्या था, पीछे निश्चय

आनन्दामृतसिन्धुशीकरचयैर्निर्वाप्य जन्मज्वर
ये मुक्तेर्वदनेन्दुवीक्षण परास्ते सन्ति द्वित्रा यदि ॥२४॥

— ज्ञानार्णव, पृष्ठ ८८

उपदेशहीकी मुख्यताकरि विषयकषाय पोषै। ऐसें विपरीत उपदेश ग्रहे बुरा ही होय। बहुरि जैसें आत्मानुशासनविषै ऐसा कह्या— "जो तू गुणवान् होय दोष क्यों लगावै है। दोषवान् होना था तो दोषमय ही क्यों न भया[1]।" सो जो जीव आप तो गुणवान् होय अर कोई दोष लगता होय तहाँ तिस दोष दूर करनेके अर्थि तिस उपदेशकों अंगीकार करना। बहुरि आप तो दोषवान् है अर इस उपदेशका ग्रहनकरि गुणवान् पुरुषनिकों नीचा दिखावै तो बुरा ही होय। सर्वदोषमय होनेते तो किंचित् दोषरूप होना बुरा नाहीं है तातें तुझतें तो वह भला है। बहुरि यहाँ यहु कह्या। "तू दोषमय ही क्यों न भया" सो यहु तर्क करी है। किछू सर्व दोषमय होनेके अर्थि यहु उपदेश नाहीं है। बहुरि जो गुणवानकै किंचित् दोष भए भी निन्दा है तो सर्वदोषरहित तो सिद्ध हैं, नीचली दशाविषै तो कोई गुण कोई दोष होय ही होय।

यहाँ कोऊ कहै—ऐसै है, तो "मुनिलिंग धारि किंचित् परिग्रह राखै तो भी निगोद जाय[2]" ऐसा षट्पाहुड विषै कैसें कह्या है ?

1. हे चन्द्रमः किमितिलाञ्छनवानभूस्त्व
तद्वान् भवेः किमित तन्मय एव नाभूः।
किं ज्योत्स्नयामलमलं तव घोषयन्त्या
स्वर्भानवन्नु तथा सति नाऽसि लक्ष्य. ।। १४१ ।।

2. जह जायरूवसरिसो तिलतुसमित्त ण गहदि हत्तेसु।
जइ लेइ अप्पबहुय तत्तो पुण जाइ णिग्गोयं ।। १८ ।।

(सूत्रपाहुड़)

ताका उत्तर—ऊँची पदवी धारि तिस पदविषैं न सम्भवता नीचा कार्य करै तो प्रतिज्ञा भगादि होनेतें महादोष लागै है अर नीची पदवीविषै तहाँ सम्भवता गुणदोष होय तो होय, तहाँ वाका दोष ग्रहण करना योग्य नाहीं ऐसा जानना।

बहुरि **उपदेशसिद्धान्तरत्नमालाविषै** कह्या—"आज्ञा अनुसार उपदेश देनेवालेका क्रोध भी क्षमाका भंडार है [1]।" सो यहु उपदेश वक्ताका ग्रहवा योग्य नाहीं। इस उपदेशतें वक्ता क्रोध किया करै तो वाका बुरा ही होय। यहु उपदेश श्रोतानिका ग्रहवा योग्य है। कदाचित् वक्ता क्रोधकरिकै भी सांचा उपदेश दे तो श्रोता गुण ही मानें। ऐसैं ही अन्यत्र जानना।

बहुरि जैसै काहूकै अतिशीतांग रोग होय, ताके अर्थ अति उष्ण रसादिक औषधि कही हैं, तिस औषधि को जाकै दाह होय वा तुच्छ शीत होय सो ग्रहण करै तो दुःख ही पावै। तैसें काहूकै कोई कार्यकी अतिमुख्यता होय, ताके अर्थ तिसके निषेधका अति खीचकरि उपदेश दिया होय, ताकों जाकै तिस कार्यकी मुख्यता न होय वा थोरी मुख्यता होय सो ग्रहण करै तो बुरा ही होय। यहाँ उदाहरण—जैसैं काहूकै शास्त्राभ्यासकी अतिमुख्यता अर आत्मानुभवका उद्यम ही नाहीं, ताके अर्थि बहुत शास्त्राभ्यास निषेध किया। बहुरि जाकै शास्त्राभ्यास नाही वा थोरा शास्त्राभ्यास है सो जीव तिस उपदेशतें शास्त्राभ्यास छोड़ै अर आत्मानुभवविषें उपयोग रहै नाही, तब वाका तो बुरा ही होय। बहुरि जैसै काहूकै यज्ञ स्नानादिककरि हिंसातै धर्म माननेंकी मुख्यता है, ताके अर्थ "जो पृथ्वी उलटै तो भी हिंसा

1. रोसोवि खमाकोसो सुत्तं भासत जस्सणधणस्य।
उस्सुत्तेण खमाविय दोस महामोहआवासो ॥१४॥

किए पुण्यफल न होय", ऐसा उपदेश दिया। बहुरि जो जीव पूजनादि कार्यनिकरि किंचित् हिंसा लगावै अर बहुत पुण्य उपजावै, सो जीव इस उपदेशतै पूजनादि कार्य छोड़ै अर हिंसारहित सामायिकादि धर्मविषै उपयोग लागै नाही, तब वाका तो बुरा ही होय। ऐसै ही अन्यत्र जानना।

बहुरि जैसै कोई औषधि गुणकारी है परन्तु आपकै यावत् तिस औषधितैं हित होय, तावत् तिसका ग्रहण करै। जो शीत मिटैं भी उष्ण औषधिका सेवन किया ही करै तो उल्टा रोग होय। तैसे कोई धर्म कार्य है परन्तु आपकै यावत् तिस धर्मकार्यतैं हित होय तावत् तिसका ग्रहण करै। जो ऊँची दशा होतैं नीची दशा सम्बन्धी धर्मका सेवनविषै लागै तो उल्टा विकार ही होय। यहाँ उदाहरण—जैसै पाप मेटनेके अर्थि प्रतिक्रमणादि धर्मकार्य कहे, बहुरि आत्मानुभव होते प्रतिक्रमणादिकका विकल्प करै तो उल्टा विकार बधै, याहीतै **समयसार** विषै प्रतिक्रमणादिककों विष कह्या है। बहुरि जैसै अव्रती-के करने योग्य प्रभावनादि धर्मकार्य कहे, तिनकों व्रती होयकरि करै तो पाप ही बाँधै। व्यापारादि आरम्भ छोडि चैत्यालयादि कार्यनिका अधिकारी होय सो कैसै बनै ? ऐसै ही अन्यत्र जानना।

बहुरि जैसै पाकादिक औषधि पुष्टकारी हैं परन्तु ज्वरवान् ग्रहण करै तो महादोष उपजै। तैसै ऊँचा धर्म बहुत भला है परन्तु अपने विकारभाव दूरि न होय अर ऊँचा धर्म ग्रहै तो महादोष उपजै। यहाँ उदाहरण—जसै अपना अशुभविकार भी न छूटया अर निर्विकल्प दशाको अंगीकार करै तो उल्टा विकार बधै। बहुरि

जैसें भोजनादि विषयनिविषें आसक्त होय अर आरम्भ त्यागादि धर्मकों अगीकार करै तो दोष ही उपजै। बहुरि जैसें व्यापारादि करनेका विकार तो न छूटै अर त्यागका भेषरूप धर्म अगीकार करै तो महादोष उपजै। ऐसैं ही अन्यत्र जानना।

याही प्रकार और भी साँचा विचारतें उपदेशकों यथार्थ जानि अंगीकार करना। बहुत विस्तार कहाँ ताईं कहिए। अपने सम्यग्ज्ञान भए आपहीकों यथार्थ भासै। उपदेश तो वचनात्मक है। बहुरि वचनकरि अनेक अर्थ युगपत् कहे जाते नाही। तातैं उपदेश तो एक ही अर्थकी मुख्यता लिए हो है। बहुरि जिस अर्थका जहाँ वर्णन है, तहाँ तिसहीकी मुख्यता है। दूसरे अर्थकी तहाँ ही मुख्यता करै तो दोऊ उपदेश दृढ न होय। तातैं उपदेशविषैं एक अर्थकों दृढ करै। परन्तु सर्व जिनमतका चिन्ह स्याद्वाद है सो 'स्यात्' पदका अर्थ 'कथचित्' है। तातैं जो उपदेश होय ताको सर्वथा न जानि लेना। उपदेशका अर्थको जानि तहाँ इतना विचार करना, यहु उपदेश किस प्रकार है, किस प्रयोजन लिए है, किस जीवकों कार्यकारी है ? इत्यादि विचारकरि तिसका यथार्थ अर्थ ग्रहण करै, पीछै अपनी दशा देखै, जो उपदेश जैसैं आपकों कार्यकारी होय तिसकों तैसै आप अगीकार करै अर जो उपदेश जानने योग्य ही होय तो ताको यथार्थ जानि ले। ऐसैं उपदेश के फलकों पावै।

यहाँ कोई कहै—जो तुच्छ बुद्धि इतना विचार न करि सकै सो कहा करै ?

ताका उत्तर—जैसे व्यापारी अपनी बुद्धिके अनुसारि जिसमें

समझै सो थोरा वा बहुत व्यापार करै परन्तु नफ़ा टोटाका ज्ञान ता अवश्य चाहिए। तैसै विवेकी अपनी बुद्धिके अनुसारि जिसमें समझै सो थोरा वा बहुत उपदेशकों ग्रहै परन्तु मुझकों यहु कार्यकारी है, यहु कार्यकारी नाहीं—इतना तो ज्ञान अवश्य चाहिए। सो कार्य तो इतना है—यथार्थ श्रद्धानज्ञानकरि रागादि घटावना। सो यहु कार्य अपनै सधै, सोई उपदेशका प्रयोजन ग्रहै। विशेष ज्ञान न होय तो प्रयोजनकों तो भूलै नाही, यहु तो सावधानी अवश्य चाहिए। जिसमें अपना हितकी हानि होय, तैसै उपदेशका अर्थ समझना योग्य नाही। या प्रकार स्याद्वाददृष्टि लिए जैनशास्त्रनिका अभ्यास किए अपना कल्याण हो है।

यहाँ कोई प्रश्न करै—जहाँ अन्य अन्य प्रकार सम्भवै, तहाँ तो स्याद्वाद सम्भवै। बहुरि एक ही प्रकारकरि शास्त्रनिविषै परस्पर विरुद्ध भासै तहाँ कहा करिए? जैसैं प्रथमानुयोगविषै एक तीर्थंकरकी साथि हजारों मुक्ति गए बताए। करणनुयोगविषै छह महीना आठ समयविषैं छहसै आठ जीव मुक्ति जांय—ऐसा नियम किया। प्रथमानुयोगविषै ऐसा कथन किया—देव दवाँगना उपजि पीछें मरि साथ ही मनुष्यादि पर्यायविषै उपजें। करणानुयोगविषैं देवका सागरों प्रमाण देवांगनाका पल्यों प्रमाण आयु कह्या। इत्यादि विधि कैसै मिलै ?

ताका उत्तर—करणानुयोगविषै कथन है, सो तो तारतम्य लिएं है। अन्य अनुयोगविषैकथन प्रयोजन अनुसार है। तातै करणानुयोगका कथन तो जंसै किया है तैसै ही है। औरनिका कथनकी जैसै विधि मिलै, तैसै मिलाय लेनी। हजारों मुनि तीर्थंकरकी साथि मुक्ति गए

बताए, तहाँ यहु जानना—एक ही काल इतने मुक्ति गए नाही। जहाँ तीर्थंकर गमनादि क्रिया मेटि स्थिर भए, तहाँ तिनको साथ इतनें मुनि तिष्ठे, बहुरि मुक्ति आगे पीछें गए। ऐसे प्रथमानुयोग करणानुयोगका विरोध दूरि हो है। बहुरि देव देवांगना साथि उपजें, पीछे देवांगना चयकरि बीचमें अन्य पर्याय धरें, तिनका प्रयोजन न जानि कथन न किया। पीछें वह साथि मनुष्य पर्यायविषै उपजै, ऐसै विधि मिलाए विरोध दूरि हो है। ऐसैं ही अन्यत्र विधि मिलाय लेनी।

बहुरि प्रश्न—जो ऐसें कथननिविषै भी कोई प्रकार विधि मिलै परन्तु कही नेमिनाथ स्वामीका सौरीपुरविषैं कही द्वारावतीविषै जन्म कह्या, रामचन्द्रादिकको कथा अन्य अन्य प्रकार लिखी इत्यादि। एकेन्द्रियादिक कों कही सासादन गुणस्थान लिख्या, कहीं न लिख्या इत्यादि इन कथननिकी विधि कैसै मिलै ?

ताका उत्तर—ऐसें विरोध लिए कथन कालदोषतै भए हैं। इस कालविषै प्रत्यक्ष ज्ञानी वा बहुश्रुतनिका तो अभाव भया अर स्तोकबुद्धि ग्रन्थ करनेके अधिकारी भए। तिनकै भ्रमतै कोई अर्थ अन्यथा भासै ताकों तैसें लिखै अथवा इस कालविषै केई जैनमतविषैं भी कषायी भए हैं सो तिननें कोई कारण पाय अन्यथा कथन लिख्या है। ऐसै अन्यथा कथन भया, तातै जैनशास्त्रनिविषै विरोध भासने लागा। जहाँ विरोध भासै तहाँ इतना करना कि इस कथन करनेवाले बहुत प्रमाणीक हैं कि इस कथन करनेवाले बहुत प्रमाणीक हैं। ऐसा विचारकरि बड़े आचार्यादिकनिका कह्या कथन प्रमाण करना। बहुरि जिनमतके बहुत शास्त्र हैं तिनकी आम्नाय मिलावनी। जो परम्परा-

आम्नायतें मिलै, सो कथन प्रमाण करना। ऐसें विचार किए भी सत्य असत्यका निर्णय न होय सकै, तो जैसे केवलीकों भास्या है तैसे प्रमाण है, ऐसें मानि लेना। जातै देवादिकका वा तत्वनिका निर्द्धार भए विना तो मोक्षमार्ग होय नाही। तिनिका तो निर्द्धार भी होय सकै है, सो कोई इनका स्वरूप विरुद्ध कहै तो आपहीकों भासि जाय। बहुरि अन्य कथनका निर्द्धार न होय वा सशयादि रहै वा अन्यथा भी जानपना होय जाय अर केवलीका कह्या प्रमाण है ऐसा श्रद्धान रहै तो मोक्षमार्गविषै विघ्न नाही, ऐसा जानना।

यहाँ कोई तर्क करै—जैसे नाना प्रकार कथन जिनमतविषै कह्या, तैसें अन्यमतविषै भी कथन पाइए है। सो तुम्हारे मतके कथनका तो तुम जिस तिस प्रकार स्थापन किया, अन्यमतविषै ऐसे कथनकों तुम दोष लगावो हो, सो यहु तुम्हारे रागद्वेष है।

ताका समाधान—कथन तो नाना प्रकार होय अर प्रयोजन एकहीको पोषै तो कोई दोष है नाही। अर कही कोई प्रयोजन पोषे, कही कोई प्रयोजन पोषै तो दोष ही है। सो जिनमतविषै तो एक प्रयोजन रागादि मेटनेका है, सो कही बहुत रागादि छुडाय थोडा रागादि करावनेका प्रयोजन पोष्या है, कही सर्व रागादि मिटावनेका प्रयोजन पोष्या है परन्तु रागादि बधावने का प्रयोजन कही भी नाही तातै जिनमतका कथन सर्व निर्दोष है। अर अन्यमतविषै कही रागादि मिटावनेका प्रयोजन लिए कथन करै, कही रागादि बधावनेका प्रयोजन लिए कथन करै, ऐसैंही और भी प्रयोजनकी विरुद्धता लिए कथन करै हैं तातै अन्यमतका कथन सदोष है। लोकविषै भी एक प्रयोजन

को पोषते नाना वचन कहै, ताकों प्रमाणीक कहिए है अर प्रयोजन और और पोषती बातें करै, ताकों बावला कहिए है । बहुरि जिनमतविषें नाना प्रकार कथन है सो जुदी जुदी अपेक्षा लिए है, तहाँ दोष नाहीं । अन्यमतविषै एक ही अपेक्षा लिए अन्य अन्य कथन करै तहाँ दोष है । जैसे जिनदेवकै वीतरागभाव है अर समवसरणादि विभूति भी पाइए है, तहाँ विरोध नाही । समवसरणादि विभूति की रचना इन्द्रादिक करै हैं, इनकै तिसविषै रागादिक नाही, तातै दोऊ बात सम्भवै हैं । अर अन्यमतविषें ईश्वरकों साक्षीभूत वीतराग भी कहैं अर तिसहीकरि किए काम क्रोधादि भाव निरूपण करै, सो एक आत्मा ही कै वीतरागपनों अर काम क्रोधादि भाव कैसै सम्भवै ? ऐसे ही अन्यत्र जानना ।

बहुरि कालदोषतें जिनमतविषें एकही प्रकारकरि कोई कथन विरुद्ध लिख्या है, सो यहु तुच्छ बुद्धीनिकी भूलि है, किछू मतविषै दोष नाही । सो भी जिनमतका अतिशय इतना है कि प्रमाण विरुद्ध कथन कोई कर सकै नाही । कही सौरीपुरविषै कही द्वारावतीविषैं नेमिनाथस्वामीका जन्म लिख्या है, सो काठै ही होहु परन्तु नगरविषै जन्म होना प्रमाणविरुद्ध नाहीं । अब भी होता दीसै है ।

बहुरि अन्यमतविषै सर्वज्ञादिक यथार्थ ज्ञानीके किए ग्रन्थ बतावै, बहुरि तिनिविषै परस्पर विरुद्ध भासै । कही तो बालब्रह्मचारीकी प्रशंसा करै, कहीं कहैं **"पुत्र बिना गति ही होय नाहीं"** सो दोऊ साँचा कैसै होय । सो ऐसे कथन तहाँ बहुत पाइए हैं । बहुरि प्रमाणविरुद्ध

कथन तिनविषैं पाइए हैं। जैसें वीर्य मुखविषैं पड़नेतें मछलीकैं पुत्र हूवो, सो ऐसें अवार काहूकै होता दीसै नाहीं, अनुमानतें मिलै नाहीं। सो ऐसे भी कथन बहुत पाइए हैं। सो यहाँ सर्वज्ञादिककी भूलि मानिए सो तो वे कैसें भूलै अर विरुद्ध कथन माननेमें आवै नाहीं, तातें तिनके मतविषैं दोष ठहराइए है। ऐसा जानि एक जिनमत ही का उपदेश ग्रहन करने योग्य है।

तहाँ प्रथमानुयोगादिकका अभ्यास करना। तहाँ पहिलें याका अभ्यास करना, पीछें याका करना, ऐसा नियम नाहीं। अपनें परिणामनिकी अवस्था देखि जिसके अभ्यासतें अपनें धर्मविषैं प्रवृत्ति होय, तिसहीका अभ्यास करना। अथवा कदाचित् किसी शास्त्र का अभ्यास करै, कदाचित् किसी शास्त्रका अभ्यास करै। बहुरि जैसें रोजनामाविषैं तो अनेक रकम जहाँ तहाँ लिखी हैं, तिनिको खाते में ठीक खतावै तो लेना देनाका निश्चय होय तैसें शास्त्रनिविषैं तो अनेक प्रकार उपदेश जहाँ तहाँ दिया है, ताकों सम्यग्ज्ञानविषैं यथार्थ प्रयोजन लिए पहिचानै तो हित अहितका निश्चय होय। तातें स्यात्पदकी सापेक्ष लिए सम्यग्ज्ञानकरि जे जीव जिनवचननिविषैं रमै हैं, ते जीव शीघ्र ही शुद्ध आत्मस्वरूपकों प्राप्त हो हैं। मोक्षमार्गविषैं पहिला उपाय आगमज्ञान कह्या है। आगमज्ञान बिना और धर्मका साधन होय सकै नाही। तातें तुमकों भी यथार्थ बुद्धिकरि आगम अभ्यास करना। तुम्हारा कल्याण होगा।

इति श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रविषैं उपदेशस्वरूप-प्रतिपादक नामा आठवाँ अधिकार सम्पूर्ण भया।

ॐ नमः

नवमा अधिकार

मोक्षमार्गका स्वरूप

दोहा

शिवउपाय करतें प्रथम, कारन मंगलरूप।
विघनविनाशक सुखकरन, नमौंशुद्ध शिवभूप ।। १ ।।

अथ मोक्षमार्गका स्वरूप कहिए है—पहिले मोक्षमार्गके प्रतिपक्षी मिथ्यादर्शनादिक तिनिका स्वरूप दिखाया। तिनिकों तो दुखःरूप दु.ख का कारन जानि हेय मानि तिनिका त्याग करना। बहुरि बीचमें उपदेश का स्वरूप दिखाया। ताकों जानि उपदेशकों यथार्थ समझना। अब मोक्षके मार्ग सम्यग्दर्शनादिक तिनिका स्वरूप दिखाइए है। इनिकों सुखरूप सुखका कारण जानि उपादेय मानि अंगीकार करना। जातैं आत्माका हित मोक्ष ही है। तिसहीका उपाय आत्माको कर्तव्य है। तातै इसहीका उपदेश यहाँ दीजिए है। तहाँ आत्माका हित मोक्ष ही है, और नाहीं—ऐसा निश्चय कैसै होय सो कहिए है—

आत्माका हित एक मोक्ष ही है

आत्माकै नाना प्रकार गुणपर्यायरूप अवस्था पाइए है। तिनविषैं और तो कोई अवस्था होहू, किछू आत्माका बिगाड़ सुधार नाही।

एक दुःखसुख अवस्थातें बिगाड़ सुधार है। सो इहाँ किछू हेतु दृष्टांत चाहिए नाहीं। प्रत्यक्ष ऐसें ही प्रतिभासै है। लोकविषै जेते आत्मा हैं, तिनिकै एक उपाय यहु पाईए है—दुःख न होय, सुख ही होय। बहुरि अन्य उपाय भी जेते करै हैं, तेते एक इस ही प्रयोजन लिये करै हैं, दूसरा प्रयोजन नाही। जिनके 'निमित्ततें' दुःख होता जानें, तिनिकों दूर करनेका उपाय करै हैं अर जिनके निमित्ततें सुख होता जानै, तिनिके होने का उपाय करै है। बहुरि संकोच विस्तार आदि अवस्था भी आत्माहीकै हो है वा अनेक परद्रव्यनिका भी संयोग मिलै है परन्तु जिनकरि सुख दुःख होता न जानै, तिनके दूर करनेका वा होनेका कुछ भी उपाय कोऊ करै नाही। सो इहाँ आत्मद्रव्यका ऐसा ही स्वभाव जानना। और तो सर्व अवस्थाको सहि सकै, एक दुःखको सह सकता नाही। परवश दुःख होय तो यहु कहा करै, ताकों भोगवै परन्तु स्ववशपने तो किंचित् भी दुःखको न सहै। अर संकोच विस्तारादि अवस्था जैसी होय तैसी होहु, तिनिको स्ववशपनें भी भोगवै, सो स्वभावविषै तर्क नाही। आत्माका ऐसा ही स्वभाव जानना। देखो, दुःखी होय तब सूता चाहै, सो सोवने में ज्ञानादिक मन्द हो जाय है परन्तु जड़ सरिखा भी होय दुःखको दूरि किया चाहै है वा मूआ चाहै। सो मरनेमें अपना नाश मानै है परन्तु अपना अस्तित्व भी खोय दुःख दूर किया चाहै है। तातै एक दुःखरूप पर्यायका अभाव करना ही याका कर्तव्य है। बहुरि दुःख न होय सो ही सुख है। जातैं आकुलतालक्षण लिए दुःख तिसका अभाव सोई निराकुल लक्षण सुख है। सो यहु भी प्रत्यक्ष भासै है। बाह्य कोई सामग्रीका संयोग मिलो,

जाकै अंतरंगविषैं आकुलता है सो दुःखी ही है, जाकै आकुलता नाहीं सो सुखी है। बहुरि आकुलता हो है, सो रागादिक कषायभाव भये हो है। जातैं रागादिभावनिकरि यहु तो द्रव्यनिकों और भाँति परिणमाया चाहै अर वे द्रव्य और भाँति परिणमैं, तब याकै आकुलता होय। तहाँ कै तो आपकै रागादिक दूरि होंय, कै आप चाहै तैसें ही सर्वद्रव्य परिणमैं तो आकुलता मिटै। सो सर्वद्रव्य तो याके आधीन नाही। कदाचित् कोई द्रव्य जैसी याकी इच्छा होय तैसें ही परिणमैं, तो भी याकी सर्वथा आकुलता दूरि न होय। सर्व कार्य याका चाह्या ही होय, अन्यथा न होय, तब यहु निराकुल रहै। सो यहु तो होय ही सकै नाही। जातैं कोई द्रव्यका परिणमन कोई द्रव्यके आधीन नाहीं। तातैं अपने रागादि भाव दूरि भए निराकुलता होय सो यहु कार्य बनि सकै है। जातैं रागादिक भाव आत्माका स्वभाव भाव तो है नाही, उपाधिकभाव हैं, परनिमित्ततैं भए हैं, सो निमित्त मोहकर्मका उदय है। ताका अभाव भए सर्व रागादिक विलय होय जांय, तब आकुलता नाश भए दुःख दूरि होय सुखकी प्राप्ति होय। तातैं मोहकर्मका नाश हितकारी है।

बहुरि तिस आकुलताको सहकारी कारण ज्ञानावर्णादिकका उदय है। ज्ञानावर्ण दर्शनावर्णके उदयतै ज्ञानदर्शन सम्पूर्ण न प्रगटै, तातै याकै देखनें जाननेकी आकुलता होय अथवा यथार्थ सम्पूर्ण वस्तुका स्वभाव न जानै, तब रागादिरूप होय प्रवर्त्तै, तहाँ आकुलता होय।

बहुरि अंतरायके उदयतै इच्छानुसार दानादि कार्य न बनैं, तब आकुलता होय। इनिका उदय है, सो मोहका उदय होतें आकुलताकों सहकारी कारण है। मोहके उदयका नाश भए इनिका बल नाही।

अंतर्मुहूर्त्तकालकरि आपै आप नाशकों प्राप्त होय। परन्तु सहकारी कारण भी दूरि होय जाय, तब प्रगट रूप निराकुल दशा भासै। तहाँ केवलज्ञानी भगवान् अनन्तसुखरूप दशाकों प्राप्त कहिए।

बहुरि अघाति कर्मनिका उदयके निमित्ततें शरीरादिकका संयोग हो है, सो मोहकर्मका उदय होतें शरीरादिकका सयोग आकुलताकों बाह्य सहकारी कारण है। अंतरंग मोहका उदयतें रागादिक होय अर बाह्य अघाति कर्मनिके उदयते रागादिककों कारण शरीरादिकका सयोग होय, तब आकुलता उपजै है। बहुरि मोहका उदय नाश भए भी अघातिकर्मका उदय रहै है, सो किछू भी आकुलता उपजाय सकै नाही। परन्तु पूर्वें आकुलताका सहकारी कारण था, तातें अघाति कर्मनिका भी नाश आत्माकों इष्ट ही है। सो केवलीकै इनिके होतें किछु दुःख नाही तातें इनिके नाशका उद्यम भी नाही। परन्तु मोहका नाश भए ए कर्म आपै आप थोरे ही कालमें सर्व नाशकों प्राप्त होय जाय हैं। ऐसै सर्व कर्मका नाश होना आत्माका हित है। बहुरि सर्व कर्मके नाशहीका नाम मोक्ष है। तातै आत्माका हित एक मोक्ष ही है—और किछू नाही, ऐसा निश्चय करना।

इहाँ कोऊ कहै—ससार दशाविषै पुण्यकर्मका उदय होतें भी जीव सुखी हो है, तातै केवल मोक्ष ही हित है, ऐसा काहेकों कहिए?

सांसारिक सुख दुःख ही है

ताका समाधान—संसारदशाविषै सुख तो सर्वथा है ही नाहीं, दुःख ही है। परन्तु काहूकै कबहूँ बहुत दुःख हो है, काहूकै कबहूँ थोरा

दुःख हो है। सो पूर्वे बहुत दुःख था वा अन्य जीवनिकै बहुत दुःख पाइए है, तिस अपेक्षातें थोरे दुःखवालेकों सुखी कहिए। बहुरि तिस ही अभिप्रायतें थोरे दुःखवाला आपकों सुखी मानै है। परमार्थतें सुख है नाहीं। बहुरि जो थोरा भी दुःख सदाकाल रहै है, तो वाका भी हित ठहराइए, सो भी नाही। थोरे काल ही पुण्यका उदय रहै, तहाँ थोरा दुःख होय, पीछे बहुत दुःख होइ जाय। तातैं ससार अवस्था हितरूप नाही। जैसै काहूकै विषम ज्वर है, ताकै कबहू असाता बहुत हो है, कबहू थोरी हो है। थोरी असाता होय, तब वह आपकों नीका मानै। लोक भी कहैं—नीका है। परन्तु परमार्थतें यावत् ज्वरका सद्भाव है, तावत् नीका नाही है। तैसै संसारीकै मोहका उदय है। ताकै कबहू आकुलता बहुत हो है, कबहू थोरी हो है। थोरी आकुलता होय, तब वह आपकों सुखी मानै। लोक भी कहैं—सुखी है। परन्तु परमार्थतें यावत् मोहका सद्भाव है, तावत् सुख नाहीं। बहुरि सुनि, ससार दशाविषै भी आकुलता घटे सुख नाम पावै है। आकुलता बधे दुःख नाम पावै है। किछू बाह्य सामग्रीतें सुख दुःख नाहीं। जैसै काहू दरिद्रीकै किंचित् धनकी प्राप्ति भई, तहाँ किछू आकुलता घटनेतें वाकों सुखी कहिए अर वह भी आपकों सुखी मानै। बहुरि काहू बहुत धनवान्कै किंचित् धनकी हानि भई, तहाँ किछू आकुलता बधनेतें वाकों दुःखी कहिए अर वह भी आपको दुःखी मानैं है। ऐसैंही सर्वत्र जानना।

बहुरि आकुलता घटना बधना भी बाह्य सामग्री के अनुसार नाही। कषाय भावनिके घटने बधनेके अनुसार है। जैसै काहूक थोरा धन है अर वाकै संतोष है, तो वाकै आकुलता थोरी है। बहुरि

काहूकै बहुत धन है अर वाकै तृष्णा है, तो वाकै आकुलता घनी है। बहुरि काहूकों काहूनें बहुत बुरा कह्या अर वाकै क्रोध न भया, तो वाकै आकुलता न हो है अर थोरी बाते कहे ही क्रोध होय आवै, तो वाकै आकुलता घनी हो है। बहुरि जैसें गऊकै बछडेतें किछू भी प्रयोजन नाही परन्तु मोह बहुत, तातें वाकी रक्षा करनेकी बहुत आकुलता हो है। बहुरि सुभटके शरीरादिकतें घनें कार्य सधै हैं परन्तु रणविषें मानादिककरि शरीरादिकतें मोह घटि जाय, तब मरनेंकी भी थोरी आकुलता हो है। तातै ऐसा जानना—संसार अवस्थाविषें भी आकुलता घटने बधनेंहीतें सुख दु ख मानिए हैं। बहुरि आकुलता-का घटना बधना रागादिक कषाय घटनें बधनेंके अनुसार है। बहुरि परद्रव्यरूप बाह्य सामग्रीके अनुसारि सुख दु ख नाहीं। कषायतें याकै इच्छा उपजै अर याकी इच्छा अनुसारि बाह्य सामग्री मिलै, तब याका किछू कषाय उपशमनेतें आकुलता घटै, तब सुख मानै अर इच्छानुसारि सामग्री न मिलै, तब कषाय बधनेते आकुलता बधै, तब दुःख मानै। सो है तो ऐसें अर यह जानै—मोकू परद्रव्यके निमित्ततें सुख दु.ख हो है। सो ऐसा जानना भ्रम ही है। तातै इहाँ ऐसा विचार करना, जो संसार अवस्थाविषै किंचित् कषाय घटे सुख मानिए, ताकों हित जानिए, तो जहाँ सर्वथा कषाय दूर भए वा कषायके कारण दूरि भए परम निराकुलता होनेकरि अनन्तसुख पाइए ऐसी मोक्षअवस्थाकों कैसै हित न मानिए? बहुरि संसार अवस्थाविषै उच्च पदकों पावै, तौ भी कै तो विषयसामग्रीमिलावनेकी आकुलता होय, कै विषय सेवनकी आकुलता होय, कै अपने और कोई क्रोधादि

कषायतें इच्छा उपजै, ताकों पूरण करनेंकी आकुलता होय, कदाचित् सर्वथा निराकुल होय सकै नाही, अभिप्रायविषैं तो अनेक प्रकार आकुलता बनी ही रहै। अर बाह्य कोई आकुलता मेटनेंके उपाय करै, सो प्रथम तो कार्य सिद्ध होय नाही अर जो भवितव्य योगतै वह कार्य सिद्ध होय जाय, तो तत्काल और आकुलता मेटनेंका उपायविषैं लागै। ऐसें आकुलता मेटनेंकी आकुलता निरन्तर रह्या करै। जो ऐसी आकुलता न रहै तो नये नये विषयसेवनादि कार्यनिविषैं काहेकों प्रवर्त्तै है ? तातैं संसार अवस्थाविषैं पुण्यका उदयतै इन्द्र अहमिन्द्रादि पद पावै तो भी निराकुलता न होय, दुःखी ही रहै। तातैं संसार अवस्था हितकारी नाही।

बहुरि मोक्षअवस्थाविषैं कोई ही प्रकारकी आकुलता रही नाही तातैं आकुलता मेटनेका उपाय करनेका भी प्रयोजन नाहीं। सदा काल शांतरसकरि सुखी रहै। तातैं मोक्ष अवस्थाही हितकारी है। पूर्वैं भी संसार अवस्थाका दुःखका अर मोक्ष अवस्थाका सुखका विशेष वर्णन किया है, सो इसही प्रयोजनके अर्थि किया है। ताकों भी विचारि मोक्षको हितरूप जानि मोक्षका उपाय करना, सर्व उपदेशका तात्पर्य इतना है।

इहाँ प्रश्न—जो मोक्षका उपाय काललब्धि आए भवितव्यानुसारि बनै है कि मोहादिका उपशमादि भए बनै है कि अपने पुरुषार्थतें उद्यम किए बनै है, सो कहो। जो पहिले दोय कारण मिले बनै है, तो हमको उपदेश काहेकों दीजिए है अर पुरुषार्थतें बनै है, तो उपदेश सर्व सुनै, तिनविषै कोई उपाय कर सकै, कोई न करि सकै, सो कारण कहा ?

मोक्ष साधन में पुरुषार्थ की मुख्यता

ताका समाधान—एक कार्य होनेविषैं अनेक कारण मिलै हैं। सो

मोक्षका उपाय बनें है तहाँ तो पूर्वोक्त तीनों ही कारण मिलें हैं अर न बनें है, तहाँ तीनों ही कारण न मिलें हैं। पूर्वोक्त तीन कारण कहे, तिनविषें काललब्धि वा होनहार तो किछू वस्तु नाही। जिस कालविषें कार्य बनै सोई काललब्धि और जो कार्य भया सोई होनहार। बहुरि जो कर्मका उपशमादिक है, सो पुद्गलकी शक्ति है, ताका आत्मा कर्त्ता हर्त्ता नाही। बहुरि पुरुषार्थतें उद्यम करिए है, सो यहु आत्माका कार्य है। तातें आत्माको पुरुषार्थकरि उद्यम करनेका उपदेश दीजिए है। तहाँ यहु आत्मा जिस कारणते कार्य सिद्धि अवश्य होय, तिस कारणरूप उद्यम करै, तहाँ तो अन्य कारण मिलैं ही मिलें अर कार्यकी भी सिद्धि होय ही होय। बहुरि जिस कारणते कार्य की सिद्धि होय अथवा नाही भी होय, तिस कारणरूप उद्यम करै, तहाँ अन्य कारण मिलै तो कार्यसिद्धिहोय, न मिलै तो न सिद्धि होय। सो जिनमतविषें जो मोक्षका उपाय कह्या है, सो इसतें मोक्ष होय ही होय। तातें जो जीव पुरुषार्थकरि जिनेश्वरका उपदेश अनुसार मोक्ष का उपाय करै हैं, ताकै काललब्धि वा होनहार भी भया अर कर्मका उपशमादि भया है तो यहु ऐसा उपाय करै है। तातैं जो पुरुषार्थकरि मोक्षका उपाय करै है, ताकै सर्वकारण मिले हैं, ऐसा निश्चय करना अर वाकै अवश्य मोक्षकी प्राप्ति हो है। बहुरि जो जीव पुरुषार्थकरि मोक्षका उपाय न करै, ताकै काललब्धि वा होनहार भी नाही अर कर्मका उपशमादि न भया है तो यहु उपाय न करै है। तातैं जो पुरुषार्थकरि मोक्षका उपाय न करै है, ताकै कोई कारण मिलैं नाही, ऐसा निश्चय करना अर वाकै मोक्षकी प्राप्ति न हो है। बहुरि तू

कहै है— उपदेश तो सर्व सुनै हैं, कोई मोक्षका उपाय करि सकै, कोई न करि सकै, सो कारण कहा ? सो कारण यहु ही है—जो उपदेश सुनि पुरुषार्थ करै है, सो मोक्षका उपाय करि सकै है अर पुरुषार्थ न करै है सो मोक्षका उपाय न करि सकै है। उपदेश तो शिक्षा मात्र है, फल जैसा पुरुषार्थ करै तैसा लागै।

द्रव्यलिंगीकै मोक्षोपयोगी पुरुषार्थका अभाव

बहुरि प्रश्न—जो द्रव्यलिंगी मुनि मोक्षके अर्थि गृहस्थपनों छोडि तपश्चरणादि करैं हैं, तहाँ पुरुषार्थ तो किया, कार्य सिद्ध न भया, तातैं पुरुषार्थ किए तो किछू सिद्धि नाहीं।

ताका समाधान—अन्यथा पुरुषार्थकरि फल चाहै, तो कैसे सिद्धि होय ? तपश्चरणादि व्यवहार साधनविषै अनुरागी होय प्रवर्त्ते, ताका फल शास्त्रविषैं तो शुभबंध कह्या अर यहु तिसतें मोक्ष चाहै है, तो कैसे होय। यहु तो भ्रम है।

बहुरि प्रश्न—जो भ्रमका भी तो कारण कर्म ही है, पुरुषार्थ कहा करै ?

ताका उत्तर—सांचा उपदेशतें निर्णय किए भ्रम दूरि हो है। सो ऐसा पुरुषार्थ न करै है, तिमहीतें भ्रम रहै है। निर्णय करनेका पुरुषार्थ करै, तो भ्रमका कारण मोहकर्म ताका भी उपशमादि होय, तब भ्रम दूरि होय जाय। जातै निर्णय करता परिणामनिकी विशुद्धता होय, तिसतें मोहका स्थिति अनुभाग घटै है।

बहुरि प्रश्न—जो निर्णय करनेविषै उपयोग न लगावै है, ताका भी तो कारण कर्म है।

ताका समाधान—एकेन्द्रियादिककै विचार करनेकी शक्ति नाहीं, तिनकै तो कर्महीका कारण है। याकै तो ज्ञानावरणादिकका क्षयोपशमतें निर्णय करनेकी शक्ति भई। जहाँ उपयोग लगावै, तिसहीका निर्णय होय सकै। परन्तु यह अन्य निर्णय करनेविषै उपयोग लगावै, यहाँ उपयोग न लगावै। सो यह तो याहीका दोष है, कर्मका तो किछू प्रयोजन नाही।

बहुरि प्रश्न—जो सम्यक्त्व चारित्रका तो घातक मोह है, ताका अभाव भए विना मोक्षका उपाय कैसे बनै ?

ताका उत्तर—तत्वनिर्णय करनेविषै उपयोग न लगावै, सो तो याहीका दोष है। बहुरि पुरुषार्थकरि तत्वनिर्णयविषैं उपयोग लगावै, तब स्वयमेव ही मोहका अभाव भए सम्यक्त्वादिरूप मोक्षके उपायका पुरुषार्थ बनै है। सो मुख्यपने तो तत्वनिर्णयविषैं उपयोग लगावनेका पुरुषार्थ करना, बहुरि उपदेश भी दीजिए है सो इस ही पुरुषार्थ करावनेके अर्थि दीजिए है। बहुरि इस पुरुषार्थतें मोक्षके उपायका पुरुषार्थ आपहीतें सिद्ध होयगा। अर तत्व निर्णय न करनेविषैं कोई कर्मका दोष है नाहीं, तेरा ही दोष है। अर तू आप तो महन्त रह्या चाहै अर अपना दोष कर्मादिककैं लगावै, सो जिन आज्ञा मानै तो ऐसी अनीति सम्भवै नाही। तोकों विषय कषायरूपही रहना है, तातै भूठ बोलै है। मोक्षकी सांची अभिलाषा होय, तो ऐसी युक्ति काहेकों बनावै। संसारीक कार्यनिविषै अपना पुरुषार्थतें सिद्धि न होती जानै तौ भी पुरुषार्थकरि उद्यम किया करै, यहाँ पुरुषार्थ खोय बैठै। सो जानिए है, मोक्षकों देखादेखी उत्कृष्ट कहै है। वाका स्वरूप पहचानि

ताकों हितरूप न जानै है। हित जानि जाका उद्यम बनै सो न करै, यह असम्भव है।

इहाँ प्रश्न—जो तुम कह्या सो सत्य, परन्तु द्रव्यकर्मके उदयतें भावकर्म होय, भावकर्मतें द्रव्यकर्मका बंध होय, बहुरि ताके उदयते भावकर्म होय, एसें ही अनादितें परम्परा है, तब मोक्षका उपाय कैसें होय सकै ?

ताका समाधान—कर्मका बंध वा उदय सदाकाल समान ही हुवा करै तौ तो ऐसें ही है; परन्तु परिणामनिके निमित्ततें पूर्वबद्ध कर्मका भी उत्कर्षण अपकर्षण संक्रमणादि होतें तिनकी शक्ति हीन अधिक होय है तातें तिनका उदय भी मन्द तीव्र हो है। तिनके निमित्ततें नवीन बंध भी मन्द तीव्र हो है। तातें ससारी जीवनिकै कर्मउदयके निमित्त-करि कबहू ज्ञानादिक घने प्रगट हो हैं, कबहू थोरे प्रगट हो हैं। कबहू रागादिक मन्द हो हैं, कबहू तीव्र हो हैं। ऐसे पलटनि हुवा करै है। तहाँ कदाचित् सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त पर्याय पाया, तब मनकरि विचार करनेकी शक्ति भई। बहुरि याकै कबहू तीव्र रागादिक होय, कबहू मन्द होय। तहाँ रागादिकका तीव्र उदय होतें तो विषयकषायादिकके कार्यनिविषै ही प्रवृत्ति होय। बहुरि रागादिकका मन्द उदय होतें बाह्य उपदेशादिकका निमित्त बनै अर आप पुरुषार्थकरि तिन उपदेशादिक विषै उपयोगकों लगावै, तो धर्मकार्यनिविषें प्रवृत्ति होय। अर निमित्त न बनै वा आप पुरुषार्थ न करै, तो अन्य कार्यनिविषें ही प्रवर्त्तै परन्तु मन्द रागादि लिए प्रवर्त्तै, ऐसे अवसरविषै उपदेश कार्यकारी है। विचार-शक्तिरहित एकेन्द्रियादिक हैं, तिनिकै तो उपदेश समझनेका ज्ञान ही

नाहीं। अर तीव्ररागादिसहित जीवनिका उपदेशविषैं उपयोग लागै नाहीं। तातै जो जीव विचारशक्तिसहित होंय अर जिनकै रागादि मंद होंय, तिनकों उपदेशका निमित्ततें धर्मकी प्राप्ति होय जाय, तो ताका भला होय। बहुरि इस ही अवसरविषैं पुरुषार्थ कार्यकारी है। एकेन्द्रियादिक तो धर्मकार्य करनेकों समर्थ ही नाही, कैसे पुरुषार्थ करैं अर तीव्रकषायी पुरुषार्थ करै सो पापहीका करै, धर्मकार्यका पुरुषार्थ होय सकै नाही। तातै विचारशक्तिसहित होय अर जिसकै रागादिक मन्द होंय, सो जीव पुरुषार्थकरि उपदेशादिकके निमित्ततें तत्वनिर्णयादिविषै उपयोग लगावै, तो याका उपयोग तहाँ लगै, तब याका भला होय। बहुरि इस अवसरविषैं भी तत्वनिर्णय करनेका पुरुषार्थ न करै, प्रमादतै काल गमावै। कै तो मन्दरागादि लिए विषयकषायनिके कार्यनिहीविषै प्रवर्त्तै, कै व्यवहार धर्मकार्यनिविषै प्रवर्त्तै, तब अवसर तो जाता रहै, ससारहीविषै भ्रमण होय।

बहुरि इस अवसरविषैं जे जीव पुरुषार्थकरि तत्वनिर्णयकरनेविषैं उपयोग लगावनेका अभ्यास राखै, तिनिकै विशुद्धता बधै, ताकरि कर्मनिकी शक्ति हीन होय। कितेक कालविषै आपै आप दर्शनमोहका उपशम होय तब याकै तत्वनिकी यथावत् प्रतीति आवै। सो याका तो कर्त्तव्य तत्वनिर्णयका अभ्यास ही है। इसहीतै दर्शनमोहका उपशम तो स्वयमेव होय। यामैं जीवका कर्त्तव्य किछू नाही। बहुरि ताकों होते जीवकै स्वयमेव सम्यग्दर्शन होय। बहुरि सम्यग्दर्शन होते श्रद्धान तो यहु भया—मैं आत्मा हूँ, मुझको रागादिक न करनें परन्तु चारित्रमोहके उदयतें रागादिक हो हैं। तहाँ तीव्र उदय होय,

तब तो विषयादिविषै प्रवर्त्तै है अर मन्द उदय होय, तब अपनें पुरुषार्थतैं धर्मकार्यनिविषै वा वैराग्यादिभावनाविषै उपयोगकों लगावै है। ताके निमित्ततैं चारित्रमोह मन्द होता जाय, ऐसें होतैं देशचारित्र वा सकलचारित्र अंगीकार करनेंका पुरुषार्थ प्रगट होय। बहुरि चारित्रकों धारि अपना पुरुषार्थकरि धर्मविषै परणतिकों बधावै, तहाँ विशुद्धता करि कर्मकी हीन शक्ति होय, तातै विशुद्धता बधै, ताकरि अधिक कर्मकी शक्ति हीन होय। ऐसै क्रमतैं मोहका नाश करै तब सर्वथा परिणाम विशुद्ध होंय, तिनकरि ज्ञानावर्णादिका नाश होय तब केवलज्ञान प्रगट होय। तहाँ पीछें बिना उपाय अघाति कर्मका नाशकरि शुद्धसिद्धपदकों पावै। ऐसै उपदेशका तो निमित्त बनै अर अपना पुरुषार्थ करै, तो कर्मका नाश होय।

बहुरि जब कर्मका उदय तीव्र होय, तब पुरुषार्थ न होय सकै है। ऊपरले गुणस्थाननितैं भी गिर जाय है। तहाँ तो जैसा होनहार होय तैसा ही होय। परन्तु जहाँ मन्द उदय होय अर पुरुषार्थ होय सकै, तहाँ तो प्रमादी न होना—सावधान होय अपना कार्य करना। जैसें कोऊ पुरुष नदीका प्रवाहविषैं पड़्या बहै है, तहाँ पानीका जोर होय तब तो वाका पुरुषार्थ किछू नाही, उपदेश भी कार्यकारी नाही। और पानीका जोर थोरा होय, तब जो पुरुषार्थकरि निकसै तो निकसि आवै, तिसहीकों निकसनेकी शिक्षा दीजिए है। अर न निकसै तो होलै २ बहै, पीछें पानीका जोर भए बह्या चल्या जाय। तैसें जीव ससारविषैं भ्रमै है तहाँ कर्मनिका तीव्र उदय होय तब तो वाका पुरुषार्थ किछू नाही, उपदेश भी कार्यकारी नाहीं। अर कर्मका मन्द उदय होय, तब पुरुषार्थ-

करि मोक्षमार्गविषै प्रवर्त्ते तो मोक्षपावै; तिसहीकों मोक्षमार्गका उपदेश दीजिए है। अर मोक्षमार्गविषै न प्रवर्त्ते तो किंचित् विशुद्धता पाय पीछें तीव्र उदय आए निगोदादि पर्यायकों पावै। तातै अवसर चूकना योग्य नाहीं। अब सर्व प्रकार अवसर आया है, ऐसा अवसर पावना कठिन है। तातै श्रीगुरु दयाल होय मोक्षमार्गकों उपदेशैं, तिस-विषैं भव्य जीवनिको प्रवृत्ति करनी। अब मोक्षमार्गका स्वरूप कहिए है।

मोक्षमार्गका स्वरूप

जिनके निमित्ततें आत्मा अशुद्ध दशाकों धारि दुःखी भया, ऐसे जो मोहादिक कर्म तिनिका सर्वथा नाश होते केवल आत्माकी जो सर्व प्रकार शुद्ध अवस्थाका होना, सो मोक्ष है। ताका जो उपाय—कारण, सो मोक्षमार्ग जानना। सो कारण तो अनेक प्रकार हो हैं। कोई कारण तो ऐसे हो हैं, जाके भए विना तो कार्य न होय अर जाके भए कार्य होय वा न भी होय। जैसें मुनि लिंग धारे विना तो मोक्ष न होय अर मुनिलिंग धारे मोक्ष होय भी अर नाही भी होय। बहुरि केई कारण ऐसे हैं, जो मुख्यपनें तो जाके भए कार्य होय अर काहूके विना भए भी कार्य सिद्धि होय। जैसैं अनशनादि बाह्य तपका साधन किए मुख्यपने मोक्ष पाइए है, भरतादिककै बाह्य तप किए विना ही मोक्षकी प्राप्ति भई। बहुरि केई कारण ऐसे हैं, जाके भए कार्य सिद्धि ही होय और जाके न भए सर्वथा कार्य सिद्धि न होय। जैसैं सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी एकता भए तो मोक्ष होय ही होय अर ताकों न भए सर्वथा मोक्ष न होय। ऐसे ए कारण कहे, तिनविषै अतिशयकरि

नियमतें मोक्षका साधक जो सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रका एकीभाव, सो मोक्षमार्ग जानना। इन सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रनिविषैं एक भी न होय तो मोक्षमार्ग न होय। सोई **तत्वार्थसूत्रविषें** कह्या है—

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥१॥

इस सूत्रकी टीकाविषें कह्या है—जो यहाँ "**मोक्षमार्गः**" ऐसा एक वचन कह्या ताका अर्थ यहु है—जो तीनों मिले एक मोक्षमार्ग है। जुदे जुदे तीन मार्ग नाही हैं।

यहाँ प्रश्न—जो असंयतसम्यग्दृष्टीकै तो चारित्र नाही, वाकै मोक्ष मार्ग भया है कि न भया है।

ताका समाधान—मोक्षमार्ग याकै होसी, यहु तो नियम भया। तातैं उपचारतें याकै मोक्षमार्ग भया भी कहिए। परमार्थतें सम्यक्-चारित्र भए ही मोक्षमार्ग हो है। जैसै कोई पुरुषकै किसी नगर चालने का निश्चय भया तातैं वाकों व्यवहारतें ऐसा भी कहिए "यहु तिस नगरकों चल्या है", परमार्थतें मार्गविषें गमन किए ही चलना होसी। तैसैं असंयतसम्यग्दृष्टीकै वीतरागभावरूप मोक्षमार्गका श्रद्धान भया, तातैं वाकों उपचारतें मोक्षमार्गी कहिए, परमार्थतें वीतरागभावरूप परिणमे ही मोक्षमार्ग होसी। बहुरि "**प्रवचनसार**" विषैं भी तीनोंकी एकाग्रता भए ही मोक्षमार्ग कह्या है तातैं यहु जानना—तत्वश्रद्धान ज्ञान विना तो रागादि घटाए मोक्षमार्ग नाही अर रागादि घटाए विना तत्वश्रद्धानज्ञानतें भी मोक्षमार्ग नाही। तीनों मिले साक्षात् मोक्षमार्ग हो है।

लक्षण और उसके दोष

अब इनका निर्देश कर लक्षण निर्देश अर परीक्षाद्वारकरि निरूपण कीजिए है। तहाँ 'सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र मोक्षका मार्ग है', ऐसा नाम मात्र कथन सो तो 'निर्देश' जानना। बहुरि अतिव्याप्ति अव्याप्ति असम्भवपनाकरि रहित होय अर जाकरि इनकों पहिचानिए, सो 'लक्षण' जानना। ताका जो निर्देश कहिए, निरूपण सो 'लक्षण निर्देश' जानना। तहाँ जाकों पहिचानना होय, ताका नाम लक्ष्य है। उस बिना औरका नाम अलक्ष्य है। सो लक्ष्य वा अलक्ष्य दोऊविषै पाइए, ऐसा लक्षण जहाँ कहिए तहाँ अतिव्याप्तिपनों जानना। जैसे आत्माका लक्षण 'अमूर्त्तत्व' कहा। सो 'अमूर्त्तत्व' लक्षण है, सो लक्ष्य जो है आत्मा तिसविषैं भी पाइए अर अलक्ष्य जो हैं आकाशादिक तिनविषै भी पाइए है। तातैं यह 'अतिव्याप्त' लक्षण है। याकरि आत्मा पहिचाने आकाशादिक भी आत्मा होय जांय, यहु दोष लागै।

बहुरि जो कोई लक्ष्यविषै तो होय अर कोई विषै न होय, ऐसा लक्ष्यका एकदेशविषैं पाइए, ऐसा लक्षण जहाँ कहिए, तहाँ अव्याप्तिपनों जानना। जैसें आत्माका लक्षण केवलज्ञानादिक कहिए, सो केवल ज्ञान कोई आत्माविषै तो पाइए, कोईविषै न पाइए, तातैं यहु 'अव्याप्त' लक्षण है। याकरि आत्मा पहिचानें स्तोकज्ञानी आत्मा न होय, यहु दोष लागै।

बहुरि जो लक्ष्यविषै पाइए ही नाहीं, ऐसा लक्षण जहाँ कहिए तहाँ असम्भवपना जानना। जैसें आत्माका लक्षण जड़पना कहिए सो प्रत्यक्षादि प्रमाणकरि यहु विरुद्ध है जातैं यहु 'असम्भव' लक्षण है। याकरि आत्मा मानें पुद्गलादिक भी आत्मा होय जांय।

अर आत्मा है सो अनात्मा हो जाय, यहु दोष लागै।

ऐसें अतिव्याप्त अव्याप्त असम्भव लक्षण होय सो लक्षणाभास है। बहुरि लक्ष्यविषैं तो सर्वत्र पाइए अर अलक्ष्यविषैं कहीं न पाइए सो सांचा लक्षण है। जैसें आत्माका स्वरूप चैतन्य है सो यहु लक्षण सर्व ही आत्माविषैं तो पाइए है, अनात्माविषैं कहीं न पाइए। तातैं यहु सांचा लक्षण है। याकरि आत्मा माने आत्मा अनात्माका यथार्थ ज्ञान होय, किछू दोष लागै नाहीं। ऐसें लक्षणका स्वरूप उदाहरण मात्र कह्या। अब सम्यग्दर्शनादिकका सांचा लक्षण कहिए है—

सम्यग्दर्शनका सच्चा लक्षण

विपरीताभिनिवेश रहित जीवादिक तत्वार्थश्रद्धान सो सम्यग्दर्शनका लक्षण है। जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष ए सात तत्वार्थ हैं। इनका जो श्रद्धान-ऐसे ही है, अन्यथा नाहीं; ऐसा प्रतीति भाव सो तत्वार्थश्रद्धान है। बहुरि विपरीताभिनिवेश जो अन्यथा अभिप्राय ताकरि रहित सो सम्यग्दर्शन है। यहाँ विपरीताभिनिवेशका निराकरणके अर्थि 'सम्यक्' पद कह्या है, जातैं 'सम्यक्' ऐसा शब्द प्रशंसा वाचक है। सो श्रद्धानविषैं विपरीताभिनिवेशका अभाव भए ही प्रशंसा सम्भवै है, ऐसा जानना।

यहाँ प्रश्न—जो 'तत्व' अर 'अर्थ' ए दोय पद कहे, तिनिका प्रयोजन कहा ?

ताका समाधान—'तत्' शब्द है सो 'यत्' शब्दकी अपेक्षा लिये है। तातैं जाका प्रकरण होय सो तत् कहिए अर जाका जो भाव कहिए स्वरूप सो तत्व जानना। जातैं 'तस्य भावस्तत्वं' ऐसा तत्व शब्दका समास होय है। बहुरि जो जाननेमें आवै ऐसा 'द्रव्य' वा 'गुण पर्याय'

ताका नाम अर्थ है। बहुरि '**तत्वेन अर्थस्तत्वार्थः**' तत्व कहिए अपना स्वरूप, ताकरि सहित पदार्थ तिनिका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है। यहाँ जो 'तत्वश्रद्धान' ही कहते तो जाका यह भाव (तत्व) है, ताका श्रद्धान विना केवल भावहीका श्रद्धान कार्यकारी नाहीं। बहुरि जो 'अर्थश्रद्धान ही कहते तो भाव का श्रद्धान विना पदार्थका श्रद्धान भी कार्यकारी नाहीं। जैसे कोईकै ज्ञान-दर्शनादिक वा वर्णादिकका तो श्रद्धान होय—यह जानपना है, यह श्वेतवर्ण है, इत्यादि प्रतीति हो है परन्तु ज्ञान दर्शन आत्माका स्वभाव है सो मैं आत्मा हूँ बहुरि वर्णादि पुद्गलका स्वभाव है, पुद्गल मोतें भिन्न जुदा पदार्थ है- ऐसा पदार्थका श्रद्धान न होय तो भावका श्रद्धान कार्यकारी नाही। बहुरि जैसें 'मैं आत्मा हूँ' ऐसें श्रद्धान किया परन्तु आत्मा का स्वरूप जैसा है तैसा श्रद्धान न किया तो भावका श्रद्धान विना पदार्थका भी श्रद्धान कार्यकारी नाही। तातै तत्वकरि अर्थका श्रद्धान हो है सो कार्यकारी है। अथवा जीवादिकको तत्व सज्ञा भी है अर अर्थ संज्ञा भी है तातै '**तत्वमेवार्थस्तत्वार्थः**' जो तत्व सो ही अर्थ, तिनका श्रद्धान सो सम्यग्दशन है। इस अर्थकरि कही तत्वश्रद्धानकों सम्यग्दर्शन कहैं वा कहीं पदार्थ श्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहैं, तहाँ विरोध न जानना। ऐसें 'तत्व' और 'अर्थ' दोय पद कहने का प्रयोजन है।

बहुरि प्रश्न—जो तत्वार्थ तो अनन्ते हैं। ते सामान्य अपेक्षाकरि

जीव अजीवविषैं सर्व गर्भित भए, तातैं दोय ही कहने थे, कै अनंते कहने थे। आस्रवादिक तो जीव अजीवहीके विशेष हैं, इनकों जुदा कहनेका प्रयोजन कहा ?

ताका समाधान—जो यहाँ पदार्थ श्रद्धान करने का ही प्रयोजन होता तो सामान्यकरि वा विशेषकरि जैसें सर्व पदार्थनिका जानना होय तैसें ही कथन करते। सो तो यहाँ प्रयोजन है नाहीं। यहाँ तो मोक्षका प्रयोजन है। सो जिन सामान्य वा विशेष भावनिका श्रद्धान किए मोक्ष होय अर जिनका श्रद्धान किए विना मोक्ष न होय, तिन-हीका यहाँ निरूपण किया। सो जीव अजीव ए दोय तो बहुत द्रव्य-निकी एक जाति अपेक्षा सामान्यरूप तत्व कहे। सो ए दोय जाति जानैं जोवके आपापरका श्रद्धान होय। तब परतैं भिन्न आपाकों जानैं, अपना हितके अर्थि मोक्षका उपाय करै अर आपतैं भिन्न परकों जानैं, तब परद्रव्यतैं उदासीन होय रागादिक त्यागि मोक्षमार्गविषैं प्रवर्त्तै। तातैं ए दोय जातिका श्रद्धान भए ही मोक्ष होय अर दोय जाति जाने बिना आपा परका श्रद्धान न होय, तब पर्यायबुद्धितैं संसारीक प्रयोजन हीका उपाय करै। परद्रव्यविषैं रागद्वेषरूप होय प्रवर्त्तै, तब मोक्षमार्ग-विषैं कैसें प्रवर्त्तै। तातैं इन दोय जातिनिका श्रद्धान न भए मोक्ष न होय। ऐसैं ए दोय तो सामान्य तत्व अवश्य श्रद्धान करने योग्य कहे। बहुरि आस्रवादिक पाँच कहे, ते जीव पुद्गलकी पर्याय हैं। तातैं ए विशेषरूप तत्व हैं। सो इन पांच पर्यायनिको जानें मोक्षका उपाय करनेका श्रद्धान होय। तहाँ मोक्षकों पहिचानै, तो ताकों हित मानि ताका उपाय करैं। तातैं मोक्षका श्रद्धान करना। बहुरि मोक्षका

उपाय संवर निर्जरा है सो इनको पहिचान तो जैसं संवर निर्जरा होय तैसें प्रवर्त्ते। तातें संवर निर्जराका श्रद्धान करना। बहुरि संवर निर्जरा तो अभाव लक्षण लिए हैं; सो जिनका अभाव किया चाहिए, तिनकों पहिचानने चाहिए। जैसें क्रोधका अभाव भए क्षमा होय सो क्रोधकों पहिचानै तो ताका अभाव करि क्षमारूप प्रवर्त्ते। तैसें ही आस्रवका अभाव भए संवर होय अर बंधका एक देश अभाव भए निर्जरा होय सो आस्रव बंधकों पहिचानै तो तिनिका नाशकरि संवर निर्जरारूप प्रवर्त्ते। तातें आस्रव बंधका श्रद्धान करना। ऐसें इन पांच पर्यायनिका श्रद्धान भए ही मोक्षमार्ग होय। इनकों न पहिचानै तो मोक्षकी पहिचान बिना ताका उपाय काहेकों करै। संवर निर्जरा की पहिचान बिना तिनविषें कैसे प्रवर्त्ते। आस्रव बंधकी पहिचान बिना तिनिका नाश कैसें करै ? ऐसें इन पाँच पर्यायनिका श्रद्धान न भए मोक्षमार्ग न होय। या प्रकार यद्यपि तत्वार्थ अनन्ते हैं, तिनिका सामान्य विशेषकरि अनेक प्रकार प्ररूपण होय। परन्तु यहाँ एक मोक्षका प्रयोजन है तातें दोय तो जाति अपेक्षा सामान्य तत्व अर पाच पर्यायरूप विशेष तत्व मिलाय सात ही तत्व कहे। इनका यथार्थ श्रद्धानके आधीन मोक्षमार्ग है। इनि बिना औरनिका श्रद्धान होहु वा मति होहु वा अन्यथा श्रद्धान होहु, किसीके आधीन मोक्षमार्ग नाहीं, ऐसा जानना। बहुरि कहीं पुण्य पाप सहित नव पदार्थ कहे हैं सो पुण्य पाप आस्रवादिकके ही विशेष हैं, तातै सात तत्वनिविषैं गर्भित भए। अथवा पुण्यपापका श्रद्धान भए पुण्यकों मोक्षमार्ग न मानै वा स्वच्छन्द होय पापरूप न प्रवर्त्ते, तातें मोक्षमार्गविषें इनका श्रद्धान भी

उपकारी जानि होय तत्व विशेष के विशेष मिलाय नव पदार्थ कहे वा समयसारादिविषैं इनकों नव तत्व भी कहे हैं।

बहुरि प्रश्न—इनिका श्रद्धान सम्यग्दर्शन कह्या, सो दर्शन तो सामान्य अवलोकनमात्र अर श्रद्धान प्रतीतिमात्र, इनिकै एकार्थपना कैसें सम्भवै ?

ताका उत्तर—प्रकरणके वशतें धातुका अर्थ अन्यथा होय है। सो यहाँ प्रकरण मोक्षमार्गका है, तिसविषैं 'दर्शन' शब्दका अर्थ सामान्य अवलोकनमात्र न ग्रहण करना। जातैं चक्षु अचक्षु दर्शनकरि सामान्य अवलोकन तो सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टिकै समान होय है, किछु याकरि मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति अप्रवृत्ति होती नाहीं। बहुरि श्रद्धान हो है सो सम्यग्दृष्टिहीकै हो है, याकरि मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति हो है। तातैं 'दर्शन' शब्दका अर्थ भी यहाँ श्रद्धानमात्र ही ग्रहण करना।

बहुरि प्रश्न—यहाँ विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धान करना कह्या, सो प्रयोजन कहा ?

ताका समाधान—अभिनिवेशनाम अभिप्रायका है। सो जैसा तत्वार्थश्रद्धानका अभिप्राय है तैसा न होय, अन्यथा अभिप्राय होय, ताका नाम विपरीताभिनिवेश है। सो तत्वार्थश्रद्धान करनेंका अभिप्राय केवल तिनिका निश्चय करना मात्र ही नाहीं है। तहाँ अभिप्राय ऐसा है—जीव अजीवकों पहचानि आपकों वा परकों जैसाका तैसा मानें। बहुरि आस्रवकों पहचानि ताकों हेय मानें। बहुरि बंधकों पहचानि ताकों अहित मानें। बहुरि संवरकों पहचानि ताकों उपादेय मानें। बहुरि निर्जराकों पहचानि ताकों हितका कारण मानें। बहुरि

मोक्षकों पहचानि ताकों अपना परम हित मानैं। ऐसैं तत्वार्थश्रद्धा..का अभिप्राय है। तिसतें उलटा अभिप्रायका नाम विपरीताभिनिवेश है। सो सांचा तत्वार्थश्रद्धान भए याका अभाव होय। तातें तत्वार्थश्रद्धान है सो विपरीताभिनिवेशरहित है, ऐसा यहाँ कहा है।

अथवा काहूकै अभास मात्र तत्वार्थश्रद्धान होय है परन्तु अभिप्राय-विषैं विपरीतपनों नाहीं छूटै है। कोई प्रकारकरि पूर्वोक्त अभिप्रायतें अन्यथा अभिप्राय अन्तरंगविषैं पाइए है तो वाकै सम्यग्दर्शन न होय। जैसें द्रव्यलिंगी मुनि जिनवचननितें तत्वनिकी प्रतीति करै परन्तु शरीराश्रित क्रियानिविषै अहंकार वा पुण्यास्रवविषें उपादेयपनों इत्यादि विपरीत अभिप्रायतें मिथ्यादृष्टी ही रहै है। तातैं जो तत्वार्थ-श्रद्धान विपरीताभिनिवेश रहित है सोई सम्यग्दर्शन है। ऐसैं विपरीता-भिनिवेश रहित जीवादि तत्वार्थनिका श्रद्धानपना सो सम्यग्दर्शनका लक्षण है। सम्यग्दर्शन लक्ष्य है। सोइ तत्वार्थसूत्रविषैं कह्या है— "**तत्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥१-२॥**" तत्वार्थनिका श्रद्धान सोई सम्यग्दर्शन है। बहुरि सर्वार्थसिद्धि नाम सूत्रनिकी टीका है, तिसविषैं तत्वादिक पदनिका अर्थ प्रगट लिख्या है वा सात ही तत्व कैसें कहे सो प्रयोजन लिख्या है, ताका अनुसारते यहाँ किछू कथन किया है ऐसा जानना।

बहुरि पुरुषार्थसिद्धयुपाय विषै भी ऐसैं ही कह्या है—

जीवाजीवादीनां तत्वार्थानां सदैव कर्त्तव्यम्।
श्रद्धानं विपरीताभिनिवेशविविक्तमात्मरूपं तत् ॥२२॥

याका अर्थ—विपरीताभिनिवेशकरि रहित जीव अजीव आदि

तत्वार्थनिका श्रद्धान सदाकाल करना योग्य है। सो यहु श्रद्धान आत्माका स्वरूप है। दर्शनमोह उपाधि दूर भए प्रगट हो है, तातैं आत्माका स्वभाव है। चतुर्थादि गुणस्थानविषैं प्रगट हो है। पीछें सिद्ध अवस्थाविषैं भी सदाकाल याका सद्भाव रहै है, ऐसा जानना।

तत्वार्थ श्रद्धान लक्षण में अव्याप्ति–अतिव्याप्ति–असंभव दोष का परिहार

यहाँ प्रश्न उपजै है—जो तिर्यंचादि तुच्छज्ञानी केई जीव सात तत्वनिका नाम भी न जानि सकैं, तिनिकैं भी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति शास्त्रविषैं कही है। तातैं तत्वार्थश्रद्धानपना तुम सम्यक्त्वका लक्षण कह्या, तिसविषैं अव्याप्तिदूषण लागै है।

ताका समाधान—जीव अजीवादिकका नामादिक जानो वा मति जानो वा अन्यथा जानो, उनका स्वरूप यथार्थ पहिचानि श्रद्धान किए सम्यक्त्व हो है। तहा कोई सामान्यपने स्वरूप पहिचानि श्रद्धान करै, कोई विशेषपने स्वरूप पहिचानि श्रद्धान करै। तातैं तुच्छज्ञानी तिर्यंचादिक सम्यग्दृष्टी हैं सो जीवादिकका नाम भी न जानै हैं, तथापि उनका सामान्यपनें स्वरूप पहिचानि श्रद्धान करै हैं। तातैं उनकै सम्यक्त्वकी प्राप्ति हो है। जैसे कोई तिर्यंच अपना वा औरनिका नामादिक तो नाहीं जानै परन्तु आपही विषै आपो मानै है औरनिको पर मानै है। तैसे तुच्छज्ञानी जीव अजीवका नाम न जानै परन्तु जो ज्ञानादिस्वरूप आत्मा है तिसविषै तो आपो मानै है अर जो शरीरादि है तिनको पर मानै है—ऐसा श्रद्धान वाकै हो है, सो ही जीव अजीवका श्रद्धान है। बहुरि जैसे सोई तिर्यंच सुखादिकका नामादिक

न जानैं है, तथापि सुख अवस्थाको पहिचानि ताके अर्थि आगामी दुःख का कारणकों पहिचानि ताका त्यागको किया चाहै है। बहुरि जो दुःख का कारण बनि रह्या है, ताके अभावका उपाय करै है। तैसें तुच्छज्ञानी मोक्षादिकका नाम न जानैं, तथापि सर्वथा सुखरूप मोक्षअवस्थाकों श्रद्धान करता ताके अर्थि आगामी बंधका कारण रागादिक आस्रव ताका त्यागरूप संवरको किया चाहै है। बहुरि जो संसार दुःखका कारण है, ताकी शुद्धभावकरि निर्जरा किया चाहै है। ऐसें आस्रवादिकका वाकै श्रद्धान है। या प्रकार वाकै भी सप्ततत्त्वका श्रद्धान पाइए है। जो ऐसा श्रद्धान न होय, तो रागादि त्यागि शुद्ध भाव करनेकी चाह न होय। सोइ कहिए है :—

जो जीव अजीवकी जाति न जानि आपापरको न पहिचानै तो परविषै रागादिक कैसे न करै ? रागादिकको न पहिचानै तो तिनिका त्याग कैसे किया चाहै। सो रागादिक ही आस्रव है। रागादिकका फल बुरा न जानै तो काहे को रागादिक छोड्या चाहै। सो रागादिकका फल सोई बंध है। बहुरि रागादि रहित परिणामकों पहिचानै है तो तिसरूप हुवा चाहै है। सो रागादिरहित परिणामका ही नाम संवर है। बहुरि पूर्व संसार अवस्थाका कारण की हानिकों पहिचानै है तो ताके अर्थि तपश्चरणादिकरि शुद्धभाव किया चाहै है। सो पूर्व संसार अवस्थाका कारण कर्म है, ताकी हानि सोई निर्जरा है। बहुरि संसार अवस्था का अभावको न पहिचानै तो संवर निर्जरारूप काहेको प्रवर्त्तै। सो संसार अवस्थाका अभाव सो ही मोक्ष है। तातै साता तत्त्वनिका श्रद्धान भए ही रागादिक छोडि शुद्ध भाव होनेकी

इच्छा उपजै है। जो इनविषैं एक भी तत्वका श्रद्धान न होय तो ऐसी चाह न उपजै। बहुरि ऐसी चाह तुच्छज्ञानी तिर्यंचादि सम्यग्दृष्टीकै होय ही है। तातैं वाकै सप्त तत्वनिका श्रद्धान पाइए है, ऐसा निश्चय करना। ज्ञानावरणका क्षयोपशम थोरा होतें विशेषपनें तत्वनिका ज्ञान न होवै, तथापि दर्शनमोहका उपशमादिकतें सामान्यपनें तत्व-श्रद्धानकी शक्ति प्रगट हो है। ऐसें इस लक्षणविषैं अव्याप्ति दूषण नाहीं है।

बहुरि प्रश्न—जिसकालविषैं सम्यग्दृष्टी विषयकषायनिके कार्यविषैं प्रवर्त्तै है तिसकालविषैं सप्त तत्वनिका विचार ही नाही, तहाँ श्रद्धान कैसे सम्भवै? अर सम्यक्त्व रहै ही है, तातैं तिस लक्षणविषैं अव्याप्ति दूषण आवै है।

ताका समाधान—विचार है, सो तो उपयोग के आधीन है। जहाँ उपयोग लागै, तिसहीका विचार हो है। बहुरि श्रद्धान है, सो प्रतीतिरूप है। तातैं अन्य ज्ञयका विचार होते वा सोवना आदि क्रिया होतें तत्वनिका विचार नाही, तथापि तिनकी प्रतीति बनी रहै है, नष्ट न हो है। तातैं वाकै सम्यक्त्वका सद्भाव है। जैसें कोई रोगी मनुष्यकै ऐसी प्रतीति है—मैं मनुष्य हूँ, तिर्यंचादि नाही हू। मेरै इस कारणतैं रोग भया है सो अब कारण मेटि रोगको घटाय निरोग होना। बहुरि वो ही मनुष्य अन्य विचारादिरूप प्रवर्त्तै है, तब वाकै ऐसा विचार न हो है परन्तु श्रद्धान ऐसा ही रह्या करै है। तैसें इस आत्माकै ऐसी प्रतीति है—मैं आत्मा हूँ, पुद्गलादि नाही हूँ, मेरै

आस्रवतें बन्ध भया है, सो अब संवरकरि निर्जराकरि मोक्षरूप होना। बहुरि सोई आत्मा अन्यविचारादिरूप प्रवर्त्ते है, तब वाकै ऐसा विचार न हो है परन्तु श्रद्धान ऐसा ही रह्या करै है।

बहुरि प्रश्न—जो ऐसा श्रद्धान रहै है, तो बंध होनेके कारणनिविषै कैसें प्रवर्त्तै है ?

ताका उत्तर—जैसे सोई मनुष्य कोई कारणके वशतें रोग बधने के कारणनिविषै भी प्रवर्त्तै है, व्यापारादिक कार्य वा क्रोधादिक कार्य करै है तथापि तिस श्रद्धानका वाकै नाश न हो है। तैसे सोई आत्मा कर्म उदय निमित्तके वशतें बन्ध होनेके कारणनिविषै भी प्रवर्त्तै है, विषयसेवनादि कार्य वा क्रोधादि कार्य करै है, तथापि तिस श्रद्धानका वाकै नाश न हो है। इसका विशेष निर्णय आगे करेंगे। ऐसैं सप्ततत्व का विचार न होते भी श्रद्धानका सद्भाव पाइए है तातैं तहाँ अव्याप्तिपना नाही है।

बहुरि प्रश्न—ऊँची दशाविषै जहाँ निर्विकल्प आत्मानुभव हो है तहाँ तो सप्त तत्वादिकका विकल्प भी निषेध किया है। सो सम्यक्त्व के लक्षणका निषेध करना कैसे सम्भवै ? अर तहाँ निषेध सम्भवै है तो अव्याप्ति दूषण आया।

ताका उत्तर—नीचली दशाविषै सप्ततत्वनिके विकल्पनिविषै उपयोग लगाया, ताकरि प्रतीतिको दृढ कीन्ही अर विषयादिकतें उपयोग छुड़ाय रागादि घटाया। बहुरि कार्य सिद्ध भए कारणनिका भी निषेध कीजिए है। तातैं जहाँ प्रतीति भी दृढ भई अर रागादिक दूर भए

तहाँ उपयोग भ्रमावनेंका खेद काहेकों करिए। तातैं तहाँ तिन विकल्पनिका निषेध किया है। बहुरि सम्यक्त्वका लक्षण तो प्रतीति ही है। सो प्रतीतिका तो निषेध न किया। जो प्रतीति छुड़ाई होय, तो इस लक्षणका निषेध किया कहिए। सो तो है नाहीं। सातों तत्वनिकी प्रतीति तहाँ भी बनी रहै है। तातैं यहाँ अव्याप्तिपना नाहीं है।

बहुरि प्रश्न—जो छद्मस्थकै तो प्रतीति अप्रतीति कहना सम्भवै, तातैं तहां सप्ततत्वनिकी प्रतीति सम्यक्त्वका लक्षण कह्या सो हम मान्या परन्तु केवली सिद्ध भगवानकै तो सर्वका जानपना समानरूप है, तहाँ सप्ततत्वनिकी प्रतीति कहना सम्भवै नाहीं अर तिनकै सम्यक्त्व गुण पाइए ही है, तातैं तहाँ तिस लक्षणविषैं अव्याप्तिपना आया।

ताका समाधान—जैसें छद्मस्थकै श्रुतज्ञानके अनुसार प्रतीति पाइए है, तैसें केवली सिद्धभगवान्कै केवलज्ञानके अनुसार प्रतीति पाइए है। जो सप्त तत्वनिका स्वरूप पहलैं ठीक किया था, सो ही केवलज्ञानकरि जान्या। तहाँ प्रतीतिको परम अवगाढ़पनो भयो। याहीतें परमअवगाढ़ सम्यक्त्व कह्या। जो पूर्वै श्रद्धान किया था, ताको झूठ जान्या होता तो तहाँ अप्रतीति होती। सो तो जैसा सप्त तत्वनिका श्रद्धान छद्मस्थकै भया था, तैसा ही केवली सिद्धभगवान्कै पाइए है तातैं ज्ञानादिककी हीनता अधिकता होतें भी तिर्यंचादिक वा केवली सिद्ध भगवान् तिनकै सम्यक्त्व गुण समान ही कह्या। बहुरि पूर्वअवस्थाविषैं यहु मानैं थे—संवर निर्जराकरि मोक्षका उपाय करना। पीछें मुक्त अवस्था भए ऐसें मानने लगे, जो संवर निर्जराकरि हमारै मोक्ष भई। बहुरि पूर्वै ज्ञानकी हीनताकरि जीवादिकके थोड़े विशेष

जानें था, पीछें केवलज्ञान भए तिनके सर्वविशेष जानें परन्तु मूलभूत जीवादिकके स्वरूपका श्रद्धान जैसा छद्मस्थकै पाइए है तैसा ही केवली कै पाइए है। बहुरि यद्यपि केवली सिद्ध भगवान् अन्यपदार्थनिकों भी प्रतीति लिए जानें है तथापि ते पदार्थ प्रयोजनभूत नाहीं। तातैं सम्यक्त्वगुणविषैं सप्त तत्वनिहीका श्रद्धान ग्रहण किया है। केवली सिद्ध भगवान् रागादिरूप न परिणमैं हैं, संसार अवस्थाको न चाहैं हैं। सो यह इस श्रद्धानका बल जानना।

बहुरि प्रश्न—जो सम्यग्दर्शन को तो मोक्ष मार्ग कह्या था, मोक्ष विषै याका सद्भाव कैसें कहिए है ?

ताका उत्तर—कोई कारण ऐसा भी हो है, जो कार्य सिद्ध भए भी नष्ट न होय। जैसे काहू वृक्षकै कोई एक शाखाकरि अनेक शाखायुक्त अवस्था भई, तिसकों होतें वह शाखा नष्ट न हो है तैसे काहू आत्माकै सम्यक्त्व गुणकरि अनेकगुणयुक्त मुक्त अवस्था भई, ताकों होते सम्यक्त्व गुण नष्ट न हो है। ऐसें केवली सिद्धभगवानकै भी तत्वार्थश्रद्धान लक्षण ही पाइए है तातैं यहाँ अव्याप्तिपनों नाहीं है।

बहुरि प्रश्न—मिथ्यादृष्टीकै भी तत्वश्रद्धान हो है, ऐसा शास्त्रविषै निरूपण है। प्रवचनसारविषै आत्मज्ञानशून्य तत्वार्थश्रद्धान अकार्यकारी कह्या है। तातैं सम्यक्त्वका लक्षण तत्वार्थश्रद्धान कह्या है, तिस विषै अतिव्याप्ति दूषण लागै है।

ताका समाधान—मिथ्यादृष्टीकै जो तत्वश्रद्धान कह्या है, सो

नामनिक्षेपकरि कह्या है। जामैं तत्वश्रद्धानका गुण नाहीं अर व्यवहारविषै जाका नाम तत्वश्रद्धान कहिए सो मिथ्यादृष्टीकें हो है अथवा आगमद्रव्य निक्षेपकरि हो है। तत्वार्थश्रद्धानके प्रतिपादक शास्त्रनिको अभ्यासै है, तिनिका स्वरूप निश्चय करनेंविषैं उपयोग नाहीं लगावै है, ऐसा जानना। बहुरि यहाँ सम्यक्त्वका लक्षण तत्वार्थ श्रद्धान कह्या है सो भाव निक्षेपकरि कह्या है। सो गुणसहित सांचा तत्वार्थश्रद्धान मिथ्यादृष्टीकै कदाचित् न होय। बहुरि आत्मज्ञानशून्य तत्वार्थश्रद्धान कह्या है, तहाँ भी सोई अर्थ जानना। सांचा जीव अजीवादिकका जाकै श्रद्धान होय, ताकै आत्मज्ञान कैसें न होय ? होय ही होय। ऐसें कोई ही मिथ्यादृष्टीकै साँचा तत्त्वार्थश्रद्धान सर्वथा न पाईए है, तातैं तिस लक्षणविषैं अतिव्याप्ति दूषण न लागै है।

बहुरि जो यहु तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षण कह्या, सो असम्भवी भी नाही है। जातैं सम्यक्त्वका प्रतिपक्षी मिथ्यात्व—यहु नाही है, वाका लक्षण इसतैं विपरीतता लिए है।

ऐसै अव्याप्ति अतिव्याप्ति असम्भविपनाकरि रहित सर्व सम्यग्दृष्टीनिविषै तो पाइए अर कोई मिथ्यादृष्टिविषैं न पाईए ऐसा सम्यग्दर्शनका सांचा लक्षण तत्वार्थश्रद्धान है।

बहुरि प्रश्न उपजै है— जो यहाँ सातों तत्वनिके श्रद्धानका नियम कहो हो सो बनै नाहीं, जातै कहीं परतैं भिन्न आपका श्रद्धानहीकों सम्यक्त्व कहै हैं। समयसारविषै[1] **'एकत्वे नियतस्य'** इत्यादि कलशा

1 एकत्वे नियतस्य शुद्धनयतो व्याप्तुयदस्यात्मनः।
पूर्णज्ञानघनस्यदर्शनमिह द्रव्यान्तरेभ्यः पृथक्॥

(लिखा) है, तिसविषैं ऐसा कह्या है—जो इस आत्माका परद्रव्यतैं भिन्न अवलोकन सो ही नियमतं सम्यग्दर्शन है। तातैं नव तत्वकी संतति को छोड़ि हमारं यहु एक आत्मा ही होहु। बहुरि कहीं एक आत्माके निश्चयहीको सम्यक्त्व कहै हैं । पुरुषार्थसिद्ध्युपायविषैं [1] 'दर्शन-मात्मविनिश्चितिः' ऐसा पद है। सो याका यहु ही अर्थ है। तातैं जीव अजीव हीका वा केवल जीवहीका श्रद्धान भए सम्यक्त्व हो है। सातोंका श्रद्धानका नियम होता तो ऐसा काहेकों लिखते।

ताका समाधान—परतैं भिन्न आपका श्रद्धान हो है, सो आस्रवादिकका श्रद्धान करि रहित हो है कि सहित हो है। जो रहित हो है, तो मोक्षका श्रद्धान बिना किस प्रयोजनके अर्थि ऐसा उपाय करै है। संवर निर्जराका श्रद्धान बिना रागादिकरहित होय स्वरूपविषैं उपयोग लगावनेका काहेकों उद्यम राखै है। आस्रव बंधका श्रद्धान बिना पूर्व अवस्थाको काहेकों छांड़ै है। तातैं आस्रवादिकका श्रद्धानरहित आपा-परका श्रद्धान करना सम्भवै नाहीं। बहुरि जो आस्रवादिकका श्रद्धान सहित हो है, तो स्वयमेव ही सातों तत्वनिके श्रद्धानका नियम भया। बहुरि केवल आत्माका निश्चय है, सो परका पररूप श्रद्धान भए बिना आत्माका श्रद्धान न होय, तातैं अजीवका श्रद्धान भए ही जीवका श्रद्धान होय। बहुरि ताकै पूर्ववत् आस्रवादिकका भी श्रद्धान

सम्यग्दर्शनमेतदेव नियमादात्मा च तावानयम् ।
तन्मुक्त्वा नवतत्वसन्ततिमिमामात्मायमेकोऽस्तु नः ।। जीवाजीव०
अ० कलशा ६।।

1 दर्शनमात्मविनिश्चतिरात्मपरिज्ञानमिष्यते बोध. ।
स्थितिरात्मनि चारित्रं कुत एतेभ्यो भवति बन्धः ।। पु० सि० २१६ ।।

होय ही होय। तातें यहाँ भी सातो तत्वनिके ही श्रद्धानका नियम जानना। बहुरि आस्रवादिकका श्रद्धान विना आपापरका श्रद्धान वा केवल आत्माका श्रद्धान साँचा होता नाही। जातैं आत्मा द्रव्य है, सो तो शुद्ध अशुद्ध पर्याय लिए है। जैसे तन्तु अवलोकन बिना पटका अवलोकन न होय, तैसें शुद्ध अशुद्ध पर्याय पहिचाने बिना आत्मद्रव्य का श्रद्धान न होय। सो शुद्ध अशुद्ध अवस्थाकी पहिचानि आस्रवादिक की पहिचानतें हो है। बहुरि आस्रवादिकका श्रद्धान बिना आपापरका श्रद्धान वा केवल आत्माका श्रद्धान कार्यकारी भी नाही। जातें श्रद्धान करो वा मति करो, आप है सो आप है ही, पर है सो पर है। बहुरि आस्रवादिकका श्रद्धान होय, तो आस्रवबधका अभावकरिसवर निर्जरारूप उपायतें मोक्षपदको पावै। बहुरि जो आपापरका भी श्रद्धान कराइए है, सो तिस ही प्रयोजनके अर्थि कराइए है। तातैं आस्रवादिकका श्रद्धानसहित आपापरका जानना वा आपका जानना कार्यकारी है।

यहाँ प्रश्न—जो ऐसे है, तो शास्त्रनिविषे आपापरका श्रद्धान वा केवल आत्माका श्रद्धानहीको सम्यक्त्व कह्या वा कार्यकारी कह्या। बहुरि नव तत्वकी सन्तति छोडि हमारे एक आत्मा ही होहु, ऐसा कह्या। सो कैसे कह्या ?

ताका समाधान—जाकै साचा आपापरका श्रद्धान वा आत्मा का श्रद्धान होय, ताकै सातो तत्वनिका श्रद्धान होय ही होय। बहुरि जाकै साचा सात तत्वनिका श्रद्धान होय, ताकै आपापर का वा आत्मा का श्रद्धान होय ही होय। ऐसा परस्पर अविनाभावीपना जानि

आपापरका श्रद्धानकों या आत्मश्रद्धान हो कों सम्यक्त्व कह्या। बहुरि इस छलकरि कोई सामान्यपनें आपापरको जानि वा आत्माकों जानि कृतकृत्यपनों माने, तो वाकै भ्रम है। जातें ऐसा कह्या है—'निर्विशेषं हि सामान्यं भवेत्खरविषाणवत्'। याका अर्थ यहु—जो विशेषरहित सामान्य है सो गधेके सींग समान है। तातैं प्रयोजन-भूत आस्रवादिक विशेषनिसहित आपापरका वा आत्माका श्रद्धान करना योग्य है। अथवा सातों तत्वार्थनिका श्रद्धानकरि रागादिक मेटनेके अर्थि परद्रव्यनिकों भिन्न भावै है वा अपने आत्माहीकों भावै है, ताकै प्रयोजन की सिद्धि हो है। तातैं मुख्यताकरि भेदविज्ञानकों वा आत्मज्ञानकों कार्यकारी कह्या है। बहुरि तत्वार्थश्रद्धान किए बिना सर्व जानना कार्यकारी नाहीं। जातें प्रयोजनतो रागादिक मेटनेका है, सो आस्रवादिकका श्रद्धानविना यह प्रयोजन भासै नाहीं। तब केवल जाननेहीतें मानकों बधावै, रागादिक छांड़ै नाहीं, तब वाका कार्य कैसें सिद्धि होय। बहुरि नव तत्वसततिका छोड़ना कह्या है। सो पूर्वे नवतत्वके विचार करि सम्यग्दर्शन भया, पीछें निर्विकल्पदशा होने के अर्थि नवतत्वनिका भी विकल्प छोड़नेकी चाह करी। बहुरि जाकै पहिले ही नवतत्वनिका विचार नाही, ताकै तिस विकल्प छोड़नेका कहा प्रयोजन है। अन्य अनेक विकल्प आपकै पाइए है, तिनहीका त्याग करो। ऐसें आपापरका श्रद्धानविषैं वा आत्मश्रद्धानविषैं सप्त-तत्वका श्रद्धानकी सापेक्षा पाइए है, तातैं तत्वार्थश्रद्धान सम्यक्त्वका लक्षण है।

बहुरि प्रश्न—जो कहीं शास्त्रनिविषैं अरहन्तदेव निर्ग्रन्थ गुरु हिंसा-

रहित धर्मका श्रद्धानको सम्यक्त्व कह्या है, सो कैसें है ?

ताका समाधान—अरहंत देवादिकका श्रद्धानतें कुदेवादिकका श्रद्धान दूरि होनेकरि गृहीत मिथ्यात्वका अभाव हो है। तिस अपेक्षा याकों सम्यक्त्व कह्या है। सर्वथा सम्यक्त्वका लक्षण यहु नाहीं। जातें द्रव्यलिंगी मुनि आदि व्यवहार धर्मके धारक मिथ्यादृष्टी तिनिकै भी ऐसा श्रद्धान हो है। अथवा जैसें अणुव्रत महाव्रत होतें तो देशचारित्र सकलचारित्र होय वा न होय परन्तु अणुव्रत महाव्रत भए विना देशचारित्र सकलचारित्र कदाचित् न होय। तातैं इनि व्रतनिकों अन्वयरूप कारण जानि कारणविषैं कार्यका उपचारकरि इनकों चारित्र कह्या। तैसें अरहन्त देवादिकका श्रद्धान होतें तो सम्यक्त्व होय वा न होय परन्तु अरहन्तादिकका श्रद्धान भए विना तत्वार्थश्रद्धानरूप सम्यक्त्व कदाचित् न होय। तातैं अरहन्तादिकके श्रद्धानकों अन्वयरूप कारण जानि कारणविषैं कार्यका उपचारकरि इस श्रद्धानकों सम्यक्त्व कह्या है। याहीतें याका नाम व्यवहारसम्यक्त्व है। अथवा जाकै तत्वार्थश्रद्धान होय, ताकै सांचा अरहन्तादिकके स्वरूपका श्रद्धान होय ही होय। तत्वार्थश्रद्धान विना पक्षकरि अरहन्तादिकका श्रद्धान करै परन्तु यथावत् स्वरूपकी पहिचानलिए श्रद्धान होय नाहीं। बहुरि जाकै साँचा अरहन्तादिकके स्वरूपका श्रद्धान होय, ताकै तत्वश्रद्धान होय ही होय। जातें अरहन्तादिकका स्वरूप पहिचानें जीव अजीव आस्रवादिकको पहिचान हो है। ऐसें इनकों परस्पर अविनाभावी जानि कहीं अरहन्तादिकके श्रद्धानकों सम्यक्त्व कह्या है।

यहाँ प्रश्न—जो नारकादिक जीवनिकै देवकुदेवादिकका व्यवहार नाही अर तिनिकै सम्यक्त्व पाइए है, तातै सम्यक्त्व होतैं अरहंतादिकका श्रद्धान होय ही होय, ऐसा नियम सम्भवै नाहीं ?

ताका समाधान—सप्त तत्वनिका श्रद्धानविषै अरहंतादिकका श्रद्धान गर्भित है। जातै तत्वश्रद्धानविषै मोक्षतत्वकौं सर्वोत्कृष्ट मानै है। सो मोक्षतत्व तो अरहत सिद्धका लक्षण है। जो लक्षणको उत्कृष्ट मानै सो ताके लक्ष्यको उत्कृष्ट मानै ही मानै। तातै उनको भी सर्वोत्कृष्ट मान्या औरको न मान्या, सो ही देवका श्रद्धान भया। बहुरि मोक्षके कारण सवर निर्जरा हैं, तातै इनको भी उत्कृष्ट मानै हैं। सो सवर निर्जराके धारक मुख्यपने मुनि हैं। तातै मुनिको उत्तम मान्या, औरको न मान्या, सो ही गुरुका श्रद्धान भया। बहुरि रागादिकरहित भावका नाम अहिंसा है, ताहीको उपादेय मानै है, औरको न मानै है, सोई धर्मका श्रद्धान भया। ऐसे तत्वश्रद्धानविषै गर्भित अरहतदेवादिकका भी श्रद्धान हो है। अथवा जिस निमित्ततै याकै तत्वार्थ श्रद्धान हो है तिस निमित्तत अरहतदेवादिकका भी श्रद्धान हो है। तातैं सम्यक्त्वविषै देवादिकके श्रद्धानका नियम है।

बहुरि प्रश्न—जो केई जीव अरहतादिकका श्रद्धान करै है, तिनिके गुण पहिचानै है अर उनक तत्वश्रद्धानरूप सम्यक्त्व न हो है। तातैं जाकै साचा अरहतादिकका श्रद्धान होय, ताकै तत्वश्रद्धान होय ही होय ऐसा नियम सम्भवै नाही ?

ताका समाधान—तत्वश्रद्धान विना अरहतादिकके छियालीस आदि गुण जानै है सो पर्यायाश्रित गुण जानै है परन्तु जुदा जुदा जीव

पुद्गलविषैं जैसैं सम्भवै तैसैं यथार्थ नाहीं पहिचानै है। तातैं सांचा श्रद्धान भी न होय। जातैं जीव अजीवकी जाति पहिचाने बिना अरहंतादिकके आत्माश्रित गुणनिकों वा शरीराश्रित गुणनिकों भिन्न भिन्न न जानैं। जो जाने तो अपने आत्माकों परद्रव्यतैं भिन्न कैसैं न मानै ? तातैं प्रवचनसारविषैं ऐसा कह्या है :—

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं ।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं ॥८०॥

याका अर्थ यहु—जो अरहंतको द्रव्यत्व गुणत्व पर्यायत्वकरि जानै है, सो आत्माकों जानै है। ताका मोह विलयको प्राप्त हो है। तातैं जाकै जीवादिक तत्वनिका श्रद्धान नाहीं, ताकै अरहंतादिकका भी साचा श्रद्धान नाहीं। बहुरि मोक्षादिक तत्वका श्रद्धानबिना अरहंतादिकका माहात्म्य यथार्थ न जानैं। लौकिक अतिशयादिककरि अरहंतका, तपश्चरणादिकरि गुरुका अर परजीवनिकी अहिंसादिकरि धर्मकी महिमा जानैं, सो ए पराश्रित भाव हैं। बहुरि आत्माश्रित भावनिकरि अरहंतादिकका स्वरूप तत्वश्रद्धान भए ही जानिए है। तातैं जाकै साचा अरहंतादिकका श्रद्धान होय, ताकै तत्वश्रद्धान होय ही होय, ऐसा नियम जानना। या प्रकार सम्यक्त्वका लक्षणनिर्देश किया।

यहाँ प्रश्न—जो सांचा तत्वार्थश्रद्धान वा आपापरका श्रद्धान वा आत्मश्रद्धान वा देवगुरुधर्मका श्रद्धान सम्यक्त्वका लक्षण कह्या। बहुरि इन सर्व लक्षणनिकी परस्पर एकता भी दिखाई सो जानी। परन्तु अन्य अन्य प्रकार लक्षण कहनेका प्रयोजन कहा ?

ताका उत्तर—ए चारि लक्षण कहे, तिनिविषैं सांची दृष्टिकरि एक लक्षण ग्रहण किए चारयों लक्षणका ग्रहण हो है। तथापि मुख्य प्रयोजन जुदा जुदा विचारि अन्य अन्य प्रकार लक्षण कहे हैं। जहाँ तत्वार्थश्रद्धान लक्षण कह्या है, तहाँ तो यहु प्रयोजन है जो इन तत्वनिकों पहिचानै तो यथार्थ वस्तुके स्वरूपका वा अपने हित अहितका श्रद्धान करै तब मोक्षमार्गविषै प्रवर्त्तै। बहुरि जहाँ आपापरका भिन्न श्रद्धान लक्षण कह्या है, तहाँ तत्वार्थ श्रद्धानका प्रयोजन जाकरि सिद्ध होय, तिस श्रद्धानकों मुख्य लक्षण कह्या है। जीव अजीवके श्रद्धानका प्रयोजन आपापरका भिन्न श्रद्धान करना है। बहुरि आस्रवादिकके श्रद्धानका प्रयोजन रागादिक छोड़ना है सो आपापरका भिन्न श्रद्धान भए परद्रव्यविषैं रागादि न करनेका श्रद्धान हो है। ऐसे तत्वार्थ श्रद्धान का प्रयोजन आपापरका भिन्न श्रद्धानतें सिद्ध होता जानि इस लक्षणकों कहा है। बहुरि जहाँ आत्मश्रद्धान लक्षण कह्या है, तहाँ आपापरका भिन्नश्रद्धानका प्रयोजन इतना ही है—आपकों आप जानना। आपकों आप जानें परका भी विकल्प कार्यकारी नाहीं। ऐसा मूलभूत प्रयोजनकी प्रधानता जानि आत्मश्रद्धानकों मुख्य लक्षण कह्या है। बहुरि जहाँ देवगुरुधर्मका श्रद्धान लक्षण कह्या है, तहाँ बाह्य साधनकी प्रधानता करी है। जातें अरहन्तदेवादिकका श्रद्धान सांचा तत्वार्थश्रद्धानकों कारण है अर कुदेवादिकका श्रद्धान कल्पत तत्वश्रद्धानकों कारण है। सो बाह्य कारणकी प्रधानताकरि कुदेवादिकका श्रद्धान छुडाय सुदेवादिकका श्रद्धान करावनेंके अर्थि देवगुरुधर्मका श्रद्धानकों मुख्यलक्षण कह्या है। ऐसें जुदे २ प्रयोजननिकी मुख्यता

करि जुदे जुदे लक्षण कहे हैं।

इहां प्रश्न—जो ए चारि लक्षण कहे, तिनविषैं यहु जीव किस लक्षणकों अंगीकार करै ?

ताका समाधान—मिथ्यात्वकर्मका उपशमादि होतें विपरीताभिनिवेशका अभाव हो है। तहाँ च्यारों लक्षण युगपत् पाइए हैं। बहुरि विचार अपेक्षा मुख्यपनै तत्त्वार्थनिकों विचारै है। कै आपापरका भेद विज्ञान करै है। कै आत्मस्वरूपहीकों सम्भारै है। कै देवादिकका स्वरूप विचारै है। ऐसैं ज्ञानविषैं तो नाना प्रकार विचार होय परन्तु श्रद्धानविषैं सर्वत्र परस्पर सापेक्षपनों पाइए है। तत्वविचार करै है तो भेदविज्ञानादिकका अभिप्राय लिए करै है अर भेदविज्ञान करै है तो तत्वविचार आदिकका अभिप्राय लिए करै है। ऐसैं ही अन्यत्र भी परस्पर सापेक्षपणों है। तातैं सम्यग्दृष्टीके श्रद्धानविषै च्यारों ही लक्षणनिका अंगीकार है। बहुरि जाकै मिथ्यात्व का उदय है ताकै विपरीताभिनिवेश पाइए है। ताकै ए लक्षण आभास मात्र होंय, साँचे न होंय। जिनमतके जीवादिकतत्वनिकों मानै, और को न मानै, तिनके नाम भेदादिककों सीखै है, ऐसै तत्त्वार्थश्रद्धान होय परन्तु तिनिका यथार्थ भावका श्रद्धान न होय। बहुरि आपापरका भिन्नपनाकी बातैं करै अर वस्त्रादिकविषै परबुद्धिकों चितवन करै परन्तु जैसें पर्यायविषै अहंबुद्धि है अर वस्त्रादिकविषै परबुद्धि है, तैसैं आत्माविषै अहंबुद्धि अर शरीरादि विषैं परबुद्धि न हो है। बहुरि आत्माकों जिनवचनानुसार चिन्तवै परन्तु प्रतीतिरूप आपकों आप श्रद्धान न करै है। बहुरि अरहन्तदेवादिक बिना और कुदेवादिकको न मानै परन्तु तिनके स्वरूपकों यथार्थ पहचानि श्रद्धान न करै, ऐसैं ए लक्षणाभास मिथ्यादृष्टीकै हो हैं।

इनविषें कोई होय, कोई न होय। तहाँ इनकै भी मिथ्यात्व ही सम्भवै है। बहुरि इन लक्षणाभासनिविषै इतना विशेष है जो पहिलें तो देवादिकका श्रद्धान होय, पीछें तत्वनिका विचार होय, पीछें आपापरका चिंतवन करै, पीछें केवल आत्माकौ चिन्तवै। इस अनुक्रमतें साधन करै तो परम्परा सांचा मोक्षमार्गको पाय कोई जीव सिद्धपदको भी पावै। बहुरि इस अनुक्रमका उल्लंघन करि जाकै देवादिककी मानिनेका तौ किछू ठीक नाहीं अर बुद्धिकी तीव्रतातें तत्वविचारादिकविषैं प्रवर्तै है तातें आपकौं ज्ञानी जानै हैं। अथवा तत्त्वविचारविषें भी उपयोग न लगावै है, आपापरका भेदविज्ञानी हुवा रहै है। अथवा आपापरका भी ठीक न करै है अर आपकों आत्मज्ञानी मानै है। सो ए सर्व चतुराईकी बातें हैं। मानादिक कषायके साधन हैं। किछू भी कार्यकारी नाहीं। तातैं जो जीव अपना भला किया चाहै, तिसकौं यावत सांचा सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति न होय, तावत् इनिको भी अनुक्रमहीतें अंगीकार करना। सोई कहिए है —

पहलैं तो आज्ञादिकरि वा कोई परीक्षाकरि कुदेवादिकका माननां छोड़ि अरहंतदेवादिकका श्रद्धान करना। जातैं इस श्रद्धान भए गृहीत-मिथ्यात्वका तो अभाव हो है। बहुरि मोक्षमार्गके विघ्न करनहारे कुदेवादिकका निमित्त दूरि हो है। मोक्षमार्गका सहाई अरहंतदेवादिकका निमित्त मिलै है। सो पहिले देवादिकका श्रद्धान करना। बहुरि पीछें जिनमतविषै कहे जीवादिक तत्वनिका विचार करना। नाम लक्षणादि सीखनें। जातैं इस अभ्यासतैं तत्वार्थ श्रद्धानकी प्राप्ति होय। बहुरि पीछें आपापरका भिन्नपना जैसें भासै तैसें विचार किया

करै। जातें इस अभ्यासतें भेदविज्ञान होय। बहुरि पीछें आपविषै आपो माननके अर्थि स्वरूपका विचार किया करै। जातें इस अभ्यास तैं आत्मानुभवकी प्राप्ति हो है। बहुरि ऐसे अनुक्रमतै इनको अंगीकार करि पीछै इनहीविषैं कबहू देवादिकका विचारविषैं कबहू तत्त्वविचार विषैं, कबहू आपापरका विचारविषैं, कबहू आत्मविचारविषैं उपयोग लगावै। ऐसैं अभ्यासते दर्शनमोह मन्द होता जाय तब कदाचित् साँचा सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होय बहुरि ऐसा नियम तो है नाही। कोई जीवकै कोई विपरीत कारण प्रबल बीचमें होय जाय, तो सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति नाही भी होय परन्तु मुख्यपनै घनें जीवनिकै तो इस अनुक्रमतै कार्यसिद्धि हो है। तातैं इनिको ऐसै अगीकार करनें। जैसे पुत्रका अर्थी विवाहादि कारणनिकों मिलावै, पीछें घनें पुरुषनिकै तो पुत्रकी प्राप्ति होय ही है। काहूकै न होय तो न होय। याको तो उपाय करना। तैसे सम्यक्त्वका अर्थी इनि कारणनिको मिलावै पीछें घनें जीवनिकै तो सम्यक्त्वकी प्राप्ति होय ही है। काहूकै न होय तो नाही भी होय। परन्तु याको तो आपत बनै सो उपाय करना। ऐसैं सम्यक्त्वका लक्षण निर्देश किया।

यहाँ प्रश्न—जो सम्यक्त्वके लक्षण तो अनेक प्रकार कहे, तिनं विषैं तुम तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षणको मुख्य किया, सो कारण कहा ?

ताका समाधान—तुच्छबुद्धीनिकों अन्य लक्षणविषै प्रयोजन प्रगट भासै नाही वा भ्रम उपजै। अर इस तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षणविषै प्रगट प्रयोजन भासै, किछू भ्रम उपजै नाही। तातैं इस लक्षणको मुख्य किया है। सोई दिखाइए है —

देवगुरुधर्मका श्रद्धानविषैं तुच्छबुद्धीनिकों यहु भासै —अरहंतदेवादिककों मानना, औरकों न मानना, इतना ही सम्यक्त्व है। तहाँ जीव अजीवका वा बंधमोक्षके कारणकार्यका स्वरूप न भासै, तब मोक्षमार्ग प्रयोजनकी सिद्धि न होय वा जीवादिकका श्रद्धान भए विना इस ही श्रद्धानविषैं सन्तुष्ट होय आपकों सम्यक्त्वी मानै। एक कुदेवादिकतें द्वेष तो राखै, अन्य रागादि छोड़ने का उद्यम न करै, ऐसा भ्रम उपजै। बहुरि आपापरका श्रद्धानविषै तुच्छबुद्धीनिकों यहु भासै कि आपापरका ही जानना कार्यकारी है। इसतें ही सम्यक्त्व हो है। तहाँ आस्रवादिकका स्वरूप न भासै। तब मोक्षमार्ग प्रयोजनकी सिद्धि न होय वा आस्रवादिकका श्रद्धान भए विना इतना ही जाननेंविषै सन्तुष्ट होय आपकों सम्यक्त्वी मान स्वच्छन्द होय रागादि छोड़नेंका उद्यम न करै, ऐसा भ्रम उपजै। बहुरि आत्मश्रद्धानविषै तुच्छबुद्धीनिको यहु भासै कि आत्माहीका विचार कार्यकारी है। इसहीतें सम्यक्त्व हो है। तहाँ जीव अजीवादिकका विशेष वा आस्रवादिकका स्वरूप न भासै, तब मोक्षमार्ग प्रयोजनकी सिद्धि न होय वा जीवादिकका विशेष वा आस्रवादिकका स्वरूपका श्रद्धान भए विना इतना ही विचारतें आपकों सम्यक्त्वी मानें स्वच्छन्द होय रागादि छोडनेका उद्यम न करै। याकैं भी ऐसा भ्रम उपजै है। ऐसा जानि इन लक्षणनिकों मुख्य न किए। बहुरि तत्वार्थश्रद्धान लक्षणविषें जीव अजीवादिकका वा आस्रवादिकका श्रद्धान होय। तहाँ सर्वका स्वरूप नीके भासै, तब मोक्षमार्ग के प्रयोजनकी सिद्धि होय। बहुरि इस श्रद्धान भए सम्यक्त्व होय परन्तु यहु सन्तुष्ट न हो है। आस्रवादिकका श्रद्धान होनेतें रागादि

छोड़ि मोक्षका उद्यम राखे है। याकै भ्रम न उ-जे है। तातें तत्वार्थ श्रद्धान लक्षणकों मुख्य किया है। अथवा तत्वार्थश्रद्धान लक्षणविषैं तो देवादिकका श्रद्धान वा आपापरका श्रद्धान वा आत्मश्रद्धान गर्भित हो है सो तो तुच्छबुद्धीनिकों भी भासै। बहुरि अन्य लक्षणविषैं तत्वार्थश्रद्धानका गर्भितपनों विशेष बुद्धिमान होय, तिनहीकों भासै; तुच्छबुद्धीनिकों न भासै तातें तत्वार्थश्रद्धान लक्षणकों मुख्य किया है। अथवा मिथ्यादृष्टीकै आभास मात्र ए होंय। तहाँ तत्वार्थनिका विचार तो शीघ्रपने विपरीताभिनिवेश दूर करनेकों कारण हो है, अन्य लक्षण शीघ्र कारण नाहीं होय वा विपरीताभिनिवेशका भी कारण होय जाय। तातें यहाँ सर्वप्रकार प्रसिद्ध जानि **विपरीताभिनिवेश रहित जीवादि तत्वार्थनिका श्रद्धान सोही सम्यक्त्वका लक्षण है,** ऐसा निर्देश किया। ऐसे लक्षण निर्देशका निरूपण किया। ऐसा लक्षण जिस आत्माका स्वभावविषैं पाइए है, सो ही सम्यक्त्वी जानना।

सम्यक्त्वके भेद और उनका स्वरूप

अब इस सम्यक्त्वके भेद दिखाईए है, तहाँ प्रथम निश्चय व्यवहार का भेद दिखाईए है—विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धानरूप आत्माका परिणाम सो तो निश्चय सम्यक्त्व है, जातें यहु सत्यार्थ सम्यक्त्वका स्वरूप है। सत्यार्थहीका नाम निश्चय है। बहुरि विपरीताभिनिवेश रहित श्रद्धानकों कारणभूत श्रद्धान सो व्यवहार सम्यक्त्व है, जातें कारणविषै कार्यका उपचार किया है। सो उपचारही का नाम व्यव-

हार है। तहाँ सम्यग्दृष्टी जीवकै देवगुरुधर्मादिकका साँचा श्रद्धान है, तिसही निमित्ततै याकै श्रद्धानविषैं विपरीताभिनिवेशका अभाव है। सो यहाँ विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धान सो तो निश्चय सम्यक्त्व है अर देवगुरु धर्मादिकका श्रद्धान है सो यह व्यवहार सम्यक्त्व है। ऐसैं एक ही कालविषैं दोऊ सम्यक्त्व पाइए है। बहुरि मिथ्यादृष्टी जीवकै देवगुरुधर्मादिकका श्रद्धान आभास मात्र हो है अर याकै श्रद्धानविषैं विपरीताभिनिवेशका अभाव न हो है। तातै यहाँ निश्चयसम्यक्त्व तो है नाही अर व्यवहार सम्यक्त्व भी आभासमात्र है। जातैं याकै देवगुरुधर्मादिकका श्रद्धान है सो विपरीताभिनिवेशके अभावको साक्षात् कारण भया नाही। कारण भए विना उपचार सम्भवै नाही। तातै साक्षात् कारण अपेक्षा व्यवहार सम्यक्त्व भी याकै न सम्भवै है। अथवा याकै देवगुरुधर्मादिकका श्रद्धान नियमरूप हो है सो विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धानको परम्परा कारणभूत है। यद्यपि नियमरूप कारण नाही, तथापि मुख्यपन कारण है। बहुरि कारणविषैं कार्यका उपचार सम्भवै है। तातै मुख्यरूप परम्परा कारण अपेक्षा मिथ्यादृष्टीकै भी व्यवहार सम्यक्त्व कहिए है।

यहाँ प्रश्न—जो केई शास्त्रनिविषैं देवगुरुधर्मका श्रद्धानको वा तत्त्वश्रद्धानको तो व्यवहार सम्यक्त्व कह्या है अर आपापरका श्रद्धान कौ वा केवल आत्माके श्रद्धानको निश्चय सम्यक्त्व कह्या है, सो कैसैं है?

ताका समाधान—देवगुरुधर्मका श्रद्धानविषैं तो प्रवृत्तिकी मुख्यता है। जो प्रवृत्तिविषैं अरहन्तादिकको देवादिक मानैं, औरको न मानै,

सो देवादिकका श्रद्धानी कहिए है अर तत्वश्रद्धानविषैं तिनिके विचारकी मुख्यता है। जो ज्ञानविषैं जीवादिकतत्वनिकौ विचारै, ताकौं तत्वश्रद्धानी कहिए है। ऐसें मुख्यता पाइए है। सो ए दोऊ काहू जीवकै सम्यक्त्वकौं कारण तौ होंय परन्तु इनिका सद्भाव मिथ्यादृष्टीकै भी संभवै है। तातैं इनिकौं व्यवहार सम्यक्त्व कह्या है। बहुरि आपापर का श्रद्धानविषै वा आत्मश्रद्धानविषै विपरीताभिनिवेश रहितपना कौ मुख्यता है। जो आपापरका भेदविज्ञान करै वा अपने आत्माको अनुभवै, ताकै मुख्यपनै विपरीताभिनिवेश न होय। तातै भेदविज्ञानीको वा आत्मज्ञानीको सम्यग्दृष्टी कहिए है। ऐसें मुख्यताकरि आपापरका श्रद्धान वा आत्मश्रद्धान सम्यग्दृष्टीहीकै पाइए है। तातै इनिको निश्चय सम्यक्त्व कह्या, सो ऐसा कथन मुख्यताकी अपेक्षा है। तारतम्यपने ए च्यारों आभासमात्र मिथ्यादृष्टीकै होय, साँचे सम्यग्दृष्टीकै होय। तहाँ आभासमात्र हैं सो तो नियम बिना परम्परा कारण हैं अर सांचे हैं सो नियम रूप साक्षात् कारण हैं। तातै इनिको व्यवहाररूप कहिये। इनिके निमित्ततें जो विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धान भया सो निश्चय सम्यक्त्व है ऐसा जानना।

बहुरि प्रश्न—केई शास्त्रनिविषै लिखै हैं—आत्मा है सो ही निश्चय सम्यक्त्व है, और सब व्यवहार है सो कैसैं है?

ताका समाधान—विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धान भया सो आत्माहीका स्वरूप है, तहाँ अभेदबुद्धि करि आत्मा अर सम्यक्त्वविषैं भिन्नता नाहो, तातें निश्चयकरि आत्माहीकों सम्यक्त्व कह्या।

और सर्व सम्यक्त्वकों निमित्तमात्र हैं वा भेदकल्पना किए आत्मा अर सम्यक्त्वकै भिन्नता कहिए है तातैं और सर्व व्यवहार कह्या है, ऐसैं जानना। या प्रकार निश्चयसम्यक्त्व अर व्यवहार सम्यक्त्वकरि सम्यक्त्वके दोय भेद हो हैं अर अन्य निमित्तादि अपेक्षा आज्ञा-सम्यक्त्वादि सम्यक्त्वके दश भेद कहे हैं, सो **आत्मानुशासनविषैं** कह्या है :—

आज्ञामार्गसमुद्भवमुपदेशात्सूत्रबीजसंक्षेपात्।
विस्तारार्थाभ्यांभवमवगाढपरमावगाढं च ॥११॥

याका अर्थ—जिनआज्ञातैं तत्वश्रद्धान भया होय सो आज्ञा सम्यक्त्व है। यहाँ इतना जानना—"मोकों जिनआज्ञा प्रमाण है", इतना ही श्रद्धान सम्यक्त्व नाहीं है। आज्ञा मानना तो कारणभूत है। याहीतैं यहाँ आज्ञातैं उपज्या कह्या है। तातैं पूर्वै जिनआज्ञा माननेतैं पीछैं जो तत्वश्रद्धान भया सो **आज्ञासम्यक्त्व** है। ऐसै ही निर्ग्रन्थ-मार्गके अवलोकनेतैं तत्वश्रद्धान भया सो **मार्गसम्यक्त्व** [1] है।

[बहुरि उत्कृष्ट पुरुष तीर्थंकरादिक तिनके पुराणनिका उपदेशतैं जो उपज्या सम्यग्ज्ञान ताकरि उत्पन्न आगमसमुद्रविषै प्रवीणपुरुषनिकरि उपदेश आदितैं भई जो उपदेशदृष्टि सो **उपदेशसम्यक्त्व** है। मुनिके आचरणका विधानकों प्रतिपादन करता जो आचारसूत्र ताहि

1 मार्ग सम्यक्त्वके बाद मल्लजीकी स्वहस्त लिखित प्रति में ३ लाइनका स्थान अन्य सम्यक्त्वोके लक्षण लिखनेके लिये छोड़ा गया है और ये लक्षण मुद्रित तथा हस्तलिखित अन्य प्रतियोके अनुसार दिये गये है।

सुनकरि श्रद्धान करना जो होय सो सूत्रदृष्टि भलेप्रकार कही है। यह **सूत्रसम्यक्त्व** है। बहुरि बीज जे गणितज्ञानकों कारण तिनकरि दर्शनमोहका अनुपम उपशमके बलतें, दुष्कर है जाननेकी गति जाकी ऐसा पदार्थनिका समूह, ताकी भई है उपलब्धि अर्थात् श्रद्धानरूप परणति जाकै, ऐसा करणानुयोगका ज्ञानी भया, ताकै बीजदृष्टि हो है। यह **बीजसम्यक्त्व** जानना। बहुरि पदार्थनिकों संक्षेपपनेतें जानकरि जो श्रद्धान भया सो भली सक्षेपदृष्टि है। यह **संक्षेपसम्यक्त्व** जानना। जो द्वादशांगवानीकों सुन कीन्ही जो रुचि श्रद्धान, ताहि विस्तारदृष्टि हे भव्य तू जानि। यह **विस्तारसम्यक्त्व** है। बहुरि जैनशास्त्रके वचनविना कोई अर्थका निमित्ततें भई सो अर्थदृष्टि है। यह **अर्थसम्यक्त्व** जानना।] ऐसै आठ भेद तो कारण अपेक्षा किए। बहुरि अंग अर अगबाह्यसहित जैनशास्त्र ताकों अवगाह करि जो निपजो सो अवगाढ़दृष्टि है। यह **अवगाढ़सम्यक्त्व जानना।** बहुरि श्रुतकेवलीकै जो तत्वश्रद्धान है, ताकों **अवगाढ़सम्यक्त्व कहिए।** केवलज्ञानीकै जो तत्वश्रद्धान है, ताकों **परमावगाढ़सम्यक्त्व** कहिए। ऐसैं दोय भेद ज्ञानका सहकारोपनाकी अपेक्षा किए। या प्रकार दशभेद सम्यक्त्वके किए। तहाँ सर्वत्र सम्यक्त्वका स्वरूप तत्वार्थ श्रद्धान ही जानना।

बहुरि सम्यक्त्वके तीन भेद किए हैं। १ औपशमिक २ क्षायोपशमिक, ३ क्षायिक। सो ए तीन भेद दर्शनमोहकी अपेक्षा किए हैं। तहाँ औपशमिकसम्यक्त्वके दोय भेद हैं। प्रथमोपशम सम्यक्त्व, द्वितीयोपशम सम्यक्त्व। तहाँ मिथ्यात्वगुणस्थानविषैं करणकरि दर्शनमोहकों

उपशमाय सम्यक्त्व उपजै, ताकौं प्रथमोपशमसम्यक्त्व कहिए हैं। तहाँ इतना विशेष है—अनादि मिथ्यादृष्टिकै तो एक मिथ्यात्वप्रकृतिहीका उपशम होय है, जातै याकै मिश्रमोहनी अर सम्यक्त्वमोहनीकी सत्ता है नाहीं। जब जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होय, तहाँ तिस सम्यक्त्वको कालविषै मिथ्यात्वके परमाणूनिको मिश्रमोहनीरूप वा सम्यक्त्वमोहनीरूप परिणमावै है, तब तीन प्रकृतीनिकी सत्ता हो है। तातैं अनादि मिथ्यादृष्टीकै एक मिथ्यात्वप्रकृतिकी ही सत्ता है। तिसहीका उपशम हो है। बहुरि सादिमिथ्यादृष्टिकै काहूकै तीन प्रकृतीनिकी सत्ता है, काहूकै एकही की सत्ता है। जाकै सम्यक्त्वकालविषैं तीनकी सत्ता भई थी, सो सत्ता पाईए, ताकै तीनकी सत्ता है अर जाकै मिश्रमोहनी सम्यक्त्वमोहनी की उद्वेलना होय गई होय, उनके परमाणु मिथ्यात्वरूप परिणमि गए होय, ताकै एक मिथ्यात्वकी सत्ता है। तातै सादि मिथ्यादृष्टीकै तीन प्रकृतीनिका वा एक प्रकृतिका उपशम हो है।

उपशम कहा? सो कहिए है :—

अनिवृत्तिकरणविषै किया अतरकरणविधानतैं जे सम्यक्त्वकाकाल विषै उदय आवने योग्य निषेक थे, तिनिका तो अभाव किया, तिनिके परमाणु अन्यकालविषै उदय आवने योग्य निषेकरूप किए। बहुरि अनिवृत्तिकरणही विषै किया उपशमविधानतै जे तिसकाल के पीछें उदय आवने योग्य निषेक थे ते उदीरणारूप होय इस कालविषै उदय न आय सकै, ऐसे किए। ऐसे जहाँ सत्ता तो पाइए अर उदय न पाइए, ताका नाम उपशम है। सो यहु मिथ्यात्वतै भया प्रथमोपशम सम्यक्त्व, सो चतुर्थादि सप्तमगुणस्थानपर्यंत पाइए है। बहुरि

उपशमश्रेणीकौं सन्मुख होते सप्तम गुणस्थानविषैं क्षयोपशमसम्यक्त्वतैं जो उपशम सम्यक्त्व होय, ताका नाम द्वितीयोपशमसम्यक्त्व है। यहाँ करणकरि तीन ही प्रकृतीनिका उपशम हो है, जातैं याकै तीनहीकी सत्ता पाइए। यहाँ भी अन्तरकरणविधानतैं वा उपशमविधानतैं तिनिके उदयका अभाव करै है सोही उपशम है। सो यहु द्वितीयोपशम सम्यक्त्व सप्तमादि गयारवाँ गुणस्थानपर्यन्त हो है। पड़ता कोईकै छठे पाँचवें (चौथे गुणस्थान)[1] भी रहै है, ऐसा जानना। ऐसैं उपशम सम्यक्त्व दोय प्रकार है। सो यहु सम्यक्त्व वर्तमानकाल विषै क्षायिकवत् निर्मल है। याका प्रतिपक्षी कर्मकी सत्ता पाईए है, तातैं अन्तर्मुहूर्त कालमात्र यहु सम्यक्त्व रहै है। पीछैं दर्शनमोहका उदय आवै है, ऐसा जानना। ऐसें उपशम सम्यक्त्वका स्वरूप कह्या।

बहुरि जहाँ दर्शन मोहकी तीन प्रकृतीनिविषै सम्यक्त्वमोहनीका उदय होय (पाइए है, ऐसी दशा जहाँ होय सो क्षयोपशम है। जातैं समलतत्वार्थ श्रद्धान होय सो क्षयोपशम सम्यक्त्व है।) अन्य दोयका उदय न होय, तहाँ क्षयोपशम सम्यक्त्व हो है। सो उपशम सम्यक्त्वका काल पूर्ण भए यहु सम्यक्त्व हो है वा सादि मिथ्यादृष्टीकै मिथ्यात्व-गुणस्थानतैं वा मिश्रगुणस्थानतै भी याकी प्राप्ति हो है।

क्षयोपशम कहा ? सो कहिए है —

दर्शनमोहकी तीन प्रकृतीनिविषै जो मिथ्यात्वका अनुभाग है ताकै अनन्तवें भाग मिश्रमोहनीका है। त के अनन्तवे भाग सम्यक्त्व-मोहनीका है। सो इनिविषैं सम्यक्तवमोहनी प्रकृति देशघाती है। याका उदय होतैं भी सम्यक्त्वका घात न होय। किंचित् मलीनता

1 "चौथे गुणस्थान" यह अन्य प्रतियों में अधिक है।

करै, मूलघात न करि सकै; ताहीका नाम देशघाति है। सो जहाँ मिथ्यात्व वा मिश्रमिथ्यात्वका वर्तमानकालविषैं उदय आवनेंयोग्य निषेक तिनका उदय हुए बिना ही निर्जरा हो है सो तो क्षय जानना और इनिहीका आगामीकालविषैं उदय आवनें योग्य निषेकनिकी सत्ता पाइए सो ही उपशम है और सम्यक्त्वमोहनीका उदय पाइए है, ऐसी दशा जहाँ होय सो क्षयोपशम है, तातैं समलतत्वार्थ श्रद्धान होय सो क्षयोपशम सम्यक्त्व है। यहाँ मल लागै है, ताका तारतम्य स्वरूप तो केवली जानें हैं, उदाहरण दिखावनेंके अर्थि चलमलिन अगाढ़पना कह्या है। तहाँ व्यवहार मात्र देवादिककीप्रतीति तो होय परन्तु अरहन्तदेवादिविषै यहु मेरा है, यहु अन्यका है, इत्यादि भाव सो चलपना है। शंकादि मल लागै सो मलिनपना है। यहु शांतिनाथ शांतिका कर्त्ता है इत्यादि भाव सो अगाढ़पना है। सो ऐसे उदाहरण व्यवहारमात्र दिखाए परन्तु नियमरूप नाहीं। क्षयोपशम सम्यक्त्व विषै जो नियमरूप कोई मल लागै है सो केवली जानै हैं। इतना जानना—याकै तत्वार्थश्रद्धानविषैं कोई प्रकार करि समलपनों हो है तातै यहु सम्यक्त्व निर्मल नाहीं है। इस क्षयोपशम सम्यक्त्वका-एक ही प्रकार है। याविषैं किछू भेद नाहीं है। इतना विशेष है—जो क्षायिक सम्यक्त्वकों सन्मुख होतें अन्तर्मुहूर्त्तकाल मात्र जहाँ मिथ्यात्व-की प्रकृतिका क्षय करै है, तहाँ दोय ही प्रकृतीनिकी सत्ता रहै है। बहुरि पीछें मिश्रमोहनीका भी क्षय करै है। तहाँ सम्यक्त्वमोहनीकी ही सत्ता रहै है। पीछे सम्यक्त्वमोहनीकी कांडकघातादि क्रिया न करै है। तहाँ कृतकृत्य वेदकसम्यग्दृष्टी नाम पावै है, ऐसा जानना। बहुरि इस

क्षयोपशमसम्यक्त्वहीका नाम वेदकसम्यक्त्व है। जहाँ मिथ्यात्वमिश्र-मोहनीकी मुख्यता करि कहिए, तहाँ क्षयोपशम नाम पावै है। सम्यक्त्व मोहनीकी मुख्यताकरि कहिए, तहाँ वेदक नाम पावै है। सो कहने मात्र दोय नाम हैं, स्वरूपविषैं भेद है नाहीं। बहुरि यहु क्षयोपशम सम्यक्त्व चतुर्थादि सप्तमगुणस्थान पर्यन्त पाइए है, ऐसें क्षयोपशम सम्यक्त्वका स्वरूप कह्या।

बहुरि तीनों प्रकृतीनिके सर्वथा सर्व निषेकनिका नाश भए अत्यन्त निर्मल तत्वार्थश्रद्धान होय सो क्षायिक सम्यक्त्व है। सो चतुर्थादि चार गुणस्थाननिविषैं कहीं क्षयोपशम सम्यग्दृष्टिकै याकी प्राप्ति हो है। कैसें हो है ? सो कहिए है—प्रथम तीन करणकरि तहाँ मिथ्यात्वके परमाणूनिकों मिश्रमोहनी वा सम्यक्त्व मोहनीरूप परिणमावै वा निर्जरा करै, ऐसें मिथ्यात्वकी सत्ता नाश करै। बहुरि मिश्र मोहनी के परमाणूनिकों सम्यक्त्वमोहनीरूप परिणमावै वा निर्जरा करै, ऐसें मिश्रमोहनीका नाश करै। बहुरि सम्यक्त्वमोहनीके निषेक उदय आय खिरें, वाकी बहुत स्थिति आदि होय तो ताकों स्थिति-कांडादिकरि घटावै। जहाँ अन्तर्मुहूर्त्तस्थिति रहै, तब कृतकृत्य वेदक-सम्यग्दृष्टी होय। बहुरि अनुक्रमतें इन निषेकनिका नाश करि क्षायिक सम्यग्दृष्टी हो है। सो यहु प्रतिपक्षी कर्मके अभावतें निर्मल है वा मिथ्यात्वरूप रंजनाके अभावते वीतराग है। याका नाश न होय। जहाँतें उपजै तहाँतें सिद्ध अवस्था पर्यन्त याका सद्भाव है। ऐसें क्षायिक सम्यक्त्वका स्वरूप कह्या। ऐसें तीन भेद सम्यक्त्वके हैं।

बहुरि अनन्तानुबंधी कषायकी सम्यक्त्व होतें दोय अवस्था हो हैं। कै तो अप्रशस्त उपशम हो है, कै विसंयोजन हो है। तहाँ जो करणकरि उपशम विधानतें उपशम होय ताका नाम प्रशस्त उपशम है। उदयका

अभाव ताका नाम अप्रशस्त उपशम है। सो अनन्तानुबंधीका प्रशस्त उपशम तो होय ही नाहीं, अन्य मोहकी प्रकृतीनिका हो है। बहुरि इसका अप्रशस्त उपशम हो है। बहुरि जो तीन करणकरि अनन्तानुबंधीनिके परमाणूनिकों अन्य चारित्रमोहकी प्रकृति रूप परिणमाय तिसकी सत्ता नाश करिए, ताका नाम विसयोजन है। सो इनविषैं प्रथमोपशम सम्यक्त्वविषैं तो अनन्तानुबधीका अप्रशस्त उपशम ही है। बहुरि द्वितीयोपशम सम्यक्त्वकी प्राप्ति पहिलैं अनन्तानुबंधीका विसंयोजन भए ही होय; ऐसा नियम कोई आचार्य लिखें हैं, कोई नियम नाहीं लिखें हैं। बहुरि क्षयोपशम सम्यक्त्वविषैं कोई जीवकै अप्रशस्त उपशम हो है वा कोईकैं विसंयोजन हो है। बहुरि क्षायिक सम्यक्त्व है सो पहलें अनन्तानुबधीका विसयोजन भए ही हो है, ऐसा जानना। यहाँ यह विशेष है—जो उपशम क्षयोपशम सम्यक्त्वीकै अनन्तानुबंधीका विसंयोजनतें सत्ता नाश भया था, बहुरि वह मिथ्यात्वविषैं आवै तो अनन्तानुबधीका बंध करै, तहाँ बहुरि वाकी सत्ताका सद्भाव हो है। अर क्षायिकसम्यग्दृष्टी मिथ्यात्वविषै आवै नाहीं, तातैं वाकै अनंतानुबंधीकी सत्ता कदाचित् न होय।

यहाँ प्रश्न—जो अनन्तानुबंधी तो चारित्रमोहकी प्रकृति है सो चारित्रकों घातै, याकरि सम्यक्त्वका घात कैसें सम्भवै ?

ताका समाधान—अनन्तानुबधीके उदयतें क्रोधादिरूप परिणाम हो हैं, किछु अतत्व श्रद्धान होता नाहीं। तातै अनन्तानुबंधी चारित्रहीकों घातै है, सम्यक्त्वकों नाहीं घातै है। सो परमार्थतें है तो ऐसें ही परन्तु अनन्तानुबंधीके उदयतें जैसें क्रोधादिक हो हैं, तैसें क्रोधादिक सम्यक्त्व होत न होंय। ऐसा निमित्त नैमित्तिकपना पाईए है। जैसे त्रसपनाकी

घातक तो स्थावरप्रकृति ही है परन्तु त्रसपना होतें एकेन्द्रिय जाति प्रकृतिका भी उदय न होय, तातैं उपचारकरि एकेन्द्रिय प्रकृतिकों भी त्रसपनाका घातक पना कहिए तो दोष नाहीं। तैसें सम्यक्त्वका घातक तो दर्शनमोह है परन्तु सम्यक्त्व होतें अनन्तानुबंधी कषायनिका भी उदय न होय, तातैं उपचारकरि अनन्तानुबधीकै भी सम्यक्त्वका घातक पना कहिए तो दोष नाहीं।

बहुरि यहाँ प्रश्न—जो अनन्तानुबंधी चारित्रहीकों घात है सो-याके गए किछू चारित्र भया कहो। असंयत गुणस्थानविषें असंयम काहेकों कहो हो ?

ताका समाधान—अनन्तानुबंधी आदि भेद हैं, ते तीव्र मंदकषाय की अपेक्षा नाहीं हैं। जातैं मिथ्यादृष्टीकै तीव्र कषाय होतें वा मंदकषाय होते अनन्तानुबंधी आदि च्यारोंका उदय युगपत् हो है। तहाँ च्यारोंके उत्कृष्ट स्पर्द्धक समान कहे हैं। इतना विशेष है—जो अनन्तानुबंधीके साथ जैसा तीव्र उदय अप्रत्याख्यानादिकका होय, तैसा ताको गए न होय। ऐसें ही अप्रत्याख्यानकी साथि जैसा प्रत्याख्यान संज्वलनका उदय होय, तैसा ताकों गए न होय। बहुरि जैसा प्रत्याख्यानकी साथि सज्वलनका उदय होय, तैसा केवल सज्वलनका उदय न होय। तातैं अनन्तानुबंधीके गए किछू कषायनिकी मदता तो हो है परन्तु ऐसी मन्दता न हो है, जाकरि कोई चारित्र नाम पावै। जातें कषायनिके असंख्यात लोकप्रमाण स्थान हैं। तिनविषैं सर्वत्र पूर्वस्थानतं उत्तरस्थानविषै मंदता पाईए है परन्तु व्यवहारकरि तिन स्थाननिविषैं तीन मर्यादा करी। आदिके बहुत स्थान तो असयमरूप कहे, पीछें केतेक देशसंयमरूप कहे, पीछें केतेक सकलसंयमरूप कहे। तिनविषै प्रथम

गुणस्थानतें लगाय चतुर्थ गुणस्थान पर्यन्त जे कषायके स्थान हो हैं ते सर्व असंयमहीके हो हैं। तातैं कषायनिकी मंदता होतें भी चारित्र नाम न पावै है। यद्यपि परमार्थतें कषायका घटना चारित्रका अश है, तथापि व्यवहारतें जहाँ ऐसा कषायनिका घटना होय, जाकरि श्रावकधर्म वा मुनिधर्मका अंगीकार होय, तहाँ ही चारित्र नाम पावै है। सो असयमविषैं ऐसे कषाय घटैं नाहीं, तातैं यहाँ असयम कहा है। कषायनिका अधिक हीनपना होतें भी जैसें प्रमत्तादिगुणस्थाननिविषै सर्वत्र सकलसंयम ही नाम पावै, तैसे मिथ्यात्वादि असंयतपर्यंत गुणस्थाननिविषैं असंयम नाम पावै है। सर्वत्र असंयमकी समानता न जाननी।

बहुरि यहाँ प्रश्न—जो अनन्तानुबंधी सम्यक्त्वकों न घातै है तो याके उदय होतें सम्यक्त्वतें भ्रष्ट होय सासादन गुणस्थानकों कैसें पावै है ?

ताका समाधान—जैसे कोई मनुष्यकै मनुष्यपर्याय नाशका कारण तीव्ररोग प्रगट भया होय, ताकों मनुष्यपर्यायका छोड़नहारा कहिए। बहुरि मनुष्यपना दूर भए देवादिपर्याय होय, सो तो रोग अवस्थाविषै न भया। इहाँ मनुष्यहीकी आयु है। तैसें सम्यक्त्वीकै सम्यक्त्वके नाशका कारण अनन्तानुबंधीका उदय प्रगट भया, ताकों सम्यक्त्वका विरोधक सासादन कह्या। बहुरि सम्यक्त्वका अभाव भए मिथ्यात्व होय सो तो सासादनविषै न भया। यहाँ उपशमसम्यक्त्वही का काल है, ऐसा जानना। ऐसे अनन्तानुबंधी चतुष्ककी सम्यक्त्व होतें अवस्था हो है, तातै सात प्रकृतीनिके उपशमादिकतें भी सम्यक्त्वकी प्राप्ति कहिए है।

बहुरि प्रश्न—सम्यक्त्वमार्गणाके छह भेद किए हैं, सो कैसें है ?

ताका समाधान—सम्यक्त्वके तो भेद तीन ही हैं। बहुरि सम्यक्त्व का अभावरूप मिथ्यात्व है। दोऊनिका मिश्रभाव सो मिश्र है। सम्यक्त्वका घातकभाव सो सासादन है। ऐसें सम्यक्त्व मार्गणाकरि

जीवका विचार किए छह भेद कहे हैं। यहाँ कोई कहै कि सम्यक्त्वतैं भ्रष्ट होय मिथ्यात्वविषैं आया होय, ताकों मिथ्यात्वसम्यक्त्व कहिए। सो यहु असत्य है, जातैं अभव्यकै भी तिसका सद्भाव पाइए है। बहुरि मिथ्यात्वसम्यक्त्व कहना ही अशुद्ध है। जैसें संयममार्गणाविषैं असंयम कह्या, भव्यमार्गणाविषैं अभव्य कह्या, तैसे ही सम्यक्त्वमार्गणा विषैं मिथ्यात्व कह्या है। मिथ्यात्वकों सम्यक्त्वका भेद न जानना। सम्यक्त्व अपेक्षा विचार करते केई जीवनिकै सम्यक्त्वका अभाव भासै तहाँ मिथ्यात्व पाइए है, ऐसा अर्थ प्रगट करनेंके अर्थि सम्यक्त्वमार्गणा-विषैं मिथ्यात्व कह्या है। ऐसैं ही सासादन मिश्र भी सम्यक्त्वके भेद नाहीं हैं। सम्यक्त्वके भेद तीन ही हैं ऐसा जानना। यहाँ कर्मके उप-शमादिकतै उपशमादिक सम्यक्त्व कहे, सो कर्मका उपशमादिक याका किया होता नाही। यहु तो तत्वश्रद्धान करनेका उद्यम करै, तिसके निमित्ततें स्वयमेव कर्मका उपशमादिक हो है। तब याकै तत्वश्रद्धान की प्राप्ति हो है, ऐसा जानना। या प्रकार सम्यक्त्वके भेद जाननें। ऐसैं सम्यग्दर्शनका स्वरूप कह्या।

सम्यक्दर्शन के आठ अंग

बहुरि सम्यग्दर्शनके आठ अग कहे हैं। नि:शांकितत्व, नि:कांक्षि-तत्व, निर्विचिकित्सत्व, अमूढदृष्टित्व, उपबृहण, स्थितिकरण, प्रभावना, वात्सल्य। तहां भयका अभाव अथवा तत्वनिविषैं संशयका अभाव, सो नि:शाकितत्व है। बहुरि परद्रव्यादिविषैं रागरूप वांछाका अभाव, सो नि:कांक्षितत्व है। बहुरि परद्रव्यादिविषैं द्वेषरूप ग्लानिका अभाव, सो निर्विचिकित्सव है। बहुरि तत्वनिविषें वा देवादिकविषैं अन्यथा प्रतीतिरूप मोहका अभाव, सो अमूढदृष्टित्व है। बहुरि आत्म-धर्मका वा जिनधर्मका बधावना, ताका नाम उपबृंहण है। इसही अंगका

नाम उपगूहन भी कहिए है। तहाँ धर्मात्मा जीवनिका दोष ढांकना ऐसा ताका अर्थ जानना। बहुरि अपनें स्वभावविषें वा जिनधर्मविषें आपकों वा परकों स्थापन करना, सो स्थितिकरण है। बहुरि अपनें स्वरूपकी वा जिनधर्मकी महिमा प्रगट करना, सो प्रभावना है। बहुरि स्वरूपविषें वा जिनधर्मविषें वा धर्मात्मा जीवनिविषें अतिप्रीति भाव, सो वात्सल्य है। ऐसें ए आठ अंग जाननें। जैसें मनुष्यशरीरके हस्तपादादिक अग हैं, तैसें ए सम्यक्त्वके अग हैं।

यहाँ प्रश्न—जो केई सम्यक्त्वी जीवनिकै भी भय इच्छा ग्लानि आदि पाइए है अर केई मिथ्यादृष्टीकै न पाइए है, तातैं निःशंकितादिक अंग सम्यक्त्वके कैसें कहो हो ?

ताका समाधान—जैसें मनुष्य शरीरके हस्तपादादि अंग कहिए है, तहाँ कोई मनुष्य ऐसा भी होय, जाकै हस्तपादादिविषै कोई अंग न होय। तहाँ वाकै मनुष्यशरीर तो कहिए परन्तु तिनि अंगनि बिना वह शोभायमान सकल कार्यकारी न होय। तैसें सम्यक्त्वके निःशंकितादि अंग कहिए है, तहाँ कोई सम्यक्ती ऐसा भी होय, जाकै निःशाकितत्वादिविषे कोई अंग न होय। तहाँ वाकै सम्यक्त्व तो कहिए परन्तु तिनि अंगनिबिना वह निर्मल सकल कार्यकारी न होय। बहुरि जैसे बांदरेकै भी हस्तपादादि अंग हो हैं परन्तु जैसें मनुष्यके होंय, तैसें न हो हैं। तैसें मिथ्यादृष्टीनिकै भी व्यवहाररूप निःशंकितादिक अंग हो हैं परन्तु जैसें निश्चयकी सापेक्ष लिए सम्यक्त्वीकै होंय तैसें न हो हैं। बहुरि सम्यक्त्वविषै पच्चीस मल कहे हैं—आठ शंकादिक, आठ मद, तीन मूढ़ता, षट् अनायतन, सो ए सम्यक्त्वीकै न होंय। कदाचित् काहूकै कोई लागे सम्यक्त्वका सर्वथा नाश न हो है, तहाँ सम्यक्त्व मलिन ही हो है, ऐसा जानना। बहु..................

पंडित प्रवर टोडरमलजी की रहस्य पूर्ण चिट्ठी

॥ श्री ॥

सिद्ध श्री मुलतान नगर महा शुभ स्थान विषैं साधर्मी भाई अनेक उपमा योग्य अध्यात्म रस रोचक भाई श्री खानचन्दजी, गंगाधरजी, श्रीपालजी, सिद्धारथदासजी, अन्य सर्व साधर्मी योग्य लिखतं टोडरमल के श्री प्रमुख विनय शब्द अवधारना। यहाँ यथा सम्भव आनन्द है, तुम्हारे चिदानन्द घन के अनुभव से सहजानन्दकी वृद्धि चाहिए।

अपरंच तुम्हारो एक पत्र भाई जी श्रीरामसिंघजी भुवानीदासजी को आया था। तिसके समाचार जहानाबादतें और साधर्मियों ने लिखे थे। सो भाई जी ऐसे प्रश्न तुम सारिषे ही लिखें। अवार वर्तमान काल में अध्यात्म के रसिक बहुत थोड़े हैं। धन्य हैं जे स्वात्मानुभव की वार्ता भी करै है, सो ही कहा है—

श्लोक—तत्प्रति प्रीत चित्तेन, येन वार्तापि हि श्रुता।
निश्चितं सः भवेद्भव्यो, भाव निर्वाण भाजनम्॥

पद्मनन्दि पंच विंशतिका। (एकत्व शीतिः २३)

अर्थ—जिहि जीव प्रसन्न चित्त करि इस चेतन स्वरूप आत्मा की बात ही सुनी है, सो निश्चय कर भव्य है। अल्पकालविषैं मोक्ष का पात्र है। सो भाई जी तुम प्रश्न लिखे तिसके उत्तर अपनी बुद्धि अनुसार कुछ लिखिए है सो जानना और अध्यात्म आगम की चर्चा गर्भित पत्र तो शीघ्र शीघ्र देवो करो, मिलाप कभी होगा तब होगा। अर निरन्तर स्वरूपानुभव में रहना, श्रीरस्तु।

अथ स्वानुभव दशाविषै प्रत्यक्ष परोक्षादिक प्रश्ननिके उत्तर बुद्धि अनुसार लिखिये है।

तहाँ प्रथम ही स्वानुभव का स्वरूप जानने निमित्त लिखै हैं।

जीव पदार्थ अनादितें मिथ्यादृष्टी है। सो आपापरके यथार्थ रूपसे विपरीत श्रद्धान का नाम मिथ्यात्व है। बहुरि जिस काल किसी जीव के दर्शन मोह के उपशम, क्षयोपशम या क्षयते आपापर का यथार्थ श्रद्धान रूप तत्वार्थ श्रद्धान होय, तब जीव सम्यक्ती होय है। यातैं आपापरका श्रद्धानविषै शुद्धात्म श्रद्धान रूप निश्चय सम्यक्त गर्भित है। बहुरि जो आपापर का यथार्थ श्रद्धान नाही है अर जिनमतविषैं कहे जे देव, गुरु, धर्म तिन ही कू मानै है, अन्य मत विषै कहे देवादि वा तत्वादि तिनको नाही मानै है, तो ऐसे केवल व्यवहार सम्यक्त करि सम्यक्ती नाम पावै नाही। तातै स्वपर भेद विज्ञान को लिए जो तत्वार्थ श्रद्धान होय सो सम्यक्त जानना।

बहुरि ऐसा सम्यक्ती होते सन्ते जो ज्ञान पचेन्द्री व छटा मन के द्वारा क्षयोपशम रूप मिथ्यात्व दशा मे कुमति कुश्रुतिरूप होय रहा था सोई ज्ञान अब मतिश्रति रूप सम्यग्ज्ञान भया। सम्यक्ती जेता कछु जानै सो जानना सर्व सम्यग्ज्ञान रूप है।

जो कदाचित् घट पटादिक पदार्थनिकू अयथार्थ भी जानै तो वह आवरण जनित उदय को अज्ञान भाव है। जो क्षयोपशम रूप प्रगट ज्ञान है सो तो सर्व सम्यग्ज्ञान ही है, जाते जाननेविषै विपरीत रूप पदार्थनिको न साधै है। सो यह सम्यग्ज्ञान केवलज्ञानका अश है। जैसे थोडा सा मेघ पटलविलय भये कुछ प्रकाश प्रगटै है सो सर्व प्रकाश का अश है।

जो ज्ञान मतिश्रुति रूप प्रवर्त्तै है सो ही ज्ञान बधता बधता केवलज्ञान रूप होय है। तातै सम्यग्ज्ञान की अपेक्षा तो जाति एक है। बहुरि इस सम्यक्ती के परिणामविषै सविकल्प तथा निर्विकल्परूप होय दो प्रकार प्रवर्त्तै। तहाँ जो विषय कषायादिरूप वा पूजा, दान, शास्त्राभ्यासादिक रूप प्रवर्त्तै सो सविकल्परूप जानना।

यहाँ प्रश्न—जो शुभाशुभ रूप परिणमते हुए सम्यक्तका अस्तित्व कैसें पाइए ?

ताका समाधान—जैसे कोई गुमास्ता साहू के कार्यविषें प्रवर्त्तै है, उस कार्य को अपना भी कहै है, हर्ष विषाद को भी पावै है, तिसकार्य विषें प्रवर्त्तते अपनी और साहू की जुदाई कों नाहीं विचारै है परन्तु अन्तरंग श्रद्धान ऐसा है कि यह मेरा कारज नाहीं। ऐसा कार्यकर्ता गुमास्ता साहूकार है परन्तु वह साहू के धन कूं चुराय अपना मानै तो गुमास्ता चोर ही कहिए। तैसे कर्मोदय जनित शुभाशुभ रूप कार्यको करता हुआ तदरूप परिणमै, तथापि अन्तरंग ऐसा श्रद्धान है कि यह कार्य मेरा नाहीं। जो शरीराश्रित व्रत संयम को भी अपना मानै तो मिथ्यादृष्टि होय। सो ऐसे सविकल्प परिणाम होय हैं। अब सविकल्प ही के द्वारकरि निर्विकल्प परिणाम होने का विधान कहिए है :—

वह सम्यक्ती कदाचित् स्वरूप ध्यान करने को उद्यमी होय है तहाँ प्रथम स्वपर स्वरूप भेद विज्ञान करै, नो कर्म, द्रव्यकर्म, भावकर्म रहित चैतन्य चित्त चमत्कारमात्र अपना स्वरूप जानै; पीछें परका भी विचार छूट जाय, केवल स्वात्म विचार ही रहै है, तहाँ अनेक प्रकार निज-स्वरूपविषै अहंबुद्धि धारै है। मैं चिदानन्द हूँ, शुद्ध हूँ, सिद्ध हूँ, इत्यादिक विचार होते सते सहज ही आनन्द तरग उठै है, रोमांच होय है, ता पीछे ऐसा विचार तो छूट जाय, केवल चिन्मात्र स्वरूप भासने लागै, तहाँ सर्व परिणाम उस रूपविषै एकाग्र होय प्रवर्त्तै। दर्शन ज्ञानादिक का वा नय प्रमाणादिकका भी विचार विलय जाय।

चैतन्य स्वरूप जो सविकल्प ताकरि निश्चय किया था, तिस ही विषै व्याप्य व्यापक रूप होय ऐसे प्रवर्त्तै जहाँ ध्याता ध्यायपनो दूर भयो। सो ऐसी दशा का नाम निर्विकल्प अनुभव है। सो बड़े नय चक्र ग्रन्थविषै ऐसे ही कहा है—

गाथा—तच्चाणे सण काले समयं बुज्झेहि जुत्ति मग्गेण ।
णो आराहण समये पच्चक्खो अणुहवो जह्मा ॥२६६॥

अर्थ—तत्व का अवलोकन का जो काल ता विषैं समय जो है शुद्धात्मा ताको जुत्ता जो नय प्रमाण ताकरि पहिले जानैं। पीछें आराधन समय जो अनुभव काल, तिहि विषैं नय प्रमाण नाहीं है, जातैं प्रत्यक्ष अनुभव है। जैसे रत्न की खरीद विषैं अनेक विकल्प करै हैं, प्रत्यक्ष वाको पहरिये तब विकल्प नाहीं, पहरने का सुख ही है। ऐसे सविकल्प के द्वारे निर्विकल्प अनुभव होय हे।

बहुरि जो ज्ञान पंच इन्द्री व छठा मन के द्वारे प्रवर्त्तै था सो ज्ञान सब तरफ सों सिमट कर निर्विकल्प अनुभव विषैं केवल स्वरूप सन्मुख भया। जातैं वह ज्ञान क्षयोपशमरूप है सो एक काल विषैं एक ज्ञेय ही को जानैं, सो ज्ञान स्वरूप जानने को प्रवर्त्या तब अन्य का जानना सहज ही रह गया। तहाँ ऐसी दशा भई जो बाह्य विकार होंय तो भी स्वरूप ध्यानी को कुछ खबर नाही, ऐसे मतिज्ञान भी स्वरूप सन्मुख भया। बहुरि नयादिक के विचार मिटते श्रुतज्ञान भी स्वरूप सन्मुख भया। ऐसा वर्णन समयसार की टीका आत्मख्यातिविषैं किया है तथा आत्म अवलोकनादिविषै है। इस ही वास्ते निर्विकल्प अनुभवकों अतेन्द्रिय कहिए है जातैं इन्द्रीनका धर्म तो यह है जो स्पर्श, रस, गंध और वर्ण कों जानै सो यहाँ नाहीं अर मन का धर्म यह है जो अनेक विकल्प करै सो भी यहाँ नाहीं। तातैं जब जो ज्ञान इन्द्री मन के द्वारे प्रवर्त्तै था सो ही ज्ञान अब अनुभवविषै प्रवर्त्तै है तथापि इस ज्ञान को अतेन्द्रिय कहिये है। बहुरि इस स्वानुभवकों मन द्वारे भी भया कहिए जातैं इस अनुभवविषै मतिज्ञान श्रुतज्ञान ही हैं, और कोई ज्ञान नाहीं।

मतिश्रुतज्ञान इन्द्री मनके अवलम्बन बिना होय नाहीं, सो इन्द्री मन का तो अभाव ही हैं जातैं इन्द्रियका विषय मूर्त्तीक पदार्थ ही है। बहुरि

यहाँ मतिज्ञान है जातें मन का विषय मूर्तिक अमूर्तीक पदार्थ है, सो यहाँ मन सम्बन्धी परिणाम स्वरूपविषैं एकाग्र होय अन्य चिन्ता का निरोध करै हैं तातैं याको मन द्वारै कहिये है।

"एकाग्र चिन्ता निरोधो ध्यानम्" ऐसा ध्यान का भी लक्षण है, ऐसा अनुभव दशाविषैं सम्भवै है। तथा नाटक के कवित्तविषै कहा है—

दोहा:—वस्तु विचारत भाव सें, मन पावै विश्राम।
रस स्वादित सुख ऊपजै, अनुभव याकौ नाम॥

ऐसे मन बिना जुदा परिणाम स्वरूपविषैं प्रवर्त्ता नाहीं तातैं स्वानुभवकों मन जनित भी कहिए है, सो अतेन्द्रिय कहने में अरु मन जनित कहने में कुछ विरोध नाहीं; विवक्षा भेद है।

बहुरि तुम लिखा "जो आत्मा अतेन्द्रिय है सो अतेन्द्रिय ही करि ग्रहा जाय" सो भाई जी, मन अमूर्तीक का भी ग्रहण करै है जातैं मतिश्रुतज्ञान का विषय सर्व द्रव्य कहे हैं। उक्त च तत्वार्थ सूत्रे—

"मति श्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्व सर्व पर्यायेषु।" (१-२६)

बहुरि तुमने "प्रत्यक्ष परोक्ष संबंधी प्रश्न लिखे" सो भाईजी प्रत्यक्ष परोक्ष के तो भेद हैं नाहीं। चौथे गुणस्थान में सिद्ध समान क्षायक सम्यक्त हो जाय है, तातैं सम्यक्त तो केवल यथार्थ श्रद्धान रूप ही है। वह जीव शुभाशुभ कार्य करता भी रहै, तातैं तुमने जो लिख्या था कि "निश्चय सम्यक्त प्रत्यक्ष है और व्यवहार सम्यक्त परोक्ष है" सो ऐसा नाही है। सम्यक्त के तीन भेद हैं तहाँ उपशम सम्यक्त अरु क्षायक सम्यक्त तो निर्मल हैं, जातैं वे मिथ्यात्व के उदय करि रहित हैं अर क्षयोपशम सम्यक्त समल है। बहुरि इस सम्यक्तविषैं प्रत्यक्ष परोक्ष भेद तो नाहीं हैं।

क्षायक सम्यक्तीकैं शुभाशुभ रूप प्रवर्त्तता वा स्वाणुभवरूप प्रवर्त्तता

सम्यक्त गुण तो सामान्य ही है तातें सम्यक्तके तो प्रत्यक्ष परोक्ष भेद न मानना। बहुरि प्रमाण के प्रत्यक्ष परोक्ष भेद हैं सो प्रमाण सम्यग्ज्ञान है; तातें मतिज्ञान श्रुतज्ञान तो परोक्ष प्रमाण हैं और अवधि मनःपर्यय केवलज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

यथाः—"आद्ये परोक्षं। प्रत्यक्षमन्यत्"। (तत्वार्थ सूत्र १-११, १२)

ऐसा सूत्र कहा है तथा तर्क शास्त्रविषें प्रत्यक्ष परोक्ष का ऐसा लक्षण कहा है—

"स्पष्टप्रतिभासात्मकंप्रत्यक्षमस्पष्टं परोक्षं।"

जो ज्ञान अपने विषयकों निर्मलतारूप नीके जानै सो प्रत्यक्ष अर स्पष्ट नीके न जानै सो परोक्ष; सो मतिज्ञान श्रुतज्ञान का विषय तो घना परन्तु एक हो ज्ञेय कों सम्पूर्ण न जान सकै तातै परोक्ष है और अवधि मनःपर्यय ज्ञान के विषय थोरे हैं तथापि अपने विषयकों स्पष्ट नीके जानै तातै एक देश प्रत्यक्ष है अर केवलज्ञान सर्व ज्ञेयकों आप स्पष्ट जानै तातै सर्व प्रत्यक्ष है।

बहुरि प्रत्यक्षके दोय भेद हैं। एक परमार्थ प्रत्यक्ष दूसरा व्यवहार प्रत्यक्ष। अवधि मनःपर्यय और केवलज्ञान तो स्पष्ट प्रतिभासरूप हैं ही, तातै पारमार्थिक प्रत्यक्ष हैं। बहुरि नेत्र आदिकतें वरणादिककों जानिए है, तातें इनकों सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहिए, जातै जो एक वस्तु में मिश्र अनेक वर्ण हैं ते नेत्रकर नीके ग्रहे जाय हैं।

बहुरि परोक्ष प्रमाण के पांच भेद हैं—१ स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, ३ तर्क, ४ अनुमान, ५ आगम।

तहाँ जो पूर्व वस्तु जानी को याद करि जानना सो स्मृति कहिए।
दृष्टांत कर वस्तु निश्चय कीजिय सो प्रत्यभिज्ञान कहिए।
हेतु के विचारतें लिया जो ज्ञान सो तर्क कहिए।
हेतुतें साध्य वस्तुका जो ज्ञान सो अनुमान कहिए।

आगम तें जो ज्ञान होय सो आगम कहिए।

ऐसे प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाण के भेद किये हैं, सोई स्वानुभव दशा में जो आत्मा को जानिए सो श्रुतज्ञान कर जानिए है। श्रुतज्ञान है सो मतिज्ञान पूर्वक ही है सो मतिज्ञान श्रुतज्ञान परोक्ष कहे तातें यहाँ आत्मा का जानना प्रत्यक्ष नाहीं। बहुरि अवधि मनःपर्यय का विषय रूपी पदार्थ ही है, केवलज्ञान छद्मस्थकै है नाहीं, तातें अनुभवविषैं अवधि मनःपर्यय केवल करि आत्मा का जानना नाहीं। बहुरि यहाँ आत्माकूं स्पष्ट नीके जानै है, तातें पारमार्थिक प्रत्यक्षपना तो सम्भवै नाहीं। बहुरि जैसे नेत्रादिकसे जानिए है तैसे एक देश निर्मलता लिये भी आत्मा के असंख्यात प्रदेशादिक न जानिए है तातें सांव्यवहारिक प्रत्यक्षपणे भी सम्भवै नाहीं।

यहाँ पर तो आगम अनुमानादिक परोक्ष ज्ञान करि आत्मा का अनुभव होय है। जैनागमविषैं जैसा आत्मा का स्वरूप कहा है ताकूं तैसा जान उस विषै परिणामोंको मग्न करै है तातें आगम परोक्ष प्रमाण कहिए। अथवा मैं आत्मा ही हूँ तातें मुझविषैं ज्ञान है; जहाँ जहाँ ज्ञान है तहाँ तहाँ आत्मा है जैसे सिद्धादिक हैं। बहुरि जहाँ आत्मा नाही तहाँ ज्ञान भी नाहीं जैसे मृतक कलेवरादिक हैं। ऐसे अनुमान करि वस्तुका निश्चय कर उस विषै परिणाम मग्न करै है, तातै अनुमान परोक्ष प्रमाण कहिए। अथवा आगम अनुमानादिक कर जो वस्तु जानने में आया तिसहीकों याद रखके उस विषै परिणाम मग्न करै है तातें स्मृति कहिए, ऐसे इत्यादिक प्रकार से स्वानुभवविषै परोक्ष प्रमाण कर ही आत्मा का जानना होय है। पीछे जो स्वरूप जाना तिस ही विषै परिणाम मग्न हो हैं, ताका कछु विशेष जानपना होता नाहीं।

बहुरि यहाँ प्रश्न—जो सविकल्प निर्विकल्पविषैं जानने का विशेष नाहीं तो अधिक आनन्द कैसे होय है ?

ताका समाधान—सविकल्प दशाविषैं जो ज्ञान अनेक ज्ञेयकों जानने रूप प्रवर्त्ते था, वह निर्विकल्प दशाविषैं केवल आत्मा को ही जानने में प्रवर्त्या, एक तो यह विशेषता है। दूसरी यह विशेषता है जो परिणाम नाना विकल्पविषै परिणमैं था सो केवल स्वरूप ही सों तादात्मरूप होय प्रवर्त्या। तीजी यह विशेषता है कि इन दोनों विशेषताओं से कोई वचनातीत अपूर्व आनन्द होय है जो विषय सेवनविषैं उसके अंश की भी जात नाहीं तातै उस आनन्द को अतेन्द्रिय कहिये।

बहुरि यहाँ प्रश्न—जो अनुभवविषैं भी आत्मा तो परोक्ष ही है तो ग्रथनविषै अनुभवकू प्रत्यक्ष कैसे कहिये ? कारण कि ऊपरकी गाथा विषें ही **"पच्चक्खो अणुहवो जम्हा"** ऐसा कहा है।

ताका समाधान—अनुभव विषै आत्मा तो परोक्ष ही है, कछु आत्मा के प्रदेश आकार तो भासते नाहीं। परन्तु जो स्वरूपविषैं परिणाम मग्न होते स्वानुभव भया, सो वह स्वानुभव प्रत्यक्ष है। स्वानुभवका स्वाद कछु आगम अनुमानादिक परोक्ष प्रमाणादिक कर न जानै है। आप ही अनुभवके रस स्वादकों वेदै है। जैसे कोई आंधा पुरुष मिश्री कों आस्वादै है, तहाँ मिश्रीके आकारादिक तो परोक्ष हैं और जिह्वा करि जो स्वाद लिया है वह स्वाद प्रत्यक्ष है, ऐसा जानना।

अथवा जो प्रत्यक्ष की सी नाई होय तिसकों भी प्रत्यक्ष कहिए। जैसे लोकविषे कहिए है "हमने स्वप्नविषें वा ध्यान विषें फलाने पुरुष को प्रत्यक्ष देखा" सो प्रत्यक्ष देखा नाहीं परन्तु प्रत्यक्षकी सी नाई प्रत्यक्षवत् यथार्थ देखा तातै तिसको प्रत्यक्ष कहिए; तैसे अनुभवविषैं आत्मा प्रत्यक्ष की नाई यथार्थ प्रतिभासै है, तातें इस न्यायकरि आत्मा का भी प्रत्यक्ष जानना होय है, ऐसे कहिये तो दोष नाहीं। कथन तो अनेक प्रकार होय परन्तु वह सर्व आगम अध्यात्म शास्त्रनसों विरोध न होय तैसे विवक्षा भेदकरि जानना।

यहाँ प्रश्न—जो ऐसे अनुभव कौन गुणस्थान में कहे हैं ?

ताका समाधान— चौथे ही से होय हैं परन्तु चौथे तो बहुत काल के अन्तराल में होय हैं और ऊपर के गुणठाने शीघ्र शीघ्र होय हैं।

बहुरि प्रश्न—जो अनुभव तो निर्विकल्प है, तहाँ ऊपर के और नीचे के गुणस्थाननि में भेद कहा ?

ताका उत्तर—परिणामन की मग्नता विषैं विशेष है। जैसे दोय पुरुष नाम ले हैं अर दो ही का परिणाम नाम विखै है, तहाँ एक कै तो मग्नता विशेष है अर एक कै स्तोक है तैसे जानना।

बहुरि प्रश्न—जो निर्विकल्प अनुभवविषैं कोई विकल्प नाहीं तो शुक्लध्यान का प्रथम भेद प्रथक्त्ववितर्कवीचार कहा, तहाँ प्रथक्त्व-वितर्कवीचार—नाना प्रकारका श्रुत अर वीचार—अर्थ, व्यजन, योग, संक्रमन रूप ऐसे क्यों कहा ?

तिसका उत्तर—कथन दोय प्रकार है। एक स्थूल रूप है, एक सूक्ष्म रूप है। जैसे स्थूलता करि तो छठे ही गुणस्थाने सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत कहा अर सूक्ष्मता कर नवमें गुणस्थान ताईं मैथुन संज्ञा कही तैसे यहाँ स्वानुभवविषै निर्विकल्पता स्थूलरूप कहिये है। बहुरि सूक्ष्मताकरि प्रथक्त्ववितर्क वीचारादिक भेद वा कषायादि दशमा गुणस्थान ताईं कहे हैं। सो अब आपके जानने में वा अन्य के जानने में आवै ऐसा भाव का कथन स्थूल जानना अर जो आप भी न जानै अर केवली भगवान् ही जानै सो ऐसे भाव का कथन सूक्ष्म जानना। चरणानुयोगादिकविषै स्थूल कथन की मुख्यता है अर करणानुयोगा-दिक विषै सूक्ष्म कथन की मुख्यता है, ऐसा भेद और भी ठिकाने जानना। ऐसे निर्विकल्प अनुभव का स्वरूप जानना।

बहुरि भाई जी, तुम तीन दृष्टांत लिखे वा दृष्टांत विषैं प्रश्न लिखा सो दृष्टांत सर्वाङ्ग मिलता नाहीं। दृष्टांत है सो एक प्रयोजन-कों दिखावै है सो यहाँ द्वितीया का विधु (चन्द्रमा), जलविन्दु, अग्नि-कण ए तो एक देश हैं अर पूर्णमासी का चन्द्र, महासागर तथा अग्नि-

कुण्ड ये सर्वदेश हैं। तैसे ही चौथे गुणस्थानवर्ती आत्माके ज्ञानादि गुण एक देश प्रगट भये हैं तिनकी अर तेरहवें गुणस्थानवर्ती आत्मा के ज्ञानादिक गुण सर्व प्रगट होय हैं तिनकी एक जाति है।

तहाँ प्रश्न—जो एक जाति है तो जैसे केवली सर्व ज्ञेयकों प्रत्यक्ष जानै हैं तैसे चौथे गुणस्थान वाला भी आत्माकों प्रत्यक्ष जानता होगा ?

ताका उत्तर—सो भाईजी, प्रत्यक्षता की अपेक्षा एक जाति नाही, सम्यग्ज्ञानकी अपेक्षा एक जाति है। चौथे गुणस्थान वाले कै मतिश्रुत रूप सम्यग्ज्ञान है और तेरहवें गुणस्थान वाले कै केवलरूप सम्यग्ज्ञान है। बहुरि एक देश सर्व देश का तो अन्तर इतना ही है जो मतिश्रुत-ज्ञान वाला अमूर्तिक वस्तु को अप्रत्यक्ष और मूर्तिक वस्तु को भी प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष किंचित् अनुक्रमसों जानै है अर केवलज्ञानी सर्व वस्तुको सर्वथा युगपत् जानै है। वह परोक्ष जानै यह प्रत्यक्ष जानै, इतना ही विशेष है अर सर्व प्रकार एकही जाति कहिए तो जैसे केवली युगपत् अप्रत्यक्ष अप्रयोजन रूप ज्ञेयकों निर्विकल्परूप जानै तैसे ए भी जानै सो तो है नाही, तातैं प्रत्यक्ष परोक्ष में विशेष जानना कह्या है।

श्लोक—स्याद्वाद केवल ज्ञाने सर्वं तत्व प्रकाशने।
भेद साक्षाद साक्षाच्च ह्यवस्त्वन्यतम् भवेत् ॥

अष्टसहस्री दशमः परिच्छेदः १०५।

याका अर्थ—स्याद्वाद जो श्रुतज्ञान अर केवलज्ञान—ये दोय सर्व तत्वों के प्रकाशन हारे हैं। विशेष इतना—केवलज्ञान प्रत्यक्ष है, श्रुत-ज्ञान परोक्ष है। वस्तुरूप से यह दोनों एक दूसरे से भिन्न नाही हैं।

बहुरि तुम निश्चय अर व्यवहार सम्यक्त का स्वरूप लिखा है सो सत्य है परन्तु इतना जानना, सम्यक्तीकै व्यवहार सम्यक्तविषै निश्चय सम्यक्त गर्भित है, सदैव गमन (परिणमन) रूप है।

बहुरि तुम लिख्या—कोई साधर्मी कहै है "आत्माको प्रत्यक्ष जानै तो कर्मवर्गणाको प्रत्यक्ष क्यों न जानै ?"

सो कहिए है—आत्माको प्रत्यक्ष तो केवली ही जानें, कर्मवर्गणा को अवधिज्ञानी भी जानै है।

बहुरि तुम लिख्या—द्वितीयाके चन्द्रमाकी ज्यो आत्माके प्रदेश थोरे खुले कहो ?

ताका उत्तर—यह दृष्टात प्रदेशन की अपेक्षा नाही, यह दृष्टात गुण की अपेक्षा है। जो सम्यक्त्व, स्वानुभव और प्रत्यक्षादिक सम्बन्धी प्रश्न तुमने लिखे थे, तिनका उत्तर अपनी बुद्धि अनुसार लिखा है। तुम हू जिनवाणीतें तथा अपनी परणति से मिलाय लेना। विशेष कहाँ ताई लिखिये जो बात जानिए सो लिखने मे आवै नाही। मिले कछु कहिये भी सो मिलना कर्माधीन, तातै भला यह है कि चैतन्य स्वरूप की प्राप्तिके उद्यममे रहना व अनुभव में वतना। वर्तमान-कालविषै अध्यात्म तत्व तो आत्मा ही है।

तिस समयसार ग्रन्थकी अमृतचन्द्र आचार्यकृत टीका सस्कृतविषै है अर आगमकी चर्चा गोम्मटसारविषै है तथा और भी अन्यग्रन्थविषै है। जो जानी है सो सर्व लिखनेमे आवै नाही। तातै तुम अध्यात्म तथा आगम ग्रन्थका अभ्यास रखना अर अपने स्वरूपविषै मग्न रहना। अर तुम कोई विशेष ग्रन्थ जान हो तो मुझको लिख भेजना। साधर्मी कै तो परस्पर चर्चा ही चाहिए अर मेरी तो इतनी बुद्धि है नाही परन्तु तुम सारिखे भाइनसो परस्पर विचार है सो अब कहाँ तक लिखिये ? जेते मिलना नाही तेतें पत्र तो शीघ्र ही लिखा करो।

मिती फागुन बदी ५ स० १८११

—टोडरमल

अथ परमार्थवचनिका लिख्यते।

एक जीवद्रव्य, ताके अनन्त गुण, अनन्त पर्याय, एक एक गुणके असख्यात प्रदेश, एक एक प्रदेशविषै अनन्त कर्म-वर्गणा, एक एक कर्मवर्गणाविषै अनन्त अनन्त पुद्गल परमाणु, एक एक पुद्गल परमाणु अनन्त गुण अनन्त पर्यायसहित विराज-मान है। या प्रमाण यह एक संसारावस्थित जीव पिंडकी अवस्था है। याहीभांति अनन्त जीवद्रव्य सपिंडरूप जानने। एकजीव द्रव्य अनन्त अनन्त पुद्गलद्रव्यकरि सयोगित (संयुक्त) मानने। ताको व्यौरो—

अन्य अन्यरूप जीवद्रव्यकी परणति, अन्य अन्यरूप पुद्गलद्रव्य-की परणति ताको व्यौरो—

एक जीवद्रव्य जा भाँतिकी अवस्थालिये नाना आकाररूप परिणमैं सो भांति अन्य जीवसों मिलै नाहीं। वाका यासैं और भांतिरूप परिणमण होय। याहीभांति अनंतानंत स्वरूप जीव द्रव्य अनंतानत स्वरूप अवस्थालिये वर्त रह्या है वर्त काहु जीवद्रव्यके परिणाम काहु और जीवद्रव्य स्यों मिलै नाहीं। याही भांति एक पुद्गल परमाणु एक समयमाँहि जा भांतिकी अवस्था धरै, सो अवस्था अन्य पुद्गल परमाणु द्रव्यसों मिलै नाही। तातै पुद्गल (परमाणु) द्रव्यकी भी अन्य अन्यता जाननी।

अथ जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य एक क्षेत्रावगाही अनादिकालके, तामैं विशेष इतनो जु जीवद्रव्य एक; पुद्गल परमाणु द्रव्य अनतानंत,

चलाचलरूप, आगमनगमनरूप, अनताकार परिणमनरूप बंधमुक्ति-शक्ति लिये वर्तै है।

अथ जोवद्रव्यकी अनन्ती अवस्था तामे तीन अवस्था मुख्य थापी। एक अशुद्ध अवस्था, एक शुद्धाशुद्धरूप मिश्र अवस्था, एक शुद्ध अवस्था, ए तीन अवस्था ससारी जीवद्रव्यकी जानना। ससारातीत सिद्ध अनवस्थितरूप कहिये।

अब तीनहू अवस्थाकों विचार—एक अशुद्ध निश्चयात्मक द्रव्य, एक शुद्धनिश्चयात्मक द्रव्य, एक मिश्रनिश्चयात्मक द्रव्य। अशुद्धनिश्चय द्रव्यको सहकारी अशुद्ध व्यवहार, मिश्रद्रव्यको सहकारी मिश्र व्यवहार, शुद्ध द्रव्यको सहकारी शुद्ध व्यवहार।

अब निश्चय व्यवहार को विवरण लिख्यते —

निश्चय तो अभेदरूप द्रव्य, व्यवहार द्रव्यके यथास्थित भाव। परन्तु विशेष इतनो जु यावत्काल ससारावस्था तावत्काल व्यवहार कहिए, सिद्ध व्यवहारातीत कहिये, यातै जु ससार व्यवहार एक रूप दिखायो। ससारी सो व्यवहारी, व्यवहारी सो ससारी।

अब तीनहू अवस्था को विवरण लिख्यते :—

यावत्काल मिथ्यात्व अवस्था, तावत्काल अशुद्ध निश्चयात्मक द्रव्य अशुद्धव्यवहारी। सम्यग्दृष्टी होत मात्र चतुर्थ गुणस्थानकस्यो द्वादश गुणस्थानकपर्यन्त मिश्रनिश्चयात्मक द्रव्य मिश्रव्यवहारी। केवलज्ञानी शुद्धनिश्चयात्मक शुद्धव्यवहारी।

अब निश्चय तो द्रव्यको स्वरूप, व्यवहार ससारावस्थित भाव, ताको विवरण कहै हैं .—

मिथ्यादृष्टी जीव अपनो स्वरूप नाहीं जानतो तातें परस्वरूप-विषै मगन होय करि कार्य मानतु है, ता कार्य करतो छतो अशुद्ध-व्यवहारी कहिए। सम्यग्दृष्टी अपनो स्वरूप परोक्ष प्रमाणकरि अनुभवतु है। परसत्ता परस्वरूपसों अपनों कार्य नाहीं मानतो संतो योगद्वारकरि अपने स्वरूपको ध्यान विचाररूप किया करतु है, ता कार्य करतो मिश्र व्यवहारी कहिए, केवलज्ञानी यथाख्यात-चारित्रके बलकरि शुद्धात्मस्वरूपको रमणशील है तातें शुद्धव्यवहारी कहिए, योगारूढ अवस्था विद्यमान है तातें व्यवहारी नाम कहिए। शुद्धव्यवहारकी सरहद्द त्रयोदशम गुनस्थाकसों लेइकरि चतुर्दशम गुनस्थानकपर्यन्त जाननी। असिद्धत्वपरिणमनत्वात् व्यवहारः।

अथ तीनहूं व्यवहारको स्वरूप कहै हैं :—

अशुद्ध व्यवहार शुभाशुभाचाररूप, शुद्धाशुद्धव्यवहार शुभोप-योगमिश्रित स्वरूपाचरणरूप, शुद्धव्यवहार शुद्धस्वरूपाचरणरूप। परन्तु विशेष इनको इतनो जु कोऊ कहै कि—शुद्धस्वरूपाचरणात्म तो सिद्धहूविषै छतो है, वहां भी व्यवहार संज्ञा कहिए—सो यों नाही—जातें ससारी अवस्थापर्यन्त व्यवहार कहिए। संसारावस्था के मिटत व्यवहार भी मिटी कहिए। इहां यह थापना कीनी है, तातें सिद्धव्यवहारातीत कहिए। इति व्यवहारविचार समाप्तः।

अथ आगम अध्यात्मको स्वरूप कथ्यते —

आगम-वस्तुको जु स्वभाव सो आगम कहिए। आत्माको जु अधिकार सो अध्यात्म कहिए। आगम तथा अध्यात्म स्वरूप भाव आत्मद्रव्यके जानने। ते दोऊभाव संसार अवस्थाविषै त्रिकालवर्ती मानने। ताको व्यौरो—आगमरूप कर्मपद्धति, अध्या-

स्वरूप शुद्धचेतनापद्धति। ताको ब्यौरो कर्मपद्धति पौद्गलीकद्रव्यरूप अथवा भावरूप, द्रव्यरूप पुद्गलपरिणाम भावरूप पुद्गलाकारआत्मा की अशुद्धपरिणतिरूप परिणाम—ते दोऊपरिणाम आगमरूप थापे। अब शुद्धचेतनापद्धति शुद्धात्मपरिणाम सो भी द्रव्यरूप अथवा भावरूप। द्रव्यरूप तो जीवत्वपरिणाम, भावरूप ज्ञानदर्शन सुख-वीर्य आदि अनन्तगुणपरिणाम, ते दोऊ परिणाम अध्यात्मरूप जानने। आगम अध्यात्म दुहुं पद्धतिविषै अनन्तता माननी।

अनन्तता कहा ताको विचार :—

अनतताको स्वरूप दृष्टान्तकरि दिखाइयतु है जैसे—
वटवृक्षको बीज एक हाथविषै लीजे ताको विचार दीर्घ दृष्टिसों कीजे तो वा वटके बीजविषै एक वटको वृक्ष है, सो वृक्ष जैसो कछु भाविकाल होनहार है तैसो विस्तारलिये विद्यमान वार्मे वास्तवरूप छतो है, अनेक शाखा प्रशाखा पत्र पुष्पफलसयुक्त है, फल फलविषै अनेक बीज होंहि। या भांतिकी अवस्था एक वटके बीजविषै विचारिए। और भी सूक्ष्मदृष्टि दीजे तो जे जे वा वट वृक्षविषै बीज हैं ते ते अंतर्गभित वटवृक्षसयुक्त होंहि। याही भांति एकवटविषै अनेक अनेक बीज, एक एक बीज विषै एक एक वट, ताको विचार कीजे तो भाविनयप्रधानकरि न वटवृक्षनिकी मर्यादा पाइए न बीजनिकी मर्यादा पाइए। याही भाति अनंतताको स्वरूप जाननो। ता अनंतताके स्वरूपको केवलज्ञानी पुरुष भी अनन्तही देखै जाणै कहै-अनन्तको ओर अत है ही नाही जो ज्ञानविषै भासै। तातै अनन्तता अनन्तहीरूप प्रसिभासै, या भांति आगम

अध्यात्मकी अनन्तता जाननी। तामें विशेष इतनो जु अध्यातमको स्वरूप अनन्त, आगमको स्वरूप अनन्तानंतरूप, यथापना प्रवानकरि अध्यात्म एक द्रव्याश्रित, आगम अनन्तानन्त पुद्गलद्रव्याश्रित। इन दुहूंको स्वरूप सर्वथा प्रकार तो केवलज्ञानगोचर, अंशमात्र मति श्रुतज्ञानग्राह्य तातें सर्वथाप्रकार आगमी अध्यात्मी तो केवली, अंशमात्र मतिश्रुतज्ञानी, ज्ञातादेशमात्र अवधिज्ञानी मनःपर्यय ज्ञानी, ए तीनों यथावस्थित ज्ञानप्रमाण न्यूनाधिकरूप जानने। मिथ्यादृष्टी जीव न आगमी न अध्यात्मी है। काहेतें यातें जु कथन मात्र तो ग्रथपाठके बलकरि आगम अध्यात्मको स्वरूप उपदेशमात्र कहै परन्तु आगम अध्यात्मको स्वरूप सम्यक् प्रकार जानें नहीं। तातै मूढ जीव न आगमी न अध्यात्मी, निर्वेदकत्वात्।

अब मूढ तथा ज्ञानी जीवको विशेषपणो और भी सुनो :—

ज्ञाता तो मोक्षमार्ग साधि जानै, मूढ मोक्षमार्ग न साधि जानै, काहे—यातें सुनो—मूढ जीव आगमपद्धतिको व्यवहार कहै, अध्यात्मपद्धतिको निश्चय कहै तातै आगम अंग को एकान्तपनो साधिकैं मोक्षमार्ग दिखावै, अध्यात्म अंगको व्यवहारे न जानै—यह मूढदृष्टीको स्वभाव, वाहि याही भाति सूझै, काहेतें ?—यातै—जू आगम अंग बाह्यक्रिया रूप प्रत्यक्ष प्रमाण है ताको स्वरूप साधिवो सुगम। ता बाह्यक्रिया करतो संतो आपकूं मूढ जीव मोक्षको अधिकारी मानै, अन्तरगर्भित को अध्यात्मरूप क्रिया सो अंतरदृष्टि ग्राह्य है सो क्रिया मूढजीव न जानै। अन्तरदृष्टि के अभावसों अन्तर क्रिया दृष्टिगोचर आवै नाहीं, तातें मिथ्यादृष्टि जीव मोक्षमार्ग साधिवेको असमर्थ।

अथ सम्यक्दृष्टीको विचार सुनो :—

सम्यग्दृष्टी कहा सो सुनो—संशय विमोह विभ्रम ए तीन भाव जामें नाहीं सो सम्यग्दृष्टी। संशय विमोह विभ्रम कहा ताको स्वरूप दृष्टान्तकरि दिखायतु है सो सुनो--जैसें च्यार पुरुष काहु एक स्थानक विषै ठाढे। तिन्ह चारिहूं के आगे एक सीपको खंड किनही और पुरुषने आनि दिखायो। प्रत्येक प्रत्येकतें प्रश्न कीनी कि यह कहा है—सीप है कि रूपो है। प्रथमही एक पुरुष संशैवालो बोल्यो-कछु सुध नाहीं न परत, किधो सीप है किधो रूपो है, मोरी दृष्टिविषै याको निरधार होत नांहिनै। दूजो पुरुष भी विमोहवालो बोल्यो कि-कछू मोहि यह सुधि नाहीं कि तुम सीप कौनसों कहतु है, रूपो कोनसों कहतु है, मेरी दृष्टिविषै कछु आवतु नाही, तातैं हम नांहिनै जानत कि तू कहा कहतु है अथवा चुप ह्वै रहै बोलै नाहीं गहलरूपसों। तीसरो पुरुष भी विभ्रमवालो बोल्यो कि—यह तो प्रत्यक्षप्रमाणरूपो है, याको सीप कौन कहै, मेरी दृष्टिविषै तो रूपो सूझतु है तातैं सर्वथाप्रकार यह रूपो है सो तीनों पुरुष तो वा सीपको स्वरूप जान्यो नाही। तातै तीनों मिथ्यावादी। अब चौथो पुरुष बोल्यो कि यह तो प्रत्यक्ष प्रमाण सीपको खंड है, यामें कहा धोखो, सीप सीप सीप, निरधार सीप, याको जु कोई और वस्तु कहै सो प्रत्यक्षप्रमाण भ्रामक अथवा अंध, तैसें सम्यग्दृष्टीको स्वपरस्वरूपविषे न संसै न विमोह न विभ्रम, यथार्थदृष्टि है तातै सम्यग्दृष्टी जीव अन्तरदृष्टि करि मोक्षपद्धति साधि जानै। बाह्यभाव बाह्यनिमित्तरूप मानै, सो निमित्त नानारूप, एक रूप नाहीं, अन्तरदृष्टिके प्रमाण मोक्षमार्ग साधै, सम्यग्ज्ञान स्वरूपाचरणकी कनिका जागे मोक्षमार्ग सांचो। मोक्षमार्गको साधिवोय है व्यवहार, शुद्धद्रव्य अक्रियारूप सो निश्चै। ऐसें निश्चय

व्यवहारको स्वरूप सम्यग्दृष्टी जानै, मूढजीव न जानै न मानै। मूढ जीव बंधपद्धतिको साधिकरि मोक्ष कहै, सो बात ज्ञाता मानै नाहीं। काहेतें ? याते जु बंधके साधते बंध सधै, मोक्ष सधै नाहीं। ज्ञाता जब कदाचित् बंधपद्धति विचारै तब जानै कि या पद्धतिसों मेरो द्रव्य अनादिको बन्धरूप चल्यो आयो है--अब या पद्धतिसों मोह तोरि वहै तो या पद्धतिको राग पूर्वकी त्यों हे नर काहे करो ? छिन मात्र भी बंधपद्धतिविषै मगन होय नाहीं सो ज्ञाता अपनो स्वरूप विचारै अनुभवै ध्यावै गावै श्रवन करै नवधाभक्ति तप क्रिया अपने शुद्धस्वरूपके सन्मुख होइकरि करै। यह ज्ञाताको आचार, याहीको नाम मिश्रव्यवहार।

अब हेयज्ञेयउपादेयरूप ज्ञाताकी चाल ताको विचारलिख्यते :—

हेय--त्यागरूप तो अपने द्रव्यकी अशुद्धता, ज्ञेय—विचाररूप अन्यषट्द्रव्यको स्वरूप, उपादेय—आचरण रूप अपने द्रव्यकी अशुद्धता, ताको व्यौरो—गुणस्थानक प्रमाण हेयज्ञेयउपादेयरूप शक्ति ज्ञाताकी होइ। ज्यो ज्यों ज्ञाताकी हेय ज्ञेयउपादेयरूप शक्ति वर्द्धमान होय त्यो त्यों गुणस्थानककी बढवारी कही है, गुणस्थानकप्रवान ज्ञान गुणस्थानक प्रमाण क्रिया। तामें विशेष इतनो जु एक गुणस्थानकवर्ती अनेक जीव होंहि तौ अनेक रूपको ज्ञान कहिए, अनेक रूपकी क्रिया कहिए। भिन्न भिन्नसत्ताके प्रवानकरि एकता मिलै नाही। एक एक जीव द्रव्यविषै अन्य अन्य रूप उदीक भाव होंहि, तिन उदीकभावानुसारि ज्ञानकी अन्य अन्यता जाननी। परन्तु विशेष इतनो जु कोऊ जातिको ज्ञान ऐसो न होइ जु परसत्तावलंबनशीली होइकरि मोक्षमार्ग साक्षात् कहै, काहेतैं ? अवस्थाप्रवान परसत्तावलंबक है। ज्ञानको परसत्तावलंबी

परमार्थता न कहै । जो ज्ञान होय सो स्वसत्तावलंबनशीली होइ ताको नाउ ज्ञान। ता ज्ञानकी सहकारभूत निमित्तरूप नाना प्रकार के उदीकभाव होंहि। तिन्ह उदीकभावनको ज्ञाता तमासगीर। न कर्त्ता न भोक्ता न अवलबी तातैं कोऊ यों कहै कि या भांतिके उदीक भाव होंहि, सर्वथा तो फलानो गुणस्थानक कहिये सो भूठो। तिनि द्रव्यको स्वरूप सर्वथा प्रकार जान्यों नाही। काहेतै ? यातै जु और गुणस्थानकनिकी कौन बात चलावै, केवलीके भी उदीक-भावनिकी नानात्वता जाननी। केवलीके भी उदीकभाव एकसे होय नाहीं। काहू केवलीकों दड कपाटरूप क्रिया उदै होय, काहू केवली कों नाहीं । तो केवलीविषै भी उदैकी नानात्वता है तो और गुणस्थानककी कौन बात चलावै। तातै उदीक भावनिके भरोसे ज्ञान नाहीं, ज्ञान स्वशक्तिप्रवान है। स्वपरप्रकाशक ज्ञानकी शक्ति, ज्ञायक प्रमाण ज्ञान, स्वरूपाचरणरूप चारित्र यथा अनुभव प्रमाण —यह ज्ञाताको सामर्थ्यपनो । इन बातनको ब्यौरो कहांतांई लिखिये, कहांतांई कहिए । वचनातीत इन्द्रियातीत ज्ञानातीत, तातै यह विचार बहुत कहा लिखहि। जो ज्ञाता होयगो सो थोरी ही लिख्यो बहुतकरि समुझैगा, जो अज्ञानी होयगो सो यह चिट्ठी सुनेगो सही परन्तु समुझैगा नहीं। यह वचनिका यथा का यथा सुमति-प्रवान के वलिवचनानुसारी है। जो याहि सुनेगो, समुझैगो, सरदहेगो, ताहि कल्याणकारी है भाग्यप्रमाण।

इति परमार्थ वचनिका समाप्तं।

अथ उपादान निमित्तको चिट्ठी लिख्यते

प्रथम हि कोई पूछत है कि निमित्त कहा उपादान कहा ताको व्यौरो—निमित्त तो सयोगरूप कारण, उपादान वस्तुकी सहज शक्ति। ताको व्यौरो—एक द्रव्यार्थिक निमित्त उपादान, एक पर्यायार्थिक निमित्तउपादान, ताको व्यौरो—द्रव्यार्थिक निमित्त उपादान गुणभेदकल्पना। पर्यायार्थिक निमित्त उपादान परजोगकल्पना, ताकी चौभगी। प्रथम ही गुणभेद कल्पनाकी चौभगीको विस्तार कहू सो कैसे ?—ऐसे—सुनो—जीवद्रव्य ताके अनन्त गुण, सब गुण असहाय स्वाधीन सदाकाल। तामें दोय गुण प्रधान मुख्य थापे, तापर चौभगीको विचार एक तो जीवको ज्ञानगुण दूसरो जीवको चारित्रगुण।

ए दोनो गुण शुद्धरूप भाव जानने, अशुद्धरूप भी जानने, यथा-योग्य स्थानक मानने ताको व्यौरो-इन दुहूँकी गति न्यारी२, शक्ति न्यारी न्यारी, जाति न्यारी न्यारी, सत्ता न्यारी न्यारी ताको व्यौरो—ज्ञानगुणकी तो ज्ञान अज्ञानरूप गति, स्वपरप्रकाशक शक्ति, ज्ञानरूप तथा मिथ्यात्वरूप जाति, द्रव्यप्रमाण सत्ता परन्तु एक विशेष इतनो जु ज्ञानरूप जातिको नाश नाही, मिथ्यात्वरूप जातिको नाश, सम्यग्दर्शन उत्पत्ति पर्यत, यह तो ज्ञान गुणको निर्णय भयो। अब चारित्र गुणको व्यौरो कहै हैं,—सक्लेश विशुद्धरूप गति थिरता अथिरता शक्ति, मदी तीव्ररूप जाति, द्रव्यप्रमाण सत्ता। परन्तु एक विशेष जु मदताकी स्थिति चतुर्दशम गुणस्थानकपर्यन्त। तीव्रताकी स्थिति पचम गुणस्थानक पर्यन्त। यह तो दुहुको गुण भेद न्यारो

न्यारो कियो। अब इनकी व्यवस्था न ज्ञान चारित्र के आधीन न चारित्र ज्ञानके आधीन। दोऊ असहाय रूप यह तो मर्यादा बंध।

अथ चौभंगीको विचार—ज्ञानगुण निमित्त
चारित्रगुण उपादान रूप ताको व्यौरो—

एक तो अशुद्ध निमित्त अशुद्ध उपादान दूसरो अशुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान। तीसरो शुद्ध निमित्त अशुद्ध उपादान, चौथो शुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान, ताको व्यौरो—सूक्ष्मदृष्टि देइकरि एक समयकी अवस्था द्रव्यकी लेनी, समुच्चयरूप मिथ्यात्वकी बात नाहीं चलावनी। काहू समै जीवकी अवस्था या भांति होतु है जु जानरूप ज्ञान विशुद्ध चारित्र, काहू समै अजानरूप ज्ञान विशुद्ध चारित्र, काहू समै जानरूप ज्ञान संक्लेश रूप चारित्र, काहू समै अजानरूप ज्ञान संक्लेश चारित्र, जा समै अजानरूप गति ज्ञानकी, संक्लेश-रूप गति चारित्रकी तासमें निमित्त उपादान दोऊ अशुद्ध। काहू-समै अजानरूप ज्ञान विशुद्ध रूप चारित्र तासमें अशुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान। काहू समै जानरूप ज्ञान सकलेशरूप चारित्र तासमें शुद्ध निमित्त अशुद्ध उपादान। काहू समै जानरूप ज्ञान विशुद्ध रूप चारित्र तासमें शुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान, या भांति अन्य २ दशा जीवकी सदाकाल अनादिरूप, ताको व्यौरो—जान रूप ज्ञानकी शुद्धता कहिए विशुद्धरूप चारित्र की शुद्धता कहिये। अज्ञान रूप ज्ञानकी अशुद्धता कहिए संक्लेश रूप चारित्रकी अशुद्धता कहिये। अब ताको विचार सुनो—मिथ्यात्व अवस्था विषै काहू समै जीवको ज्ञान गुण जाण रूप है तब कहा जानतु है? ऐसो जानतु है—

कि लक्ष्मी पुत्र कलत्र इत्यादिक मोसों न्यारे हैं प्रत्यक्ष प्रमाण मैं मरूगा ए यहां ही रहेंगे सो जानतु है। अथवा ए जांयगे मैं रहूंगा, कोई काल इनस्यों मोहि एक दिन वियोग है ऐसो जानपनों मिथ्यादृष्टीको होतु है सो तो शुद्धता कहिए परन्तु सम्यक् शुद्धता नाही गर्भितशुद्धता, जब वस्तुको स्वरूप जानै तब सम्यक् शुद्धता सो ग्रथिभेद विना होई नाही परन्तु गर्भित शुद्धता सो भी अकाम निर्जरा है, वाही जीवको काहू समै ज्ञान गुण अजान रूप है गहलरूप, ताकरि केवल बध है, याही भांति मिथ्यात्व अवस्था विषे काहू समै चारित्र गुण विशुद्धरूप है तातै चारित्रा-वर्ण कर्म मद है। ता मदताकरि निर्जरा है। काहूसमै चारित्रगुण सक्लेशरूप है तातै केवल तीव्रबध है। या भांति करि मिथ्या अवस्थाविषै जा समै जानरूप ज्ञान है और विशुद्धतारूप चारित्र है ता समै निर्जरा है। जा समै अजानरूप ज्ञान है सक्लेश रूप चारित्र है ता समै बध है, तामें विशेष इतनो जु अल्प निर्जरा बहु बंध, तातैं मिथ्यात अवस्थाविषैकेवल बन्ध कह्यो। अल्पकी अपेक्षा जैसे– काहू पुरुषकों नफ़ो थोडो टोटो बहुत सो पुरुष टोटाउ ही कहिए। परन्तु बन्ध निर्जरा विना जीव काहू अवस्थाविषै नाही। दृष्टान्त ऐसो—जु विशुद्धताकरि निर्जरा न होती तो एकेन्द्री जीव निगोद अवस्थास्यों व्यवहारराशि कौनके बल आवतो ? वहां तो ज्ञान गुण अजानरूप गहलरूप है अबुद्धरूप है तातै ज्ञानगुणको नो बल नाही। विशुद्धरूप चारित्र के बलकरि जीव व्यवहार राशि चढ़तु है, जीवद्रव्यविषै कषायकी मंदता होतु है ताकरि निर्जरा होतु है। वाही मदता प्रमाण शुद्धता जाननी। अब और भी विस्तार सुनो :—

जानपनो ज्ञानको अरु विशुद्धता चारित्रकी दोऊ मोक्षमार्गा-नुसारी हैं ताते दोऊविषै विशुद्धता माननी। परन्तु विशेष इतनों जु गर्भित शुद्धता प्रगट शुद्धता नाहीं। इन दुहूं गुणकी गर्भित शुद्धता जब तांई ग्रंथिभेद होय नाही तब ताँई मोक्षमार्ग न सधै। परन्तु ऊरध-ताको करहि अवश्य करि ही। ए दोऊ गुणकी गर्भित शुद्धता जब ग्रंथिभेद होइ तब इन दुहूंकी शिखा फूटे तब दोऊ गुण धारा-प्रवाहरूप मोक्षमार्गकों चलहिं; ज्ञानगुणकी शुद्धताकरि ज्ञान गुण निर्मल होहि, चारित्र गुणकी शुद्धता करि चारित्र गुण निर्मल होइ। वह केवलज्ञानको अंकूर, वह यथाख्यातचारित्रको अंकूर।

इहां कोऊ उटंकना करतु है—कि तुम कह्यो जु ज्ञानको जाणपनो अरु चारित्रकी विशुद्धता दुहुंस्यों निर्जरा है सु ज्ञानके जाणपनो सो निर्जरा यह हम मानी। चारित्रकी विशुद्धतासों निर्जरा कैसे ? यह हम नाहीं समुझी—ताको समाधानः—

सुनि भैया ! विशुद्धता थिरतारूप परिणामसों कहिये सो थिरता यथाख्यातको अंश है ताते विशुद्धता में शुद्धता आई। वह उटंकनावारो बोल्यो—तुम विशुद्धतासों निर्जरा कही, हम कहतु हैं कि विशुद्धतासो निर्जरा नाहीं, शुभबन्ध है–ताको सामाधान— कि सुन भैया यह तो तू सांचो विशुद्धतासों शुभबन्ध, संक्लेशतासों अशुभबन्ध, यह तो हम भी मानी परन्तु और भेद यामें है सो मुनि—अशुभपद्धति अधोगतिको परणमन है, शुभपद्धति उर्द्धगतिको परणमण है ताते अधोरूपसंसार उर्द्धरूप मोक्षस्थान पकरि, शुद्धता वामें आई मानि मानि, यामें धोखो नाही है, विशु-ता सदा काल मोक्षको मार्ग है परन्तु ग्रन्थभेद बिना शुद्धताको

जोर चलत नाहींने ? जैसें कोऊ पुरुष नदी में डुबकी मारै फिर जब उछलै तब दैवयोगसों ऊपर ता पुरुषके नौका आय जाय तो यद्यपि ताकू पुरुष है तथापि कौन भाँति निकलै ? वाको जोर चलै नाहिं, बहुतेरा कलबल करै पै कछु बसाइ नाँही, तैसें विशुद्धताकी भी ऊर्द्धता जाननी। ता वास्तै गर्भित शुद्धता कही। वह गर्भित शुद्धता ग्रंथिभेद भए मोक्षमार्गको चली। अपने स्वभाव करि वर्द्धमानरूप भई तब पूर्ण यथाख्यात प्रगट कहायो। विशुद्धताका जु ऊर्द्धता वहै वाकी शुद्धता।

और मुनि जहाँ मोक्षमार्ग साध्यो तहाँ कह्यो कि "सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः" और यों भी कह्यो कि "ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः" ताको विचार–चतुर्थ गुणस्थानकस्यु लेकरि चतुर्दशम गुणस्थानकपर्यन्त मोक्षमार्ग कह्यो ताको व्यौरो, सम्यक्रूप ज्ञानधारा विशुद्धरूप चारित्रधारा—दोऊधारा मोक्षमार्गको चली सु ज्ञानसों ज्ञानकी शुद्धता क्रियासों क्रियाकी शुद्धता। जो विशुद्धतामें शुद्धता है तो यथाख्यात रूप होत है। जो विशुद्धतामें शुद्धता का अंश न होत तो ज्ञान गुण शुद्ध होतो, क्रिया अशुद्ध रहती केवली विषै; सो यों तो नहीं, वामें शुद्धता हती ताकरि विशुद्धता भई। इहां कोई कहेगो कि ज्ञानकी शुद्धताकरि क्रिया शुद्ध भई सो यों नाहीं। कोऊ गुण काहू गुणके सारै नहीं, सब असहाय रूप हैं। और भी सुनि जो क्रियापद्धति सर्वथा अशुद्ध होती तो अशुद्धताकी एती शक्ति नाहीं जु मोक्षमार्गको चलै तातें विशुद्धतामें यथाख्यातको अंश है तातें वह अंश क्रम क्रम पूरण भयो। ए भइया उटकनावारे—तैं विशुद्धतामें शुद्धता मानी कि नाहीं। तें जो तो तें मानी तो कछु और

कहिवेको कार्य नाही। जो तै नाहीं मानी तो तेरो द्रव्य याही भाँति को परणयो है हम कहा करि हैं जो मानी तो स्याबासि। यह तो द्रव्यार्थिककी चौभगी पूरण भई।

निमित्त उपादान का शुद्ध अशुद्धरूप विचार—

अब पर्यायार्थिककी चौभगी सुनो—एक तो वक्ता अज्ञानी श्रोता भी अज्ञानी सो तो निमित्त भी अशुद्ध उपादान भी अशुद्ध। दूसरो वक्ता अज्ञानी श्रोता ज्ञानी सो निमित्त अशुद्ध और उपादान शुद्ध। तीसरो वक्ता ज्ञानी श्रोता अज्ञानी सो निमित्त शुद्ध उपादान अशुद्ध। चौथो वक्ता ज्ञानी श्रोता भी ज्ञानी सो तो निमित्त भी शुद्ध उपादान भी शुद्ध। यह पर्यायार्थिककी चौभगी साधी।

इति निमित्त उपादान शुद्धाशुद्धरूपविचार वचनिका।

सस्ती ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

१. पदम पुराण	७)	१०. वृहत् समाधि-मरण	)३७ पैसे
२. रत्नकरण्ड श्रावकाचार	५)	११. छहढ़ाला सार्थ	)३२ ,,
३. मोक्षमार्ग प्रकाशक	३)	१२. भजन संग्रह	)२५ ,,
४. कल्याण गुटका	१)५०पैसे	१३. वैराग्य प्रकाश	)२५ ,,
५. मानव धर्म	)७५ ,,	१४. दशधर्म लावनी	)२५ ,,
६. सरल जैनधर्म	)६२ ,,	१५. ब्रह्मचर्य रहस्य	)२५ ,,
७. प्रश्नोत्तर ज्ञान सागर प्रथम भाग	)६२ ,,	१६. जैन शतक	)१६ ,,
		१७. रहस्य पूर्ण चिट्ठी व छहढाला (मूल)	)२० ,,
८. प्रश्नोत्तर ज्ञान सागर द्वितीय भाग	)६२ ,,	१८. मेरी भावना	)५ ,,
९. स्वास्थ विधान	)५० ,,		